ओ३म्

अमृत वचन

* प्रवचन संग्रह *

प्रवचनकर्ता

परमहंस दण्डी स्वामी
श्रीमत्हंसानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्ता एवं प्रकाशक

डा० कमल गुप्ता

परम पूज्य गुरुदेव के चरणों में सादर समर्पित

Website : shrihansanandji.com
2 0 2 0

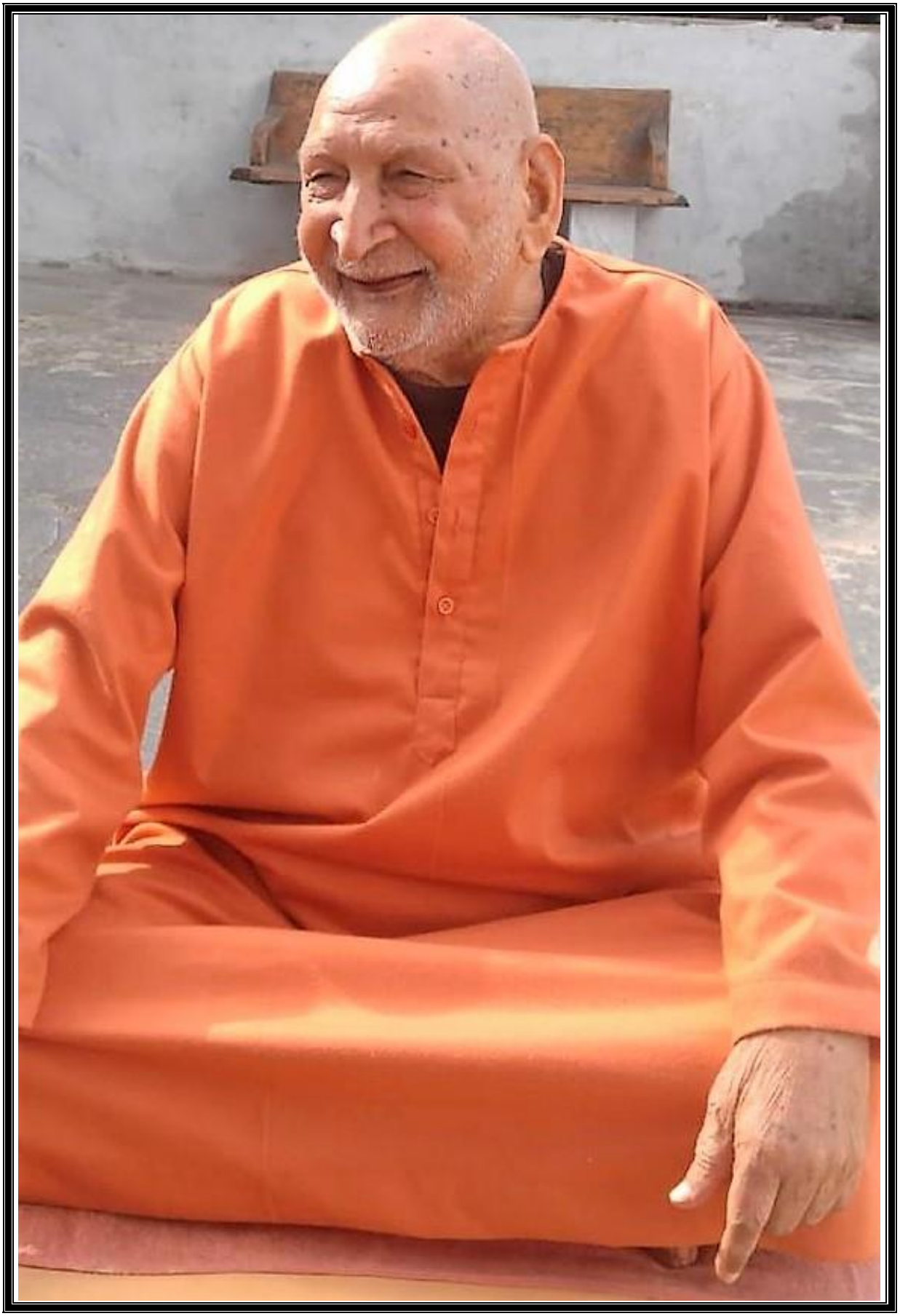

मं ग ला च र ण

शंकरमठ संप्रदाय शान्ति मन्त्र

ओ३म् नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो, वंशर्षिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्य:।
सर्वोपप्लवरहित: प्रज्ञानघन: प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि ।। १ ।।
ओ३म नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ।। २ ।।
श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरुन्संततमानतोऽस्मि ।। ३ ।।
श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ।। ४ ।।
शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुन: पुन: ।। ५ ।।
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नम: ।। ६ ।।

अनध्यायमंगलपाठ:

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्, स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं परम् ।। १ ।।
अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्, स्मर्तृणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मंगलं विदु: ।। २ ।।
ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मण: पुरा, कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्मांगलिकावुभौ ।। ३ ।।

ओ३म् तत्सत् परब्रह्मणे नम:

—०O०—

विषय सूची

Website : shrihansanandji.com

क्रम संख्या	विषय	CD # संख्या	पृष्ठ संख्या
A	पुस्तक आवरण	-	1
B	स्वामी जी	-	2
C	मंगलाचरण	-	3
D	विषय सूची	-	4
1	विषाद से मुक्ति की यात्रा	CD # 10 - Voice 03	7
2	श्रवण मनन निदिध्यासन	CD # 05 - 22.08.06 [P]	13
3	सर्वलोकमहेश्वर:	CD # 29 - SEP 49	17
4	मन माया है	CD # 05 - 25.08.06	23
5	पंच भ्रम	CD # 59 a - May 30	29
6	छ: अनादि एवं सामान्य और विशेष ज्ञान	CD # 07 - 02.09.06	35
7	चिदाभास की ७ अवस्थाएं	-	41
8	दृग् - दृश्य विवेक	CD # 10 - Voice 15	44
9	ज्ञान की ७ भूमिकाएं	CD # 59A - 33 May	48
10	ब्रह्म का स्वरूप एवं तटस्थ लक्षण + वृत्ति व्याप्ति एवं फल व्याप्ति	CD # 48 B - Oct 41	53
11	आत्मा अकर्म है, सर्वकर्म प्रकृति में हैं	CD # 38 - Voice 12	59
12	आत्मा का स्वरूप	CD # 39 - 46	63
13	रूपक द्वारा आत्मा का निरूपण	CD # 52 - May 23	69
14	भगवान राम का हनुमानजी को ज्ञानोपदेश (परमात्मा आत्मा अनात्मा)	CD # 12 - Voice 60	73
15	आत्म - अनात्म विवेक एवं अवस्थात्रय परीक्षण	CD # 07 - 21.04.07 [P]	78
16	उपनिषदों का सार	CD # 07 - 03.09.06	82
17	सामान्य और विशेष आनंद	CD # 39 - Aug 05	89
18	अपरा परा प्रकृति और ब्रह्म	CD # 39 - August 38	93
19	क्षर अक्षर एवं उत्तम पुरुष (भ0गी0 पंचदशोऽध्याय:)	CD # 5 - 28.08.06	98
20	जीवन मुक्त की गति एवं स्थिति	CD # 06 - 12.09.06	104
21	आत्मा परमात्मा अनात्मा	CD # 38 - Voice 27	109

22	ज्ञान योग	CD # 02 - 11.05.06	114
23	प्रकृति - पुरुष विभाग (माया-ब्रह्म निरूपण)	CD # 37 - Jun 27	121
24	भ०गी०पंचदशोऽध्याय: का प्राण श्लोक (श्लोक 15)	CD # 45 - 23	126
25	हृदय ग्रन्थि का छेदन	CD # 05 - 12.08.06	131
26	छ: अनादि और जीव की ७ अवस्थाएं	CD # 19 - 17.08.08	137
27	ज्ञान सबसे पवित्र है, ज्ञान से सद्य मुक्ति	CD # 21 - Voice 10	144
28	अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है	CD # 21 - Voice 09	150
29	ओ३म् श्री परमात्मने नम:	CD # 22 - Voice 23	154
30	क्रम समुच्चय (भ0गी0 - अध्याय 5)	CD # 21 - Voice 24	159
31	संसार एक पीपल वृक्ष है (भ0गी0 - अध्याय 15.1)	CD # 52 - JUN 29	164
32	आत्मा के चार पाद (माण्डूक्य उपनिषद)	CD # 12 - Voice 64	168
33	श्री राम जय राम जय जय राम (महामंत्र की व्याख्या)	CD # 08 - Pravachan 04	173
34	अस्ति भाति प्रिय (भाग - 1)	CD # 26 - May 13	178
35	अस्ति भाति प्रिय (भाग - 2)	CD # 59a - 31 May	182
36	स्थितप्रज्ञ के लक्षण	CD # 10 - Voice 21	186
37	अहंब्रह्मास्मि	CD # 04 - 25.07.06	190
38	भगवान राम से लक्ष्मण का निवेदन	CD # 48 a - Sep 29	197
39	क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ दो ही पदार्थ हैं	CD # 07 - 09.05.07	202
40	स्कन्दोपनिषद	CD # 05 - 17.08.06	207
41	जीव का अज्ञान और त्रिकाण्डमय वेद	CD # 05 - 02.08.06	212
42	भगवान का (स0सा0) रूप और (नि0नि0) स्वरूप निरूपण	CD # 05 - 23.08.06	217
43	शब्द ब्रह्म और परम ब्रह्म	CD # 36 - May 35	223
44	आत्मा सत्य व अप्रमेय है एवं छ: प्रमाण	CD # 28 - 31.mp3	227
45	राम नाम की महिमा	CD # 09 - Voice 71	232
46	ज्ञान और गति	CD # 29 - Sep 40.mp3	238
47	आत्मा अमृत है	CD # 28 - 27. mp3	242
48	देही नित्य-अवध्य है	CD # 10 - Voice 07	246
49	अर्जुन! अपने स्वरूप में जागो	CD # 35 - May 11	251
50	जगत भ्रम मात्र है	CD # 07 - 08 Nov 06	257
51	आत्मा आश्चर्यरूप है	CD # 12 - Voice 73	263
52	श्रीमद्भागवत – 1:1:1 (भाग - 1)	CD # 61 - 1 Sep	267

53	श्रीमद्भागवत – 1:1:1 (भाग - 2)	CD # 61 - 2 Sep	272
54	चतुश्लोकी भागवत	CD # 60 – Jul 16	276
55	चतुश्लोकी भागवत	स्वामीजी के प्रवचनों से संकलित	280
56	आत्मज्ञान से संसार की निवृत्ति	CD # 39 - Voice 31	284
57	देह संरचना	CD # 14 - Voice 113	290
58	मंगलाचरण की महिमा	CD # 05 - 22.08.06	293

—०००—

CD # 10 - Voice 03

१

विषाद से मुक्ति की यात्रा

हे भगवन्! अज्ञानता के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है और धर्म को भी सम्यक प्रकार से नहीं जानता हूँ। मेरा परम कल्याण, नित्य सुख शान्ति की प्राप्ति, अत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति, मृत्यु की निवृत्ति अमृतत्व की प्राप्ति किस प्रकार से होगी उस उपाय को भी नहीं जानता हूँ। इसलिये मैं आप सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर की शरण में हूँ, आप मुझे दुःख सागर से पार करो। सज्जनों! सभी जीवों का यही हाल है जो अर्जुन का है। इसीलिये गीता का प्रथम अध्याय जीव की तरफ से है—**अर्जुन विषादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः,** प्रथम जीव है फिर ईश्वर है। तो जीव तो दुःख सागर में डूब रहा है, क्यों डूब रहा है? वो अर्जुन ने बताया **'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं'**, मेरा जो ज्ञान है **'स्वरूप ज्ञान'** वो अज्ञान ने आवृत कर रखा है, ढॉक रखा है इसलिये मैं दुःख सागर में डूब रहा हूँ और जो कृष्ण हैं वो ईश्वर हैं, ईश्वर को अज्ञान आवृत नहीं करता है क्योंकि उसकी शुद्ध विद्यारूप उपाधि महामाया शक्ति है इसलिये उसको अज्ञान नहीं आता है। जीव की उपाधि अविद्यारूप माया है इसलिये जीव का स्वरूप अविद्या अज्ञान से आवृत हो गया है, ढक रहा है इसीलिये जीव का जो जीवन भर का अध्याय है माने कथन है वो दुःख का ही कथन है, दुःख ही दुःख अपना कहता रहता है सबसे, यही कहता है मैं दुःखी हूँ मैं दुःखी हूँ मुझे सुख पहुँचाओ, संसार भर के सामने यही उसका कहना है यही उसका अध्याय है यही उसका कथन है। जीव के पूरे जीवन का कथन यही है कि 'मैं दुःखी हूँ'। पहले तो संसार से सुख की याचना करता है कि मेरे दुःख को दूर करो, मुझे सुख दो परन्तु संसार के सभी लोगों का यही हाल है तो कैसे दुःख दूर करें? जो एक जीव का हाल है वही सब जीवों का हाल है। पति पत्नी से सुख मॉगता है पर नहीं जानता कि जो मेरा हाल है मैं दुःखी हूँ पत्नी का भी वही हाल है, पत्नी पति से दुःख निवारण की और सुख प्राप्ति की बात करती है। पिता पुत्र से सुख चाहता है और पुत्र पिता से सुख चाहता है, सब दुःखी हैं, अब कौन इसका दुःख दूर करे? कौन सुख देवे? जहॉ जाता है वहॉ अपना दुःख ही रोता है कि मैं बहुत दुःखी हूँ, भगवान के मन्दिर में जाता है, कहता है प्रभु मैं बहुत दुःखी हूँ, मेरा कष्ट हरो, मेरा दुःख दूर करो, अनेक दुःखों से मैं दुःखी हूँ। कोई अपने शरीर के दुःख से दुःखी है, कोई स्त्री पुत्र धन के दुःख से दुःखी है, दुःख ही दुःख भरा पड़ा है और कोई इसके दुःख को दूर नहीं कर पाता है क्योंकि सभी दुःखी हैं। भिक्षुक से भीख मॉगे तो वो कहॉ से देवे? अरे! वे स्वयं भिखारी है जिससे तुम मॉग रहे हो। सारी दुनिया, सारे संसार के प्राणी सुख के भिखारी हैं, कौन सुख देवे?

धनी-निर्धनी सभी दुःखी हैं दुखिया दुनिया सारी,
सुखी नहीं है कोई जग में नर हो अथवा नारी।।

तो सज्जनों! जीव मात्र का यही हाल है। अर्जुन भी संसार से सुख की याचना करके अब निराश हो गया, सोचा कि अब संसार में मुझे सुख देने वाला कोई नहीं है न स्त्री, न पुत्र, न धन, न राज्य कोई नहीं। ईश्वर है जिसके पास में दुःख नहीं है सुख ही सुख है क्यों? अपने स्वरूप को वो जानता है। जीव और ईश्वर दोनों का स्वरूप सत्-चित्-आनंद ब्रह्म है। ईश्वर तो अपने सत्-चित्-आनंद स्वरूप को जानता है उसको अज्ञानता है नहीं इसलिये वहॉ तो दुःख का

लेश भी नहीं है, न मृत्यु है और न अज्ञानता है पर जीव अपने सत्-चित्-आनंद स्वरूप को भूल गया है इसलिये जीव को दु:ख है, यदि अपने स्वरूप को जाने तो ये सुख स्वरूप ब्रह्म ही है, परन्तु अपने आप जानने में असमर्थ है क्योंकि अज्ञान ने इसके ज्ञान को ढॉक रखा है, अज्ञान को कोई हटावे तब ये अपने स्वरूप को जाने। अज्ञान आत्मज्ञान/ब्रह्मज्ञान के बिना हटेगा नहीं व अपने आप ये जीव समर्थ नहीं है तो अपने अज्ञान को हटाने में इसलिये ईश्वर की शरण लेना पड़ा। एक जीव दूसरे जीव की शरण लेकर के तो हार गया क्योंकि सभी जीव दु:खी हैं तो इसका दु:ख दूर कौन करे? सबसे निराश होकर के इसने ईश्वर की शरण लिया और कहा हे प्रभो! मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मैं तुम्हारा शिष्य हूँ, मुझे शोक सागर से आप पार करो। अब अर्जुन का इस संसार में कोई सहारा नहीं है, पूरी की पूरी शरणागति है अब और कहीं इसका मन नहीं है ऐसे भक्त को ही अपने स्वरूप का ज्ञान होता है, भगवान का उपदेश उसी को लगता है। और जिसको कुछ सहारा संसार का है वो तो संसार का सहारा लिये बैठा है उसको भगवान पर विश्वास नहीं तो पूरी शरणागति उसकी नहीं होती है। भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! **सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**, वो ही शरणागत भक्त है जो सारे संसार के धर्मों का परित्याग करके, संसार का सहारा छोड़ कर एक मात्र भगवान के सहारे हो जाय तब भगवान उसका दु:ख दूर करते हैं। तब भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! तुम सावधान मन से श्रवण करो मैं तुम्हें नित्यसुख शान्ति का उपाय बताता हूँ। अपने स्वरूप का जानना ही कर्तव्य है, तुम अपने स्वरूप को भूल गये हो इसलिये तुम दु:ख सागर में डूब रहे हो और मैं ईश्वर हूँ, सर्वज्ञ हूँ, मैं अपने स्वरूप को भूला नहीं हूँ इसलिये मैं अपने सुख सागर का अनुभव कर रहा हूँ। मैं ईश्वर सुख का समुद्र हूँ और ये संसार दु:ख का समुद्र है तो तुम संसार के दु:ख समुद्र में डूब रहे हो, क्यों? अपने स्वरूप के अज्ञान से, और अपना स्वरूप तो सुख का समुद्र ही है, मैं अपने स्वरूप को जानता हूँ। तू भी अपने स्वरूप को जानेगा तो तेरा और मेरा स्वरूप तो एक ही है उसमें भेद नहीं है, केवल ज्ञान अज्ञान का ही भेद है, तू अपने स्वरूप को भूला है और मैं जानता हूँ इतनी ही बात है। तो भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम सावधान मन से श्रवण करो तुम्हारा स्वरूप मैं तुमको बताता हूँ।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्व भारत,
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।। BG – 02.30 ।।

अर्जुन देह और देही ये दो चीज़ें हैं इसमें जो देह हैं इसको माया कहते हैं और देही को ब्रह्म कहते हैं। अर्जुन! मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र सबके देहों में जो देही तत्त्व है वो ब्रह्म ही है, वही देखता है क्योंकि ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है और ये देही ज्ञान स्वरूप है, सबके शरीर में बैठकर देख रहा है। ज्ञान एक है अनेक नहीं, ब्रह्म एक है अनेक नहीं, इसी को कोई तत्त्व कहते हैं, कोई ब्रह्म कहते हैं, कोई भगवान व कोई परमात्मा कहते हैं परन्तु अर्जुन नाम ही अनेक हैं तत्त्व एक ही है, ब्रह्म एक ही है—**'एकमेवाद्वयं ब्रह्म'**, एक अद्वितीय ब्रह्म है। हे अर्जुन! जितने भी देह हैं ये माया मात्र हैं, सबमें बैठकर देखने वाला जो देही तत्त्व है वो ब्रह्म तत्त्व है। दो ही हैं—ब्रह्म और माया, तीसरे का अभाव है। तो हे अर्जुन! हमारा तुम्हारा स्वरूप द्रष्टा होने से ब्रह्म ही है क्योंकि हम देखते हैं। ये तो सबका अनुभव है कि 'मैं देखता हूँ' इसमें किसी को संशय तो है नहीं अपने देखने में, कि मैं देखता हूँ कि नहीं देखता हूँ ऐसा संशय किसी को नहीं है किन्तु 'मैं देखता ही हूँ' सबका यही अनुभव है, यही निश्चय है। संशय रहित ऐसा ज्ञान सबको है 'कि मैं द्रष्टा हूँ' और ये देह दिखाई पड़ता है, ये भी अनुभव है कि मैं अपने देह को भी देखता हूँ और दूसरे की देह को भी देखता हूँ इसलिये मैं द्रष्टा हूँ देह दृश्य है।

'दृग्दृश्ये द्वौ रूपेस्तः परस्पर विलक्षणौ,
दृग्ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदान्त निर्णयः।।

अर्जुन! सभी वेदान्तों का व उपनिषदों का यही निर्णय है कि द्रष्टा और दृश्य दो ही पदार्थ हैं तीसरा कुछ है नहीं, इन दोनों में जो द्रष्टा तत्त्व है उसको तो ब्रह्म कहते हैं और जो दृश्य है उसको माया कहते हैं। तो हमारा तुम्हारा स्वरूप तो द्रष्टा होने से ब्रह्म हो गया और हमारा देह और सबके देह दृश्य होने से सब माया हो गयी। देह कहने से स्थूल सूक्ष्म और कारण तीनों देहों का ग्रहण है। स्थूल सूक्ष्म और कारण में तीन देह कहने से माया की तीन अवस्थाओं को जान लेना—जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये माया की तीन अवस्थायें हैं, इसी में पॉच कोश हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनंदमय, अर्जुन इतनी ये माया है। जो भी हम देखते हैं माया को देखते हैं, हम दिखाई पड़ते नहीं क्योंकि जो देखता है वो दिखाई कैसे पड़ेगा? और जो दिखाई पड़ता है उसको ज्ञान नहीं है, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को ज्ञान नहीं है। माया अज्ञानरूप है, अज्ञान को माया कहते हैं जैसे निद्रा अज्ञानरूप है निद्रा को ज्ञान नहीं है और जाग्रत में भी जीव कहता है 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूॅ' ये न जानना अज्ञान है, इसी का नाम माया है। तो सबके अनुभव में आ रहा है, अज्ञान को तो हम ज्ञान ही देख रहे हैं, जान रहे हैं न! ज्ञान के द्वारा ही अज्ञान जाना जाता है, तो सुषुप्ति को हम जानते हैं, अज्ञान को जानते हैं और निद्रारूप सुषुप्ति का कार्य जाग्रत स्वप्न है इसलिये जाग्रत-स्वप्न को भी ज्ञान नहीं है क्योंकि अज्ञान का कार्य भी अज्ञानरूप ही है और जो ज्ञान है उसमें कार्य-कारण भाव है नहीं, वो एक अद्वितीय है। न किसी का कारण है ज्ञान और न किसी का कार्य है किन्तु कार्य-कारण को प्रकाशने वाला है, देखने वाला है, वो जाग्रत-स्वप्न कार्य को देखता है और सुषुप्तिरूपी अज्ञान को, कारण को भी देखता है व स्वयं अदृष्ट है। इसको माया कहते हैं, ये कभी जाग्रत के रूप में, कभी स्वप्न के रूप में, कभी सुषुप्ति के रूप में दिखाई पड़ती है और समाधि में सुषुप्तिरूपी अज्ञान नहीं रहता है। जाग्रत का कारण स्वप्न है, स्वप्न का कारण सुषुप्ति है और सुषुप्ति का कारण समाधि है माने जाग्रत स्वप्न में लीन हो जाता है, जब निद्रा आने लगती है तो ये जाग्रत जगत स्वप्न में लीन हो जाता है, सूक्ष्म संसार रह जाता है इसी को स्वप्न कहते हैं और वो सूक्ष्म जगत स्वप्न फिर सुषुप्ति में लीन हो जाता है, स्वप्न सुषुप्ति में नहीं रहता और सुषुप्ति समाधि में नहीं रहती, मैं आप रह गया अकेला। अब ये तीनों नहीं हैं जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तो मेरा द्रष्टा भाव भी खत्म हो गया क्योंकि ये तीन रहते हैं तो मैं इनको देखता हूॅ तब मुझे द्रष्टा कहते हैं, दृश्य के अभाव में द्रष्टा नाम भी नहीं। जैसे पत्नी के रहने पर पुरुष का नाम एक पति होता है माने पत्नी ही पुरुष को पति नाम से पुकारती है और पुत्र के होने पर पुरुष को पिता कहते हैं। और जब पत्नी और पुत्र नहीं होवें तो पुरुष मात्र शेष रह जाता है, न पति है न पिता है क्योंकि पत्नी और पुत्र की उपाधि से इस पुरुष के दो नाम और पड़ गये थे, अब वो उपाधियॉ नहीं है न पत्नी न पुत्र! तो वो दो नाम भी नहीं हैं इन्हीं ने नाम रखा था पुरुष का, पत्नी ने पति नाम रखा था और पुत्र ने पिता नाम रखा था। अब वो नाम रखने वाले तो हैं नहीं और पुरुष अपना स्वभाव सिद्ध स्वरूप है सो शेष रहा। ऐसे ही ये पूर्ण पुरुष परमात्मा है जो अन्त में शेष रह जाता है, दृश्य के अभाव में इसको द्रष्टा भी नहीं कहते, अवॉगमनस्गोचर है, क्या नाम रखा जाय? नाम तो ये उपाधियों से थे, उपाधियॉ कोई हैं नहीं तो इसलिये अनाम अरूप है।

जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्त्यादि प्रपंचम यत्प्रकाशते,
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

अर्जुन! जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इन तीनों को जो प्रकाशता है वह ब्रह्म है, वही ब्रह्म मैं हूॅ ऐसा जो जानता है वो सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है, अर्जुन! वही हमारा तुम्हारा स्वरूप है जो सत्-चित्-आनंद रूप है। इस ब्रह्म में मृत्यु नहीं है इसी लिये इसे अमृत कहते हैं, सत् कहते हैं, नित्य कहते हैं, शाश्वत् कहते हैं, सनातन कहते हैं। मृत्यु का अभाव है तो मृत्यु की निवृत्ति करना ही नहीं है, जब है ही नहीं तो क्या निवृत्ति करना। और अर्जुन अज्ञान का अभाव है, अज्ञान है ही नहीं तो हमारे तुम्हारे स्वरूप ज्ञान का नाश क्या करेगा, भला अज्ञान भी कभी ज्ञान का नाश कर सकता है, छाया भी कभी पुरुष का नाश कर सकती है। पुरुष में

उत्पन्न होती है, पुरुष में ही लीन होती है, पुरुष नित्य सत्य है। अर्जुन अपने स्वरूप में दुःख नहीं है तो दुःख की निवृत्ति भी क्या करनी है? अरे दुःख हो तो निवृत्त किया जाय, दुःख है नहीं इसलिये हे अर्जुन! सत्-चित्-आनंद स्वरूप होने से सत्-चित्-आनंद की प्राप्ति नहीं करना। मृत्यु, अज्ञानता और दुःख है नहीं इसलिये इनकी निवृत्ति भी नहीं करना है, नित्य निवृत्त है। इसलिये अर्जुन! अपने स्वरूप को जानना ही कर्तव्य है करना कुछ नहीं है, केवल जानना ही कर्तव्य है। अर्जुन! **'चित्तमेव हि संसारा'** अतः **'प्रयत्नेन् शोधयेत्',** चित्त और चित्, तो सत्-चित्-आनंद अपना स्वरूप हो गया भला! इसमें एक तकार और आ गया 'चित्त', चित्त में दो तकार हैं और चित् में एक 'त' है तो जो दूसरा 'त' है यही माया है, उसी के ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति रूप हैं। चित्त का स्फुरण होता है तब जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति प्रपंच की प्रतीति होने लगती है, और कुछ नहीं है अथवा चित्त को ही मन बुद्धि चित्त अहंकार नामों से कहा जाता है और चित्त, मन जब लय होता है तो मन की लया अवस्था ही सुषुप्ति कहलाती है। तो मन की ही ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्था हैं। मन का स्फुरण हो तब ही संसार है, मन ही माया है।

मन माया प्रकृति जगत चार नाम एक रूप,
तब लगि ये सॉचे लगे नहिं जाने निज रूप।।

मन की लया अवस्था, सुषुप्ति अवस्था माया है और मन का ही प्रकट रूप ये जगत है, इसी को प्रकृति कहते हैं।

मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयो।

बन्ध और मोक्ष का कारण केवल मन ही है और हे अर्जुन! हमारा तुम्हारा मन दृश्य है तो हम तुम तो इससे अलग हैं। मन का स्फुरण इस जाग्रत-स्वप्न का संसार है और मन का लय निद्रा है। मन जागता है तो संसार है, सो जाता है माने लय हो जाता है अज्ञान में ये ही विलय है। मन के हम द्रष्टा है, समाधि में मन नहीं रहता, समाधि में मन आत्मा का चिन्तन करते करते आत्मा में लीन होता है। तो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों खत्म होती हैं। मन का ही रचा संसार है — **'चराचरम भाति मनोविलासम्'** चराचर जगत मन का ही विलास था और मन आत्म चिन्तन करते करते आत्मा में लीन हो गया समाधि में, तो जब मन ही नहीं तो संसार कहॉ? मन से ही संसार है, मन बिना संसार नहीं। मूर्छा में, मरण में, सुषुप्ति में, समाधि में मन नहीं है तो संसार भी कहॉ? इससे जाना जाता है कि ये संसार मन का ही खेल है, मन का स्फुरण मात्र है और मैं तो मन का द्रष्टा हूॅ। मन जागता है तो इसके संसार रूप को देखता हूॅ मन ही संसार का रूप धारण किया है, मन सो जाता है तो मैं इसकी लया अवस्था को देखता हूॅ, सुषुप्ति अज्ञान को मैं ही देखता हूॅ और जब ये समाधि में मुझमें लीन होता है तब मैं इसकी लीनावस्था को देखता हूॅ मेरा चिन्तन करते करते ये मेरा रूप हुआ है। मुझको तो कोई देखने वाला है नहीं क्योंकि मुझसे भिन्न ये मन जड़ है, मैं ही एक चेतन हूॅ। मन का भी कोई आकार नहीं है और मेरा भी कोई आकार नहीं है, पर मन संकल्प-विकल्प रूप है, काम क्रोध लोभ रूप है इस प्रकार से मुझे जानने में आता है पर मुझे तो कोई जान सकता नहीं। मुझको तो मैं ही जानता हूॅ वो भी दृश्य रूप में नहीं द्रष्टा रूप में। अपने आप को सब जानते हैं कि मैं देखता हूॅ, दृश्य रूप में मैं दिखाई नहीं पड़ सकता इसलिये अपना जानना, अपना साक्षात्कार यही है कि मैं देखने वाला द्रष्टा साक्षी चेतन आत्मा ब्रह्म हूॅ। यही आत्म साक्षात्कार है, ब्रह्म साक्षात्कार है। इस प्रकार से हे अर्जुन! ये चराचर जगत केवल मन का ही विलास है अथवा चित्त का ही विलास है अथवा बुद्धि का ही विलास है, बुद्धि है तो संसार है और यदि बुद्धि मूर्छित कर दी जाय तो संसार कहॉ? अथवा अहंकार ही संसार है अहं भाव है तब तक संसार है और अहं नहीं तो संसार नहीं। अर्जुन! यह अहंकार ही, यह अहं ही जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों का रूप धारण करता है। इस अहं के दो रूप हैं, एक तो शुद्ध है एक अशुद्ध है।

अहं ही द्विविधा प्रोक्ता शुद्धम्चाशुद्धमेव च।
देहोऽहं इति अशुद्धं स्यात् शुद्धं सोऽहं मुनिस्मृता।।

अर्जुन! 'मैं देह हूँ' ये अशुद्ध अहंकार है, ये जन्म मरण रूपी दुःख का देने वाला है और यही अहं का अर्थ शुद्ध ब्रह्म भी होता है **'अहं ब्रह्मास्मि'**, अहं का जो शुद्ध अर्थ है वो ब्रह्म है ये मुक्ति देने वाला होता है। मैं देह हूँ, स्त्री पुरुष ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हूँ, इस देह को अहं माने 'मैं', देह को 'मैं' मानना जन्म मरण को देने वाला है, दुःखो का देने वाला है, ये अशुद्ध अहं है और देह से हटकर ये अहं यदि ब्रह्म में जुड़ जाय **'अहं ब्रह्मास्मि'** तो मुक्त होता है क्योंकि ब्रह्म का जन्म मरण है नहीं, सच्चिदानंद स्वरूप है इसलिये देह से हमको अहं भाव हटा लेना चाहिये, देह मेरा स्वरूप नहीं है। **'न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः'** मुझ जीव का स्वरूप स्त्री या पुरुष नहीं है, ये तो शरीर के आकार हैं, शरीर को स्त्री पुरुष कहते हैं मुझको नहीं। जीव का नाम न स्त्री है न पुरुष है किन्तु सबमें है, मनुष्यों में, पशुओं में, पक्षियों में, स्त्री-पुरुषों में सबमें जीव है पर सब जीव नहीं है। स्त्री-पुरुष में है जीव भीतर बैठा देख रहा है पर स्वयं स्त्री पुरुष नहीं है, सबसे अलग है इसलिये देह में अहंभाव करना ये जन्म मरण का कारण है, सुख-दुःख का कारण है, पाप और पुण्य का कारण है क्योंकि देह में अहंभाव करेगा कि मैं स्त्री हूँ पुरुष हूँ तो मरने का भय तो ज़रूर ही होगा। देह स्त्री पुरुष किसी के भी हैं तो मरेंगे ही, जन्में हैं तो मरेंगे और सूक्ष्म शरीर में अहंभाव करेगा तो कर्तापने का अभिमान होगा क्योंकि सूक्ष्म शरीर में कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि चित्त अहंकार सब कुछ हैं तो सारे कर्म शुभ हों या अशुभ हों, पुण्य हो या पाप हों, धर्म हों या अधर्म हों सूक्ष्म शरीर में होंगे। सूक्ष्म शरीर में अभिमान करेगा तो पुण्य-पाप का कर्ता बनेगा और जब पुण्य-पाप का कर्ता बनेगा तो पुण्य का फल है सुख और पाप का फल है दुःख तो सुख-दुःख पायेगा ही और सुख-दुःख का फल भोगने के लिये फिर जन्म भी धारण करना पड़ेगा, ये जन्म मरण की परम्परा चल जायेगी। इस प्रकार से देह में अहंभाव करना, देहाभिमान करना ये जीव को बन्धन का कारण है। और यही अहं ब्रह्म में जुड़े तो मुक्ति का कारण है, यही बात है। तो विचार पूर्वक ब्रह्म में जुड़ना चाहिये, बिना विचारे अहं ब्रह्मास्मि कहने से नहीं। विचार पूर्वक, जानबूझ कर कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं देह कभी नहीं हो सकता क्योंकि देह दृश्य है और मैं देह का द्रष्टा हूँ इसप्रकार से अच्छी प्रकार से समझकर 'मैं देह का द्रष्टा हूँ इस द्रष्टा को ब्रह्म कहते हैं' इसलिये मैं ब्रह्म हूँ और देह मैं नहीं हूँ। देह क्या है? देह माया का कार्य होने से माया है, मैं देह नहीं हूँ विचार पूर्वक। इस प्रकार से हे अर्जुन! हमारे तुम्हारे स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म को, ज्ञान को अज्ञान नाश नहीं कर सकता और हमारा स्वरूप स्वभाव से ही सच्चिदानंद रूप है इसलिये सुख की प्राप्ति नहीं करना है और शोक सागर से पार नहीं करना क्योंकि शोक है ही नहीं अपने में, दुःख है ही नहीं अपने में और अर्जुन अज्ञानता है ही नहीं इसलिये ज्ञान भी प्राप्त नहीं करना। अर्जुन! आत्मा का नाम ही धर्म है, ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को कौन धारण करता है? मुझ चेतन पुरुष के आश्रित ही ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्तिरूपी माया पुरुष में छाया की भाँति मालूम पड़ रही है, जैसे पुरुष में छाया दिखाई पड़ती है झूठी ही, पुरुष के बिना तो ये छाया दिखाई भी नहीं पडेगी इसलिये छाया को धारण करने वाला पुरुष है तो जो धारण करे उसको धर्म कहते हैं। मेरा ही नाम सच्चा अर्थ धर्म है क्योंकि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को मैं ही धारण करता हूँ और मैं ही देखता हूँ क्योंकि मैं चेतन पुरुष हूँ। ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति छाया के समान हैं, छाया मिथ्या है इस मिथ्या का नाम माया है और पुरुष का नाम ब्रह्म है। पुरुष का अर्थ होता है **'पूर्णत्वात् पुरुषः'**, जो सत्य से, ज्ञान से, आनंद से पूर्ण है उसको पुरुष कहते हैं। मैं सत्य से, ज्ञान से, आनंद से पूर्ण हूँ इसलिये मुझे पुरुष कहते हैं। छाया को जैसे मिथ्या कहते हैं, छाया का कोई सत्य अर्थ नहीं है, ऐसे ही ये माया छाया के समान मिथ्या है। **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरा'** ब्रह्म सत्य है और ये जगत मायारूप, छाया रूप होने से मिथ्या है और जो जीव है

सब शरीरों में वो तो ब्रह्म ही है, ऐसा जानो। ये सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश है, सभी जीवों के मानने योग्य है पूरे विश्वास के साथ और स्वयं अनुभव करके। मैं सदा रहता हूँ इसलिये सत् हूँ, सबको मैं ही देखता हूँ इसलिये चिद् हूँ और मैं ही आनंद स्वरूप हूँ, संसार तो असत्-जड़-दुःखरूप है, यही माया का स्वरूप है। इसप्रकार से अपने आप को भगवान के वचनों को अनुभव करो और अनुभव करके धारण करो। मुक्त ही है अपना स्वरूप, बन्धन है ही नहीं, न कभी हुआ है। **'अज्ञान कृतो बन्धः अतोज्ञानात् निवर्तते'** अज्ञान का किया हुआ बन्धन था सो ज्ञान से निवृत्त हुआ।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 05 - 22.08.06 [P]

२

श्रवण मनन निदिध्यासन

संपूर्ण चराचर जगत का विवर्तोपादान कारण सच्चिदानंद ब्रह्म है, ब्रह्म ज्ञान से ही ये अध्यास रूप बन्ध की निवृत्ति होती है। जन्म-मृत्यु रूप बन्धन है, दु:ख को बन्धन कहते हैं सुख को मोक्ष कहते हैं। सुख-दु:ख भी नित्य-अनित्य भेद से दो प्रकार के हैं ये रोज़ सुख-दु:ख हमको अनुभव में आता है, विषय इन्द्रिय के सम्बन्ध से मिलता है, ये अनित्य है सुख भी और दु:ख भी इसलिये इनकी मोक्ष संज्ञा नहीं है। अनुकूल विषय मिल गये तो सुख हो जायेगा, दु:ख से मुक्त हो गया और प्रतिकूल विषय मिले फिर दु:ख हो गया फिर बन्ध हो गया - ऐसा नहीं है, ये दोनों ही अनित्य हैं। जन्म-मृत्यु रूप जो बन्धन है, ये जो जन्म-मरण का दु:ख है पता नहीं अनादि काल से कब से चला आ रहा है? इसको मिटाने के लिये जो नित्य सुख की प्राप्ति होती है उस सुख को मोक्ष कहा जाता है। इस मोक्ष की प्राप्ति के वास्ते अधिष्ठान ज्ञान परम आवश्यक है। अधिष्ठान ब्रह्म है हमारा तुम्हारा आत्मा भी है परन्तु बिना साधन चतुष्ट्य के, गुरु शरणागति के अधिष्ठान का ज्ञान नहीं होता इसी लिये वेद ने मल-विक्षेप-आवरण को दूर करने के लिये कर्म-उपासना-ज्ञान तीन प्रकार का साधन बताया है। ये ब्रह्म प्राप्ति के साधन नहीं हैं जो वेद बता रहा है, तो? कहा ब्रह्म ज्ञान में जो प्रतिबन्धक हैं ये मल-विक्षेप-आवरण इनकी निवृत्ति के साधन हैं। ब्रह्म तो अपना स्वरूप है, सबकी अपनी आत्मा है उसको तो प्राप्त करना नहीं है, ये अज्ञान और अज्ञान का कार्य मल-विक्षेप इनके कारण अप्राप्य जैसा हो गया है उसी प्रतिबन्ध की निवृत्ति के ये सब साधन हैं गुरु और वेद। तो प्रथम निष्काम कर्म से मल दोष को दूर करते हैं, इस जन्म या अनंत जन्मों के जो पाप कर्म हैं उन्हें मल कहते हैं। निष्काम कर्म से मल दोष दूर होता है। निष्काम कर्म भगवत् प्राप्ति के वास्ते, भगवान की आज्ञा मानकर जो अपने अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करता है वो निष्काम कर्म कहलाते हैं और जो संसार की प्राप्ति के वास्ते कर्म करता है वो सकाम कर्म कहलाते हैं। कर्मों से संसार की भी प्राप्ति होती है और भगवान की भी प्राप्ति होती है। संसार की प्राप्ति तो होगी पर ऐसी है जैसे स्वप्न का राज्य मिल ही गया, स्वप्न का पूरा संसार किसी को मिल ही गया तो कितनी देर राज्य करेगा? जागे तो नष्ट हो गया और गाढ़ निद्रा में चले गये, सो गये तो भी नष्ट हो गया फ़ायदा कुछ नहीं। जादूगर के करोड़ों रुपया मिल भी गये और बड़ी प्रसन्नता से लाकर रख दिये अपनी तिजोरी में बन्द कर दिया और प्रात:काल तिजोरी खोलकर देखा तो एक पैसा भी नहीं, तो ऐसे रुपयों से क्या फ़ायदा? तो बाजीगर के रुपयों के समान ये स्वप्न का संसार है, रात भर भी टिकाऊ नहीं है। जाग्रत का संसार भी सज्जनों ऐसा ही ढंग का है इसलिये सकाम कर्म से जीव को कुछ फ़ायदा नहीं है, व्यर्थ ही है क्योंकि ये नाशवान धन पाकर क्या करेगा? अविनाशी परमात्मा है, परमात्मा का सुख ज्ञान अमरता अविनाशी है। इसी अविनाशी धन के लिये जो प्रयत्न करता है वो बुद्धिमान है और जो नाशवान संसार को पाने के लिये कर्मों का उपयोग करता है वो नादान है, नासमझ है वो इसलिये निष्काम कर्म से सज्जनों! संसार मल की निवृत्ति हो जाती है और फिर सगुण और निर्गुण भक्ति से अथवा भगवान की कथा सुनना, संतों का संग करना ये सब भक्ति है, इससे विक्षेप दोष की निवृत्ति हो जाती है। तो मल और विक्षेप ये दोष जब दूर हो

जाते हैं तो केवल ज्ञान प्राप्ति ही रहता है और ज्ञान से अज्ञान चला जायेगा परन्तु मल-विक्षेप के दूर हुए बिना और विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुता ये चतुष्ट्य साधन बिना ये श्रवण-मनन-निदिध्यासन नहीं बनेगा।

परीक्ष्य लोकान्कर्म चितान्ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन्।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्,
समित्पाणिः श्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठं ।।

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय,
सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाचताम् तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।

ये मुण्डकोपनिषद में भगवान की वाणी है। भगवान् विष्णु की वाणी वेद है, वेद भगवान् की वाणी है। **'श्रुति स्मृति ममैवाग्ये'**, भगवान् कहते हैं कि श्रुति-स्मृति मेरी वाणी है मेरी आज्ञा है। श्रुति ये वेद और स्मृति भगवद्गीता भगवान् की वाणी है। तो कहते हैं कर्म करके पहले स्त्री, पुत्र, धन, लोक परलोक के भोगों की परीक्षा करके देख ले भाई, बिना परीक्षा किये ये लगता है शायद स्त्री में सुख होगा, पुत्र में सुख होगा, धन में सुख होगा तो संशय मिलेगा यदि परीक्षा करके देख लेगा तब तो संशय नहीं रहेगा। अरे कोई चीज़ नहीं खाई है, कोई कहता है बहुत मीठी है और अपना खाया नहीं है मन में लालच लगा है मैं भी खाऊँ ज़रा देखूँ तो। जब वो भी खाके देख लेगा कि मीठी है कि खट्टी है कि कड़वी है पता तो लग जायेगा, बिना खाये क्या पता लगे? तो जब ये स्त्री पुत्र धन को देख लेता है, लोक परलोक को देख लेता है और दुःख ही मिला और थोड़ी देर के बाद में सब नाशवान भी हो गये, तो परीक्षा तो हो गयी न! खट्टे हैं कि मीठे हैं ये भोग कड़वे हैं कि पता लग गया कि बहुत कडु हैं, इन्होंने दुःख ही दिया। कैसा मैं भूल में पड़ा था, जाना था विषय सत्य हैं और सुख रूप हैं ये मेरी बहुत बड़ी भूल थी। अब मुझको उस तत्त्व को जानना चाहिये जिससे सदा के लिये सुखी शान्त हो जाऊँ। तब ये विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुता चतुष्ट्य साधन सम्पन्न होकर फिर गुरु की शरण में जाता है। क्यों? कहा कर्मों से वो मिलता नहीं है, कर्म से जो जो मिलता है लोक परलोक के भोग पदार्थ वो सब नाशवान ही होते हैं, जो भी मिलेगा सब नाशवान होगा। अविनाशी कर्म से नहीं मिलता है। अज्ञान का नाश करने में कर्म समर्थ नहीं होता है और उपासना भी नहीं होती है, ज्ञान ही समर्थ होता है।

कर्म उपासना से नहीं, जग निदान तम नाश।
अंधकार जिमि गेह को, नशै न बिन परकाश।।

जैसे घर का अंधेरा कर्म उपासना से नाश नहीं होता, कर्म करो अंधेरा को टोकरी में भर भर के फेंकने का घर से बाहर तो अंधेरा थोड़ी नष्ट हो जायेगा। स्तुति करो, प्रार्थना करो, पूजा करो, पाठ करो हे अंधकार देव, हे भूत चले जाओ तुम घर से क्यों परेशान करते हो, दुःख देते हो - इससे भी नहीं जाने वाला है, तो प्रकाश से ही इसका नाश होगा। पर प्रकाश का साधन क्या है? कहा दीपक चाहिये, तेल चाहिये, बत्ती चाहिये, माचिस चाहिये फिर माचिस को खिंचा करके दीपक की बत्ती में स्पर्श कराओगे, वो जो ज्योति जगमगायेगी वह ज्योति ही अज्ञान अंधकार का नाश करेगी। तो पहले साधन चाहिये न! बिना साधन के ये ज्योति जगेगी कैसे? तो सज्जनों कर्म, उपासना, विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुता इतना साधन तो इसके पास तैयार हो गया, दीपक पात्र हो गया और स्नेह भक्ति जो है न वो तेल भी हो गया और शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि ये बाती भी हो गयी। इतना तैयार है - दीपक, तेल और बत्ती, अभी इतने में

अज्ञान अंधकार नहीं दूर होता। साधन तैयार है, अभी माचिस चाहिये और माचिस को खिंचा कर बत्ती में छुआना है, स्पर्श कराना है वो इसके पास नहीं है वो गुरु के पास है। माचिस बिना तो कैसे जलेगा दीपक? तो सज्जनों! ये दीपक जलाने के लिये, अज्ञान अंधकार दूर करने के लिये अब माचिस की ज़रूरत पड़ गयी। जिसको माचिस लाना है उसको बाज़ार जाना ही पड़ेगा उस दुकानदार के यहाँ जिसके यहाँ माचिस बिकती हो, लाचारी है नहीं तो घर का अंधेरा दूर नहीं होगा। चाहे हजारों दीपक तुम तेल बत्ती भर भर के रख छोड़ो पर अंधकार नहीं हटाता है। इसलिये सज्जनों संसार रूपी बाज़ार में ये जो गुरु लोग हैं, संत महात्मा हैं, ज्ञानी हैं, विद्वान ब्राह्मण हैं उनके पास तो जाना ही पड़ेगा जब तुमको दीपक जलाना है तो, नहीं तो अंधेरा बना ही रहेगा, अज्ञान बना ही रहेगा। अनंत जन्म बीत गये अंधकार दूर नहीं हुआ। नारदजी कर्म उपासना सम्पन्न थे, बड़े भक्त थे, योगी थे, उत्तम कुल में जन्म था, बहुत बड़े विद्वान थे परन्तु वह माचिस जिससे आत्म ज्ञान होता है वो न थी तो सनत कुमार जी के पास में गये और कहा मैं शोक सागर में डूब रहा हूँ, सुना है **'तरति शोकं आत्मवित्'** जो अपनी आत्मा को जानता है वो शोक सागर से तुरन्त पार होता है और मैं नहीं जानता हूँ यही अज्ञानता है तो अज्ञान मन ही है। तो वो तो गुरु के पास में है माचिस, उन्होंने महावाक्य सुनाया, महावाक्य माचिस है और उसको खिंचा करके व महावाक्य का, तत्-पद् त्वं-पद् का शोधन करके और शिष्य की बुद्धि में सम्बन्ध कराना, स्पर्श कराना ये गुरु का काम है। तब ये दीपक जलने लगता है, ये बुद्धि की वृत्ति फिर ब्रह्माकार हो जाती है। ये बुद्धि बाती है न! इसके अग्रभाग में फिर ज्ञान ज्योति जगमगाने लगती है और वो अज्ञान आवरण को हटा देती है। वो अज्ञान आवरण हटा कि ये पता लगा कि बुद्धि का साक्षी, ईश्वर का साक्षी, जीव का साक्षी मैं ही सच्चिदानंदघन ब्रह्म हूँ।

श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदनन्तरम् ।
निदिध्यासनमित्यत्पूर्णबोधस्य लक्षणम् ।।

श्रवण मनन निदिध्यासन और तत्-त्वं पद के शोधन से सज्जनों पूर्ण बोध होता है, नहीं तो पक्का ज्ञान नहीं होता है, दृढ़ नहीं होता है, अदृढ़ रहता है तो दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान के लिये श्रवण मनन निदिध्यासन व तत्-त्वं पद का शोधन नितान्त आवश्यक है, परमावश्यक है। श्रवण मनन से क्या होता है? असम्भावना दूर होती है। वेदान्त शास्त्र क्या कहता है इसमें यदि संशय हो तो वेदान्त गीता उपनिषद श्रवण करने से संशय दूर हो जाता है व ये पता लगता है कि ये जीव-ब्रह्म के एकत्व का प्रतिपादक शास्त्र है और कोई अन्य विषय नहीं है, तो विषय का पता लग जाता है कि क्या विषय है। अब *'ब्रह्म और आत्मा एक ही है'* इस संशय को **प्रमेयगत् संशय** कहते हैं और दूसरा **प्रमाणगत् संशय** यानि *'वेदान्त प्रमाण में संशय हो कि ये क्या कहता है'* तो वेदान्त सुनो संशय दूर हो जायेगा, पता लग जायेगा कि ये तो ब्रह्म का ही निरूपण करता है और विषय नहीं है इसमें। फिर मनन करने से मैं ब्रह्म ही हूँ अथवा ब्रह्म से भिन्न हूँ इस संशय की निवृत्ति मनन करने से होती है। बारम्बार दोहराना, आवृत्ति करना, इसको मनन कहते हैं। शतेन ज्ञानं, एक बार जो गुरु से सुने सो सौ बार मनन करे। **श्रवणं तु गुरोः पूर्वम्,** पहले गुरु से ही सुने इस ब्रह्म के सम्बन्ध में और किसी से नहीं। गुरु तो हज़ारों प्रकार के हैं, हज़ारों विषय हैं संसार में। ब्रह्म विद्या का जो गुरु हो वही तो ब्रह्म की बात बतायेगा इसलिये ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरु के पास में जाकर उसे सुनना चाहिये जिसको ब्रह्म ज्ञान करना हो औरों से नहीं। एक बार गुरु से श्रवण करे— **श्रवणं तु गुरोः पूर्वम् मननं तदनन्तरम्,** श्रवण के बाद में मनन करे फिर मनन के बाद में निदिध्यासन करे। अब तीनों का स्वरूप सुनो जरा, श्रवण मनन निदिध्यासन का क्या स्वरूप है? वेदान्त श्रवण से तो प्रमाणगत् संशय दूर होता है, मनन से प्रमेयगत् संशय दूर होता है और निदिध्यासन से विपरीत भावना दूर होती है। विपरीत भावना किसको कहते हैं? **'देहोहं इति या बुद्धिः'** मैं देह हूँ यह जो बुद्धि है इसको विपरीत भावना कहते हैं। ये निदिध्यासन के बिना जल्दी निवृत्त नहीं होती है 'देहोहं' 'देहोहं', मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हूँ, इसको विपरीत भावना कहते हैं। इसके लिये बहुत अभ्यास की ज़रूरत है, इसके विपरीत अभ्यास करना पड़ेगा, मैं देह नहीं किन्तु

आत्मा हूँ।

नाहं देहोऽहमात्मेति निश्चयो ज्ञान लक्षणं

मैं देह नहीं, देह द्रष्टा आत्मा हूँ देही हूँ मैं कदापि देह नहीं हो सकता हूँ ये निदिध्यासन करना पड़ेगा। **'सजातीय प्रवाहश्च विजातीय तिरस्कृति'**—सजातीय प्रवाह, मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ, सच्चिदानंद रूपोहं, सच्चिदानंद रूपोहं, अहं आत्मा, बारम्बार यही कि मैं देह नहीं हूँ, देह नहीं हूँ। यदि देह बुद्धि आवे तो फिर तुरन्त उसको हटावे, विपरीत भावना को हटावे, विजातीय प्रत्यय को हटावे, सजातीय ही चलावे बारम्बार, ये खूब अभ्यास करने से विपरीत भावना जाती है। ये विपरीत भावना इतनी पक्की क्यों हो गयी है जो इतना अभ्यास करना पड़ता है, कहा—

बहुजन्म दृढ़ाभ्यासात् देहादिषु आत्मदीप्तधीः भवेत्

बहुत जन्मों के दृढ़ अभ्यास से देहों में सत्य बुद्धि हो गयी है, आत्म बुद्धि हो गयी है कि मैं देह हूँ, देह हूँ —

बहुजन्म दृढ़ाभ्यासात् देहादिषुआत्मधीः क्षणेत्,
पुनः पुनः उदेत्तेवं संसार सत्यत्त्वधीरपि।।

बारम्बार ये उदय हो जाती है मैं स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, ब्राह्मण हूँ और संसार झूठा है, मिथ्या है वेदान्त से ऐसा मालूम हुआ पर फिर ऐसा हो जाता है मानो संसार सुखरूप सत्यरूप है, क्षण भर में भूल जाता है। क्यों? पूर्व जन्मों का, बहुत जन्मों का यही अभ्यास उसका पड़ा हुआ है एक दम जल्दी से कैसे दूर हो? तो कहा इसके विपरीत जो सत्य बात है वह अभ्यास करो, ये तो झूठा अभ्यास पड़ गया है, झूठे को सत्य जानना, दुःखरूप को सुखरूप जानने का अभ्यास पड़ गया है। अब सत्य को सत्य, सुख को सुखरूप जानके मैं वो आत्मा हूँ ये अभ्यास करो, इससे क्या होगा? कहा विपरीत भावना 'मैं देह हूँ' ये विपरीत भावना चली जायेगी, 'संसार सुखरूप है, सत्यरूप है' ये भावना चली जायेगी क्योंकि मानस भावना मात्र है सज्जनों!

शतेन ज्ञानं आयाति सहस्त्रेण च तिष्ठति ।
लक्ष्यवारं जपेत्यस्तु प्रेत्यचेहे च तिष्ठति ।।

शतेन ज्ञानं आयाति — सौ बार यदि मनन करेगा, एक बार सुनो गुरु से तो सौ बार उसको याद करो तो वो रुकेगा अन्यथा भूल जायेगा, **सहस्त्रेण च तिष्ठति —** हज़ार बार यदि मनन करोगे तो वो ठहर जायेगा बुद्धि में और **लक्ष्यवारं जपेत्यस्तु प्रेत्यचेहे च तिष्ठति —** एक लाख बार कोई मनन कर जायेगा **'सच्चिदानंद रूपोहं, सच्चिदानंद रूपोहं, ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव न पराः'** इस प्रकार से मनन कर जायेगा लाख बार तो कहा जन्म नहीं होगा, वो मुक्त हो जायेगा। कदाचित् कोई प्रतिबन्ध के कारण दूसरा जन्म हो भी गया तो पहले जन्म का ज्ञान उसको भूलेगा नहीं, पुनः स्मरण हो जायेगा, वो फिर याद हो जायेगा और मुक्त हो जायेगा। तो सज्जनों! मनन की और निदिध्यासन की ये महिमा है।

शंकराचार्य जी से पूछा शिष्य ने — **अहर्निश किं परिचिन्तयेत्?**
उन्होंने कहा सर्वदा चिन्तन करो — **संसार मिथ्यात्व शिव आत्मतत्त्वम्।**
।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 29 - SEP 49

३

सर्वलोकमहेश्वरः

भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा हे भगवन् — **'यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'**, मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें जिससे मृत्यु की निवृत्ति अमृतत्त्व की प्राप्ति हो, आत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति और नित्य सुख-शान्ति की प्राप्ति हो, अज्ञान की निवृत्ति अनंत अखण्ड ज्ञान की प्राप्ति हो वह तत्त्व आप मुझको बतावें, मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो। गीता, अध्याय पाँचवाँ का ये अन्तिम श्लोक है :—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।BG – 05.29 A।

अर्जुन सारे लोक मुझसे उत्पन्न होते हैं, यहाँ लोकों का अर्थ केवल लोक नहीं हैं लोकवासी भी हैं **'लोकयन्ते इति लोकाः'** माने अनंत कोटि ब्रह्माण्ड हैं। १४ लोक ज़्यादातर प्रसिद्ध हैं, इस पृथ्वी से ऊपर सात लोक और पृथ्वी के नीचे के सात लोक। ऊपर के — भूःलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक और पृथ्वी के नीचे — तल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल ये चौदह लोक प्रसिद्ध हैं परन्तु चौदह ही लोक नहीं हैं। अनंत लोक हैं जिनकी कोई गिनती नहीं है। जैसे ये पृथ्वी लोक है तो जब हम आकाश में देखते हैं रात्रि में तो हमें कितने तारागण हैं इनकी गिनती कौन कर सकता है तारागणों की? तो सज्जनों ये सब लोक हैं, शास्त्र के अनुसार ये पृथ्वी से कई कई गुना बड़े हैं और इनकी परस्पर में छाया पड़ती है एक दूसरे लोकों में और इष्ट-अनिष्ट की भी प्राप्ति होती हैं। ये सब लोक चलते रहते हैं आकाश में अचल कोई नहीं है, एक ध्रुव तारा अचल है बाकी सब लोक चलते रहते हैं। इस पृथ्वी लोक से कई गुना बड़े हैं, कोई दस गुना, कोई पचास गुना, कोई सौ गुना, कोई हज़ार गुना, कोई लाख गुना, कोई करोड़ गुना ऐसे बड़े बड़े लोक हैं। हमको तुमको दूरता दोष के कारण ये छोटे छोटे दिखाई पड़ते हैं कोई रुपया बराबर कोई कटोरा बराबर, सूर्य चन्द्र ऐसे लगते हैं जैसे कटोरा बराबर हों और ये तारागण रुपया चवन्नी अठन्नी बराबर दिखाई पड़ते हैं। तो सज्जनों हमारी तुम्हारी दृष्टि बहुत सीमित है, बहुत दूर का और बहुत नज़दीक का हमें दिखाई नहीं पड़ता है और कुछ दूर का जो दिखाई भी पड़ता है तो वो ग़लत दिखाई पड़ता है। ये लोक हैं बहुत बड़े, दूरतारूपी दोष के कारण हमारी दृष्टि वहाँ तक पहुँचती नहीं है इसलिये वो हमें छोटे दीखते हैं। कभी जो हवाई जहाज़ की यात्रा करते हैं तो पृथ्वी से दो चार कोस जब ये दूर चले जाते हैं और नीचे निहार कर देखते हैं खिड़कियों से तो ये बड़े बड़े वृक्ष ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे कोई तुलसी के पेड़ हों और गंगा आदि नदियाँ ऐसी दीखती हैं जैसे नाला कोई बह रहा हो, छोटी दीखती हैं क्योंकि हमारी दृष्टि सीमित है ठीक नहीं देख पाती और बहुत नज़दीक का भी नहीं दिखाई पड़ता है। जैसे हमारा मुख हमारी आँखों के बहुत नज़दीक है, अपना मुख अपनी आँखों से देख नहीं सकता क्योंकि अत्यन्त नज़दीक है। अब अपना मुख देखना हो, लोग कहते हैं कि आपका मुख तो बहुत सुन्दर है परन्तु हमने अपनी

ऑखों से अपना मुख न देखा अब तक जीवन बीत गया तो क्या उपाय है अपना मुख देखने का? कैसे देखें अपनी ऑखों से? बहुत नज़दीक है इसलिये नहीं दिखाई पड़ता। ऑखों से कुछ दूर हो तो दिखाई पड़ती है चीज़ और दूर की चीज़ कुछ नज़दीक हो तो ठीक दिखाई पड़ती है। तो क्या उपाय है कि हम अपने मुख को देखें। लोग कहते हैं शीशा लो, दर्पण में तुम्हारा मुख दिखाई पड़ेगा। अब विचार करके देखो कि हमारा ये सच्चा मुख दर्पण के भीतर जा सकता है जो दिखाई पड़ेगा। दर्पण तो ठोस है और उसमें तो सुई की नोक भी नहीं जा सकती इतनी भी पोलाई नहीं है तो इतना बड़ा मुख शीशा के भीतर कैसे चला जायेगा? नहीं जा सकता और दूसरी बात ये भी है कि यदि हमारा मुख हमारे शरीर को, हमारी ग्रीवा को छोड़कर यदि दर्पण में चला जायेगा तो ये शरीर जीवित कैसे रहेगा? अमंगल होकर गिर जायेगा, मुर्दा हो जायेगा अत: किसी भी रीति से हमारा मुख हमारे शरीर को छोड़कर दर्पण में नहीं जा सकता। तो फिर क्या कहोगे जो दर्पण में मुख दिखाई पड़ता है? तो ये ही कहना पड़ेगा कि मुख का प्रतिबिम्ब है, छाया है, मुख की फोटो है तो वो सच्चा मुख तो नहीं है पर हॉ सच्चे मुख जैसा तो है, जैसा सच्चा मुख है ऐसे ही दर्पण में दिखाई देने वाला भी मुख है। कितने ही लोग कन्या और वर के लिये, जो दूर देश में कोई कन्या होवे अथवा वर होवे तो फोटो भेज देते हैं या मॅगा लेते हैं। तो फोटो तो सच्ची नहीं हैं पर हॉ सच्चे वर-कन्या जैसी तो हैं, फोटो से इतना तो ज्ञान होता है कि ऐसा ही वर है, ऐसी ही कन्या है इसी से सुन्दरता को नाप लेते हैं, जान लेते हैं। इसी प्रकार से हमारे मुख की छाया भी हमारे मुख की परिचायक है कि हमारा मुख ऐसा ही है जैसे ये छाया है। इस प्रकार से सज्जनों नेत्रों से नहीं दिखाई पड़ते हैं कि अनंत लोक हैं परन्तु हैं बहुत लोक और लोकवासी। ब्रह्मलोक में मुख्यरूप से ब्रह्मा रहते हैं पर और भी बहुत लोग रहते हैं ब्रह्मलोक निवासी। भगवान की भक्ति करने वाले ब्रह्मलोक में जाते हैं फिर ब्रहमलोक में साथ में उनकी क्रम मुक्ति होती है और जो भगवान का ज्ञान हो जाय तो उसको सद्य मुक्ति कहते हैं, तुरन्त वो मुक्त हो जाता है। जो भक्ति भावना से भगवान का ध्यान-चिन्तन करता रहता है पर उसको ब्रह्म ज्ञान नहीं हुआ तो ब्रह्मलोक में जा करके उसे ब्रह्मज्ञान हो जायेगा परन्तु **'ऋते ज्ञाना न मुक्तये'** बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होगी, चाहे इस लोक में हो जाय चाहे ब्रह्मलोक में हो जाय। ब्रह्मलोक सत्यगुण प्रधान है इसलिये **'सत्त्वासंजायते ज्ञानम्'**। तो सज्जनों भगवान कहते हैं **'भोक्तारं यज्ञतपसां'** मैं अनेक लोकों का निर्माण करने वाला हूॅ और अनेक लोकों में रहने वाले जितने लोग हैं मनुष्य पशु पक्षी देवता दैत्य इनको भी मैं ही उत्पन्न करता हूॅ, सब लोकों को और लोक वासियों का निर्माण करता हूॅ। परन्तु अर्जुन! उत्पन्न क्या करता हूॅ मैं ही माया से अनेक रूप हो जाता हूॅ और दूसरा तो कोई होता नहीं। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवताओं के रूप में हो जाता हूॅ। तो जो लोग यज्ञ करते हैं उनका यज्ञ मैं ही ग्रहण करता हूॅ, यज्ञों का भोक्ता मैं ही होता हूॅ, तप का भोक्ता मैं ही होता हूॅ और मैं ही प्रसन्न होता हूॅ यज्ञ से और लोगों की तपस्या से। मैं ही उनको दर्शन देता हूॅ और वरदान भी देता हूॅ परन्तु जो वर लेने वाले हैं मुझसे उनको भी तो मैंने ही उत्पन्न किया है। वर देने वाला भी मैं ही हूॅ और वर लेने वाला भी मैं ही हूॅ। इन्द्रादि देवताओं व ब्रह्मा विष्णु महेश के रूप से उन्हें वर भी देता हूॅ और जो वर लेने वाले हैं तपस्या करने वाले हैं वो भी मेरा ही रूप हैं। ये सब मुझसे उत्पन्न हैं मेरे बिना किसी की उत्पत्ति नहीं होती। तो मैं ही माया करके अनेक रूप धारण कर लेता हूॅ कैसे? देवादिवत्। ब्रह्मसूत्र में कहा कि जैसे देवता लोग अपनी माया से बहुत रूप धर लेते हैं, दैत्य लोग रावण आदि अपनी माया से बहुत रूप धर लते हैं और कोई योगी मनुष्य भी माया से बहुत रूप धर लेता है, सिंह बन जाय, व्याघ्र बन जाय, सर्प बन जाय, आकाश में बाग बगीचा लगावे, कुटिया बनावे योगमाया से ये अनेक रूप धारण कर लेते हैं। तो भगवान कहते हैं कि परमात्मा की यत्किंचित् योगमाया को पा करके ये लोग अनेक रूप धर लेते हैं तो मैं तो सम्पूर्ण माया का पति हूॅ मैं यदि चराचर जगत का रूप धर लेउॅ तो इसमें क्या आश्चर्य है?

परमात्माद्वयानंदः पूर्णः पूर्वमस्वमायया ।
स्वयमेव जगत भूत्वा प्राविशत् जीवरूपतः।।

परमात्मा एक अद्वितीय है दूसरा कोई है नहीं और सत्य ज्ञान आनंद से पूर्ण है। सृष्टि की उत्पत्ति के पहले वो आप अकेले थे भगवान, तो **'स्वमायया'** अपनी माया से, **'स्वयमेव जगत भूत्वा'** स्वयं ही जगत रूप धारण करके स्थित हुए हैं इसीलिये ब्राह्मण लोग वेदमंत्रों के द्वारा अनंतरूप धारी भगवान को नमस्कार करते हैं :—

नमोस्तुनंताय सहस्त्रमूर्तये, सहस्त्र पादाक्षि शिरोरुवाहवे।
सहस्त्र नामने पुरुषाय शाश्वते सहस्त्र कोटि युग धारणे नमः।।

'विष्णुसहस्त्रनाम' में सहस्त्र से केवल हज़ार ही नहीं समझना चाहिये सज्जनों! ये बहुवचन का वाचक है। सारे विश्व के नामरूप देवताओं के, दैत्यों के, मनुष्य पशु-पक्षियों के नामरूप जितने हैं सब भगवान के नामरूप हैं। अनेक नामरूपों में एक भगवान विष्णु हैं **'अनेक रूप रूपाय विष्णवे प्रभु विष्णवे'**, अनेक रूप में भगवान ही हैं दूसरा कोई नहीं है। तो सज्जनों इस प्रकार से यज्ञ रूप भी भगवान ही हैं और यज्ञ के भोक्ता भी भगवान ही हैं और तपस्या के भी भोक्ता भगवान हैं। भगवान ही तप और यज्ञ से प्रसन्न होते हैं और बल देते हैं व स्वयं अपनी माया से विश्वरूप धारण करते हैं —**'स्वयमेव जगत भूत्वा',** स्वयमेव माने **'स्वयं ही'** जगत रूप धारण करते हैं (इसमें ये **'एव'** निश्चय वाचक है इसमें संशय नहीं करना, ये **'ही'** शब्द जहॉ लगता है वहॉ निश्चय वाचक होता है और जहॉ **'भी'** लगता है वहॉ संशय होता है। यदि कहें भगवान भी बहुत रूप धरते हैं तो इसमें लगता है कि वहॉ संशय है पक्का निश्चय नहीं होता) और फिर देखा जगत को तो शरीर मुर्दा जैसे पड़े हुए थे, न हिलते हैं न डुलते हैं तो परमात्मा स्वयं ही जीव रूप से उनमें प्रवेश कर गया। स्वयं जब जीवरूप से प्रवेश कर गया तो ये सब मुर्दा खड़े हो गये, ऑखों से देखने लगे, कानों से सुनने लगे, वाणी से बोलने लगे और बुद्धि में प्रतिबिम्ब पड़ गया तो बुद्धि में प्रतिबिम्ब पड़ने से एक दूसरे की बात समझने लगे क्योंकि चेतन का जो प्रतिबिम्ब है वो भी चेतन है पर हॉ थोड़ा ज्ञान है, शब्दादि विषयों का ज्ञान होता है, व्यवहार का ज्ञान होता है, परमात्मा का ज्ञान नहीं होता है पर लोक संसार का ज्ञान तो होता ही है, इस प्रकार से भगवान ही अनंत रूप में हैं सज्जनों! इसलिये **'भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम'** सर्व लोक के महान् ईश्वर माने प्रेरक हैं, लोक और लोक वासियों के प्रेरक माने सत्ता-स्फूर्ति देने वाले। सबको सत्ता-स्फूर्ति देते हैं तो इनमें हलचल होने लगती है, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण अपने अपने काम करने लगते हैं जैसे मशीनों में बिजली आ जाने से मशीनें चलने लगती हैं और बिजली चली जाय तो मशीनें सब ठप हो जाती हैं। रेल, मोटर, हवाई जहाज़ जितनी मशीनें हैं सब बिजली बिना नहीं चलतीं। इसी प्रकार से चेतन जो आत्मा है, परमात्मा है वो बिजली के समान सबमें व्यापक है उसके रहने मात्र से सब देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण अपना अपना सब काम कर रहे हैं, तो भगवान सर्व लोकों के महान् ईश्वर माने प्रेरक हैं और **'सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति'**— अर्जुन सभी भूतों का अकारण करुणा करने वाला मैं मित्र हूँ, साथी हूँ, सखा हूँ, सदा साथ रहता हूँ। **'सुहृदं'** माने बदले में उपकार को न चाहने वाला तथा करुणा और हित ही करता है। रामायण में तुलसीदासजी लिखते हैं हे प्रभो! **'हेतु रहित जग जुग उपकारी तुम तुम्हार सेवक असुरारी'** हे प्रभो! अकारण ही प्रत्युपकार न चाहकर करुणा करने वाले, हित करने वाले दो हैं, एक तो स्वयं आप हो और एक आपके भक्त लोग हैं जो हित करके उसके बदले में कुछ भी नहीं चाहते। तो तुम्हारे सेवक ऐसे क्यों हैं जैसे आप हो? कहा जैसे आप पूर्ण हो तो बदले में क्या चाहें? सत्य ज्ञान आनंद से जो पूर्ण होवे उसको तो देना ही देना है, स्वयं तो पूर्ण है न! इसी प्रकार से आपके भक्त लोग भक्ति के प्रभाव से आपको प्रसन्न किया और आप कृपा करके उनको अपने स्वरूप का ज्ञान करा देते हो तो वो भी पूर्ण हो जाते हैं **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति, ब्रह्मविद् ब्रह्मैव स्थितः'**, जो ब्रह्म को जान लेता है वो ब्रह्म स्वरूप से स्थित होता है तो वो भी पूर्ण होता है। दूसरों का हित करके वो क्या दूसरे से चाहे जो स्वयं ही पूर्ण है? उसको तो करुणा, दया करके देना ही देना है। करुणावश ही वो ज्ञान का उपदेश देते रहते हैं, गीता, रामायण, भागवत् सुनाते फिरते हैं, प्रयोजन? दूसरों का हित हो, कल्याण हो। हमारा तो कुछ जाता नहीं है, हमारे में तो कुछ कमी

आयेगी नहीं, **'सरस्वती भण्डार की बड़ी अपूरव बात, ज्यों खरचे त्यों त्यों बढ़े बिन खरचे घट जाय'**। यदि पढ़ाता रहे तो सरस्वती विद्या बढ़ती रहती है और जो खर्चा न करे, न सुनावे तो कुछ दिन में भूल जाती है इसलिये अपना तो कुछ घाटा होता नहीं है अपनी तो वृद्धि ही होगी और दूसरों का लाभ हो जायेगा। तो अपने को कुछ न चाह करके क्योंकि स्वयं पूर्ण है, अपने को कुछ भी नहीं चाहिये, हेतु रहित है। भगवान अकारण करुणा करने वाले हैं, भगवान कहते हें कि मैं भी प्रतिउपकार न चाहने वाला, बदला न चाहने वाला सच्चा सखा हूँ, सच्चा हितैषी हूँ। मैं कुछ नहीं चाहता हूँ, जीवों को देना ही देना चाहता हूँ। '**सुहृदं सर्वभूतानां'** परन्तु ये जीव ऐसे मुझ सच्चे सखा को तो ये गया है भूल और नये नये सखा बना लिया है। इस संसार में आ करके स्त्री है, पुत्र है, मित्र है, पिता है, भ्राता भगिनि है ये नये नये साथी बनाया है, ये पहले के नहीं हैं पहले का जब जन्म हुआ था जीव का तो उस समय तो वो थे ही नहीं पर मैं तो साथ ही हूँ न! जन्म के समय तो मैं साथ ही हूँ और जितनी देर जीवन है उतनी देर मैं साथ ही हूँ और लय में भी मैं साथ ही हूँ क्योंकि जब मुझसे उत्पन्न होते हैं तो मुझमें ही हैं सब जीव पहले। जैसे जल से जब तरंगें उत्पन्न होती हैं तो तरंगों की उत्पत्ति में जल तो साथ ही है न! जल ने तो तरंगों का साथ नहीं छोड़ा है और जितनी देर जीवन है तरंगों का, चलती फिरती हैं तो जल साथ है, जल एक है तरंगें अनेक हैं परन्तु हर तरंग के साथ जल है। ऐसे ही सब भगवान की रास लीला है और रस रूप भगवान हैं जैसे जल यानि 'रस' माने एक और 'रास' माने अनेक। तो रसरूप से जल एक है और तरंगरूप से, रासरूप से अनेक है। ऐसे ही रसरूप तो सच्चिदानंद सिन्धु भगवान ही हैं और ये चराचर जगत इसी आनंद सिन्धु की तरंगें हैं इसलिये भगवान उत्पत्ति के समय सबके साथ हैं और जितनी देर जीवन है उतनी देर भगवान सबके साथ हैं और जब इनका लय होगा तो भगवान में ही लय होगा, तो भी साथ ही हैं तो वियोग हुआ ही कहाँ है? तो सच्चे साथी हुए न भगवान? ऐसा दूसरा कोई साथी नहीं है और जो साथी हैं वो बीच में मिलते हैं और बीच में ही बिछुड़ जाते हैं, पहले से कोई साथ नहीं आया और न ही साथ जायेगा, ये बीच में मिले हैं और बीच में ही बिछुड़ जाते हैं। ये ही बात तुलसीदासजी कहते हैं — **'प्राण प्राण के जीवन जी के, स्वारथ रहित सखा सबही के',** भगवान प्राणों के प्राण हैं क्योंकि सत्ता-स्फूर्ति दे करके प्राणों को प्रेरित करते हैं, भगवान ही जीवन का जीवन तत्त्व हैं और स्वारथ रहित भगवान सबके सखा हैं माने साथी हैं इसलिये पहचानो तो सही, उनका तो कभी वियोग हुआ ही नहीं है इसीलिये तुलसीदासजी कहते हैं — **'सो तै ताही तोही नहीं भेदा, वारि वीचि इव गाावहिं वेदा'**, अरे जीवरूपी तुम तरंगें हो और जलरूपी भगवान हैं, आनंद सिन्धुरूप भगवान हैं उनकी तुम तरंगें हो, जैसे तरंगों का जल से वियोग कभी नहीं हुआ है वैसे ही तुम जीवों का भगवान से वियोग कहाँ होता है? इसलिये तुम भगवान का स्वरूप ही हो जैसे सारी तरंगें जलरूप ही हैं विचार कर देखो जल से भिन्न नहीं हैं, एक जलरूप हैं सारी की सारी तरंगें, जल से जुदा कोई नहीं है। ऐसे ही ये तरंग रूप संसार में जितने भी नाम-रूप हैं एक आनंद सिन्धु भगवान से भिन्न नहीं हैं, वही तुम्हारा स्वरूप है। तो अपने आप को पहचानो तो सही कि तुम भगवान से भिन्न नहीं हो? भगवान को भूल करके ही तुम दु:ख पाते हो। जो अपने को तरंग मान लेगा माने स्त्री पुरुष पशु पक्षी मान लेगा, शरीर ही मान लेगा तो शरीर तो तरंग है तो ये मृत्यु से कैसे बचेगा? और जो जल जानेगा तो मृत्यु से छूटा ही हुआ है। ऐसे ही आनंद सिन्धु अपने को जानेगा कि मैं सच्चिदानंद सिन्धु हूँ तो तू मृत्यु से छूटा ही हुआ है और जो तरंगरूप शरीर ही अपने को मान बैठेगा तो जन्म-मरण से कैसे छूटेगा? इसलिये अर्जुन! अपने सच्चे सखा मुझको पहचानो तो सही, मैं तुम्हारा सच्चा सखा हूँ। नर नारायण का, जीव ईश्वर का सदा ही साथ है, कभी वियोग तो हुआ ही नहीं है इसलिये ये सच्चा ज्ञान है, यथार्थ ज्ञान है, संशय रहित ज्ञान है, **'ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छिति'** जिससे वो शान्त स्वरूप ब्रह्म को ही प्राप्त हो जाता है। मेरा स्वरूप प्राप्त क्या होता है वो तो जानना ही है, तरंगें तो जल को प्राप्त हैं ही तो जगत रूपी तरंगें तो भगवान को प्राप्त हैं ही परन्तु न जानने से अप्राप्त हैं। तुम्हारे घर में अरबों रुपया गढ़ा हो और तुम न जानते हो तो गरीब ही हो, अप्राप्त ही है। किसी सेठ के घर में अरबों रुपया गढ़ा था परन्तु वो जानता नहीं था बड़ा गरीब

था। कोई संत आये गंगा स्नान के लिये और वो सेठ भी गंगा स्नान के लिये गया तो देखा कोई संत हैं गंगा स्नान कर रहे हैं। सेठ भगवान का, संतों का भक्त था, संतों की शरण में गया प्रणाम किया और कहा महाराज आज भिक्षा मेरे यहॉ कीजिये। संत ने कहा ठीक है, कहीं न कहीं भिक्षा तो हमें करना ही है चलो तुम्हारे यहॉ ही कर लेंगे। तो ले गया संतों को और उनके चरण धोया और चरण धोकर चरणामृत लिया और चौका में बैठाकर भोजन कराया। तो संत ने देखा ये सेठ बहुत ग़रीब मालूम पड़ता है, कहा सेठजी आप बड़े ग़रीब मालूम पड़ते हो? सेठ ने कहा महाराज हमारे बुजुर्ग लोग तो बहुत धनी थे पर काल पा करके हमको ग़रीबी आ गयी है। उन महात्मा को भूगर्भ विद्या का ज्ञान था, निधिशास्त्र के वो ज्ञाता थे कि किस भूमि में सोना चॉदी अनंत धन गढ़ा हुआ है इस विद्या के वो जानकार थे तो उन्होंने देखा कि चौका के उत्तर कोने में तीन हाथ की गहराई पर कई अरबों के सोने के सिक्के गढ़े हुए हैं और सोने के पात्र में गढ़े हुए हैं तो महात्मा ने कहा तुम इतने ग़रीब मालूम पड़ते हो और इतना धन गाढ़कर रखे हो किसके लिये? इतने छिपा के क्यों रखे हो? ऐसी गरीबी अपनी क्यों दिखाते हो? सेठ ने कहा नहीं नहीं महाराज हमने छिपा के नहीं रखा है तो महाराज ने कहा पचास अरब रुपया गढ़ा है तुम्हारे इस चौके के कोने में और तुम कहते हो हम छिपाते नहीं। सेठ ने कहा सच कहते हैं प्रभो! हमको ज्ञान नहीं है इस बात का, हम भूगर्भ विद्या के जानकार नहीं हैं कि भूमि के पेट में, भीतर क्या है? महात्मा ने कहा मैं तो ये विद्या जानता हूॅ तो मुझे तो ज्ञान है। तो सेठ ने कहा कि प्रभो! आपके वचन प्रमाण से मेरी आधी ग़रीबी दूर हो गयी, प्रत्यक्ष नहीं हुआ अभी ये परोक्ष ज्ञान है भला! जो वचन प्रमाण से ज्ञान होता है उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। अथवा वेद शास्त्र ईश्वर के वचन हैं इन वचन प्रमाण से ज्ञान तो होता है परन्तु यह परोक्ष हुआ प्रत्यक्ष नहीं हुआ और यदि ऑखों से भी देख लेवे उसको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं। सेठ ने कहा प्रभु यदि मैं ऑखों से भी देख लूॅ तो मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान हो जायेगा, अपरोक्ष ज्ञान हो जायेगा, संत ने कहा तो खोदकर निकाल लो। सेठ ने जो खोदा तो तीन हाथ की गहराई में पचास अरब रुपया निकल आया सोने के पात्र में। अब देखो घर ही में धन था पर न जानने से सेठ ग़रीब था और जानने से ज़िन्दगी भर की उसकी ग़रीबी दूर हो गयी। उसने कहा महाराज इसमें से आधा धन आप ले लीजिये। महात्मा ने कहा मैं तो भूगर्भ विद्या जानता हूॅ चाहे जितना धन निकाल लूॅ पर मैंने तो स्त्री पुत्र धन का त्याग किया है, इसकी तो गृहस्थों को ज़रूरत पड़ती है। तुम स्त्री पुरुष परिवार वाले हो तुमको ज़रूरत है, मेरे पास भी स्त्री पुत्र धन तो था ही परन्तु मैंने तो संन्यास ले लिया है इन सबको त्याग करके जगह जगह विचरता हूॅ और गीता रामायण भागवत् का उपदेश देता हूॅ और कहीं भी भिक्षा मॉग करके दो रोटी खा लेता हूॅ इसलिये मुझको ज़रूरत नहीं है। अस्तु, कहने का अभिप्राय है अनंत धन हमारे भीतर ही है, भगवान ही अनंत धन हैं सज्जनों! 'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'—अनंत धन भगवान है, वो कहॉ गढ़ा है? हमारे हृदय में ही बैठा है भगवान बाहर कुछ नहीं है, **'ईश्वरः सर्व भूतानाम् हृद्देदेशं तिष्ठति'**— अर्जुन! ईश्वर सब भूतों के हृदय देश में ही बैठा हुआ है बाहर नहीं है पर दिखाई क्यों नहीं पड़ता है? कहा, तीन हाथ पृथ्वी खोद डालो तो दिखाई पड़ जायेगा। तीन हाथ पृथ्वी क्या है? ये प्रकृति ही पृथ्वी है, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इतनी प्रकृति है, ये पृथ्वी है इसको अलग कर दो ये ही व्यवधान डाले है तुम्हारे खजाना पाने में। तो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इन तीनों को हटा दोगे तो जो चौथा है वो सच्चिदानंद ब्रह्म ही मिलेगा, वो अनंत धन है उसका अंत होता ही नहीं है—अनंत सत्य है अनंत ज्ञान है अनंत आनंद है।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचं यत्प्रकाशते,
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को प्रकाशता है, देखता है वो चौथा तुरीय कहलाता है और हे अर्जुन! वही तुम्हारा स्वरूप है क्योंकि तुम भी चौथे हो। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को देखते हो तो चौथे तुम अलग हो गये, चौथे को गिनो चाहे मत गिनो वह स्वयं सिद्ध है। जिसने तीन को गिन लिया तो चौथा तो स्वयं सिद्ध है। इस प्रकार से प्रकृति को हटाकर अपने पुरुष रूप को देखो। तुम पुरुष

हो माने पूर्ण हो, सत्य, ज्ञान, आनंद से जो पूर्ण हो उसे पुरुष कहते हैं — **पूर्णत्वात्पुरुषः पुरुशयनत्वाद्वा,** पूर्ण होने से अथवा शरीर रूपी पुरों में रहने से, व्यापक होने से उसको पुरुष कहते हैं। ये भगवान का यथार्थ उपदेश है और भगवान कृष्ण के समान, ये गीता के समान सज्जनों कोई भी ज्ञान है नहीं संसार में इसलिये इस ज्ञान को धारण करो और भगवान की कृपा यही समझना चाहिये कि भगवान इतने दुर्लभ ज्ञान का उपदेश कर रहे हैं। लोग कहते हैं कि भगवान की कृपा होगी तो मुझे ज्ञान आ जायेगा। अरे भाई भगवान की तो पूर्ण कृपा है सब जीवों के ऊपर, ऐसा क्यों सोचते हो कि भगवान की कृपा नहीं है पर तुम भी तो अपने ऊपर कुछ कृपा करो। अरे भाई तुम श्रवण करो, मनन करो, निदिध्यासन करो, भगवान के उपदेश को धारण करो, अपनी कृपा तो अपने ऊपर करो तुम। अर्जुन भगवान का भक्त है पूर्ण कृपा है भगवान की, यदि भगवान की कृपा मात्र से अर्जुन को ज्ञान हो जाता तो भगवान को ये ज्ञान सुनाना क्यों पड़ता? अरे स्वाभाविक कृपा है भगवान की भक्तों के ऊपर, तो इसलिये चार कृपायें बतायीं हैं — ईश्वर कृपा, गुरु कृपा, वेद कृपा और अपनी आत्मा की कृपा। ईश्वर कृपा ये है कि ये नर शरीर हमको तुमको दे दिया, गुरु कृपा यही है कि गुरु की शरण में जाओगे तो ये गीता, रामायण, उपनिषद, भागवत् का ज्ञान तुमको सुना देंगे तो वेद की कृपा हो जायेगी जहाँ तुम सुनोगे और उनकी शरण में नहीं जाओगे तो वे क्या करेंगे? अरे शरण में आओगे तब तो सुनायेंगे न, गुरु की कृपा तो तभी होगी न! तुम अपने ऊपर दया करके गुरु की शरण में जाओ और सुनो ज्ञान। जीव की अपनी कृपा क्या है? जो गुरु उपदेश करे उसको श्रवण करे, भुलावे नहीं और फिर मनन करे कई बार और निदिध्यासन करे नहीं तो भूल जायेगा इसलिये ये अपने ऊपर अपनी कृपा है। गुरु की कृपा यही है कि यथार्थ निष्पक्ष उपदेश दे देवे, जैसा भगवान कहते हैं वैसा ही सुना देवे।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 05 - 25.08.06

४

मन माया है

सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान के ज्ञान से ही जीव सर्व दु:खों से मुक्त होकर परम सुख शान्ति को प्राप्त होता है इसलिये भगवान का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। भगवान के ज्ञान का साधन भगवान की वाणीरूप वेद है। या तो साक्षात् भगवान ही अवतार लेकर राम कृष्ण आदि के रूप में वेद सुनाते हैं, वेद का ज्ञान कराते हैं जिज्ञासुजनों को और या भगवान के भक्त संत महात्मा लोग, विद्वान ब्राह्मण लोग भगवान की कृपा से वेद को पढ़कर, ब्रह्म को जानकर वे स्वयं वेद पढ़ाते हैं, वो भगवान का ज्ञान कराते हैं क्योंकि और तो कोई साधन है नहीं भगवान के ज्ञान का। भगवान की वाणी ही एक साधन है भगवान को जानने का, दूसरा कोई साधन नहीं है क्योंकि दूसरे जितने जीव हैं उनकी अविद्या उपाधि होने के कारण वो अल्पज्ञ हैं और भगवान की उपाधि विद्या है इसलिये ईश्वर सर्वज्ञ हैं। विद्यारूपी उपाधि आवरण नहीं करती है वो अधिक प्रकाश करती है क्योंकि शुद्ध सत्वगुण प्रधान है और अविद्यारूपी जो उपाधि है वो मलिन सत्तव गुण प्रधान है इसलिये वो आवरण करती है जीव के ज्ञान को, **'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव:'** अज्ञान से जीव का ज्ञान ढका रहता है। ये अनादि अज्ञान से ढका हुआ है, ये ही जीव को बन्ध है। अपने स्वरूप को, सच्च्दिानंद ब्रह्म आत्मा को जीव नहीं जानता अज्ञान के कारण इसलिये देहादि दृश्य को ही अपना स्वरूप मान लेता है कि मैं देह हूँ, इन्द्रिय हूँ, मन हूँ, प्राण हूँ, ये अज्ञान का लक्षण है। अज्ञान से जीव अपने को ये दृश्य देहादि मानता है, नहीं तो जीव का स्वरूप तो ज्ञान ही है। यदि ज्ञान स्वरूप जीव न होवे तो ये देह को कैसे जाने? देह को तो ज्ञान नहीं है, देह तो अज्ञानरूप ही है, देह तो अपने को जान नहीं सकता, जीव ही जानता है इसलिये जीव ज्ञान स्वरूप है और अपने को अज्ञानरूप, देहरूप माना हुआ है। ये असुरों का मत है, अज्ञान ही असुर है, देह अज्ञान है और देह में अहं भाव करना, अहंकार करना कि मैं देह हूँ, स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, ये असुर भाव है। ये ही दु:ख का कारण है क्योंकि देह अपने को मानेगा तो देह जन्मा है तो मरेगा भी, तो मरने के भय से कभी न छूटेगा। देह में ही स्त्री पुरुषपना है और जो जीव है वो तो स्त्री पुरुष है नहीं। **'न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीव: सर्वगतोऽव्यया'** जीव तो स्त्री पुरुष या नपुंसक है नहीं किन्तु सभी स्त्री पुरुष नपुंसकों में व्यापक है, सबको देखता है, वो तो ज्ञान स्वरूप है। सभी देह अज्ञानरूप हैं, देह में ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रपना है। जो देही आत्मा है, जीव है, वो तो कोई ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये देह नहीं हो सकता, देह क्योंकि अज्ञानरूप है और देह का देखने वाला द्रष्टा वो ज्ञानरूप है। तो ज्ञानरूप होकर ये अज्ञानरूप देह कैसे बन जायेगा? परन्तु बड़ा आश्चर्य है तो भी जीव 'मैं देखने वाला ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ' ऐसे अपने स्वरूप को, अपने ज्ञान को भूला हुआ है और अज्ञानरूप देह माने बैठा है, इसी को माया कहते हैं। जानता हुआ, देखता हुआ भी नहीं देख रहा है अपने आप को। ऐसे ही सूक्ष्म शरीर में अभिमान करके कर्ता-भोक्ता बन बैठता है। जब स्थूल देह को अपना स्वरूप जानता है तो जन्म मरण का भय होता है क्योंकि जन्म मरणपना स्थूल देह में है। स्थूल देह में कर्म नहीं हैं, स्थूल देह के भीतर सूक्ष्म शरीर है उसमें कर्म हैं। धर्म-अधर्मरूप कर्म सूक्ष्म देह में हैं। सूक्ष्म देह १७ या १९ तत्त्वों का है — पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ, पॉच कर्मेन्द्रियॉ, पॉच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। इन १९ तत्त्वों के समूह का नाम सूक्ष्म शरीर है। इन्हीं में सब कर्म होता है, इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण ही सब कर्म करते हैं।

सूक्ष्म देह में ये जीव अभिमान करता है तो कर्मों का कर्ता बन बैठता है नहीं तो कर्म नहीं हैं ज्ञान में, ज्ञान तो देखता ही है, जानता ही है उसमें कर्म नहीं है, निर्गुण निराकार है, अकर्म तत्त्व है आत्मा, जीव। सूक्ष्म शरीर में अभिमान करके अपने आप को धर्म-अधर्म पुण्य-पाप का कर्ता मानता है, अब जब पुण्य-पाप का कर्ता बना तो पुण्य-पाप का फल है सुख और दुःख उनका भोक्ता भी बना, कर्ता बना तो भोक्ता बना। फिर कर्मों के फल भोगने के लिये दूसरे शरीरों का जन्म धर्ता भी बना। इस शरीर में कर्म करेगा तो कुछ इस शरीर में सुख-दुःख भोगेगा अच्छे-बुरे कर्मों का फल और जो रह जायेंगे उनका फल भोगने के लिये दुसरा शरीर धारण करना पड़ेगा। ये बीज बन गया, ये शरीर पैदा करने के लिये ये पुण्य-पाप कर्म बीज बन गया, बीज है तो वृक्ष होगा ही, ये शरीर रूपी वृक्ष अवश्य होगा। फिर दूसरे शरीर में कर्म करेगा, उस शरीर में भोगेगा और जो रह जायेंगे फिर वो दूसरे शरीर में भोगेगा। इस प्रकार से जन्म और कर्म, जन्म और कर्म बढ़ते ही चले जाते हैं। एक बीज से अनेक बीज अनेक वृक्ष होते चले जा रहे हैं। तो इस संसार सागर में ८४ लाख योनियों में जन्मने मरने का कारण ये जीव का अपने स्वरूप का अज्ञान ही बना, सूक्ष्म शरीर में अभिमान ही बना और सूक्ष्म शरीर से न्यारा है जीव, क्यों? सूक्ष्म शरीर को भी ये जीव जानता है, द्रष्टा है। अरे भाई १९ तत्त्वों को हम जानते हैं ये १९ तत्त्व हमको नहीं जानते। हम अपने मन को जानते हैं, बुद्धि को जानते हैं, प्राणों को जानते हैं, कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का जानते हैं ये तो हमको नहीं जानते। हम ज्ञानरूप हैं पर कैसा आश्चर्य है जो अज्ञानरूप बन गये, इससे ज्यादा अज्ञान और क्या होगा? इस अज्ञान के कारण ही जीव को ये जन्म-मरण के दुःखों का बन्धन हुआ है, और कोई बन्धन का कारण है नहीं। सर्वज्ञ होने से भगवान अपने को देह नहीं मानते हैं इसलिये जन्म-मरण नहीं, इन्द्रिय मन बुद्धि नहीं मानते हैं इसलिये अपने को पुण्य -पाप का कर्ता नहीं मानते इसलिये भगवान नित्य मुक्त हैं। ईश्वर को कोई जन्म-मरण का बन्धन नहीं है, मुक्त है, न ही ईश्वर में शुभाशुभ कर्म है। जीव को अपना स्वरूप जानने के लिये ईश्वर की शरण लेना ही पड़ेगा क्यों वो तो नित्य मुक्त है, ज्ञान स्वरूप है, वो ही ज्ञान देगा। ईश्वर भी ज्ञान कब देता है जब कोई ईश्वर की शरण में जाता है। ईश्वर के अवतार समय समय में होते हैं। त्रेता में राम का अवतार हुआ तो राम ने अपने अधिकारीजनों को, भक्तजनों को ज्ञान दिया। द्वापर में कृष्ण का अवतार हुआ तो कृष्ण ने अपने भक्तों को ज्ञान का उपदेश दिया। अब कलयुग में इस समय कोई अवतारी पुरुष है नहीं, तो कहते हैं कि अनेक युगों के जो अवतार होते हैं उन अवतारों के जो भक्त हैं, संत महात्मा लोग हैं और संत महात्माओं के रूप में भगवान हर समय अवतार लेते रहते हैं इसलिये संतों को भगवान का अवतार ही जानना चाहिये। हमेशा संतों के अवतार होते रहते हैं और ये वेद शास्त्र पढ़ते हैं और ब्रह्म को जान लेते हैं वेद के द्वारा, फिर दूसरों को भी ज्ञान देते हैं। अतः संतों की ही शरण जाना चाहिये तो संत उपदेश दे देते हैं। संत भगवान को किस प्रकार से बतलाते हैं — एक तो भगवान का **स्वरूप लक्षण** है ***'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म',*** ब्रह्म सद्रूप चिद्रूप आनंदरूप है। सद्रूप है उसका जन्म मरण नहीं होता इसलिये सद्रूप है, सर्वद्रष्टा साक्षी है इसलिये चिद्रूप है ज्ञानरूप है और अनंत सुखरूप है इसलिये आनंदरूप है, मंगलमय है, कल्याणमय है ये भगवान का स्वरूप है। और जीव के लिये बताया कि **जीव का स्वरूप** भी ***'तत्त्वमसि',*** जो भगवान का स्वरूप है निर्गुण निराकार वही जीव का भी स्वरूप है निर्गुण निराकार, भेद नहीं है कुछ भी, एक रूप है। ये भगवान का स्वरूप लक्षण है। इतने मात्र से ये जीव जान जावे कि मैं सच्चिदानंदघन ब्रह्म हूँ तो उसको अन्य उपदेश की और कोई ज़रूरत नहीं है, जब इतने उपदेश से न जाने तो फिर ब्रह्म का दूसरा लक्षण करते हैं ब्रह्म को बताने के लिये।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्ब्रह्म।

जिसकी इच्छा मात्र से ये संसार उत्पन्न होता है क्योंकि ये वेद बताता है, **तदिच्छत् बहुस्याम् प्रजायेत्** ईश्वर ने इच्छा किया बहुत हो जाऊँ, बस इच्छा मात्र से बहुत बन गया, इस बहुत बनने को ही जगत कहते हैं और फिर थोड़ी देर रहा, फिर उसी ब्रह्म में लीन हो गया, उसी भगवान में उसी ईश्वर में फिर लीन हो गया इसलिये इसका नाम जगत रखा है **'गच्छति इति जगत'**। जिस दिन से पैदा हुआ ये जगत माने सब शरीर (स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण) उस दिन से चलते ही रहते हैं एक मिनट भी रुकते नहीं हैं चलते ही रहते हैं। जब वृद्धि होती है, बालक से युवा हुए, युवा से वृद्ध भये तो चल ही रहे हैं। चलते-चलते चलते-चलते वो विनाश की तरफ चलने लगे अब, पहले बढ़ना भी चलना है फिर घटना भी चलना है। कहीं जाना भी चलना है और वहाँ से घर लौटना भी चलना है, स्थिर न रहे। यात्री कहीं जाता है तो वहाँ चला गया जहाँ जाना है फिर लौटना भी है अपने घर में, बैठने को कहाँ मिला? ये चलता ही रहा जगत, चलते चलते जहाँ से उत्पन्न हुआ था वहीं लीन हो गया इसलिये इसको जगत कहा, 'गच्छति' चलता ही रहता है।

सकलमेव चलम् सचराचरम्,
जगदिदम सुतराम धन यौवनम्।

कहते हैं सारा संसार चल है एक मिनट भी रुकता नहीं है, सब देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण सब चल रहे हैं। जैसे जल से तरंगें उत्पन्न होती हैं और उत्पन्न होते ही चलने लगती हैं। बढ़ रही हैं पहले, बढ़ते बढ़ते बढ़ते जल में फिर लीन हो गयीं, फिर घट रही हैं उसी जल में फिर लय हो गयीं, चली गयीं। चलते चलते चलते सब चले ही जा रहे हैं। फिर आ रहे हैं, फिर जा रहे हैं, फिर आ रहे हैं, फिर जा रहे हैं। रोज़ जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये आते जाते रहते हैं। ऐसा जगत भगवान की इच्छा से उत्पन्न हुआ। भगवान अलग हैं, उनकी इच्छा अलग है और उनकी इच्छा से होने वाला जगत अलग है, इच्छा मात्र है। जैसे हम और हमारी इच्छा, हम तो अलग हैं हम इच्छा को जानते हैं, मन में जो इच्छा होएगी हम जान जायेंगे तुरन्त। न मन हमको जानता है और न मन में होने वाली कोई इच्छा हमको जानती है और इच्छा से जगत बनता है। हम तो जगत बनाते नहीं हैं, हमारी इच्छा से जगत बनता है, हम और हमारी इच्छा दोनों अलग अलग हैं, इसी को माया कहते हैं, इसी को मन कहते हैं। अरे मन होगा तो इच्छा होगी, इच्छा होगी तो जगत होगा और इच्छा से जगत हो गया **'इच्छा मात्रं प्रभु सृष्टि', 'चित्तमेव संसारा', 'चराचरम् भाति मनो विलासं'** मन ही जगत रूप धरता है मन ही इच्छा करता है, जो इच्छा करता है वो ही बन जाता है। कोई सामग्री की ज़रूरत तो होती नहीं है, इच्छा से संसार बनने में कोई सामग्री नहीं। कर्म करके सामग्री ले करके तो ये संसार बनाना नहीं है, ये मनुष्य पशु पक्षी जो कोई हैं इनको कोई सामग्री लेकर, औज़ार लेकर और कोई सामान लेकर गढ़ के तो बनाना नहीं पड़ता है और न बन सकते ही हैं ऐसे शरीर भिन्न भिन्न, न्यारे न्यारे। जितने संसार में मनुष्य होंगे, स्त्री पुरुष होंगे सबके आकार न्यारे न्यारे हैं, एकरूप के मिलेंगे नहीं कोई और सामग्री से ये बनाये नहीं जा सकते कि गढ़ के बनायें जैसे माटी की या पत्थर की मूर्ति कोई गढ़ के बनावे। ऐसे तो ये बनाये गये नहीं हैं तो जानना चाहिये कि इच्छा मात्र से ही ये बने हैं और हम तुम द्रष्टा साक्षी आत्मा ब्रह्म ही हैं। हम देखते हैं कि सुषुप्ति में मन नहीं रहता, कोई इच्छा नहीं रहती तो संसार भी नहीं रहता, न जाग्रत का और न स्वप्न का, कोई संसार नहीं रहता और जब मन सोकर उठता है तो पहले सपना देखता है। तो स्वप्न में मन ही इच्छा करके स्वप्न संसार बन गया और देखने वाले हम अलग रहते हैं। मन ही जाग्रत का स्थूल संसार बन गया और देखने वाले मन के हम अलग ही रहे। मन को, मन की इच्छा को और मन से बने हुए संसार को हम सबको देखते हैं पर अलग रहते हैं मिलते ही नहीं इसलिये संसार इच्छा मात्र से ही है कोई सामग्री से नहीं है। **'बिन सामग्री उपजत याते, जग प्रपंच इमि मिथ्या ताते'** ये संसार बिना सामग्री के इच्छा मात्र से पैदा हो जाता है इसी वास्ते मिथ्या हैं, इन्द्रजालवत्। इन्द्रजाली पुरुष जो खेल दिखाते हैं जादूगर लोग, वो बिना सामग्री के सब चीज़

बना के दिखा देते हैं, उनको कोई सामग्री नहीं लेना पड़ता। किसी को कोई मिठाई खाना हो तो खाली डिब्बा दिखायेंगे और जो कोई मिठाई खाने को कहेगा, पेड़ा बर्फी गुलाबजामुन जलेबी, तुरन्त वो ताज़ी ताज़ी मिठाई खाली डिब्बे में दिखा देंगे, ये देख कोई सामग्री नहीं लिया। कोई आम अमरूद अनार अंगूर खाना चाहे तो अभी के अभी वो गुठली बो देंगे और खेल दिखाने लगेंगे, थोड़ी देर में आम का वृक्ष तैयार हो गया देखो जादू का तमाशा और फूल फल भी आ गये, पक भी गये, लाल पीले हरे कोई कच्चे हैं, लाल पीले पक रहे हैं, पके पके फल दिखा दिया सामग्री बिना, ये क्या है? वो संकल्प करते हैं इच्छा करते हैं वैसे ही बन के तैयार, जादू है ये। पर वो सब फल, फूल, मिठाई सब मिथ्या है, झूठी है बिना सामग्री के। उससे भूख-प्यास नहीं मिटती है, झूठी है, खाली देखने की है और जो चीज़ सामग्री से बनती है, आम अमरूद अनार अंगूर कोई लगावे, बाग बगीचा बनावे, उसको सींचे उसकी रक्षा करे, मेवा मिठाई मलाई रोटी दाल चावल सामग्री लेकर बनावे तो उससे कुछ भूख-प्यास मिटती भी है। हमेशा के लिये तो नहीं, दो चार दस घंटा तक भूख तो मिट ही जायेगी उस भोजन से जो सामग्री से बना है पर जादूगर के बनाये हुए भोजन से तो भूख नहीं मिटेगी बिल्कुल क्यों कि वो बिल्कुल झूठी है और जो सामग्री से बना वो कुछ थोड़ा सच्चा है। तो ये बिना सामग्री के संसार बना है इच्छा मात्र से इसलिये बिल्कुल झूठा है किसी की भूख-प्यास मिटती नहीं है सब भूखे ही प्यासे ही बने रहते हैं, दु:खी ही बने रहते हैं। अब तक अनंत जन्म बीत गये सुख की प्यास किसी की बुझी नहीं, सुख मिला ही नहीं, इस संसार में सुख नहीं है, दु:ख पर दु:ख आते हैं सुख नहीं मिलता है। **'इच्छा मात्रं प्रभु सृष्टि'** उसकी इच्छा मात्र से सृष्टि हो जाती है, जो इच्छा मात्र से होती है वो झूठी होती है। हमारा तुम्हारा स्वरूप तो ब्रह्मरूप द्रष्टा बताया भगवान ने। हमारा तुम्हारा जन्म नहीं होता है, आत्मा अजन्मा है, **'न जायते म्रियते वा कदाचिन्'** भगवान कृष्ण भी कहते हैं कि आत्मा का जन्म मरण नहीं होता, आत्मा में जो निद्रा से मन पैदा हुआ, मन में इच्छा हुई उससे होता है। हम निद्रा को भी देखते हैं, निद्रा से मन पैदा हुआ तो मन को भी देखते हैं, मन से इच्छा हुई उससे स्वप्न का और जाग्रत का संसार बना उसको भी देखते हैं पर अलग रहते हैं, हमारा जन्म मरण कहाँ हुआ? जगत का जन्म मरण तो मन की इच्छा मात्र से है, जादूगर का खेल है, ये रोज़ होता है। जाग्रत स्वप्न का संसार रोज़ बनता है, मन होता है तब बनता है और मन सो जाता है निद्रा में तो मिट जाता है। हमारा तुम्हारा स्वरूप तो हमेशा ही रहता है जाग्रत में, स्वप्न में, सुषुप्ति में, एक जैसे ही द्रष्टा रहते हैं और ये तीनों नहीं होते तुरीय में, समाधि में तो मैं आप अकेला रहता हूँ और ये तीनों हैं तो मैं तीनों में समाया हुआ तीनों को देखने वाला रहता हूँ। मैं अविनाशी ज्यों का त्यों ही रहता हूँ अचल रहता हूँ आकाश के समान, न आता हूँ न जाता हूँ। ये सब माया है, मन माया है, मन ही आता जाता है।

मन माया प्रकृति जगत, चार नाम एक रूप।
तब लौं ये साँचे लगे, नहिं जाने निज रूप।।

मन माया प्रकृति और जगत नाम ही चार हैं, एक ही रूप हैं। **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव न परा'** ब्रह्म सत्य है सो हमारा तुम्हारा स्वरूप जीव है, ब्रह्म ही है और जगत दृश्य ये इच्छा मात्र है, मनो मात्र है और मन झूठा है माया है तो उस कारण से जगत भी झूठा है, इसमें कोई सत्यता नहीं है। मन सत्य होता तो जगत भी सत्य होता। मन असत्य है, सुषुप्ति में नहीं रहता तो असत् हो गया तो जगत भी असत् हो गया और जो सत्य है वो तो सदा रहता है। हमारा तुम्हारा ज्ञान स्वरूप आत्मा है, स्वरूप है सो सत्य होने से सदा रहता है। आत्मा का नाश किसी ने अनुभव नहीं किया कि मैं नहीं रहता कभी, हमेशा रहता हूँ — जाग्रत में मैं हूँ जाग्रत को देखता हूँ, स्वप्न में मैं हूँ स्वप्न को देखता हूँ, सुषुप्ति में मैं हूँ सुषुप्ति को मैं देखता हूँ, समाधि में मैं हूँ और समाधि में अपने आप अकेले को देखता हूँ, मैं तो हमेशा ही रहा पर जाग्रत स्वप्न में नहीं रहता इसलिये असत् हो गया, स्वप्न सुषुप्ति में नहीं रहता तो सुषुप्ति में स्वप्न भी असत् हो गया, समाधि में सुषुप्ति नहीं रहती, अज्ञान नहीं रहता तो सुषुप्ति असत् हो गयी अब मैं ही सत् रूप आत्मा रह गया, तो मेरा तो जन्म मरण न हुआ। और सुख दु:ख ये

मन के ही धर्म थे, जब मन था तब ही ये सुखी दु:खी होता था अब मन नहीं तो मैं तो नित्य सुख स्वरूप, आनंद स्वरूप ही हूँ। मेरे धर्म तो सुख-दु:ख हैं नहीं, मेरा धर्म तो जन्म-मरण है नहीं, मेरा धर्म तो स्त्री-पुरुष पना है नहीं, निद्रा में ये मन ही सब स्त्री-पुरुष बन जाता है। निद्रा में कोई स्त्री-पुरुष रहते हैं क्या? कोई नहीं, क्योंकि मन ने रूप धारण किये थे ये सब, मन के ही धर्म थे सुख-दु:ख, सुषुप्ति में मन है नहीं, कोई दु:ख का काम भी नहीं। अनंत आनंद स्वरूप आत्मा हूँ मैं निद्रा में, मेरा स्वरूप ही आनंद है। ये विचार विवेक की दृष्टि से ये सब मन का ही खेल तमाशा है, नाना प्रकार के स्वाँग रचता है मन, नट है बहुरूप धारण करता है।

यथा अनेकन वेश धरि, नृत्य करै नट कोय
ज्यों ज्यों वेश बनावहिं, आप न होवे सोय।।

जैसे नट नाटक में अनेक वेश बना करके अभिनय करता है ऐसा ही ये मन अनेक वेश बना करके अभिनय कर रहा है। आत्मा द्रष्टा-साक्षी एकरूप है, मन से अलग है, द्रष्टा है दृश्य से द्रष्टा कभी मिलता ही नहीं तो दृश्य के गुण-दोष द्रष्टा में कभी आते नहीं, **'असंगो हि अयं पुरुष:'** ये चेतन पुरुष सदा दृश्य से असंग है, द्रष्टा दृश्य का संग कभी नहीं होता, भ्रम करके, अज्ञान करके संग किया था। ये भ्रान्ति थी तो ज्ञान से केवल इस भ्रान्ति की निवृत्ति हो गयी। गुरुजनों ने असंग को असंग बता दिया कि तुम चेतन आत्मा का इस जड़ संसार से कोई संग नहीं होता है। गुरु लोग तो केवल अज्ञान की निवृत्ति करते हैं ज्ञान देकर के, कुछ आत्मा या परमात्मा की, अमरता की प्राप्ति नहीं कराते, आत्मा तो स्वयं ही परमात्मारूप है, अमृतरूप है, सुखरूप है, ज्ञानरूप ही है, प्राप्ति क्या करना है? अज्ञान से अप्राप्य जैसा मालूम पड़ता था तो ज्ञान से अज्ञान ही का निवारण किया गया। फिर अपना स्वरूप, ये वृत्तिज्ञान है भला! वृत्तिज्ञान से अज्ञान निवृत्त होता है, ये भी सत्वगुण का कार्य है ज्ञान, फिर ज्ञान भी निवृत्त हो जाता है, अनंत अखण्ड ज्ञान स्वरूप जो हमारा शेष रहता है वही रह जाता है और ये बुद्धि वृत्ति में जो श्रवण करके ये आता है कि 'मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ' ये बुद्धि की वृत्ति है। इसी ज्ञान से अज्ञान निवृत्त हो जाता है कि 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता' ऐसा जो अज्ञान था ये भी बुद्धि में ही था, बुद्धि की वृत्ति में। इन महावाक्यों से, वेद वाक्यों से बुद्धि को ही ये ज्ञान हुआ कि नहीं, 'मैं सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा हूँ, स्त्री पुरुष आदि देह नहीं हूँ', ये ज्ञान हुआ। अखण्ड ज्ञान तो बुद्धि का साक्षी होता है, 'ज्ञान' अज्ञान का साक्षी होता है, 'ज्ञान' अज्ञान से परे होता है, **माया गुण ज्ञानातीत अमाना**' ऐसा होता है, स्वयं प्रकाश होता है। इसलिये बुद्धि और बुद्धि के ज्ञान का भी साक्षी होता है वो, फिर ये बुद्धि और बुद्धि का जो ज्ञान होता है वो भी अज्ञान को नाश करके ये स्वयं भी शान्त हो जाता है जैसे निर्मली बूटी जल को निर्मल बनाकर स्वयं भी शान्त हो जाती है। कोई औषधि शरीर में जाकर रोग को नाश करके फिर स्वयं भी शान्त हो जाती है, कोई विकार उत्पन्न नहीं करती। जैसे कोई तीव्र विष किसी ने खा लिया या सर्प ने काट लिया, विष चढ़ गया, उसको डॉक्टर एक दूसरे विष का Injection लगा देता है। खाये हुए विष को वो निवृत्त करके स्वयं भी बिना विकार उत्पन्न किये शान्त हो जाता है। विष के नाश करने के लिये विष दिया गया था, उसको नाश कर दिया पहले वाले विष को, स्वयं भी नाश हो गया, शरीर स्वस्थ्य होकर रह गया। तो जितने भी ये साधन हैं कर्म उपासना ज्ञान वगैरह वो मल विक्षेप आवरण को दूर करने के लिये हैं। मल विक्षेप आवरण भी अविद्या अज्ञान माया के हैं, कर्म उपासना ज्ञान भी कर्मेन्द्रिय से, मन से और बुद्धि से ही होंगे, ये साधन भी माया में ही हैं। सारे कर्म कर्मेन्द्रियों से होते हैं, उपासना भक्ति मन से होती है और ज्ञान बुद्धि से होता है। तो ये भी साधन मन के ही हैं। एक लोहे से दूसरे लोहे को काट देते हैं फिर दोनों का प्रयोजन पूरा हो गया, जैसे माया से ही माया को काट दिया फिर दोनों निवृत्त हो गये, मैं ही रह गया अकेला ब्रह्म एक, आत्मा ब्रह्म का एकत्व रह गया। **'कंटकेन कंटकोद्धारा'** एक बड़े काँटे से पैर में गड़े हुए अनेक छोटे काँटों को निकाल कर बड़ा काँटा भी फेंक दिया, ऐसा है। सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीन गुण हैं माया के । सत्वगुण से ज्ञान होता है **'सत्वात्संजायते ज्ञानं'**

और रजोगुण तमोगुण से अज्ञान होता है, तो सत्वगुण से रजोगुण तमोगुण के अज्ञान को काट दिये फिर सत्वगुण भी निवृत्त हो गया, गुणातीत हमारा तुम्हारा स्वरूप शेष रह गया।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्,
जन्ममृत्यजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।। BG – 14.20 ।।

ये सब दोष और दोष निवृत्ति के साधन ये सब माया में ही हैं, माया से माया को निवृत्त कर दिये फिर मैं आप अकेला रह गया। तो सज्जनों सभी श्रुति स्मृतियों का ये ही उपदेश है। संत महात्मा लोग यही उपदेश देते हैं जो भगवान कृष्ण ने दिया है, राम ने दिया है वो ही उपदेश संत महात्मा लोग सुनाते हैं जिससे कल्याण होता है। पक्षपात् से रहित ये उपदेश है, कोई भी सम्प्रदाय का हो, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र कोई वर्ण का हो, हिन्दु मुसलमान पारसी कोई भी हो सबके लिये ये आत्म ज्ञान, अपने स्वरूप का ज्ञान परम आवश्यक है। आत्म ज्ञान का विरोध किसी को नहीं है, अपने आप को जानने से मुक्त होता है और सभी जीव मुक्ति चाहते हैं इसलिये इस आत्म ज्ञान का विरोधी कोई मत पंथ वाला नहीं है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 59 a - May 30

५

पंच भ्रम

* अन्नपूर्णोपनिषद *

अशरण शरण अकारण करुण करुणावरुणालय, कर्तु अकर्तु अन्यथाकर्तु समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंतकोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम् परमब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार सर्वाधिष्ठान् भगवान के ज्ञान से जीव सर्वदु:खों से और मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है अर्थात् उसे कभी किसी प्रकार का दु:ख नहीं आता, नित्य सुख-शान्ति को प्राप्त कर लेता है और मृत्यु नहीं आती अमृतत्त्व को प्राप्त कर लेता है। इसलिये जीव को अपने परम कल्याण के लिये, सर्व दु:खों और मृत्यु से भी छूटने के लिये भगवान का ज्ञान परम आवश्यक है। भगवान के ज्ञान का साधन भगवान की वाणी वेद है और वेद का अर्थ बताने वाले गुरु हैं क्योंकि वेद अपने आप तो बोलता नहीं, गुरु ही वेद मंत्र सुनाते हैं और उन मंत्रों का अर्थ बताते हैं। तब जीव परम ब्रह्म परमात्मा को जान करके मुक्त हो जाता है, जन्म मरण से सदा के लिये छूट जाता है।

सज्जनों! अन्नपूर्णोपनिषद में लिखा है पॉच प्रकार के भ्रम होते हैं। इन पॉचों प्रकार के भ्रमों से निवृत्ति के लिये उपाय बताये गये है तब ब्रह्म की प्राप्ति होती है। वो पॉच प्रकार के भ्रम ये हैं:—

भ्रम: पंचविधोभाति तदेवेह समुच्यते,
जीवेश्वरौ भिन्नरूपाविति प्राथमिको भ्रम:,
आत्मनिष्ठं कर्तृगुण वास्तवं वा द्वितीयक:,
शरीरत्रयसंयुक्तजीव: संगी तृतीयक:,
जगत्कारणरूपस्य विकारित्वं चतुर्थक:,
कारणाद्भिन्नजगत: सत्यत्वं पंचमो भ्रम:।।

ये पॉच प्रकार के भ्रम बताये। **जीव-ईश्वर का भेद**—ये पहला भ्रम है, **आत्मा कर्ता-भोक्ता है**—ये दूसरा भ्रम है, **आत्मा और शरीर का संग हो गया है**—ये तीसरा भ्रम है, **ये जगत जगत-कारण परमात्मा का विकार है**—ये चौथा भ्रम है और **जगत कारण परमात्मा से जगत भिन्न है और सत्य है**—ये पॉचवॉ भ्रम है। इन पॉचों भ्रमों की निवृत्ति के लिये इसी उपनिषद में आगे पॉच दृष्टान्त बताये हैं।

बिम्बप्रतिबिम्बदर्शनेन भेदभ्रमो निवृत्त:। १।
स्फटिकलोहितदर्शनेन पारमार्थिक कर्तृत्वभ्रमो निवृत्त:। २।
घटामठाकाशदर्शनेन संगीति भ्रमो निवृत्त:। ३।
रज्जुसर्पदर्शनेन विकारित्वभ्रमो निवृत्त:। ४।
कनकरुचकदर्शनेन कारणाद्भिन्नजगत: सत्यत्वभ्रमो निवृत्त:। ५।

१. जीव-ईश्वर का भेद :— इस पॉच दृष्टान्तों से पॉचों भ्रमों की निवृत्ति हो जाती है।

बिम्ब प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त से जीव-ईश्वर के भेद भ्रान्ति की निवृत्ति होती है,

बिम्बत्वं प्रतिबिम्बत्वं यथा पूषणि कल्पितं,
जीवत्वं ईश्वरत्वं च तथा ब्रह्मणि कल्पितं।।

जैसे सूर्य में बिम्ब और प्रतिबिम्ब कल्पित हैं वैसे ही ब्रह्म में जीव और ईश्वर का भेद भी कल्पित है। जीव और ईश्वर ब्रह्म के प्रतिबिम्ब हैं तो ब्रह्म बिम्ब हो गया, अपेक्षाकृत् ये दोनों नाम हैं। प्रतिबिम्ब की अपेक्षा से बिम्ब और बिम्ब की अपेक्षा से प्रतिबिम्ब, दोनों ही सज्जनों कल्पित हैं ये दोनो नाम। जैसे पत्नि की अपेक्षा से पुरुष का नाम पति पड़ जाता है और पुत्र की अपेक्षा से पिता नाम पड़ जाता है तो ये पति और पिता अपेक्षाकृत नाम हैं सज्जनों वास्तविक तो पहले से पुरुष ही है। पत्नि ने ये पति नाम रखा है पुरुष का, पुरुष तो है ही पहले से और जो पुत्र हुआ तो पुत्र ने ही पिता नाम रख दिया, पुरुष तो ज्यों का त्यों है वो तो कुछ बदला नहीं सज्जनों! पत्नि को छोड़ दिया तो जो पत्नि ने नाम रखा था पति वो भी चला गया साथ में, पुत्र को छोड़ दिया तो पुत्र ने ही पिता नाम रखा था तो पिता नाम भी चला गया और पुरुष तो वो पहले ही से है, पुरुष तो बदला नहीं। पत्नि पुत्र के साथ भी रहता है तो अपने पुरुष रूप को तो छोड़ता नहीं सज्जनों! पत्नि के साथ में रहने से वो पत्नि तो नहीं बन जाता, पुरुष ही रहता है, तो ये कल्पित नाम हैं पति और पिता।

पहले जन्म पुत्र को भयो बाप जनमिया पाछे,
कहैं कबीर सुनो भई संतो ये अचरज को आखे।।

पहले जन्म पुत्र का होता है और पिता का जन्म बाद में होता है, इसका ये मतलब है कि पुरुष तो पहले से है तो जब पुत्र पहले होगा तो वो ही तो पिता नाम रखेगा न पुरुष का, इसलिये पुत्र जब पैदा भया तो उसने 'पिता' ये नाम रखा अतः पिता नाम का जन्म पुत्र जन्म के पीछे हुआ न! पहले पत्नि आयेगी तब बाद में पति नाम पड़ेगा पुरुष का क्योंकि पत्नि ही पति नाम रखेगी। इसी प्रकार से सज्जनों! उसी पुरुष को जब शिष्य हुआ तो शिष्य ने गुरु नाम रख दिया, पुरुष तो ज्यों का त्यों है और शिष्य न रहा तो गुरु कौन कहे अब? शिष्य ने ही गुरु नाम रखा था, इसी प्रकार से प्रजा की अपेक्षा से उसी पुरुष का राजा नाम रखा, पुरुष ज्यों का त्यों है सज्जनों! प्रजा ने राजा नाम रखा था और प्रजा ने छोड़ दिया तब? पुरुष का पुरुष है सज्जनों! तो पुरुष क्या आदि में, क्या अंत में और क्या मध्य में ज्यों का त्यों ही रहता है बदलता नहीं है पुरुष। इसी प्रकार से हमारा तुम्हारा स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है, सच्चिदानंद आत्मा है। जीव हुआ, ईश्वर हुआ, तो इन्होंने ही हमारा नाम ब्रह्म रख दिया और जीव-ईश्वर ये प्रतिबिम्ब चले गये (प्रतिबिम्ब ही थे दोनों) तो ब्रह्म तो ज्यों का त्यों है सज्जनों! तो बिम्ब और प्रतिबिम्ब जैसे सूर्य में कल्पित हैं वैसे ही जीव और ईश्वर भी प्रतिबिम्ब होने से सूर्यरूप परमात्मा में, ब्रह्म में कल्पित हैं सज्जनों! इसलिये जीव और ईश्वर दोनों का वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है क्योंकि ये दोनों प्रतिबिम्ब हैं न! प्रतिबिम्ब का सच्चा स्वरूप तो बिम्ब ही हुआ करता है सज्जनों! इस प्रकार से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त से ईश्वर-जीव का भेद मिटा देना चाहिये। **'अभेद दर्शनं ज्ञानं'** इस अभेद दर्शन को ही वास्तविक ज्ञान कहते हैं।

२. आत्मा कर्ता-भोक्ता है :— मैं कर्ता-भोक्ता हूँ माने हम तुम आत्मा हैं भला! आत्मा नाम अपने स्वरूप का है और 'हम कर्ता-भोक्ता हैं' ये भ्रान्ति है जीव को सज्जनों! तो इसकी निवृत्ति के लिये —

'स्फटिकलोहितदर्शनेन पारमार्थिक कर्तृत्वभ्रमो निवृत्तः'

कोई स्फटिक मणि है, प्रकाशमान् उज्ज्वल कोई मणि है (लोहित् कहते हैं लाल रंग को) और कोई लाल रंग का फूल रखा है स्फटिक मणि के पास में भला, तो उस लाल फूल की जो लालिमा है, प्रतिबिम्ब है वो स्फटिक मणि में पड़ता है तो दूर से देखने में ऐसा लगता है कि

मणि लाल है। मणि तो उज्ज्वल है, पास में रखा जो फूल है उसकी लालिमा स्फटिक मणि में प्रतिबिम्बित हो रही है इसलिये दूर से देखने में मणि लाल मालूम पड़ती है। अब कोई पास में जाय और फूल को हटा दे मणि के पास से तो मालूम पड़ जाता है कि मणि तो सफ़ेद है, उज्ज्वल है, प्रकाशमान् है, ये तो फूल की लालिमा थी, प्रतिबिम्ब था जो पड़ रहा था स्फटिक मणि में। अन्वय-व्यतिरेक से बार बार परख कर देख लेवे, फिर उस फूल को मणि के पास में रखे तो फिर लाल दिखाई पड़ती है और फिर उस फूल को हटा दे मणि के पास से तो उज्ज्वल दिखाई पड़ती है तो इससे पक्का ज्ञान हो जाता है कि स्फटिक मणि उज्ज्वल ही है, प्रकाशरूप ही है, ये लाल फूल का केवल प्रतिबिम्ब था ये पक्का हो गया सज्जनों! इसी प्रकार से ये हमारा देह है इसके भीतर इन्द्रियाँ हैं, मन है, बुद्धि है, प्राण है हमारा आत्मा इसके पास में है, हमारी आत्मा के पास ही हमारे देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण हैं सज्जनों! तो ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों का प्रतिबिम्ब, आभास हमारी आत्मा में पड़ता है तो ऐसा लगता है कि मैं शरीर हूँ, मैं इन्द्रियाँ हूँ, मैं मन हूँ, मैं बुद्धि हूँ, मैं स्त्री हूँ। मैं पुरुष हूँ सज्जनों! मैं जीवात्मा हूँ पर देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के धर्म आत्मा में मालूम पड़ते हैं और ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि जब हटादो (निद्रा में ये हट जाते हैं सज्जनों! जब हम गाढ़ नींद में सो जाते हैं न सुषुप्ति अवस्था में और समाधि में तब ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि उसी में लय हो जाते हैं सुषुप्ति में) माने ये जब नहीं हैं तब आत्मा में कर्तृत्त्व भोक्तृत्त्व कुछ नहीं रहता क्योंकि कर्म इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में होते हैं माने ये अन्वय-व्यतिरेक है कि जागने पर ये इन्द्रिय मन बुद्धि पास में फिर आ गये तो इन्हीं का प्रतिबिम्ब आत्मा में मालूम पड़ता है तो ये लगता है कि मैं ही कर्ता हूँ, अच्छे बुरे कर्म मैं कर रहा हूँ और जब ये हट जाते हैं निद्रा में तो मुझमें कोई कर्म नहीं मालूम पड़ते हैं सज्जनों! इस अन्वय-व्यतिरेक से समझ लेना चाहिये कि मुझ आत्मा में कोई कर्म नहीं हैं, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के धर्म आत्मा में प्रतिबिम्बित होते हैं इससे ऐसा लगता है कि मैं देह हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ परन्तु मैं देह स्त्री पुरुष नहीं हूँ क्योंकि स्त्री पुरुषपना तो देह में रहता है, इन्द्रिय मन बुद्धि में भी स्त्री पुरुष नहीं है, स्थूल शरीर में ही है स्त्री पुरुषपना, बाह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रपना, गाय बैल बकरीपना, सूक्ष्म शरीर में ये नहीं है। सूक्ष्म शरीर में कर्मेन्द्रिय हैं ज्ञानेन्द्रिय हैं तो उनके धर्म आत्मा में मालूम पड़ते हैं और जब वो नहीं रहते निद्रा में तो आत्मा शुद्ध ही है। तो इस प्रकार से सज्जनों लाल फूल के दृष्टान्त से आत्मा अकर्ता अभोक्ता है, देह इन्द्रिय मन बुद्धि के धर्म **'साभासबुद्धेः कर्तृत्वम्'** साभास बुद्धि में ही कर्तृत्त्व है आत्मा में नहीं है। आत्मा कर्मों का साक्षी है, द्रष्टा है **'साक्षिचेता केवलो निर्गुणोऽस्यः',** स्फटिक मणि के समान प्रकाशमान् है, प्रकाशरूप है आत्मा। इस प्रकार से सज्जनों मैं कर्ता-भोक्ता हूँ, मैं स्त्री-पुरुष हूँ, अच्छे-बुरे कर्मों का करने वाला हूँ—इस भ्रान्ति को निवृत्त कर देना चाहिये। जितना कर्ता भोक्तापना है देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में है साभास बुद्धि में, मुझ आत्मा में नहीं मैं असंग हूँ। इनमें सबमें रहता हूँ पर इनको छूता ही नहीं हूँ, अलग हूँ इनसे द्रष्टा साक्षी हूँ। इस प्रकार से लाल फूल के दृष्टान्त से 'आत्मा कर्ता-भोक्ता है' इस भ्रम की निवृत्ति हो गयी सजजनों!

३. आत्मा और शरीर का संग हो गया है :—

आत्मा का इन तीनों शरीरों से (स्थूल सूक्ष्म कारण ये तीन शरीर हैं हमारी तुम्हारी आत्मा के) संग होता ही नहीं है, ये भ्रान्ति है।

'घटामठाकाशदर्शनेन संगीति भ्रमो निवृत्तः'

जैसे आकाश घट के भीतर भी है और मठ के भीतर भी है और घट-मठ के बाहर भी आकाश है। परन्तु आकाश का संग न घट से होता है न मठ से होता है। घट के भीतर जो पोलाई है न उसको घटाकाश कहते हैं और मठ के भीतर जो पोलाई है उसको मठाकाश कहते हैं सज्जनों! घट मठ से सम्बन्ध आकाश का होता नहीं है, वो अलग रहता है। घट के भीतर रहने से

घटाकाश और मठ के भीतर रहने से मठाकाश और बाहर परिपूर्ण होने से घट मठ के बाहर भी आकाश ही है, ये जो पोलाई है ये ही आकाश है, ये ही आकाश मठ के भीतर है और घट के भीतर भी है। हमारी नासिका के भीतर पोलाई है इसको नासिकाकाश कहेंगे, मुख के भीतर पोलाई है मुखाकाश कहेंगे, पेट के भीतर भी पोलाई है उसे उदर का आकाश कहेंगे, पोलाई का नाम आकाश है। यदि पोलाई नहीं होगी तो जो हम खाते पीते हैं वो कहॉ टिकेगा, कहॉ रहेगा? मठ में जो पोलाई नहीं होगी तो हम लोग रहेंगे कहॉ? ठोस होगा तो कहॉ रहेंगे? इसलिये जो सबको अवकाश देता है माने रहने की जगह देता है उसका नाम आकाश है। **'अवकाशं ददाति इति आकाशः'** ये आकाश सबको रहने के लिये जगह देता है इसलिये इसका नाम आकाश है। आकाश से वायु उत्पन्न होता है, आकाश में रहता है, आकाश में ही चलता है। सज्जनों! आकाश में ही अग्नि उत्पन्न होती है, आकाश में जलती है, आकाश में रहती है। आकाश में वर्षा होती है, आकाश में ही मेघ आते हैं रहते हैं वर्षा करते हैं। आकाश में ही ये पृथ्वी रहती है और पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले घट मठ, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र ये सब आकाश में ही रहते हैं। सज्जनों! आकाश में सब चलते फिरते हैं क्योंकि ये पोलाई है इसी में तो चलेंगे ठोस जगह में कैसे चलेंगे? इसलिये आकाश सबको अवकाश माने रहने की जगह देता है परन्तु सबसे असंग रहता है किसी को छूता नहीं है अलग रहता है। 'आकाशवत् सर्वगतश्च'—हमारा तुम्हारा आत्मा आकाश के समान स्थूल देह, सूक्ष्म देह, कारण देह और मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र सबमें रहता है, व्यापक है आकाश के समान और हमारा तुम्हारा आत्मा आकाश से भी अति सूक्ष्म है और आकाश से भी महान है आत्मा —

'अणोरणीयान्महतो महीयान्मात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्'

आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म है, हमारा तुम्हारा स्वरूप कितना सूक्ष्म है? एक तो आकाश सूक्ष्म है सबमें व्यापक है न! पर हमारा तुम्हारा आत्मा आकाश से भी सूक्ष्म है, **'चिदाकाशमाकाश वासंभजेहं'** हमारा तुम्हारा आत्मा चेतनरूपी आकाश है और ये जो आकाश बाहर दिखाई पड़ता है ये चेतन नहीं है, ये जड़ है इसको हम देखते हैं ये हमको नहीं देखता इसलिये हमारा तुम्हारा चेतनरूपी आकाश है और इस आकाश के भीतर भी व्यापक है, अब कितना सूक्ष्म है आत्मा? एक तो आकाश सूक्ष्म सबमें व्यापक और आकाश में भी व्यापक आत्मा तो इसका संग कैसे किसी का हो सकेगा सज्जनों? पहले तो आकाश सबमें रहता है असंग रहता है, आत्मा तो आकाश से भी अति सूक्ष्म है। **'महतो महीयान्'** संसार में आकाश सबसे बड़ा है और सबसे पहले उत्पन्न हुआ है आकाश परन्तु आत्मा तो आकाश से भी बड़ा है क्योंकि आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ है तो कितना बड़ा है आकाश से और आकाश से भी अति सूक्ष्म है और आकाश की तो आत्मा से उत्पत्ति है पर आत्मा की तो उत्पत्ति ही नहीं भयी है। **'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः'** परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ है पर आत्मा तो उत्पन्न ही नहीं हुआ। आत्मा अजर अमर अविनाशी है, सत्य है और आकाश उत्पन्न हुआ है इसलिये आत्मा में फिर लीन हो जायेगा, आत्मा आकाश से भी बड़ा है **'महतो महीयान्'** इसलिये आत्मा सबमें रहता है पर **'असंगोऽयं पुरुषः'** सबसे असंग है आकाश के समान। तो हमारा तुम्हारा किसी से संग नहीं होता, स्त्री में रहते हैं पर स्त्री नहीं बन जाते जब संग ही नहीं होगा तो कैसे स्त्री पुरुष बन जायेंगे? गाय भैंस बकरी में रहते हैं, उनकी ऑखों से हम ही देखते हैं परन्तु गाय भैंस बकरी नहीं हो सकते क्योंकि असंग हैं न आकाश के समान। पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत में रहते हैं सबको देखते हैं पर पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत नहीं बन जायेंगे, असंग ही रहेंगे इसलिये सज्जनों इन शरीरों में हम रहते हैं पर शरीरों से असंग हैं इसलिये स्त्री पुरुष में रह कर भी हम स्त्री पुरुष नहीं बन सकते। **'न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः'** आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुन्सक है किन्तु सबके भीतर है, सबको देखता है पर असंग है, अखण्ड है और एक है, देखने वाला एक ही है सब शरीरों में इसीलिये संसार के जितने भी लोग हैं स्त्री-पुरुष मनुष्य हिन्दु-मुसलमान सब यही कहते हैं **'अहं पश्यामि'**

मैं देखता हूँ, तो देखने वाला जो 'मैं' तत्त्व है ये आत्मा ही है, ये देखने वाला मैं एक है, इसी को ब्रह्म कहते हैं।

व्यापक ब्रह्म एक अविनाशी,
सत् चेतन घन आनंद राशी।।

ये ब्रह्म आत्मा व्यापक एक है, सच्चिदानंद हमारा तुम्हारा स्वरूप है।

रहता सभी के संग पर, करता न किंचित संग है
है रंग पक्के में रंगा, चढ़ता न कच्चा रंग है ।।

सबके संग हम रहते हैं पर किसी से मिलते नहीं असंग ही रहते हैं। आत्मा का रंग सच्चिदानंद है, ये संसार माया का रंग है स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र, तोता-मैना, मयूर-मोर ये सब माया के रंग हैं सज्जनों! लाल पीले हरे बैंगनी, हर रंग में हम रहते हैं पर आकाश के समान असंग ही रहते हैं। हर नाम-रूप में रहते हैं पर नाम-रूप से अलग, नाम-रूप के द्रष्टा साक्षी हैं। तो इस प्रकार से आकाश के दृष्टान्त से अपने को असंग जानो। सब शरीरों में रहते हैं पर असंग हैं।

४. ये जगत, जगत-कारण परमात्मा का विकार है :—

'रज्जुसर्पदर्शनेन विकारित्वभ्रमो निवृत्तः'

रज्जु और सर्प के दृष्टान्त से विकार भ्रान्ति की निवृत्ति करना चाहिये। ये संसार ब्रह्म का विवर्त और माया का परिणाम है सज्जनों! परिणाम कहते हैं विकार को जैसे 'दुग्धस्य दही' जैसे दूध का दही बनता है न! उसको परिणाम कहते हैं, विकारी हो गया दूध, दूध तो मीठा है और पतला है पर जब दूध का दही बनेगा तो वो खट्टा और गाढ़ा हो जायेगा माने अपने रूप को छोड़ देगा दूध और दही के रूप में बन गया, अब वो पुनः दूध नहीं बन सकता, विकारी हो गया। जो विकारी चीज़ होती है वो नाशवान् होती है। ऐसे ही ये संसार परमात्मा का, ब्रह्म का परिणाम नहीं है माने विकार नहीं है, यदि ब्रह्म दूध के दही के नाईं संसार बन जायेगा तो विकारी हो जायेगा, तो ब्रह्म का विनाश हो जायेगा तो श्रुति से विरोध होगा सज्जनों! श्रुति कहती है ब्रह्म निर्विकार है इसलिये ये ब्रह्म का विवर्त है। विवर्त का अर्थ होता है **'स्वस्वरूप अपरित्यागेन अन्यथा वर्तनम् विवर्तः'** यथा रज्जु सर्प, अपने स्वरूप को न त्याग करके दूसरे रूप में दिखाई पड़े उसको विवर्त कहते हैं जैसे रज्जु अपने स्वरूप को नहीं त्यागती परन्तु मन्द अंधकार के कारण वो सर्प रूप में दिखाई पड़ती है इसलिये रज्जु-सर्प का दृष्टान्त दिया है कि रज्जु अपने स्वरूप में ज्यों की त्यों रहती है और अज्ञान के कारण, रज्जु को न जानने के कारण ये रज्जु ही साँप रूप में दिखाई पड़ती है, इसको विवर्त कहते हैं। **'स्वस्वरूप अपरित्यागेन'** अपने स्वरूप को रज्जु ने नहीं छोड़ा और **'अन्यथा वर्तनम्'** सर्प के रूप में दिखाई पड़ रही है तो ये अज्ञान का परिणाम है सर्प, रज्जु का विवर्त है। जब अज्ञान ज्ञान से नष्ट हो जायेगा तो रज्जु ही रज्जु रह जायेगी क्योंकि रज्जु तो कुछ बनी नहीं है। और **'स्वस्वरूप परित्यागेन अन्यथा वर्तनम् परिणामः'** अपने स्वरूप को त्याग करके दूसरे रूप में परिणित हो जाना उसको सज्जनों परिणाम कहते हैं यथा दुग्धस्य दही, दूध अपने स्वरूप को त्याग करके दूसरे दही के रूप में परिणित हो गया ये विकार हो गया। तो ये संसार परमात्मा ब्रह्म का विवर्त है विकार नहीं है, विकारी होगा तो ब्रह्म विनाशी हो जायेगा। अतः रज्जु-सर्प के दृष्टान्त से सज्जनों विकार भ्रान्ति की निवृत्ति कर लेनी चाहिये।

५. जगत-कारण परमात्मा से जगत भिन्न है और सत्य है :—

'कनकरुचकदर्शनेन कारणाद्भिन्नजगतः सत्यत्वभ्रमो निवृत्तः'

'जगत-कारण परमात्मा से जगत भिन्न है और सत्य है'। इसकी निवृत्ति सुवर्ण और आभूषणों के दृष्टान्त से कर लेना चाहिये। सुवर्ण से आभूषण बनते हैं भला! मुकुट कुण्डल कंठा कांछी कंगन अंगूठी ये आभूषण हैं तो सोने से बनते हैं, सोने में ही रहते हैं सोने से अलग नहीं हो सकते फिर सोने में लय हो जाते हैं, गला दिये जायेंगे फिर सोना ही सोना हो जायेगा इसलिये सोने से कोई आभूषण अलग नहीं है। एक क्षण के लिये भी सोना छोड़ कर अलग नहीं रह सकता है आभूषण इसी प्रकार से सोनारूप परमात्मा है और आभूषणरूप ये संसार है — स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र ये आभूषणरूप हैं और सुवर्णरूप भगवान हैं तो भगवान से भिन्न हो करके ये संसार नहीं रह सकता। सोने से आभूषण उत्पन्न होते हैं, सोने में ही रहते हैं फिर सोने में लय हो जाते हैं। इसी प्रकार भगवान से ये संसार उत्पन्न होता है, भगवान में ही रहता है फिर भगवान में लय हो जायेगा, फिर एक भगवान रह जायेगा। तो सुवर्ण और आभूषणों के दृष्टान्त से 'जगत कारण परमात्मा से जगत भिन्न है और सत्य है' इस भ्रान्ति की निवृत्ति कर देनी चाहिये। न तो सुवर्ण से आभूषण भिन्न हैं और न सत्य हैं किन्तु सुवर्ण रूप हैं, इसी प्रकार से भगवान से ये संसार न तो भिन्न है और न सत्य है। जो उत्पन्न होता है उसका नाश होता है और जिससे उत्पन्न होता है उसी में नाश होता है। सुवर्ण से आभूषण उत्पन्न होते हैं सुवर्ण में ही इनका नाश होता है। जगत भगवान से उत्पन्न होता है और भगवान में ही लय होता है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्ब्रह्मेति।

जिससे जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है फिर जिसमें लय हो जाता है वो ब्रह्म है, फिर एक ब्रह्म ही रह गया।। इति।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 07 - 02.09.06

६

छः अनादि एवं सामान्य और विशेष ज्ञान

कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा हे प्रभो! मेरे परम् कल्याण का आप उपाय बतावें, मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो :—

छः अनादि

जो सच्चिदानंद ब्रह्म है 'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म' वो ही ईश्वर और जीव का भी स्वरूप है, मुझ ईश्वर का कृष्ण का और तुझ जीव का अर्जुन का, क्योंकि कृष्ण ईश्वर के अवतार हैं और अर्जुन जीव का अवतार है, ये नर-नारायण के दोनों अवतार हैं। तो भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब ये सब कोई नहीं थे तब एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही था और उस अनादि अनंत शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म में एक अनादि कल्पित प्रकृति हुई, वो भी अनादि है पर कल्पित है सत्य नहीं है कैसे? जैसे रज्जु में सर्प नहीं है, आकाश में नीलिमा नहीं है, स्वप्न द्रष्टा में जैसे स्वप्न सत्य नहीं है, ऐसे ही वो अनादि कल्पित है स्वप्न की तरह। अनादि कल्पित का मतलब क्या होता है? कल्पित भेद सहित वास्तविक अभेद, उसका कल्पित भेद है और वास्तविक ब्रह्म से भिन्न नहीं है, जैसे स्वप्न का और स्वप्न द्रष्टा का, ये कल्पित भेद हुआ। स्वप्न दिखाई पड़ता है और स्वप्न द्रष्टा स्वप्न को देखता है, ये दो चीज़ें हो गयीं एक द्रष्टा एक दृश्य, पर वो जो दृश्य है 'स्वप्न' वो स्वप्न द्रष्टा में कल्पित है, वो सत्य नहीं है। कल्पित का क्या मतलब हुआ? कहा- कल्पित भेद सहित वास्तविक अभेद का नाम कल्पित भेद है। कल्पित तो भेद है और वास्तविक स्वप्न द्रष्टा के साथ में स्वप्न का अभेद है क्योंकि स्वप्नकाल में स्वप्न दिखाई पड़ा और जब जागे तो कल्पित स्वप्न कहाँ गया? स्वप्न द्रष्टा में ही समा गया। कल्पित भेद था वास्तव में तो स्वप्न था ही नहीं, कल्पित चीज़ होती नहीं दिखाई पड़ती है तो स्वप्न द्रष्टा अवशेष रहा। तो कल्पित भेद स्वप्न का और स्वप्न द्रष्टा का और वास्तविक अभेद, ये कल्पित भेद का मतलब होता है। जैसे रज्जु और सर्प का कल्पित भेद है और वास्तविक अभेद है, जब रज्जु का ज्ञान होता है तो वो जो कल्पित सर्प था वो रज्जुरूप ही दिखाई पड़ता है तो वास्तव में उस सर्प का रज्जु के साथ में वास्तविक अभेद रहा, वास्तव में तो रज्जु ही रूप है, उसका सर्पपना? बोले वो तो कल्पित है, अज्ञान जनित है। तो कल्पित का अर्थ यही होता है कि कल्पित का अपने अधिष्ठान के साथ में वास्तविक अभेद हुआ करता है। तो हे अर्जुन! समझ उस अनादि अनंत ब्रह्म में, सच्चिदानंदघन में जो हमारा तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है ये अनादि कल्पित माया हुई और फिर इस माया ने तीन रूप धारण किये, सज्जनों इसे **'अध्यारोप और अपवाद'** की प्रक्रिया कहते हैं। ब्रह्म निष्प्रपंच है उसमें कुछ है नहीं, ये जो कल्पित चीज़ों का अध्यारोप किया जाता है, झूठी चीज़ उसमें आरोपित की जाती है किसलिये? कहा उसी सत्य ब्रह्म को बताने के लिये, जल्दी जिसमें सरलता से समझ में आ जाय, ब्रह्म का ज्ञान सरलता से हो जाय इसलिये ब्रह्म में अध्यारोप करते हैं और फिर अपवाद करते हैं माने फिर उसी में मिला देते हैं, जैसे ये हुआ है वैसे ही उसमें मिला देंगे। कल्पित भेद दिखा दिया और कल्पित

भेद फिर उसी में लय हो गया, किसमें? सत्य में, उससे अभिन्न हो गया। इसको अध्यारोप कहते हैं, कुछ बनाना **'अध्यारोप'** और फिर मिटा देना **'अपवाद'**। इस प्रक्रिया से ब्रह्म ज्ञान सरलता से होता है। तो हे अर्जुन! वो जो अनादि कल्पित प्रकृति है उसने अपने तीन रूप धारण किये, तीन गुण वाली है वो प्रकृति — सत्व, रज, तम। तो सत्व गुण की प्रधानता से उसने **'विद्या'** रूप धारण किया, मलिन सत्व गुण की प्रधानता से **'अविद्या'** रूप धारण किया और तमो गुण की प्रधानता से **'प्रकृति'** का रूप धारण किया, तीन रूप हो गये। अब जो सत्व गुण प्रधान प्रकृति है उसमें वही अनादि अनंत जो शुद्ध ब्रह्म है जिसमें ये सब कल्पना की जा रही है उसी शुद्ध ब्रह्म का विद्या-अविद्या रूप माया में आभास पड़ गया तो जो विद्या में आभास पड़ा उसका नाम ईश्वर हुआ वो सर्वज्ञ हुआ, सर्वशक्तिमान हुआ और जो अविद्या में आभास पड़ा वो अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान हुआ, कर्ता-भोक्ता हुआ। सर्वज्ञ होने से ईश्वर नित्य मुक्त है, उसको अपने अधिष्ठान स्वरूप का ज्ञान है और इन अध्यासों का, कल्पित चीज़ों का ज्ञान है और जीव की उपाधि अविद्या है वो मलिन सत्व गुण प्रधान है इसलिये इसको ज्ञान नहीं है। ईश्वर सर्वज्ञ है, नित्य मुक्त है, ईश्वर ही शुद्ध विद्यारूप माया द्वारा जगत की उत्पत्ति, पालन, संहार करता है और जो तमोगुण प्रधान प्रकृति है वो भी इसी ईश्वर की उपाधि बनती है। तो सत्वगुण प्रधान प्रकृति से अनंत जीव अपने कर्म संस्कारों के सहित उस अविद्या में लीन रहते हैं और फिर वो जब कर्म फल देने को परिपक्व होते हैं तब ईश्वर को ऐसी इच्छा होती है कि मैं सृष्टि करूँ और फिर उसने नाना प्रकार की सृष्टि रच दिया उन जीवों के कर्म फल भोगने के लिये स्थूल शरीर की रचना कर दिया, इस प्रकार से वो सर्वज्ञ ईश्वर जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का कर्ता बन गया। उत्पत्ति भी करता है उनके फल भोगने के वास्ते और जब उनका फल भोग हो जाता है तो अब वो कर्म संस्कार जो प्रारब्ध थे वो उपराम भये, खत्म हो गये, फिर प्रलय कर देता है। तो कर्मानुसार, प्रारब्ध के अनुसार जो इनका भोग है यही ईश्वर का संसार का पालन करना है। अब उनके कर्मानुसार जब कर्मों का भोग खत्म हो गया तो संहार करना है, अपनी इच्छा से अपने लिये कुछ नहीं, बस जीवों के कर्म फलों के लिये, उनका भोग खत्म करने के लिये — ये ईश्वर की लीला भयी। तो उस अनादि अनंत ब्रह्म के साथ में अनादि कल्पित इस माया का सम्बन्ध भी अनादि कल्पित है और ये जो जीव और ईश्वर हो गये ये भी अनादि कल्पित हैं। जीव तो अल्पज्ञ रहा और ईश्वर सर्वज्ञ रहा। ईश्वर सर्वशक्तिमान जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार कर्ता व नित्य मुक्त है और जीव अविद्या के कारण कर्ता-भोक्ता बनता, सुखी-दुःखी होता, इसको बन्धन हुआ। ये सब अनादि कल्पित उसमें भेद है तो ये जीव ईश्वर का भेद भी अनादि है। छः अनादि हो गये—एक तो शुद्ध ब्रह्म, एक ये प्रकृति और प्रकृति का अनादि कल्पित भेद भी, तीन हो गये और ईश्वर, जीव और ईश्वर-जीव का सर्वज्ञता-अल्पज्ञता का ये भेद भी—ये छः अनादि हो गये। इसको अध्यारोप कहते हैं। अब ये सब जीव हो गये, अब ये पूरा संसार बन गया जीवों के कर्म फल भोगने के लिये। अब अपवाद कहते हैं। जब जीवों के कर्मभोग खत्म हो जाते हैं तब ये संसार की प्रलय होती है व सब उसी अविद्या में मिल जाते हैं तो ये जीव और जीवों के कर्म नहीं रहते और जब इस जीव को ईश्वर की कृपा से ब्रह्मज्ञान हो जाता है तब फिर वो प्रलय में उस अविद्या में लीन नहीं होता बल्कि फिर वो ब्रह्म में मिलता है ब्रह्मज्ञान से, क्योंकि जीव का शुद्ध स्वरूप तो ब्रह्म ही है, ईश्वर का शुद्ध स्वरूप तो ब्रह्म ही है, क्योंकि ब्रह्म इन सबमें समाया है ईश्वर में भी जीव में भी। अधिष्ठान ब्रह्म के सहित ही वो अविद्या और विद्या है और प्रतिबिम्ब भी है तो ब्रह्म तो साथ ही है। तो जब ईश्वर कृपा से जीव को ऐसा ज्ञान होता है कि मैं सच्चिदानंदघन ब्रह्म ही हूँ ये तो माया-अविद्या उपाधि से जीव और ईश्वरपना है और वो माया-अविद्या दोनों कल्पित हैं। इसलिये जीव-ईश्वरपने का जो भेद है ये भी कल्पित है तो हमारा जीवों का और ईश्वर का जो शुद्ध स्वरूप है वो तो ब्रह्म ही है, कल्पित तो ब्रह्म में निवृत्त हो जायेगा वो सत्य नहीं है, कल्पित भेद वास्तविक अभेद है सत्य ब्रह्म के साथ में। जब ऐसा बोध होता है तो सज्जनों वो अनादि कल्पित जो प्रकृति थी उसकी निवृत्ति हो गयी। माया कहो,

अज्ञान कहो, अविद्या कहो उसकी निवृत्ति हो गयी ब्रह्म ज्ञान से, किसमें निवृत्ति भई? कहा जिसमें कल्पित थी। माया, अज्ञान, अविद्या, प्रकृति ब्रह्म में कल्पित थी उसकी निवृत्ति ब्रह्म में हो गयी, सत्य ब्रह्म रह गया। जब ये अज्ञान, अविद्या की निवृत्ति हो गयी तो प्रकृति का, माया का और ब्रह्म का जो कल्पित सम्बन्ध था वो भी निवृत्त हो गया और फिर उस माया अविद्या की निवृत्ति से उनमें जो जीवपना ईश्वरपना था उनकी भी निवृत्ति हो गयी उसी अधिष्ठान ब्रह्म में, तो जीव-ईश्वरपना भी खत्म हो गया क्योंकि माया-अविद्या के भेद से था ये जीव-ईश्वरपने का भेद, सो कल्पित था, उसकी भी निवृत्ति हो गयी। तो जो जीव-ईश्वरपने का भेद था सर्वज्ञता-अल्पज्ञता का, सर्वशक्तिमत्ता-अल्पशक्तिमत्ता का, ये भेद भी निवृत्त हो गया। अब ब्रह्म अनादि अनंत था और ये पॉच चीज़ें अनादि कल्पित होने से अनंत न रहीं, सान्त रहीं, इनका अन्त हो गया। तो ब्रह्म तो अनादि अनंत रहा और वो जो पॉच चीज़ें थीं वो अनादि सान्त। प्रकृति और प्रकृति का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध और विद्या अविद्या व उसमें ईश्वरपना जीवपना और इनका सर्वज्ञता अल्पज्ञता आदि का आपस में जो भेद — ये पॉच अनादि सान्त रहे कल्पित होने से। किसमें सान्त भये? कहा जिसमें कल्पित थे उन्हीं में इनका अन्त हो गया। वो अब ब्रह्म आधार अधिष्ठान था रज्जु में सर्प के समान इन पॉचों का। जैसे रज्जु में जो सर्प प्रतीत होता है उस कल्पित सर्प का आधार अधिष्ठान रज्जु है।

सामान्य और विशेष ज्ञान

आधार अधिष्ठान में थोड़ा थोड़ा कुछ भेद है। आधार किसको कहते हैं? अधिष्ठान किसको कहते हैं? और उसमें अध्यास होता है। रज्जु में ये सर्प का जो ज्ञान होता है वो अध्यास है माने भ्रम है, वो कल्पित है। भ्रम कैसे होता है इसको बताया है कि वो कल्पित सर्प का आधार और अधिष्ठान रज्जु है। अब आधार का स्वरूप और अधिष्ठान का स्वरूप क्या है? सायं काल में जब मन्द अन्धकार होता है तो रास्ते में कोई जा रहा हो और कोई रस्सी की टुकड़ा पड़ा हो तो उसको ऐसा लगता है कि कुछ पड़ा है, रस्सी पूरी नहीं दिखाई पड़ती मन्द अन्धकार के कारण। **'इदं किंचित अस्ति'** ये कुछ पड़ा है ऐसा दिखाई पड़ता है तो रज्जु का ही वो इदं अंश है 'यह'पना, रज्जु के इस सामान्य अंश को **आधार** कहते हैं और जो विशेष अंश है उसका 'रज्जु'पना, उसको अधिष्ठान कहते हैं, ज़रा समझो आधार-अधिष्ठान की बात। तो जो इदं अंश है, सामान्य अंश है यहपना—'यह कुछ पड़ा है', तो वो यहपना तो रज्जु का ही है पर विशेष अंश का ज्ञान न भया, उस 'यह' का जो वास्तविक स्वरूप है वो रज्जु है, अंधकार के कारण पूर्ण ज्ञान हुआ नहीं रज्जु का यानि अधिष्ठान का ज्ञान न हुआ और आधार का ज्ञान हुआ। सामान्य अंश को आधार कहते हैं और रज्जु का वास्तविक स्वरूप जो विशेष अंश है उसको अधिष्ठान कहते हैं। तो अधिष्ठान के अज्ञान से और आधार यानि इदं अंश के ज्ञान से मानस संस्कार के अनुसार जो यहपना था, इदं अंश था रज्जु का, उसे किसी ने कहा ये सर्प है, किसी ने कहा ये दण्ड है, किसी ने कहा ये माला है। तो इदं अंश 'यह' जो रज्जु है, इस 'यह' को ही उसने सर्प बताया, वो यहपना इदं अंश तो रज्जु का ही है दूसरी चीज़ तो है नहीं, सामान्य अंश रज्जु का देख रहा है, पूरा नहीं देख रहा है। एक अंश सामान्य अंश देखा तो आधार का ज्ञान रहा, अधिष्ठान का अज्ञान रहा तो मन में जो संस्कार था सर्प का वो मानस संस्कार ही सर्प के रूप में प्रकट हुआ, अब इसको **अध्यास** कहते हैं, इसको भ्रम कहते हैं, इसको रज्जु का विवर्त कहते हैं। इसी को माया, अज्ञान, अविद्या कहते हैं। यही दु:ख दायक बनी, ये भ्रम, ये अध्यास ही दु:ख दायक बना। रज्जु का ज्ञान होता तो कुछ दु:ख नहीं है, अब रज्जु में सर्प का ज्ञान हो गया न! मानस था ये सर्प, सचमुच में तो ये रज्जु है और मन में सर्प का संस्कार बसा तो उसको सर्प दिखा, अब उसको भय उपजा सर्प से, दु:ख हुआ और वो कदाचित् घर के दरवाजे में पड़ा होता तो घर का रास्ता बन्द था, कितना भय उत्पन्न हो गया इस भ्रम से, दु:ख दायक हुआ। तो ये भ्रान्ति दु:ख दायक होती है, वास्तविक ज्ञान होने पर दु:ख मिट जाता है। उसको जब रज्जु का ज्ञान होता है किसी प्रकार से प्रकाश करके या सूर्य उदय से रज्जु के

अधिष्ठान का ज्ञान जब होता है तब वो जो सर्प भ्रान्ति थी वो रज्जु का ही कल्पित विशेष अंश था। तो वो जो कल्पित सर्प है वह वास्तविक विशेष अंश जो रज्जुपना है उसी में लीन हुआ। **आधार और अधिष्ठान** — रज्जु का इदं अंश '**आधार'**, किसका? वो ही सर्प ज्ञान का, ये ही आधार बना और यदि आधार का भी ज्ञान न होता, बिल्कुल अंधकार होता तो आधार, 'इदं अंश' का ज्ञान यानि 'कुछ पड़ा है' ये भी ज्ञान न होता, तो ये सर्प भ्रान्ति नहीं होती अथवा पूरा प्रकाश होता तो रज्जु का ही, अधिष्ठान का ज्ञान हो जाता तो भी सर्प भ्रान्ति न होती। इस दृष्टान्त को समझ लो अच्छी तरह से फिर अपनी आत्मा में इसको घटा करके संसार सर्प कैसे हुआ है ये सिद्धान्त समझना है, दार्ष्टान्त समझना है। पहले सिद्धान्त समझ में आ जाता है तो दार्ष्टान्त सरलता से समझ में आ जाता है। एक दम प्रकाश हो तो अधिष्ठान का ज्ञान हो जायेगा अध्यास होगा ही नहीं और यदि आधार का भी ज्ञान नहीं होगा, पूरा ही अंधकार होगा तो भी सर्प भ्रान्ति नहीं होगी। अँधेरे में न सर्प दिखाई पड़ेगा और न रज्जु दिखाई पड़ेगी। अँधेरे में कुछ दीखता ही नहीं है तो भ्रान्ति का क्या काम? ये सब मन्द अन्धकार में हुआ जो अधिठान का अज्ञान रहा और आधार का ज्ञान रहा। **'अधिष्ठान'** माने वास्तविक विशेष अंश, **'आधार'** माने सामान्य रूप रज्जु का 'कुछ पड़ा है' इदं अंश, ये आधार-अधिष्ठान का इतना भेद है। सामान्य अंश अथवा इदं अंश को आधार कहते हैं और विशेष अंश जो रज्जु का है उसी को अधिष्ठान कहते हैं। तो आधार और अधिष्ठान एक ही चीज़ रही क्योंकि यहपना भी रज्जु का ही है। जब भ्रान्ति है तो भ्रान्ति के समय 'यह सर्प है', वास्तव में तो वो रज्जु ही है, भ्रान्ति के समय में भी वो ज्यों कि त्यों रज्जु का इदं अंश मौजूद है और जब भ्रान्ति की निवृत्ति हो गयी रज्जु ज्ञान से तो 'यह रज्जु है'। तो भ्रान्ति के समय भी सामान्य अंश रहा और जब अधिष्ठान ज्ञान हुआ तब तो वो है ही, तो 'यह रज्जु है' 'यह सर्प नहीं है' अत: **'यहपना'** ज्ञान और अज्ञान दोनों में व्यापक रहा। अज्ञान के समय सर्प में व्यापक है 'यह सर्प है', तो वो यहपना तो रज्जु का ही है और ज्ञान के समय 'यह रज्जु है', तो ये इदं अंश ज्ञान-अज्ञान दोनों काल में रहा और जो विशेष अंश है वो अज्ञान काल में नहीं दिखाई पड़ा, ज्ञान काल में ही विशेष अंश 'रज्जु पना' दिखाई पड़ा। तो इदंपना, आधारपना बहुकाल स्थाई रहा और अधिष्ठान अल्पकाल अस्थाई रहा जो अधिष्ठान के ज्ञान के समय ही ये विशेष अंश है और भ्रान्ति समय नहीं है पर सामान्य अंश दोनों समय है यानि यहपना भ्रान्तिकाल और ज्ञानकाल दोनों में मौजूद है और आधार-अधिष्ठान एक ही चीज़ है। अब दूसरा जो था अध्यास सर्प वो भी कल्पित विशेष अंश होने से, रज्जुरूप होने से वो भी अलग न रहा। तो सामान्य अंश और विशेष अंश तो रज्जु ही थी उसमें तो कोई भेद था ही नहीं। सर्प का भेद था सो वो भी कल्पित होने से वास्तविक रज्जु के साथ अभेद हुआ। अब दूसरी चीज़ कोई रही ही नहीं। अब इसी दृष्टान्त को अपनी आत्मा में घटाओ। सभी जीवों को अपना स्वरूप सामान्य रूप से ज्ञान है। जीवों का वास्तविक स्वरूप क्या है? तो वेद कहता है **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'—'तत्त्वमसि'**। जो सत्-चित्-आनंद स्वरूप ब्रह्म है—तत्त्वमसि, वही जीव का स्वरूप है, ईश्वर का ये उपदेश है, वेद का महावाक्य है। जो सत्-चित्-आनंद ब्रह्म है हे जीव! वही तेरा स्वरूप है। तो जीव का वास्तविक स्वरूप तो ब्रह्म ही रहा वेद मंत्र महावाक्य प्रमाण से और ईश्वर के वचन वेद हैं। अब वेद से ऊपर कोई प्रबल प्रमाण किसी जीवों का तो है नहीं, जीव तो सब अल्पज्ञ हैं ईश्वर ही एक सर्वज्ञ है इसलिये बलवान प्रबल प्रमाण ईश्वर की वाणी वेद ही है। सब प्रकार से मानने योग्य है और जीव के अल्पज्ञ होने के कारण इसकी वाणी का जो प्रमाण है, इसका जो कथन है वो परम प्रमाण नहीं है ईश्वर की वाणी ही प्रबल प्रमाण है जो कट नहीं सकता। अज्ञानी होने से जीव के जो अपनी बुद्धि से सोच कर कहेंगे वो कट जायेंगे। ईश्वर की वाणी प्रबल प्रमाण से ये सिद्ध हुआ कि जीव ब्रह्म ही है और ईश्वर भी ब्रह्म ही है, ये हमारा वास्तविक स्वरूप है भला। परन्तु जब तक ये ज्ञान नहीं होता न अपने ब्रह्मपने का, क्योंकि ये वाक्य जब सुनोगे तुम गुरु के पास में जाकर, पहले तो ज्ञान किसी को होता नहीं जीवों को, पहले तो अपने को शरीररूप मानते रहते हैं ये लोग, सभी जीव अज्ञान अवस्था में 'मैं शरीर

हूँ', शरीरों में भी स्त्री-पुरुष हूँ। शरीरों के आकार वही अपने को आकार ही माने बैठा रहता है। सामान्य अंश का ज्ञान है सब जीवों को और विशेष अंश का अज्ञान है तो हमारी तुम्हारी आत्मा का सामान्य और विशेष अंश क्या? आधार-अधिष्ठान क्या? कहा सत्पना-चित्पना-आनंदपना और व्यापकपना ये हमारा तुम्हारा वास्तविक स्वरूप अधिष्ठान है, इसको अधिष्ठान कहेंगे। सत्-चित्-आनंद और सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक वास्तविक स्वरूप जो जीव का है, ये अधिष्ठान है। तो मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ इसका हुआ अज्ञान माने अपने अधिष्ठान स्वरूप का अज्ञान हुआ और आत्मा का जो सामान्य अंश है, इदंपना उसका ज्ञान रहा। यह शरीर है (अस्तिपना) अयं अस्ति, **'मैं हूँ'** अहं अस्मि, इतना ज्ञान तो सबको रहता है, ये सत्पना है, सत् कहते हैं रहने को यानि 'मैं हूँ' ऐसा ज्ञान सबको है, ये **सामान्य अंश** है **सत्पना** कि मैं दिन में हूँ मैं रात में हूँ—ये तो अस्तिपना व सत्पना हुआ, मैं जाग्रत में हूँ स्वप्न में हूँ सुषुप्ति में हूँ, ये सामान्य अंश ज्ञान हुआ अपने सत्पने का और **चिद्पने** का भी ये ज्ञान है कि मैं दिन में हूँ और **दिन को देखता हूँ**, तो ये देखना ज्ञान में होता है इसलिये ये भी अपने सामान्य अंश का ज्ञान है सब जीवों को बिना समझाये-बुझाये पढ़ाये-लिखाये, बालक को भी। मैं दिन में हूं दिन को देखता हूँ, मैं रात में हूँ रात को देखता हूँ। **तो 'मैं हूँ' ये अपनी आत्मा का सत्पना है और 'मैं देखता हूँ' ये अपनी आत्मा का चिद्पना है और मैं आनंदरूप हूँ, सर्वत्र व्यापक हूँ और मुझे ही ब्रह्म कहते हैं ये ज्ञान नहीं है जीव को।** ये विशेष अंश माने वास्तविक स्वरूप अधिष्ठान इसको कहते हैं। तो अधिष्ठान अंश का तो अज्ञान रहा और 'मैं हूँ और देखता हूँ' ये सामान्य अंश का ज्ञान रहा। तो सम्पूर्ण स्वरूप जो है 'सच्चिदानंद ब्रह्म, व्यापक, एक अद्वितीय' उस सम्पूर्ण का तो अज्ञान बना रहा और सत्पने-चिद्पने का थोड़ा ज्ञान भी बना रहा तब ये संसार भ्रान्ति खड़ी हो गयी। ये कल्पित संसार अध्यासरूप प्रकट हो गया, क्यों? जीवों के मन में अनादि कल्पों से ये कर्म संस्कार चले आ रहे हैं। जब तक ये जीव मुक्त नहीं होता अज्ञान दशा में तब तक संसार के संस्कार रहते हैं मन में, ये सब भ्रान्ति है, ज्ञान होने पर तो ये सब भ्रान्ति रहती नहीं। अज्ञान दशा में अनंत जन्मों के संस्कार रहते हैं तो संसार के संस्कार रहने के कारण ये संसार प्रकट हो गया, ये संसार दिखाई पड़ने लग गया, कैसा, कहा जैसा पहले संसार देखा था वैसा ही संसार अब भी प्रकट हो गया क्योंकि ये ही संस्कार थे। अब फिर ये संसार में, शरीरों में अहंता ममता कर लिया कि ये ही मेरा स्वरूप है। अनेक जन्मों के ऐसे ही संस्कार चले आ रहे थे शरीर सम्बन्धी वो ही संस्कार प्रकट हो गये। और शरीर में अहंता ममता कर लिया।

बहुजन्म दृढ़ाभ्यासात् देहादिषु आत्मधीः भवेत्,
पुनः पुनः उदेत्तेवं जगत सत्यत्तुधीरपि ।।

बहुत जन्मों के इस अभ्यास से, ये संस्कार से कि मैं 'शरीर हूँ' बस यही पहले का अभ्यास है, संस्कार है तो इस शरीर में अहंपना कर लिया और ये संसार भी सत्य है, सुखरूप है, बहुत जन्मों से ऐसा ही समझता चला आ रहा है। संसार झूठा है, दुःखरूप है ये तो समझ थी नहीं कभी भी। वो ही संस्कार उदय हैं तो संसार को सत्रूप और सुखरूप देखने लगा। तो सत्रूप-सुखरूप जानकर अपने सुख प्राप्ति के वास्ते प्रवृत्ति हो गयी संसार में अब शरीर में ही ये भावना हो गयी कि ये शरीर ही मैं हूँ, इसके अतिरिक्त और कुछ मैं हूँ ये नहीं जानता तो अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म का तो अज्ञान बना रहा और सामान्य अंश का ज्ञान रहा, तो ये संसार प्रकट हो गया। तब मैं हूँ और देखता हूँ ये तो अपना सत्य स्वरूप है वो सच्चिदानंद ब्रह्म स्वरूप है, सामान्य अंश है, इसमें और अधिष्ठान में भेद नहीं है आधार अधिष्ठान में तो एकता है अब रही कल्पित संसार के सम्बन्ध में तो इसका कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध है अपनी आत्मा के साथ में क्योंकि मुझमें ये कल्पित है न! झूठा है न! माने मुझको ही सर्प संसार के रूप में देखा जा रहा है न! रस्सी को ही तो सर्प के रूप में देखा था दृष्टान्त में, तो अपने को ही तो संसार के रूप में देख रहा है न! वो मन में संस्कार थे ऐसे वैसे ही देख रहा था।

अधिष्ठान का ज्ञान हुआ तो अनादि जन्मों का ये संस्कार सब खत्म हो गया। अज्ञान खत्म हो गया तो अब संस्कार कहॉ रहेंगे, मन भी खत्म हो गया फिर मन मे ही संस्कार थे। मन लीन होता था अज्ञान में, तो अज्ञान में संस्कार रह जाते थे। अब अज्ञान ही खत्म हो गया, मन ही खत्म हो गया संस्कार रहेंगे कहॉ? मानस संस्कार थे ये, तो वो ही उदय हुए थे, मन ही खत्म हो गया अब संस्कार कहॉ रहें? अब किस आधार पर जन्म मरण होवे? संस्कार ही थे, कर्म ही थे, ईश्वर तो जन्म मरण तब ही देता था, जब संस्कार ही नहीं तो संसार की उत्पत्ति-प्रलय कहॉ से होगी, जीवों के कर्मानुसार ही ईश्वर देता था। अब न ईश्वर रहा, न जीव रहा, न जगत रहा, न माया रही, न अज्ञान रहा। इसको अपवाद कहते हैं। सबका अपवाद हो गया अधिष्ठान में। तो ये जो पॉचों थे प्रकृति और प्रकृति का ब्रह्म से सम्बन्ध, जीव, ईश्वर और उनका भेद — ये सब भ्रम थे, अध्यास थे, कल्पित थे, ये सब निवृत्त हो गये अधिष्ठान का ज्ञान होते ही। मैं सत्य अधिष्ठान था ही, मेरे अज्ञान से ही संसार की कल्पना भयी थी। सामान्य ज्ञान भी था मेरा अपना पर पूर्ण ज्ञान नहीं था तो अधूरे ज्ञान में ये सब भ्रान्ति होती है। या तो पूरा अज्ञान हो तो भ्रान्ति नहीं है और या तो पूरा पूरा ज्ञान ही हो तो भी भ्रान्ति नहीं है। फिर से पूरा जो प्रकाश हो तो भी सर्प का भ्रम नहीं है, कोई दु:ख नहीं है क्योंकि रज्जु है और या तो पूरा का पूरा अन्धकार ही हो तो रज्जु का भी ज्ञान न हो, अधिष्ठान का भी ज्ञान न हो तो भी कोई दु:ख नहीं है, जैसे गाढ़ निद्रा में आनंद ही है कुछ ज्ञान ही नहीं है, घोर अज्ञान में भी कोई भ्रान्ति नहीं है, भ्रम अधूरे ज्ञान में ही होता है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

७

चिदाभास की ७ अवस्थाएं

ईश्वर की माया शुद्ध सत्वगुणी है अत: वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है। उपदेश ईश्वर के चिदाभास रूप में ही है। ईश्वर अपने प्रतिबिम्बरूप को, माया को, अधिष्ठान ब्रह्म को, जीव को, जीव के कर्मों व कर्म फलों को — सबको जानते हैं। भगवान कहते हैं मैं तुझे जीव—ईश्वर का स्वरूप निरूपण करता हूँ। सृष्टि के आदि में पहले एक अद्वितीय सच्चिदानंद घन ब्रह्म मैं ही था, तू—मैं का कोई व्यवहार नहीं था क्योंकि मैं आप अकेला था। फिर रज्जु में सर्प की भाँति, आकाश में नीलिमा की भाँति माया का प्रादुर्भाव हुआ। उस माया ने 'विद्यारूप' और 'अविद्यारूप' दो रूप धारण किया, उसमें मेरा आभास पड़ा।

अधिष्ठान साक्षी रूप शुद्ध चेतन ब्रह्म + कल्पित शुद्ध सत्वगुणी विद्यामाया + इसमें चेतन का आभास ←	ईश्वर का वाच्यार्थ	ये सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान हुआ, विद्यामाया आवरण रहित होने से ये नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त रूप है
अधिष्ठान साक्षी रूप शुद्ध चेतन ब्रह्म + कल्पित मलिन सत्वगुणी अविद्या माया/बुद्धि + इसमें चेतन का आभास ←	जीव का वाच्यार्थ	ये अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान हुआ, अविद्यामाया आवरण सहित होने से इसे अज्ञान — आवरण और विक्षेप हुआ

अर्जुन, इस साभास बुद्धि अथवा चिदाभास को ही अज्ञान हुआ है, यह अपने जीव स्वरूप को भी नहीं जानता कि मैं प्रतिबिम्ब नाम का जीव हूँ, न अविद्या को ही पहचान सका किन्तु अविद्या के कार्य दे०इ०म०बु०प्रा० में ये अभिमान कर बैठा, अनात्मा में आत्मभाव कर बैठा इसीलिये इसे जन्म—मृत्यु का बन्धन प्राप्त हुआ। स्वयं को आत्मा जानकर ये ही मुक्त होता है।

स्थूल दृष्टान्त :—

मेरा मुख → दर्पण — प्रतिबिम्ब
(द्रष्टा) (दृश्य) (दृश्य)

अगर दर्पण नहीं यानि उपाधि नहीं तो मेरा प्रतिबिम्ब भी नहीं, मैं अकेला हूँ अत: विद्या—अविद्या माया उपाधि नहीं तो प्रतिबिम्ब भी नहीं, मैं अकेला हूँ फिर द्रष्टा—दृश्य भाव भी नहीं। मैं अपनी ही छाया को देखता था। जब विद्या—अविद्या माया प्रकट हुई तो वो दृश्य बनी और मैं द्रष्टा बना । मेरी दृष्टि ही वह आभास है — प्रकाश है तो साभास माया/**ईश्वर** और साभास बुद्धि/**जीव** का मैं साक्षी हुआ। जब विद्या—अविद्या नहीं तो मेरा आभास भी नहीं फिर मैं अकेला ही हूँ। तो जीव और ईश्वर में जीव को ही बन्ध है ईश्वर तो नित्य मुक्त है। ईश्वर में जो शुद्ध चेतन भाग है उसमें बन्ध—मोक्ष नहीं, सर्वज्ञता नहीं व नित्य मुक्तता नहीं क्योंकि वह तो नित्य मुक्त व्याप्तिर्ज्ञान है अर्थात् **सामान्य ज्ञान**। अल्पज्ञता—सर्वज्ञता तो चिदाभास भाग में ही है यानि जितना भी व्यवहार है वह आभास में ही है अत: सर्वज्ञता के कारण ईश्वर के आभास भाग में ही उपदेश का व्यवहार है। विद्या—माया शुद्ध तो है परन्तु अत्यन्त जड़ है, प्रकाश्य है,

चिदाभास ही प्रकाशक है।
इसी प्रकार जीव में जीव—साक्षी कूटस्थ ब्रह्म अव्यवहार्य है। अविद्या—माया अत्यन्त जड़ है, अज्ञान रूप। अत: ज्ञान तो आभास भाग में ही है — अल्प अथवा सर्व। इसलिये ईश्वर—साक्षी ब्रह्म और जीव—साक्षी कूटस्थ दोनों में बन्ध—मोक्ष नहीं, अल्पज्ञता—सर्वज्ञता नहीं, वह हमारा शुद्ध रूप है।

अत: उपदेश चिदाभास को दिया जा रहा है क्योंकि :—

- कूटस्थ ज्ञानरूप एवं अव्यवहार्य है
- बुद्धि अत्यन्त जड़ है
- आभास को अपने स्वरूप का अज्ञान है

जीव में ही अज्ञानता है अत: उसे ही ज्ञान की आवश्यकता है। **जीव रूपी चिदाभास की ७ अवस्थाएं हैं :—**

१.अज्ञान २.आवरण ३.विक्षेप शक्ति ४.परोक्ष ज्ञान ५.अपरोक्ष ज्ञान ६.आत्यन्तिक दु:खों की निवृत्ति रूप मुक्ति ७.परम् सुख शान्ति की प्राप्ति।

१. **अज्ञान** — अपने स्वरूप का अज्ञान चिदाभास को है कूटस्थ चेतन व जड़ बुद्धि को नहीं। जीव/चिदाभास से पूछो :—
प्र० — क्या तुम ब्रह्म को जानते हो ?
उ० — मैं ब्रह्म को नहीं जानता (वह इस अज्ञान को अनादि बताता है जबकि वह कल्पित है) ब्रह्म के अज्ञान से ही जीव को बन्धन है।
प्र० — कब से नहीं जानते ?
उ० — कभी से नहीं जानता (क्योंकि ब्रह्म ज्ञान से तो जीव मुक्त हो जाता है), जीव की तरफ से अज्ञान अनादि सिद्ध है। अत: अज्ञान के किये जन्म—मरण भी असंख्य हो गये। मैं क्यों बन्धन में पड़ा ? क्यों जन्म—मरण हो रहा है ? व इस बन्धन से कैसे निकलूँ ? यह भी नहीं जानता। दु:ख सहा नहीं जाता पर उपाय भी नहीं जानता कि कैसे इन दु:खों से बाहर निकलूँ। गर्भ दु:खम्, जन्म दु:खम्, आधि दु:खम्, व्याधि दु:खम्, संयोग दु:खम्, वियोग दु:खम्, जरा दु:खम्, मृत्यु दु:खम् पुन: पुन:। जैसे कोई कीट भँवर चक्र में फँसकर घूमते घूमते नीचे जाता है — मृत्यु, फिर ऊपर आता है — जन्म। उसी प्रकार दु:खों के समुद्र के भँवर में जीव रूपी कीट फँस गया है, उसे लाचारी है कोई उपाय नहीं सूझता।

२. **आवरण** — जब अज्ञान है तो सच्चिदानंद नाम की कोई चीज़ नहीं है क्योंकि दिखाई नहीं देती ।
आवरण शक्ति दो प्रकार की है :—
'नास्ति, ना भाति, इति व्यवहार आवरण शक्ति'।

- ब्रह्म नहीं है — नास्ति — असत्वापादक आवरण शक्ति
- ब्रह्म भासता नहीं है — ना भाति — अभानापादक आवरण शक्ति (प्रत्यक्ष नहीं है)

३. **विक्षेप** — ब्रह्म के अज्ञान से आवरण और आवरण से विक्षेप शक्ति का प्रादुर्भाव होता है — 'पंचमहाभूतादि प्रपंचोत्पत्ति विक्षेप शक्ति'। पंचीकृत पंचभूतों से स्थूल व अपंचीकृत पंचभूतों से सूक्ष्म शरीर बन जाते हैं। बुद्धि में चेतन का आभास पड़ा और

चिदाभास उत्पन्न हो गया, यही सुखी—दु:खी होता है, विलाप करता है कि बन्धन से कैसे छूटूँ ?

अज्ञान का कार्य — आवरण शक्ति, उसका कार्य — विक्षेप शक्ति → जीव का रुदन (यहाँ तक जीव को बन्ध है)

आगे की ४ अवस्थाएं मोक्ष की हैं। वेद के माध्यम से ईश्वर का जीव को उपदेश :—

४. **परोक्ष ज्ञान** — अज्ञानावस्था के प्रथम प्रश्न 'ब्रह्म नास्ति—ब्रह्म नहीं है' के उत्तर में वेद पहले अस्ति भाव से ब्रह्म का निरूपण करता है।

- 'अस्ति ब्रह्मेति चेत् वेद परोक्ष ज्ञानं एव तत्' — ब्रह्म है, तथा
- 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' — वह सत् चित् आनंद रूप है — ये स्वरूप बोधक या अवान्तर वाक्य कहलाता है।

५. **अपरोक्ष ज्ञान** — अज्ञानावस्था के दूसरे प्रश्न 'ब्रह्म ना भाति—ब्रह्म भासता नहीं है' के उत्तर में वेद के महावाक्य है —

- 'तत्तवमसि' — तू ही ब्रह्म है, फिर — 'अहं ब्रह्मास्मि' — शिष्य का अनुभव — 'मैं ही ब्रह्म हूँ'
- 'अहं ब्रह्मेति चेत् साक्षात्कारां स उच्यते' — यही साक्षात्कार है।

  - सत् — उत्पत्ति नाश रहित
  - चित् — उदय अस्त रहित ज्ञान का सूर्य
  - आनंद — अनंत अखंड आनंद सिन्धु
  - यह ब्रह्म निर्गुण निराकार निरवयव है तथा देश काल वस्तु से अपरिच्छिन्न और सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद रहित है।
  - ''एकमेवाद्वयम ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन'' — मैं 'अस्ति—भाति—प्रिय' रूप से सभी देश—काल—वस्तु में व्यापक हूँ, इनसे अनंत गुना बड़ा हूँ और इन्हें छूता भी नहीं अर्थात् सबसे असंग हूँ।
  - ''माया गुण गो पार'', '' प्रकृते परा पुरुष: सा काष्ठा सा परांगति'', ''माया गुण ज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनंता'' — हमारा तुम्हारा स्वरूप माया से अतीत एवं देश काल वस्तु से अपरिच्छन्न है। भूतों का आदि मध्य अंत मैं ही हूँ पर मैं स्वयं अनादि अनंत हूँ।
  - मैं सब भूतों के हृदय में स्थित हूँ।
  - मैं देश काल वस्तु की नाप में नहीं आता — अमान हूँ।

६. **आत्यन्तिक दु:खों की निवृत्ति** — मोक्ष यानि मुक्ति।

७. **परम् सुख शान्ति की प्राप्ति**

प्रतिबिम्ब में ही व्यवहार है, अत: अवतार रूप से राम कृष्ण आदि अथवा भगवान के कृपा पात्र गुरु लोग जीव को उपदेश देते है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 10 - Voice 15

८

दृग् - दृश्य विवेक

अर्जुन उवाच :— हे भगवन् अज्ञानता के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है और धर्म को भी सम्यक प्रकार से नहीं जानता हूँ इसलिये जिस प्रकार से मुझे नित्य सुख शान्ति की प्राप्ति हो, आत्यन्तिक दु:खों की निवृत्ति हो वह उपाय आप मुझको बतावें। मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले, हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो :—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।। BG – 02.45 ।।

हे अर्जुन! वेद में तीन काण्ड हैं कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। त्रिकाण्डमयो वेदा: — ये तीन काण्डमय सम्पूर्ण वेद हैं। इसमें जो कर्मकाण्ड है वो ३ गुणों से बने हुए संसार को ही बताता है। इस लोक या परलोक के भोगों का व उनकी प्राप्ति का जो साधन है ये सब कर्मकाण्ड में बताया गया है। अर्जुन! अब तुम्हारा कर्मकाण्ड निष्काम कर्म और भक्ति करने से पूर्ण हो गया है। ३ गुणों से बना हुआ ये संसार है इसलिये संसार को त्रैगुण्य कहते हैं। तो तीन गुणों का प्रकाशक जो कर्मकाण्ड है उसका तुम त्याग करो—**'निस्त्रैगुण्य भव'** यानि निस्त्रैगुण्य हो जाओ माने तीनों गुणों से ऊपर उठो। हे अर्जुन! **'निर्द्वन्द्वो'**—सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मान-अपमान, सुख-दु:ख इनको द्वन्द्व कहते हैं। इन द्वन्द्वों से रहित हो करके जो नित्य वस्तु है उसमें स्थित होओ। **'नित्यसत्त्वस्थो'**—तो नित्य जो है वो आत्मा या परमात्मा ही है। **'देही नित्यमवध्योऽयं'** देह तो अनित्य है पर देही नित्य है तो उस नित्य वस्तु में तुम स्थित होओ और **'निर्योगक्षेम'**—योग-क्षेम की चिन्ता न करो। शरीर निर्वाह के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता है उनकी चिन्ता न करो और उनकी रक्षा की भी चिन्ता न करो, ये ही योग-क्षेम है और **'आत्मवान्'**—आत्म परायण होओ, अपने स्वरूप में स्थित होओ। **'यावानर्थ उदपाने सर्वत: संप्लुतोदके, तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानत:'**— हे अर्जुन! जो ब्राह्मण आत्मतत्त्व को, ब्रह्म तत्त्व को जान लेता है उसके लिये और वेदों का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता क्योंकि कर्म और उपासना से जो कुछ भी प्राप्त होता है वह सब ज्ञानकाण्ड से प्राप्त हो जाता है। जैसे बड़े जलाशय के प्राप्त हो जाने पर जो छोटे जलाशय का काम है वो बड़े जलाशय में पूरा हो जाता है। घट में भरा हुआ जो जल है वो छोटा जलाशय है और गंगाजी वड़ा जलाशय है। तो घट जल से तो केवल पानी पीने का ही काम चल सकता था और कूप के जल में भर करके स्नान भी कर सकते थे परन्तु गंगाजी के प्राप्त हो जाने पर तो पानी पीने का काम, स्नान करने का काम सब कुछ पूरा हो जाता है तो छोटे जलाशय की आवश्यकता फिर नहीं रह जाती व जो भी छोटे जलाशय का काम है वह बड़े जलाशय के प्राप्त होने पर सब पूर्ण हो जाता है। आत्मा आनंद का सिन्धु है, तो आनंद-सिन्धु आत्मा के मिल जाने से जितने भी संसार के सुख हैं वो सब प्राप्त हो जाते हैं वो सब छोटे छोटे सुख हैं, विषय सुख जितने भी हैं वह सब अल्प हैं और आत्मानंद के केवल प्रतिबिम्बरूप हैं। जब आत्मानंद की प्राप्ति होती है तो प्रतिबिम्ब तो सारे प्राप्त ही हो गये क्योंकि आत्मा के ही प्रतिबिम्ब हैं। आत्मा एक है और प्रतिबिम्बरूप जो आनंद हैं वो अनेक हैं परन्तु एक बिम्बरूप आत्मा के प्राप्त होने पर सारे

प्रतिबिम्बरूप आनंद स्वत: ही प्राप्त हो जाते हैं। उनकी आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार जितने ज्ञान हैं बुद्धियों में वो भी चेतन आत्मा के आभासरूप हैं। आत्मा के जान लेने से इन सब आभासों की प्राप्ति अपने आप हो गयी। इसी प्रकार से जितने ये शरीर हैं, स्थूल सूक्ष्म कारण, ये सत्‌रूप आत्मा की छाया मात्र हैं जैसे पुरुष के प्राप्त हो जाने से छाया स्वत: ही प्राप्त हो जाती है। एक पुरुष को पकड़ लो छाया सबकी सब पकड़ी जायेंगी। हे अर्जुन! अपना आत्मा जो है वो बड़े जलाशय के समान है और बाकी सब छोटे जलाशय के समान है। थोड़ा थोड़ा सुख है, थोड़ा ज्ञान है, थोड़ी सत्यता है। संसार में थोड़ी सत्यता है क्योंकि छायारूप है। छाया सत्य नहीं होती है। विनाशी होती हैं, उनका उत्पत्ति-नाश होता है। ऐसे जो विषय सुख हैं इन्द्रियों और विषय के सम्बन्ध से जो सुख होता है वो प्रतिबिम्बरूप होने से विनाशी है अविनाशी नहीं है, आत्मानंद अविनाशी है और जितने बुद्धियों में ज्ञान हैं आत्मा का आभास होने से वो भी विनाशी हैं, और आत्म ज्ञान! वो सत्य है अविनाशी है, इसीलिये तू आत्मवान् भव, **निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्** — इसलिये निर्द्वन्द्व हो, चिन्ता फ़िकर से रहित हो करके नित्य सत्य वस्तु में तू स्थित हो, आत्म परायण हो क्योंकि सद्‌रूप-चिद्‌रूप-आनंदरूप एक आत्मा ही है। आत्मा दो नहीं हैं आत्मा एक ही है। जितने भी संसार के शरीर हैं उन सबमें बैठकर देखने वाला एक ही चेतन आत्मा है, वो ज्ञानरूप है। बहुत ज्ञान नहीं हैं एक ही ज्ञान है। उसी ज्ञान को ब्रह्म कहते हैं **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'**। वो जो ब्रह्म है अनंत सत्य है, अनंत ज्ञान है, अनंत आनंद है और सारे संसार के देहों में बैठकर वो ही देख रहा है इसलिये ज्ञान सब शरीरों में एक ही है, दो ज्ञान नहीं हैं इसीलिये सब कहते हैं—**'अहं पश्यामि'**, मैं देखता हूँ, तो ये जो 'मैं' नामक तत्त्व है वह ज्ञान तत्त्व है। क्योंकि देखना तो ज्ञान में ही होता है और ज्ञान से भिन्न सब अज्ञान है, अज्ञान देख नहीं सकता और ज्ञान ही देख सकता है। सारा संसार अज्ञान का कार्य है, अज्ञानरूप है। ज्ञान नामक तत्त्व एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही है। अर्जुन वही हमारा तुम्हारा सभी जीवों का स्वरूप है, वही देखता है दूसरा द्रष्टा है नहीं। **'यावानर्थ उदपाने सर्वत: संप्लुतोदके, तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानत:'—** अर्जुन! द्रष्टा और दृश्य दो ही पदार्थ हैं, जो द्रष्टा है वो ब्रह्म है, **'सत्-चित्-आनंद'** ब्रह्म का स्वरूप है और जो दृश्य है वो माया है, 'असत्-जड़-दु:खरूप' ये माया का स्वरूप है। तीसरा कोई पदार्थ नहीं है। द्रष्टा और दृश्य से भिन्न तीसरा पदार्थ चाहे हज़ारों वर्ष बुद्धि से विचार करो, शास्त्र पढ़ो तीसरा पदार्थ निकलेगा ही नहीं। तो अर्जुन इन दोनों में द्रष्टा तो मैं ही हूँ बाकी सब दृश्य है तीसरा और कुछ है नहीं, इतना ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान है। जो द्रष्टा है वो स्वभावसिद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म है और जो दृश्य है वो असत्-जड़-दु:खरूप माया है इसलिये हे अर्जुन! ब्रह्म एक अद्वितीय है। **'एको देव: सर्वभूतेषु गूढ़:'**—अर्जुन देव एक है, देखने वाले को देव कहते हैं—**देवत्नाम् देव:**। एक ही देव है और ये सब शरीररूपी मन्दिर हैं। **'देहो देवालय: प्रोक्ता सजीव: केवल: शिव:, त्यजेत् अज्ञान निर्माल्यम् सोहं भावेन् पूजयेत्'**। अर्जुन! जितने भी देह हैं, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र, जो भी दिखाई पड़ते हैं वो देह हैं, ये देवालय हैं, ये सब मन्दिर हैं। इन सब मन्दिरों में देव तो एक है, देखने वाला तो एक ही है इसलिये सब कहते हैं कि मैं देखता हूँ क्योंकि देखना देव में ही है मन्दिर में नहीं, शरीर देवालय है ये नहीं देखता और ये जितने भी आकार हैं स्त्री पुरुषों के, मनुष्यों के, पशु-पक्षियों के ये सब मन्दिरों के आकार हैं कोई छोटा कोई बड़ा। अनेक प्रकार के आकार वाले ये सब देवालय मन्दिर ही मन्दिर हैं। सभी मन्दिरों में बैठा हुआ एक ही देव देख रहा है। **एको देव: सर्वभूतेषु गूढ़: —** और सभी भूतों के भीतर बैठकर देखने वाला गूढ़ है माने गुप्त है, छिपा हुआ है, देव दिखाई नहीं पड़ता है क्योंकि दिखाई पड़ने वाला तो दूसरा देवालय दृश्य ही हो गया जैसे देह और देखने वाला एक ही है। वो ज्ञानरूप है इसलिये ये द्रष्टा देव गुप्त ही रहता है। प्रकट तो देह हैं और ये अप्रकट ही रहता है क्योंकि जो दृश्य होगा वो जड़ होगा, अज्ञानरूप होगा और ये चेतन देव द्रष्टा ये जड़ हो नहीं सकता, अज्ञानरूप हो नहीं सकता, दिखाई पड़े तो अज्ञानरूप हो जायेगा इसीलिये देव दिखाई नहीं पड़ता देखता है—**'अदृष्टो द्रष्टा'**, द्रष्टा हमेशा अदृश्य ही रहता है। और दृश्य जो देह हैं ये देख नहीं सकते इनमें ज्ञान नहीं है, ये अज्ञानरूप हैं और जो शरीर, देह के भीतर बैठकर देखने

वाला है वो ज्ञानरूप है, ज्ञान कभी भी दृश्य नहीं होता। ज्ञान का कोई आकार नहीं है, निराकार है और जो दृश्य देह हैं ये सब आकारवान् हैं। अनेक आकारों के देवालय बने हुए हैं — मनुष्यों का आकार, पशुओं का आकार, पक्षियों का आकार, मक्खी-मच्छरों का आकार — ये भी छोटे-छोटे मन्दिर ही हैं। तो सबके भीतर देव एक ही व्यापक है। सब देख रहे हैं इसलिये हे अर्जुन! अपना आत्मदेव जो है वो स्वभाव से ही सच्चिदानंद स्वरूप अविनाशी है। कुछ करना नहीं है, जो स्वभाव सिद्ध 'सत्' है उसका नाशक कोई नहीं है। तुमने कहा कि अज्ञान के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है सो हे अर्जुन! भला अज्ञान हमारे ज्ञानस्वरूप का नाश कैसे करेगा? किन्तु नहीं कर सकता, अज्ञान को तो ज्ञान नहीं न है, वो तो दृश्य बनके रहेगा और आत्मा ज्ञानस्वरूप है इसलिये ज्ञानस्वरूप आत्मा का नाश करने में अज्ञान समर्थ नहीं है। इसलिये हे अर्जुन! अज्ञान तो एक छाया के समान है और ज्ञान पुरुष के समान है। छाया तो दृश्य होती है और ज्ञान पुरुष है, पुरुष द्रष्टा होता है। तो ये शरीर जितने भी हैं ये छाया के समान दिखाई पड़ रहे हैं। जैसे छाया पुरुष से उत्पन्न होती है और पुरुष ही छाया को देखता है, पुरुष के आश्रित ही छाया रहती है अलग होकर नहीं रह सकती। छाया पुरुष से उत्पन्न होती है, पुरुष के आश्रित रहती है और पुरुष में फिर लीन हो जाती है और पुरुष तो अविनाशी है। ऐसे ही अर्जुन ये जो हमारा तुम्हारा ज्ञान तत्त्व, आत्म तत्त्व, ब्रह्म तत्त्व है ये पुरुष है और जितना ये दृश्य संसार शरीर है ये सब छाया के समान है। हमारे तुम्हारे चेतन पुरुष के आश्रित इसका प्राकट्य होता है और हमारी तुम्हारी देख-रेख में ही ये रहता है, हम-तुम ही देखते हैं इसको फिर आत्मा में ही लीन हो जाता है। आत्मा तो सत्य वस्तु है जैसे पुरुष रह जाता है शेष। छाया उत्पन्न होती है, बढ़ती है, घटती है फिर पुरुष में लीन हो जाती है। ये ही हाल सब शरीरों का है, इनको ज्ञान नहीं इसलिये ये छाया समान हैं। अर्जुन इसी को माया भी कहते हैं क्योंकि ये छाया के समान है, तो भला छाया भी कभी पुरुष का नाश कर सकती है? जो पुरुष से उत्पन्न होती है, पुरुष के आश्रित रहती है और पुरुष में लीन होती है, स्वयं उत्पत्ति विनाशवान् है। ऐसे अर्जुन ये माया — अज्ञान को माया कहते हैं, जैसे छाया को ज्ञान नहीं वैसे ही माया को ज्ञान नहीं है वो जड़ है, तो अर्जुन! अज्ञान हमारे तुम्हारे स्वभाव का, सच्चिदानंद ब्रह्म का नाश कैसे कर सकता है बताओ? ये भ्रान्ति है कि अज्ञान ने हमारे तुम्हारे स्वरूप का नाश किया है। **'विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति'** — अर्जुन! इस अविनाशी आत्मा का विनाश करने वाला कोई भी नहीं है क्योंकि आत्मा से भिन्न सब छायारूप ये संसार है, माया है, ये स्वयं उत्पत्ति-विनाशवान् है। हमारे तुम्हारे देखते देखते इस संसार की उत्पत्ति होती है, हमारी देख-रेख में ही इसकी स्थिति है और हमारे देखते देखते इसका अन्त भी हो जाता है। जाग्रत और स्वप्न का संसार सुषुप्ति रूपी अज्ञान से निकलता है। सुषुप्ति को, गाढ़निद्रा को ही अज्ञान कहते हैं। क्योंकि घोर अज्ञान-अन्धकार रूप है गाढ़निद्रा, उसी से जाग्रत और स्वप्न का संसार उदय होता है और फिर उसी में लीन हो जाता है, हमेशा नहीं रहता और जो द्रष्टा स्वरूप हमारा तुम्हारा आत्मा ब्रह्म है ये तो उत्पन्न होता नहीं, इसका नाश भी नहीं होता है। देखो हम जाग्रत को भी देखते हैं, स्वप्न को भी देखते हैं, सुषुप्ति को भी देखते हैं परन्तु जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तो अज्ञानरूप होने से किसी को देखते नहीं और उत्पत्ति-विनाशशील हैं इसलिये अर्जुन जो स्वयं उत्पत्ति-विनाशशील हैं वो हमारी तुम्हारी अविनाशी आत्मा का नाश कैसे करेंगे? किन्तु नहीं कर सकते इसलिये इस भ्रम को निकाल दो हृदय से कि मेरा जन्म-मरण होता है। जन्म-मरण देह के होते हैं सो देह तो निद्रा से उत्पन्न होते हैं, स्वप्न के देह और जाग्रत के देह, यही दो देह हैं। स्वप्न के सूक्ष्म देह हैं और जाग्रत के स्थूल देह हैं, सुषुप्ति में ये लय हो जाते हैं। देखने वाला आत्मा तो न उत्पन्न होता है न लय होता है। तो स्वयं उत्पत्ति-विनाशवान् ये संसार है, ये अज्ञान हमारा तुम्हारा नाश कैसे कर सकता है? किन्तु नहीं कर सकता। आत्मा का नाशक कोई भी नहीं है, कोई का मतलब ये ही दृश्य माया। आत्मा से भिन्न ये दृश्य माया ही है जो छाया के समान उत्पत्ति-विनाशवान् है। छाया का कोई अर्थ नहीं होता अर्जुन! छाया तो एक शून्य वस्तु है, शून्य का क्या अर्थ होता है? शून्य माने कुछ नहीं, ये ही अर्थ होता है। इसी

प्रकार से छाया माने कुछ नहीं। पुरुष तो सत्य वस्तु है उसका तो अर्थ है परन्तु छाया का अर्थ तो कुछ नहीं होता है, छाया माने कुछ नहीं। वो तो खाली प्रतीति होती है वह भी हमको तुमको, छाया को तो ज्ञान नहीं। हम तुम ही छाया को देखते हैं, हम तुम न देखें तो छाया कहाँ है? क्योंकि ज्ञान तो स्वयं सिद्ध है और अज्ञान तो ज्ञान के द्वारा सिद्ध होता है स्वयं सिद्ध नहीं है। तो ये अज्ञानरूप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति है स्वयं सिद्ध नहीं है पर हमारा तुम्हारा ज्ञान स्वयं सिद्ध है। **'जाग्रत स्वप्न सुषुप्त्यादि प्रपंचम् यत्प्रकाशते, तद् ब्रह्माहमितिज्ञात्वा सर्व बन्धैः प्रमुच्यते'** — अर्जुन जो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति को प्रकाशता है माने देखता है, जानता है, वह ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं ही हूँ ऐसा दृढ़ निश्चय जिसके हृदय में है वो सभी बन्धनों से छूट जाता है, उसको कोई बन्धन नहीं है। जन्म-मरण का ही बन्धन है तो आत्मा का **'न जायते म्रियते वा कदाचित्'**, आत्मा का जन्म-मरण होता ही नहीं है तो आत्मा को बन्धन कहाँ है? स्वभाव से ही ये मुक्त ही है, बन्धन न होने से मुक्त भी क्या? अज्ञान से अपने को बन्धन जानता था इसलिये ज्ञान से मुक्त होता है सचमुच में बन्धन नहीं है। तो ये सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश है और सब जितने जीव हैं भगवान कहते हैं वो सब मेरा ही स्वरूप हैं माने मैं ही सब शरीरों में जीवरूप से बैठकर देख रहा हूँ, दूसरा द्रष्टा है नहीं इसलिये अपने आप को सच्चिदानंदघन ब्रह्म जानो। न कोई बन्ध है, न कोई मोक्ष है, बन्ध-मोक्ष से हमेशा छूटा हुआ है। जन्म-मरण आदि बन्ध हैं सो आत्मा में हैं नहीं और ये दृश्य ही जन्मता मरता है और जन्मता मरता क्या है! सुषुप्ति में मानलो लय हो गया और जाग्रत-स्वप्न में उदय हो गया और यही संसार का भी जन्म-मरण ऐसा है, माया का है। तो माया से जो चीज़ होती है सचमुच में उसका जन्म-मरण क्या? अरे अज्ञान से निकल पड़ा और फिर अज्ञान में लीन हो गया। ये संसार का भी जन्म-मरण भ्रमरूप ही है, ये माया का खेल ऐसा ही है, प्रकट हो जाना और फिर छिप जाना, उसी को माया कहते हैं। तो सज्जनों अपने मन में ये भगवान के वचन दृढ़ विचार करके धारण करो और अपने को सच्चिदानंदघन ब्रह्म जानो। आत्मा में कोई कर्म नहीं है, सब देह मन बुद्धि में कर्म हैं, दृश्य में ही कर्म हैं आत्मा अकर्म है। इसलिये द्रष्टा-साक्षी बनके रहो, देखते रहो, जब तक प्रारब्ध का शरीर है तब तक ये छायारूप दृश्य को देखते रहो ये छायारूप दृश्य से अपना कोई हानि-लाभ नहीं है।। इति।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 59A - 33 May

९

ज्ञान की ७ भूमिकाएं

* वराह उपनिषद *

१ शुभेच्छा २ विचारणा ३ तन्मानसी ४ सत्वापत्ति ५ असन्शक्ति ६ पदार्थाभावनी ७ तुरीयगाह

१ शुभेच्छा

शुभेच्छा यानि शुभ की इच्छा। शुभ नाम शुभ स्वरूप आत्मा या परमात्मा का है। उस परमात्मा को पाने की इच्छा को शुभेच्छा भूमिका कहते हैं। अनेक जन्मों के पुण्य पाक से व्यक्ति को ऐसी इच्छा होती है कि मेरी दु:खों से निवृत्ति हो एवं सत्संग व शास्त्र कृपा से मैं सुख सिन्धु परमात्मा को प्राप्त करूँ। व्यवहार में भी अन्न धन पत्नी पुत्र परिवार आदि किसी को भी पाने के लिये, देश विदेश जाने के लिये कुछ साधन तो करना पड़ता है अत: परमार्थ परमात्मा है, उसके पाने के लिये जो इच्छा भई है उसके ४ साधन बतलाये गये हैं :— 'विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पदा व मुमुक्षुता'

- **विवेक** — विवेक कहते हैं सत् और असत् का अलग अलग विचार करना, सत् क्या है और असत् क्या है?

  ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत् एवं रूपो विनिश्चय:,
  सोयं नित्यानित्य वस्तु: विवेक: समुदाहृत:।।

  ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है, ब्रह्म नित्य है व जगत अनित्य है, इस प्रकार का निश्चय करना, नित्य अनित्य का जो विचार है वो विवेक है।
- **वैराग्य** — मिथ्या जगत से उपरामता होना, राग न होना, सत्य में अनुराग व झूठे असत्य में विराग (जैसे स्वप्न झूठा है उसमें विराग होता है)
- **षट्क सम्पदा** — 1. **शम** — मन को विषयों से रोकने का नाम शम है, 2. **दम** — इन्द्रियों का विषयों से रोकना दम कहलाता है, 3. **उपरम** — संसार के विषय-भोगों से विशेष वैराग्य होना व उनसे वमन की भॉति वितृष्णा होने को उपरति कहते हैं, 4. **तितिक्षा** — मन के धर्म सदी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख-दु:ख, मान-अपमान आदि को सहर्ष सहन करने को तितिक्षा कहते हैं, 5. **श्रद्धा** — *'गुरु वेद वचनेषु विश्वासा'*, वेद एवं गुरु के वचनों में पूरा विश्वास करने का नाम श्रद्धा है 6. **समाधान** — मन के परम शान्त हो जाने को समाधान कहते हैं। एकाग्र शान्त मन ही समाधान है।
- **मुमुक्षुता** —इन सब साधनों के अनन्तर फिर ब्रह्म को जानने की प्रबल जिज्ञासा तथा मोक्ष की प्रबल इच्छा को मुमुक्षुता कहते हैं। जैसे प्यासे को पानी के बिना कुछ अच्छा नहीं लगता, उसे पानी को पाने की तीव्र इच्छा होती है, तीन लोक के प्रलोभन को भी वो पानी के लिये ठुकरा देता है क्योंकि पानी के बिना तो उसके प्राण ही चले जायेंगे तो त्रिलोकी का राज्य भोगेगा कौन? इसलिये उसके लिये

पानी ही श्रेष्ठ है। तो जो मोक्ष का इच्छुक है वो त्रलोकी का राज्य को भी अस्वीकार कर देता है, वो भगवत् तत्त्व ही जानना चाहता है सज्जनों! क्योंकि जन्म-मरण की निवृत्ति भगवान के ज्ञान से ही होगी सज्जनों! ऐसी जो तीव्र इच्छा है मोक्ष की कि मैं जन्म-मरण के संसार से मुक्त हो जाऊँ, छूट जाऊँ और सत-चित्-आनंद ब्रह्म की मुझको प्राप्ति हो, इसको मुमुक्षुता कहते हैं। ज्ञान की भूमिकाओं में ये पहली भूमिका है। वह निष्काम कर्म, सगुण-निर्गुण भक्ति करता है तथा साधन चतुष्ट्य सम्पन्न होकर गुरु की शरण में जाता है। प्रणाम करके दीर्घ काल तक सेवा कर परमात्मा के विषय में प्रश्न करता है।

२ विचारणा

विचारणा दूसरी भूमिका है। विचारणा का ये अर्थ है कि ये 'विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पदा व मुमुक्षुता' चतुष्ट्य साधन सम्पन्न हो करके फिर गुरु की शरण में जाय और शास्त्र रीति से उनको दण्डवत् प्रणाम करके गुरु के सामने अपनी इच्छा व्यक्त करे तो अब गुरु की ओर से ये विचारणा भूमिका चलती है सज्जनों! विचार किसका किया जाता है? — क्या सत् है? क्या असत् है? क्या माया है? क्या ब्रह्म है? ईश्वर क्या है? जीव क्या है? जगत क्या है? इस सबको वेद के अनुसार गुरु बताते हैं, इसे विचारणा भूमिका कहते हैं। गुरु वेद मंत्रों के अनुसार बताते हैं **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या',** ब्रह्म ही सत्य है और जगत मिथ्या है स्वप्नवत्, जैसे स्वप्न झूठा है और स्वप्न को देखने वाला सत्य हैं। जो सदा रहे उसको सत्य कहते हैं और जो कभी रहे कभी न रहे उसे असत्य कहते हैं। जो स्वप्न को देखने वाला है, द्रष्टा साक्षी है वो तो सदा रहता है पर स्वप्न तो जाग्रत अवस्था में नहीं रहता इसलिये स्वप्न झूठा हो गया और जब गाढ़ निद्रा आती है तो जाग्रत स्वप्न दोनों नहीं रहते हैं तो ये दोनों झूठे हो गये। अब जब कोई समाधि में जाता है तो सुषुप्ति भी नहीं रहती है तो सुषुप्ति भी झूठी हो गयी। समाधि में जो स्थित है वो चेतन आत्मा वही सत्य रहा जो चौथा है, वही ब्रह्म है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है चौथा, उसी को तुरीय कहते हैं, वो सत्य है और जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों माया मात्र हैं, ब्रह्म ही सत्य है। ये विवेक है सज्जनों! ये विचार है, ये दूसरी भूमिका है इस प्रकार से सज्जनों इसे विचारणा भूमिका कहते हैं। चतुष्ट्य साधन सम्पन्न हो करके फिर गुरु की शरण में जाय और गुरु ये सब विचार प्रारम्भ करके बताते हैं कि हे शिष्य! जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों माया मात्र हैं और इन तीनों को जो देखने वाला है वो ब्रह्म है और तत्त्वमसि माने वही तू है इसलिये **'अयं आत्मा ब्रह्म'** हमारा तुम्हारा आत्मा ब्रह्म है। ये विचारणा भूमिका है।

/ सभी जीव सुख के प्यासे हैं। प्रत्येक जीव सुख की प्यास बुझाने के लिये जगत में सुख की खोज करता है इसलिये वह स्त्री पुत्र धन राज्य में सुख ढूँढता है पर प्यास न बुझने पर परीक्षा करने के बाद ही सुख-दुःख का ज्ञान होता है व जब कहीं सुख नहीं मिलता तो वह वैराग्य को प्राप्त होता है क्योंकि उसने परीक्षा करके देख लिया है कि आत्म तत्त्व किसी कर्म अथवा स्त्री, पुत्र, धन से नहीं मिलता अतः उस परम ब्रह्म परमात्मा को जानने के लिये गुरु के पास जाना पड़ता है /

गुरु के पास जाने पर ब्रह्म विचार आरम्भ होता है। **श्रोत्रिय—ब्रह्मनिष्ठ गुरु** (वेद को जानने वाला जिसकी ब्रह्म में पूरी निष्ठा हो) ही अपना व शिष्य का कल्याण कर सकता है क्योंकि कल्याण ब्रह्म निष्ठा से ही होता है। फिर गुरु अपनी शरण में आये हुए शिष्य को सम्यक ब्रह्म विद्या का उपदेश करे — ये विचारणा भूमिका है। श्रवण-मनन से असम्भावना दोष निवृत्त होता है व प्रमाण एवं प्रमेयगत् संशय का निवारण होता है।

श्रवणं तु गुरोः पूर्वम् मननं तदनन्तरम् ।
निदिध्यासनमित्यत्पूर्णबोधस्य लक्षणम् ।।

याज्ञवल्क्य मैत्रैयी से कहते हैं — **'आत्मावारे दृष्टभ्यः श्रोतव्यो, मनतव्यो, निदिध्यासितव्यः'।**
हे मैत्रैयी! अपने कल्याण के लिये ब्रह्म स्वरूप अपनी आत्मा को जानना चाहिये। श्रवण-मनन-निदिध्यासन करना चाहिये। श्रवण का स्वरूप —

वेदान्तानाम् अशेषानाम्, आदिमध्यावसानतः ।
ब्रह्मात्मन्येव तात्पर्यं, अतिधी श्रवणं भवेत् ।।

सभी वेदान्तों का आदि मध्य अन्त में ब्रह्म एवं आत्मा की एकता बताने में ही तात्पर्य है। सभी प्रस्थानत्रय में ब्रह्म और आत्मा की एकता का ही प्रतिपादन है।

३ तन्मानसी

तन्मानसी तीसरी भूमिका है (तनु माने कृष होना), ब्रह्म विद्या के उपदेश से मन की चंचलता (मन का संसार के विषयों में भागते रहना) क्षीण हो जाती है, संसार से आस्था उठ जाती है क्योंकि जान लिया कि ब्रह्म सत्य है और जगत तो मिथ्या है सज्जनों! विपरीत भावना के हटाने का बारम्बार प्रयास एवं मन का शान्त या कृष होना तन्मानसी है। श्रवण मनन से आत्मा-परमात्मा के एकत्व का निश्चय जो अर्थ सिद्ध होता है कि 'मैं सत्-चित्-आनंद हूँ' इस सजातीय वृत्ति का तैल धारावत् चिन्तन **'सजातीय प्रवाह'** है व इसकी बारम्बार आवृत्ति **'सजातीय आवृत्ति'** है तथा संसार चिन्तन का परित्याग **'विजातीय तिरस्कृति'** है।
'संसार मिथ्यात्व शिव आत्म तत्त्वम्' — ऐसा शंकराचार्य ने कहा, ये विपरीत भावना का नाशक है।
शरीर में जो आत्म भाव हो गया है कि — 'मैं पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, वर्णाश्रम से युक्त हूँ आदि, तथा जन्मों-जन्मों के दृढ़ अभ्यास के कारण जीव की संसार में सत्-बुद्धि व सुख-बुद्धि हो जाती है' — अतः इस विपरीत भावना को हटाना है। यह तन्मानसी अथवा **'सविकल्प समाधि'** कहलाती है। इसमें 'ध्याता-ध्यान-ध्येय' त्रिपुटी बनी रहती है। इसी की परिपक्व अवस्था **'निर्विकल्प समाधि'** सत्वापत्ति है जिसमें त्रिपुटी विलीन हो जाती है।

४ सत्वापत्ति

यहाँ सत्व नाम सच्चिदानंद ब्रह्म का है। इस प्रकार शान्त मन व एकाग्र मन से जब वह ब्रह्म विद्या सुनता है तब इस चौथी भूमिका में ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी और उसके लिये सभी महावाक्य हैं—
'अयं आत्मा ब्रह्म' (मा०उ०-अथर्वेद), **'तत्त्वमसि'** (छा०उ०-सामवेद) जो ब्रह्म है वही तू है, **'प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म'** (ऐ०उ०-ऋगवेद) जो प्रज्ञान है वो आनंद स्वरूप ब्रह्म है, प्रज्ञान माने जीव, **'अहं ब्रह्मास्मि'** (वृह०उ०-यजुर्वेद) जो अहं तत्त्व है उसका शुद्ध अर्थ ब्रह्म ही होता है शरीर नहीं होता है।

अहं ही द्विविधा प्रोक्ता शुद्धंचाशुद्धमेव च,
देहोऽहं इति अशुद्धं स्यात् शुद्धंसोऽहं मुनिस्मृता।।

दो प्रकार का अहं होता है, अज्ञान काल में देह में अहं भाव होता है—स्त्रीऽहं (मैं स्त्री हूँ) पुरुषोऽहं (मैं पुरुष हूँ), मैं ब्राह्मण हूँ, वैश्य हूँ, शूद्र हूँ ये अहं भाव देह में होता है और ब्राह्मण वैश्य शूद्र आदि जाति ये स्थूल शरीर में ही होती हैं सूक्ष्म शरीर में भी नहीं। ब्रह्मोपनिषद में लिखा है —

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसौन्दर्यजातयः,
स्थूलदेहगता एते स्थूलाद्भिन्नस्य मे नहि।।

ब्राह्मणपना, कुल, गोत्र, रूप, सौन्दर्य और जातियाँ ये स्थूल देह में ही होते हैं और सूक्ष्म शरीर में इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण आदि हैं सज्जनों! उसके धर्म बताते हैं —

क्षुत्पिपासान्ध्यबाधिर्यकामक्रोधादयोऽखिलाः,
सूक्ष्मदेहगता एते सूक्ष्माद्भिन्नस्य मे नहि।।

क्षुधा-पिपासा माने भूख-प्यास, अंधापना बहरापना, काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य ईर्षा द्वेष ये सज्जनों आसुरी सम्पत्ति हैं और दया क्षमा शान्ति भक्ति ये दैवीय सम्पत्ति हैं सज्जनों! ये सूक्ष्म देह में होती हैं, इन्द्रिय मन बुद्धि आदि में होती हैं। अच्छे और बुरे विचार मन में ही आते हैं, कभी अच्छे विचार और कभी बुरे विचार, ये सब सूक्ष्म शरीर में ही होते हैं क्योंकि सूक्ष्म शरीर में ही इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण हैं इसलिये सूक्ष्म शरीर में ही ये सब विचार आयेंगे। मैं तो सूक्ष्म शरीर का द्रष्टा साक्षी हूँ, सूक्ष्म शरीर से मैं अलग हूँ इसलिये ये धर्म मुझमें नहीं हैं।

प्रिय मोद प्रमोदादि धर्माकारण देहगाह,
न सन्ति मम नित्यस्य निर्विकार स्वरूपिणा।।

प्रिय मोद प्रमोद और निद्रा आलस्य ये कारण देह में हैं, मैं तो निर्विकार हूँ। ये प्रिय मोद प्रमोदादि धर्म मुझमें नहीं हैं, मैं इससे अलग हूँ, तो ये तीनों देहों के धर्म हैं और मैं तीनों देहों का द्रष्टा साक्षी चौथा हूँ सज्जनों! मैं शुद्ध सच्च्दिानंद ब्रह्म हूँ, इस प्रकार से सज्जनों ये ज्ञान होता है तो संसार में सत्बुद्धि और सुखबुद्धि खत्म हो जाती है और उसे अपने स्वरूप का संशय रहित सम्यक यथार्थ ज्ञान हो जाता है। सत्व नाम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म की प्राप्ति है, इस ४थी भूमिका को **सत्वापत्ति** (सत्व=ब्रह्म, आपत्ति=प्राप्ति) कहते हैं।

'**ध्याता** (चिदाभास)-**ध्यान** (मन)-**ध्येय** (ब्रह्म)' त्रिपुटी सब ध्येय रूप ब्रह्म हो जाती है यानि जब त्रिपुटी विलीन हो जाती है तब इसे **सत्त्वापत्ति** कहते हैं। अब संसार स्वप्न के समान दीखता है। ज्ञान की ये परिपक्व अवस्था ही **'निर्विकल्प समाधि'** कहलाती है। पहली ३ अवस्थायें जागृत की अवस्था हैं और संशय रहित ज्ञान की इस ४थी अवस्था में जगत स्वप्नवत् लगता है। इसे ***ब्रह्मविद्*** कहते हैं। इसे कभी भी देह में आत्मभाव नहीं होता जैसे दूध से दही और फिर मक्खन पुनः मट्ठे में नहीं मिलता इसी प्रकार आत्मा संसार (देह) में नहीं मिलता अतः वह जन्म-मरण, सुख-दुःख से छूट गया। अब इसे आवृत्ति की आवश्यकता नहीं है। अब यह देहादि प्रपंच में कभी नहीं मिलता।

शतेन ज्ञानम् आयाति, सहस्त्रेण च तिष्ठति ।
लक्ष्य बारम् जपेति सु, प्रेत्य चेद् च तिष्ठति ।।

१०० बार श्रवण किये हुए ज्ञान का मनन करे तो ज्ञान हो जाता है, सहस्त्र बार मनन करे तो टिक जाता है भूलता नहीं और लाख बार मनन करे तो किसी प्रारब्ध वश यदि दूसरा जन्म हुआ भी तो पहले जन्म का ज्ञान नहीं भूलता। संसार स्वप्नवत् हो जाता है। संसार में स्नेह, प्रेम नहीं रहता, वैराग्य हो जाता है। संसार झूठा लगता है, पूरा प्रेम ब्रह्म में ही रहता है। उसका जन्म-मरण नहीं होता वह जीवन मुक्त हो गया। जीवन-मुक्ति के विशेष आनंद की निम्न ३ अवस्थायें हैं। प्रारब्ध पर्यन्त अपना शरीर भुने हुए बीज की तरह दिखता है। यह जन्म का हेतु नहीं है परन्तु मुमुक्षु की क्षुधा अवश्य मिटा सकता है। प्रारब्ध पूर्ण होने पर शरीर भी ब्रह्म रूप में लीन हो जाता है।

।। आगे की ३ अवस्थायें निद्रा रूप हैं ।।

५ असन्शक्ति

इसे पॉचवी भूमिका में फिर संसार में कोई आसक्ति नहीं रह जाती है असन्शक्ति होती है कोई आसक्ति नहीं होती। सब काम करता है, देखता है, सुनता है, खाता है, पीता है, सब पत्नी पुत्र परिवार का पालन पोषण भी करता है परन्तु आसक्ति नहीं रहती है। देह इन्द्रिय शरीरों के जो धर्म हैं उनका पालन करता हुआ भी आसक्ति नहीं करता है। समाधि के अधिक प्रयास से यह ५वीं

भूमिका प्राप्त होती है। इसमें संसार में आसक्ति बिल्कुल समाप्त हो जाती है। निद्रालु जैसा यह ब्रह्म के ध्यान चिन्तन में बना रहता है। इसे ***ब्रह्मविद्-वर*** कहते हैं।

६ पदार्थाभावनी

इस छटी भूमिका में सब पदार्थों का अभाव हो जाता है और वह समाधि में स्थित हो जाता है। इसके मन में एक ब्रह्म ही रहता है, संसार का कोई पदार्थ नहीं रहता। समाधि के गहरे अभ्यास से गाढ़ी निद्रा बनी रहती है। यह समाधि आसानी से नहीं टूटती। किसी के द्वारा जगाने पर ही यह नित्य कर्म एवं भोजन करते हैं। समाधि की इस अवस्था को ***ब्रह्मविद्-वरीयान्*** कहते हैं।

७ तुरीयगाह

प्रगाढ़ समाधि के समान ७वीं भूमिका है जिसमें ज्ञानी समाधि में ही स्थिर रहता है व समाधि से वह उठता ही नहीं है, उसकी अखण्ड समाधि लग जाती है जैसे शिव की अखण्ड-अपार समाधि। प्रारब्ध पर्यन्त भले ही शरीर दिखाई पड़ता रहे परन्तु वो तो ब्रह्म में ही लीन हो जाता है। इस अवस्था को ***ब्रह्मविद्-वरिष्ठ*** कहते हैं।

इस प्रकार से ये सात भूमिकायें वाराहोपनिषद में बतलायी गयीं हैं और इन्हीं सात भूमिकाओं को वशिष्ठजी ने भी लिखा है योगवाशिष्ठ में। ब्रह्म तत्त्व को समझाने के लिये ये भूमिकायें होती हैं सज्जनों! और जब ब्रह्म तत्त्व को समझ गया उसके लिये फिर क्या है वो तो पूर्ण हो गया सज्ज्नों!

चौथी भूमिका में सज्जनों ज्ञान हो जाता है, ब्रह्मविद् कहते हैं उसको। लोक हित के लिये ४थी भूमिका वाला विद्वान को ही गुरु की पद्वी प्राप्त होती है क्योंकि वह ब्रह्म का विचार जो ब्रह्म तत्त्व इसे अपने गुरु से प्राप्त हुआ है उस ब्रह्म तत्त्व को गॉव गॉव, नगर नगर में जा जा करके सब लोगों को ब्रह्म तत्त्व का उपदेश देता है इसलिये लोकहित के काम में ४थी भूमिका वाले आते हैं तथा ५वीं, ६टी व ७वीं भूमिका वाले समाधि में स्थित रहते हैं, बस अपने स्वरूप में स्थित हैं शास्त्र पढ़ने से संसार में सत्य बुद्धि नष्ट हो जाती है व ज्ञान होने पर संसार का अभाव हो जाता है। अपने ब्रह्म स्वरूप के अनुभव के बाद वह भुने हुए चने के समान हो जाता है जो क्षुधा तो शान्त कर सकता है पर अंकुरित नहीं हो सकता ऐसे ही इस ज्ञानी पुरुष का दूसरा जन्म तो नहीं होगा पर वह दूसरे लोगों का कल्याण अवश्य कर सकता है।

'प्रारब्ध नाशात् प्रतिभान नाशः'

प्रारब्ध पर्यन्त उसका शरीर रहेगा, प्रारब्ध पूरा होने पर उसे शरीर की प्रतीति भी नहीं रहेगी व शरीर पूरा हो जायेगा। ज्ञानाग्नि से शरीर दग्ध तो हो जाते हैं पर भगवान के संकल्प के अनुसार ये शरीर रहेगा व तब तक कर्म करना ही पड़ेगा। ईश्वर का संकल्प पूरा होने पर ये शरीर नष्ट हो जायेगा। संकल्प पूरा होने तक भस्म हुए शरीर भी दीखते रहेंगे जैसे अग्नि जलने से ईंधन जल जाता है ऐसे ही ज्ञानाग्नि से सभी कर्म भस्म हो जाते हैं क्योंकि कर्म ही जन्म-मरण का बीज होता है ।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 48 B - Oct 41

१०

ब्रह्म का स्वरूप एवं तटस्थ लक्षण

वृत्ति व्याप्ति और फल व्याप्ति

अशरण शरण अकारण करुण करुणावरुणालय कर्तु अकर्तु अन्यथा कर्तु समर्थ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त: स्वरूप अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक परात्म पूर्णतम् पुरुषोत्तम परम ब्रह्म सच्चिदानंदघन सर्वशक्तिमान सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान के ज्ञान से जीव सर्व दु:खों से और मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है अर्थात् उसे किसी प्रकार का कोई भी दु:ख नहीं आता, नित्य सुख-शान्ति को प्राप्त कर लेता है, मृत्यु नहीं आती अमृतत्त्व को प्राप्त कर लेता है इसलिये जीव को अपने परम कल्याण के लिये भगवान का ज्ञान परम आवश्यक है। भगवान के ज्ञान का साधन भगवान की वाणी वेद है और वेद का अर्थ बताने वाले गुरु हैं।

सज्जनों! वेद भगवान का स्वरूप दो प्रकार का बताता है, एक स्वरूप लक्षण है और एक तटस्थ लक्षण है। **स्वरूप लक्षण** — 'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म' ये ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है माने ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप क्या है? अनंत सत्य, अनंत ज्ञान, अनंत आनंद, जिसका न आदि हो न अंत हो उसे अनंत कहते हैं। आदि अंत रहित सत्य है, ऐसे ही आदि अंत रहित अनंत अखण्ड ज्ञान है, ऐसे ही आनंद का सिन्धु है जिसका न आदि है न अंत है, ये ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है सज्जनों! **तटस्थ लक्षण** — जो जिसके एक देश में रहे, व्यावर्तक हो और कदाचित हो, ये तटस्थ लक्षण है। जैसे दृष्टान्त से समझ सकते हो, कोई ब्रह्मदत्त नाम का ज्ञानी ब्राह्मण था उसके पास अनेक विद्यार्थी ब्रह्म-ज्ञान के लिये आया करते थे। तो यज्ञदत्त नामक कोई ब्राह्मण को इच्छा हुई कि मैं ब्रह्मदत्त के पास जाऊँ और ब्रह्म-ज्ञान सीखूँ तो वो उसके गॉव गया और उसके गॉव जा करके रास्ते में ही सड़क पर खड़ा हो करके किसी भाई से पूछा, भाई! आप ब्रह्मदत्त का घर जानते हो? उसने कहा हॉ जानता हूँ, बोले मुझे बतादो तो वो दूर से आंगुल्य निर्देश करके बताता है कि वो ब्रह्मदत्त का घर है। लेकिन ब्रह्मदत्त के घर के आस-पास और भी बहुत से घर थे तो ये ही ब्रह्मदत्त का घर है ऐसा पक्का निश्चय नहीं होता था दूर से बताने में, कोई चिन्ह हो यदि ब्रह्मदत्त के घर में तो पक्का निश्चय हो जाये। उसी समय क्या हुआ, एक काक उड़ता हुआ आया और ब्रह्मदत्त के घर में ऊपर बैठ गया, अब वो ब्रह्मदत्त का घर बताने के लिये चिन्ह बन गया, उसने कहा कि वो ब्रह्मदत्त का घर है जिसमें काक बैठा हुआ है। दीख रहा है काक बैठा है जिस घर में ? बोले हॉ! कहा वो ही ब्रह्मदत्त का घर है। अब ये काक **कदाचित्** है यानि सदा नहीं बैठा रहेगा और **व्यावर्तक** है यानि सब घरों से विलग करके केवल ब्रह्मदत्त के घर का पक्का ज्ञान करा रहा है और **एक देश में** है माने ब्रह्मदत्त के घर में ऊपर एक थोड़ी जगह में यानि दो अंगुल की जगह में बैठा हुआ है, तो ब्रह्मदत्त के घर को तो ये बता दिया, थोड़ी देर में तो उड़ जायेगा वो लेकिन अभी तो उसने ब्रह्मदत्त के घर को बता ही दिया न! इसी प्रकार से श्रुति भगवती **तटस्थ लक्षण** ब्रह्म को बताती है:—

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।

यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्ब्रह्म'

हमको आपको ये संसार तो दिखाई ही पड़ता है, ब्रह्म नहीं दिखाई पड़ता है पर संसार दिखाई पड़ता है। शिष्य ने पूछा कि ब्रह्म कौन है? गुरु ने कहा ये संसार देख रहे हो? जिसमें ये संसार उत्पन्न होता है और जिसमें रहता है फिर जिसमें लय हो जाता है वो ब्रह्म है। तो ये संसार ब्रह्म के एक देश में है माने थोड़ी जगह में बैठा होता है, **'एकांशेन स्थितो जगत्'**, ब्रह्म की तिल भर जगत में ये संसार पड़ा है। **व्यावर्तक है** यानि संसार कहीं और नहीं है बल्कि ब्रह्म में ही स्थित है और **कदाचित्** है माने सदा न रहेगा, जैसे काक उड़ गया ऐसे ही ये भी उड़ जायेगा, शुद्ध ब्रह्म ही रह जायेगा अंत में। इसको तटस्थ लक्षण कहते हैं सज्जनों! और इसको उपलक्षण भी कहते हैं। वेद के अवान्तर वाक्य हैं और महावाक्य भी हैं। ब्रह्म अथवा जीव के स्वरूप वाचक वाक्यों को **अवान्तर वाक्य** कहते हैं। अवान्तर वाक्य *ब्रह्म का स्वरूप* लक्षण बताता है — **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'** ब्रह्म का स्वरूप क्या है? अनंत सत्य, अनंत ज्ञान, अनंत आनंद और *जीव का भी स्वरूप* बताता है अवान्तर वाक्य — **'य एष हृदि अन्तर्ज्योतिः पुरुषः'**, हमारे तुम्हारे शरीर के अन्दर इन्द्रियाँ हैं, मन है, बुद्धि है, अन्तःकरण है, हृदय है, उसके भी भीतर जो अनंत ज्योति जगमगा रही है वो जीव का स्वरूप है। भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं :—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः,
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।। BG - 03.42 **।।**

अर्जुन! शरीर के बाहर तो ये संसार है और शरीर के भीतर इन्द्रियाँ हैं (आँख कान नाक आदि), और इन्द्रियों के भी भीतर मन है, और मन से भी भीतर बुद्धि है, और जो बुद्धि से भी भीतर है, परे है वह तुम्हारा, जीव का स्वरूप है यानि जो बुद्धि से भी ऊपर है वही चैतन्य ज्योति है शरीर के भीतर, वो हमारा तुम्हारा जीवों का स्वरूप है। चैतन्य ज्योति है, सदा जगमगाती रहती है, वो भी आदि अन्त रहित है। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि कभी रहते हैं कभी नहीं रहते हैं परन्तु वो ज्योति हमेशा जगमगाती रहती है और ज्ञान ज्योति है। उसको न बुद्धि जानती है, न मन जानता है, न इन्द्रियाँ जानती है, न शरीर जानता है और शरीर के बाहर जो संसार है ये भी उसको नहीं जानता है परन्तु वो चैतन्य ज्योति है, ज्ञान ज्योति है इसलिये वो सबको जानता है, देखता है। तो वो हमारा तुम्हारा जीवों का स्वरूप है सज्जनों! बुद्धि से भी परे। देखो हम बुद्धि को भी जानते हैं, मन को भी जानते हैं, इन्द्रियों को भी जानते हैं, शरीर को भी जानते हैं और इस संसार को भी जानते हैं परन्तु ये सब कोई हमको नहीं जानते। ये जो हमारी चैतन्य ज्योति है, ज्ञान ज्योति है ये सदा एक समान जगमगाती रहती है, कभी बुझती नहीं है, उदय-अस्त रहित ये ज्योति है और ये कब से जल रही है ये भी कुछ पता नहीं है, अनंत काल से जल रही है। कहते हैं कितने ही सहस्त्रों दिन बीत गये, महीने बीत गये, वर्ष बीत गये, युग बीत गये और कल्प बीत गये और आगे भी आवेंगे परन्तु हमारी तुम्हारी जो ज्ञान ज्योति है सज्जनों! वो दिन, मास, वर्ष, युग, कल्प सबको देखती है, प्रकाशती है, अनंत-अखण्ड ज्योति है, वो उदय-अस्त नहीं होती। दिन आते हैं चले जाते हैं, महीने आते हैं और चले जाते हैं, वर्ष भी आते हैं और चले जाते हैं, युग और कल्प भी कितने आते हैं और चले जाते हैं, आगे भी आयेंगे और चले जायेंगे परन्तु हमारी तुम्हारी जीवात्मा की जो ज्ञान ज्योति है न आती है न जाती है, सबको प्रकाशती रहती है। दिन में जो संसार दिखाई पड़ता है प्रकाश में उस संसार को भी प्रकाशती है ये ज्ञान ज्योति। रात में अँधेरा होता है तो अँधेरे को भी प्रकाशती है माने हम आप दिन को भी जानते हैं और रात को भी जानते हैं। दिन और रात क्या है उजियाला और अँधेरा। उजियाला हो तो दिन है और अँधेरा हो तो रात। दिन रात दोनों को हम देखते हैं, जानते हैं, प्रकाशते हैं पर ये हमको नहीं जानते, सज्जनों! ये हमारा तुम्हारा स्वरूप है। इसलिये न तो हम देह हैं, न इन्द्रिय हैं, न मन हैं और न बुद्धि हैं क्योंकि ये हमारे

दृश्य हैं, हम इनसे ऊपर हैं, इन सबको देखने वाले द्रष्टा साक्षी चेतन हैं और ये सब जड़ हैं, अज्ञान रूप हैं — ये हमारा तुम्हारा स्वरूप है। अब वेद महावाक्य सुनाता है, हे जीव! 'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'— ये तो ब्रह्म का स्वरूप बताया गया और तेरा स्वरूप बताया गया — **'य एष हृदि अन्तर्ज्योतिः पुरुषः'** यानि जो हृदय के अन्दर अनंत चेतन ज्योति जगमगा रही है वो हमारा स्वरूप बताया गया। अब महावाक्य कहता है 'तत्त्वमसि' — हे जीव! जो ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप है—'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म', 'तत्त्वमसि'—वही तेरा स्वरूप है। ये महावाक्य दोनों का एकत्व करता है कि ब्रह्म और आत्मा एक है। **'अयं आत्मा ब्रह्म, सो अयं आत्मा'**— हमारा तुम्हारा आत्मा ब्रह्म है और ब्रह्म हमारा तुम्हारा आत्मा है। इस प्रकार से ब्रह्म और आत्मा की एकता बताता है तत्त्वमसि महावाक्य—हे जीव! वही तेरा स्वरूप है जो ब्रह्म का स्वरूप है। तत्त्वमसि महावाक्य में तीन पद हैं 'तत्—त्वं—असि', तत्=वह, त्वं=तू और असि=है माने वह ब्रह्म ही तू है। अब जीव और ईश्वर का स्वरूप अलग अलग बताया गया है।

कार्योपाधि अहं जीवः, कारणोंपाधि ईश्वरः,
कार्य कारणताम् हित्वा, पूर्णबोधो वशिष्यते ।।
माया बिम्बो वशीकृत्ये ताम्स्या सर्वज्ञ ईश्वरः,
अविद्यावश दसत्वन्या तद्वैचित्या अनेकधा ।।

शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म में एक महामाया शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, वो महामाया शक्ति कैसी है जैसे पुरुष से छाया प्रकट होती है। ब्रह्म पुरुष है, वो छाया के समान झूठी मिथ्या प्रकट हो जाती है, फिर वो दो रूप धरती है, **'विद्या च अविद्या च स्वयमेव भवति'**— विद्या और अविद्या ये दो रूप वो धारण करती है। तीन गुण हैं उसमें—सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण। शुद्ध सत्वगुण की प्रधानता से उसका विद्या नाम पड़ जाता है और मलिन सत्वगुण की प्रधानता से अविद्या नाम पड़ जाता है। अब विद्या और अविद्या में जो शुद्ध ब्रह्म है सच्चिदानंद उसका प्रतिबिम्ब या आभास पड़ता है। तो विद्या में जो आभास पड़ा ब्रह्म का उसका नाम तो ईश्वर हो गया और अविद्या में उसी ब्रह्म का आभास पड़ा उसका नाम सज्जनों जीव हो गया, ये अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान रहा और विद्या उपाधि जिसकी है उसका नाम ईश्वर हुआ और वो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान हुआ तथा जगत की उत्पति-पालन-संहार का वो काम करता है। ईश्वर और जीव दोनों में ३ चीज़ें हैं — *शुद्ध ब्रह्म*, ये तो आधार- अधिष्ठान है, इसमें प्रकट भयी *विद्यारूप माया* और उसमें पड़ा *ब्रह्म का प्रतिबिम्ब*, ये तीन चीज़ मिल करके **ईश्वर** नाम पड़ा—ये ईश्वर का वाच्यार्थ कहलाता है, और मलिन सत्वगुण प्रधान अविद्या है, उसमें भी ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब पड़ रहा है तो वो *शुद्ध ब्रह्म* और *अविद्या* और उसमें पड़ा प्रतिबिम्ब, यही तीन चीज़ मिल करके इसका नाम **जीव** हुआ सज्जनों!—ये जीव का वाच्यार्थ हुआ माने जीव कहने से इन ३ चीज़ों को ग्रहण करना। ईश्वर तो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है और जीव अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान है। अब ये प्रतिबिम्बों में ही भेद है सर्वज्ञता और अल्पज्ञता का सज्जनों! सर्वशक्तिमान और अल्पशक्तिमान का भेद वो जो प्रतिबिम्ब पड़े हुए हैं उनमें है और दोनों का जो परमार्थ स्वरूप है, सत्य स्वरूप है, लक्ष्यार्थ है वो तो ईश्वर का भी शुद्ध ब्रह्म है और जीव का भी शुद्ध ब्रह्म है सज्जनों! तो विद्या अविद्या-माया को यदि हटा दिया जाये तो शुद्ध ब्रह्म ही शेष रहेगा सज्जनों! और विद्या-अविद्या रूप माया हट सकती है क्योंकि ये सत्य नहीं है, छाया के समान झूठी है इसलिये उनका बाध हो सकता है। तो विद्या-अविद्या रूपी माया जब हटा दी जायेगी सज्जनों! तो दोनों का वास्तविक स्वरूप शुद्ध सत्य ब्रह्म ही अन्त में शेष रह जायेगा। लक्ष्यार्थ ही सत्य है सज्जनों! वाच्यार्थ मिथ्या है। अब जो जीव ज्ञान करता है उसका वो जो आभास भाग है थोड़ा ज्ञान उस आभास में भी होता है, तो आभास संसार का भी ज्ञान करता है और ब्रह्म का भी ज्ञान करता है सज्जनों! जीव को ही तो भगवान का, बह्म का ज्ञान होता है न! अब वो तो आभास है सज्जनों! और संसार की वस्तुओं का भी ये ही जीव ज्ञान करता है, तो

ब्रह्म और संसार दोनों के ज्ञान की प्रक्रिया क्या है? तो कहते हैं :—

वृत्ति व्याप्ति और फल व्याप्ति

ब्रह्म और संसार दोनों के ज्ञान की प्रक्रिया में त्रिपुटी होती है जैसे ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय, द्रष्टा-दर्शन-दृश्य आदि। त्रिपुटी में इस प्रकार से **वृत्ति-व्याप्ति** और **फल-व्याप्ति** दो होती हैं। अन्त:करण उपहित जो चेतन का आभास है, प्रतिबिम्ब है, ये जानने वाला अन्त:करण तो **'ज्ञाता'** हो जाता है सज्जनों! और जिसको जाना जाय वो पदार्थ **'ज्ञेय'** हैं जैसे घट मठ आदि और जानने का जो साधन है वो वृत्ति **'ज्ञान'** कहलाती है, ये त्रिपुटी बन गयी सज्जनों! बुद्धि की जो वृत्ति बनती है इसको **'वृत्ति-व्याप्ति'** कहते हैं, तो बाह्य पदार्थों को देखने के लिये (जैसे 'ये घट है', बाहर है घड़ा उसको देखने के लिये) अन्त:करण से वृत्ति निकलती है —

बुद्धितस्तु चिदाभासौ द्वावौपिव्याप्नतो घटम्,
तत्राज्ञानम् धियानष्येत् आभासेन घटस्फुरेत्।।

जो बुद्धि-वृत्ति है उसमें चिदाभास भी है, अब वो दोनों अन्त:करण से नेत्र इन्द्रिय के द्वारा साथ साथ निकलते हैं, अब वो वहॉ तक गये जहॉ घड़ा रखा है और उसको व्याप्त कर लिया और वो जा करके घड़े का रूप बन गये जैसे जो बिजली होती है न वो जैसा बल्ब हो वैसा ही रूप धर लेती है यानि जैसे लम्बा Rod है तो बिजली भी लम्बी लम्बी बन जाती है, गोल बल्ब है तो गोल बन जाती है माने जैसा बल्ब हो वैसा ही रूप धर लेती है। बल्ब लाल है, पीला है, नीला है तो बिजली भी लाल, पीली, नीली हो जाती है। इसी प्रकार से जैसा ज्ञेय पदार्थ घट है बुद्धि की वृत्ति भी वैसी ही बन जाती है जैसा पदार्थ होता है। नेत्रों से निकलती है भीतर बुद्धि की वृत्ति और घट का आकार धर लेती है जिसमें चिदाभास भी साथ में है। घट, जो अन्धकार से आवृत है, उस अज्ञान-अन्धकार को बुद्धि की वृत्ति नष्ट कर देती है यानि जो घट सम्बन्धी अज्ञान है उसको बुद्धि की वृत्ति ने नाश कर दिया और बुद्धि में जो चिदाभास है वो घट को प्रकाशता है माने घट को जानता है—'अयं घट:' ये घट है, ये ज्ञान चिदाभास को होता है। जैसे अँधेरे में रखा हुआ कोई पदार्थ हो उसको देखने के लिये दीपक चाहिये और नेत्र चाहिये। तो दीपक से तो अँधेरा हट जाता है और नेत्रों से ज्ञान होता है—'अयं घट:' ये घड़ा है, इसी प्रकार से बुद्धि की वृत्ति अज्ञान-अन्धकार नष्ट कर देती है और जो चिदाभास है वो नेत्र का काम करता है—'अयं घट:' ये घड़ा है। तो बुद्धि-वृत्ति ने अज्ञान को हटाया और जो चिदाभास है उसने वस्तु का ज्ञान कर लिया सज्जनों! तो संसार के पदार्थों के जानने में **वृत्ति-व्याप्ति** और **फल-व्याप्ति** (बुद्धि-वृत्ति को *वृत्ति-व्याप्ति* और चिदाभास को *फल-व्याप्ति* कहते हैं) दोनों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार से इन दोनों से संसार की वस्तुओं का ज्ञान होता है।
अब बताते हैं कि ब्रह्म ज्ञान कैसे होता है।

ब्रह्मणि अज्ञान नाशाय वृत्ति व्याप्ति अपेक्षिता,
स्वयं स्फुरण रूपत्वान् नाभासोपि युज्यते।।

ब्रह्म भी अज्ञान से आच्छादित है इसीलिये ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता। ब्रह्म का अज्ञान नाश करने के लिये वृत्ति-व्याप्ति की अपेक्षा है और वो महावाक्य से बनती है। जीव कहता है मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूँ, इसको अज्ञान कहते हैं। सज्जनों! इस अज्ञान के नाश करने के लिये

अवान्तर और महावाक्य हैं — 'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म' और 'तत्त्वमसि'। जो सच्चिदानंद ब्रह्म है, हे श्वेतकेतु! वही तेरा स्वरूप है, ब्रह्म ही तेरा स्वरूप है सज्जनों! तो जो बुद्धि (चिदाभास के सहित बुद्धि की वृत्ति) अज्ञान में अपने को अभी तक यही जानती थी कि मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं नपुन्सक हूँ (वेद वाक्य जो ईश्वर का महावाक्य है एवं परम प्रमाणरूप है) उस ईश्वर के वचन 'महावाक्य' ने कहा — नहीं! तू स्त्री, पुरुष, नपुन्सक नहीं है, ये देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण तेरा स्वरूप नहीं है, 'तत्त्वमसि' वह ब्रह्म तू है। तब इसका ये अज्ञान चला गया कि मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हूँ, ये अज्ञान जाता रहा। अब इसको ये ज्ञान हुआ 'अहं ब्रह्मास्मि', मेरा स्वरूप, अहं का स्वरूप ब्रह्म है, इससे अज्ञान जाता रहा। वृत्ति-व्याप्ति यानि बुद्धि की वृत्ति इस प्रकार से बनने से कि मैं ब्रह्म हूँ, देह इन्द्रिय मन बुद्धि नहीं हूँ, अज्ञान तो चला गया। अब ये जो बुद्धि में आभास है 'चिदाभास' है इसका क्या उपयोग हुआ? आभास का कोई उपयोग यहाँ नहीं है। संसार के पदार्थ जानने में आभास ज्ञान कर लेता था परन्तु ब्रह्म स्वयं प्रकाश है, उसके जानने के लिये चिदाभास की क्या आवश्यकता है वो तो स्वयं चेतन है, स्वयं प्रकाशरूप है इसलिये उसमें चिदाभास का उपयोग नहीं होता है। चिदाभास स्वयं वही ब्रह्म में समा जाता है, खाली वृत्ति-व्याप्ति के द्वारा, महावाक्य के द्वारा वृत्ति बनती है कि मैं ब्रह्म हूँ और चिदाभास चेतन में समा जाता है। क्योंकि जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब सूर्य को नहीं प्रकाशित कर सकता है, सूर्य तो स्वयं प्रकाश है ऐसे ही ब्रह्म सूर्य के समान प्रकाशमान् है उसका जो प्रतिबिम्ब बुद्धि में पड़ रहा है ये प्रतिबिम्ब ब्रह्म को नहीं प्रकाशता है, संसार की छोटी छोटी वस्तुओं को ही प्रकाशता है केवल। तो दृष्टान्त बताते हैं — जैसे कोई स्फटिक परम प्रकाशमान् मणि किसी बर्तन से ढकी हो और अँधेरे में रखी हो भला! तो उसको देखने के लिये क्या करना चाहिये? अँधेरे में रखे पदार्थ को देखने के लिये दो चीज़ की ज़रूरत पड़ा करती है न! एक तो पहले अँधेरा हटाना चाहिये, तो दीपक से अँधेरा हटाया जा सकता है और नेत्रों से वो वस्तु देखी जा सकती है। संसार में जो अँधेरे में चीज़ रखी है उसको देखने के लिये दीपक चाहिये और नेत्र चाहिये। दीपक से अँधेरा हटाते हैं और नेत्रों से वस्तु को देखते हैं परन्तु मणि को देखने के लिये केवल पात्र ही हटाना है, पात्र से ढकी है वो मणि, पात्र को हटा दो, मणि को खोल दो तो सज्जनों वो प्रकाशमान् मणि है वो तो अपने आप ही प्रकाशित होती रहती है। इसलिये उसको देखने के लिये दीपक की ज़रूरत नहीं होती है क्योंकि वो तो स्वयं प्रकाशित हो रही है। जो प्रकाशमान् पदार्थ नहीं हैं उनको देखने के लिये नेत्रों की और दीपक की, दो चीजों की ज़रूरत होती है। ये मणि तो स्वयं प्रकाशमान् है तो जो ब्रह्म है वो स्वयं प्रकाशमान् है, आत्मा स्वयं प्रकाशमान् है। तो वृत्ति-व्याप्ति से खाली अज्ञान-अंधकार ढक्कन को ही हटा दिया फिर तो स्वयं अपना स्वरूप आत्मा ही प्रकाशित होता है। इस प्रकार से वृत्ति-व्याप्ति और फल-व्याप्ति इन दोनों से तो संसार की वस्तुओं का ज्ञान होता है और ब्रह्म के ज्ञान के लिये केवल वृत्ति-व्याप्ति से अज्ञान-अंधकार ही हटाया जाता है कि अहं ब्रह्म न जानामि' मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूं, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, ऐसी जो वृत्ति है अज्ञान वाली, इसी को हटाया जाता है। महावाक्य ने कहा नहीं! तू स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण ये कुछ नहीं है, तू इनको देखने वाला सच्चिदानंद ब्रह्म है। बस केवल महावाक्य की ज़रूरत पड़ती है सज्जनों! महावाक्य से स्वयं हम जान गये कि हम सच्चिदानंदघन ब्रह्म हैं क्योंकि ईश्वर की वाणी है, परम प्रमाणरूप है। इसके आगे और कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि जीव तो सब अल्पज्ञ ही हैं और ईश्वर सर्वज्ञ है इसलिये सभी जीवों के लिये सर्वज्ञ ईश्वर के ही वचन प्रमाण होते हैं। इस प्रकार से सज्जनों! वृत्ति-व्याप्ति द्वारा हमारा तुम्हारा अज्ञान जाता रहा, महावाक्य से ये ही पता लगा कि हम ब्रह्म हैं। अब ये संशय रहित ज्ञान है सज्जनों! ईश्वर से आगे और कौन बतायेगा? और हमारा अनुभव भी है कि हम देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राणों को देखते हैं और जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इनको सबको भी देखते हैं।

जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचम यत्प्रकाशते,
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

अतः जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को प्रकाशता है सो ब्रह्म है और वो ब्रह्म मैं ही हूँ क्योंकि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को मैं जानता हूँ ये हमको नहीं जानते। **'न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः'—** स्त्री, पुरुष, नपुंसक जीव का स्वरूप नहीं है किन्तु स्त्री, पुरुष, नपुंसक सबके भीतर रह कर सबको देखने वाला (द्रष्टा) हमारा तुम्हारा आत्मा का, जीवात्मा का स्वरूप है, ये सब तो दृश्य हैं अतः ये हमारा स्वरूप नहीं हैं। सबको अनुभव है कि मैं द्रष्टा साक्षी चेतन आत्मा हूँ। ईश्वर के वचन प्रमाण से और अपने अनुभव प्रमाण से यही सिद्ध हुआ कि हमारा तुम्हारा स्वरूप ये दृश्य नहीं है किन्तु द्रष्टा ब्रह्म ही है ।। इति।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 38 - Voice 12

११

आत्मा अकर्म है, सर्वकर्म प्रकृति में हैं

भगवान के ज्ञान से जीव सर्व दु:खों से सदा के लिये छूट जाता है और मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है, उसको कभी किसी प्रकार का दु:ख नहीं आता और मृत्यु नहीं आती इसलिये जीव को सर्व दु:खों की निवृत्ति और मृत्यु से मुक्त होने के लिये भगवान का ज्ञान परम आवश्यक है। भगवान के ज्ञान का साधन वेद है और वेद का ही विस्तार व्यासजी ने महाभारत में किया है एवं रामायण में किया गया है इसलिये ये भी वेद सम्मत होने के कारण वेद स्वरूप ही है, प्रमाणरूप माने जाते हैं। उपनिषद और गीता तो सम्पूर्ण वेदों का सार हैं, ज्ञानकाण्ड हैं इसीलिये इसको वेदान्त कहते हैं पर गीता तो उपनिषदों का भी सार है —

'सर्वो उपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दन:, पार्थो वत्स: सुधीर भोक्ता दुग्धं गीताऽमृतम् महत्'

भगवान गोपाल नन्दन श्रीकृष्णचन्द्र ने सम्पूर्ण उपनिषदों को गउएं बनाया, पार्थ को बछड़ा बनाया और उपनिषदों का सार दोहन किया। इस दुग्ध को अर्जुन ने तो पान किया ही है परन्तु इस संसार में और जो अधिकारी लोग हैं शुद्ध बुद्धि वाले **'सुधीर भोक्ता'** वह भी इस दूध का पान कर सकेंगे। ये दूध कैसा है? **'दुग्धं गीता अमृतम् महत्'** ये महान अमृत है सज्जनों! इसके पीने से मृत्यु नहीं होती है क्योंकि गीता में यथार्थ ज्ञान का निरूपण किया गया है और ज्ञान अमृत है। ज्ञान की मृत्यु नहीं होती है परन्तु शुद्ध बुद्धि वाले ही इसका पान कर सकते हैं। श्रीमद्भगवत्गीता में भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन!

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि,
विकारांश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ।। BG - 13.19 ।।
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतु: प्रकृतिरुच्यते,
पुरुष: सुखदु:खानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ।। BG - 13.20 ।।
पुरुष: प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्,
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ।। BG - 13.21 ।।

प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं जैसे छाया और पुरुष। जैसे पुरुष है पुरुष की छाया भी तभी से प्रकट होती है समायी हुई रहती है छाया, परन्तु छाया झूठी होती है और पुरुष सत्य होता है। पुरुष सत्-चित्-आनंद है, वो ब्रह्म है और जो प्रकृति है वो असत्-जड़-दु:खरूप विपरीत रूप है। तो जैसे छाया असत् होती है जड़ होती है छाया को तो ज्ञान होता नहीं है, छाया में कोई सत्बुद्धि सुखबुद्धि कर लेवे तो वो दु:खी होता है। परन्तु जब से पुरुष है छाया झूठी ज़रूर है पर उसमें समायी हुई रहती है नहीं तो निकले कहॉ से झूठी छाया यदि ना होवे? प्रकृति को छाया बताया है। सीता प्रकृति है और राम पुरुष हैं। पुरुष का अर्थ होता है **'पूर्णत्वात् पुरुष:'**, जो सत्य से, ज्ञान से, आनंद से पूर्ण हो उसको पुरुष कहते हैं। भगवान राम सत्य ज्ञान आनंद से पूर्ण हैं —

राम सच्चिदानंद दिनेशा, नहिं तॅह मोह निशा लवलेशा।

राम पूर्ण पुरुष हैं और पुरुष में किसी प्रकार का कर्म नहीं होता है। कर्म किसमें होता है? प्रकृति में, परन्तु स्वत: नहीं होता है जड़ प्रकृति में कर्म, पुरुष प्रेरक होता है। जैसे मशीनों में स्वत: कर्म नहीं होता है, बिजली मशीनों की प्रेरक होती है। बिजली करती कुछ नहीं है, काम सब मशीनें करती हैं। जिस काम के लिये जो मशीन बनी है — कोई आटा पीसती है, कोई तेल निकालती है, कोई लकड़ी चीरती है, कोई कपड़ा बुनती है, परन्तु जब बिजली आवे तो बिजली की प्रेरणा से मशीनों में हलचल होने लगती है, वो अपना अपना काम करने लगती हैं। बिजली तो केवल सत्ता-स्फूर्ति देती है स्वयं तो कुछ नहीं करती। ऐसे ही पुरुष प्रेरक होता है **'माया प्रेरक शिव'**, माया का प्रेरक है कर्ता नहीं। कर्म तो सारे के सारे प्रकृति में ही बताये गये हैं।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वश:,
य: पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।। BG - 13.29 **।।**

अर्जुन! सम्पूर्ण कर्म प्रकृति में हैं और आत्मा अकर्म है, ऐसा जो जानता है वो ज्ञानी है, यथार्थ दर्शी है इसलिये हे अर्जुन! प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं। *'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि'*—इन दोनों को तुम अनादि जानो, *'विकारांश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्* —'सत् रज तम' ये तीन गुण और 'आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी' ये विकार हैं जो प्रकृति से होते हैं। *कार्यकरणकर्तृत्वे हेतु: प्रकृतिरुच्यते* — कार्य, करण और कर्तृत्व ये प्रकृति में ही बताये गये हैं। **कार्य** माने जितनी क्रिया होती है और **करण** माने कर्म करने के साधन — ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, मन बुद्धि चित्त अहंकार, ये करण हैं, कोई कर्म के साधन हैं और कोई ज्ञान के साधन हैं, इन साधनों को करण कहा जाता है और **कर्तृत्त्व** अन्त:करण में जो साभासबुद्धि है उसमें होता है— *'साभासबुद्धे कर्तृत्त्वं'*, यानि कार्य, करण और कर्तृत्त्व इन सबका कारण प्रकृति ही कही गयी है और जो पुरुष है वो सुख-दु:ख के भोगने में हेतु कहा गया है। परन्तु अर्जुन! इस बात को समझना है कि पुरुष और प्रकृति का कभी संग नहीं होता है तो फिर सुख-दु:ख के भोगने में ये हेतु क्यों बनेगा जब सम्बन्ध ही नहीं होता है? क्योंकि सुख-दु:ख मन के धर्म हैं और मन प्रकृति का कार्य है। जन्म-मरण स्थूलशरीर का धर्म है, भूख-प्यास प्राणों के धर्म है और सुख-दु:ख मन का धर्म है, ये प्रकृति राज्य में हैं फिर पुरुष को यहॉ कैसे कहा गया है? तो आगे के श्लोक में समाधान कर रहे हैं भगवन् — *पुरुष: प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्, कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु* — अर्जुन! जब पुरुष प्रकृति में स्थित हो जाता है माने अपने आप को देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण ही मान बैठता है तब ये प्रकृति के सुख-दु:ख आदि गुणों का भोक्ता बनता है और ऊॅच-नीच योनियों में ये जन्म लेता है, माने अपने को स्त्री-पुरुष मान लिया, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र मान लिया, ये स्थूल शरीर में है सूक्ष्म शरीर में भी नहीं है। सूक्ष्म शरीर में कर्म हैं, सूक्ष्म शरीर को अपना शरीर मान लिया ये प्रकृति में स्थित होना है कि मैं स्थूल शरीर हूॅ, सूक्ष्म शरीर हूॅ, कारण शरीर हूॅ और अज्ञान कारण शरीर में है, मैं अज्ञानी हूॅ कुछ नहीं जानता हूॅ ये प्रकृति में स्थित होना है। तब प्रकृति से मिल करके प्रकृति के गुणों का ये भोक्ता बनता है। *कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु* — अर्जुन! गुणों का संग ही इसको अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण बना और जब ये ईश्वर कृपा, गुरु कृपा, वेद कृपा से अपने असंग स्वरूप को जान लेता है तब ये मुक्त हो जाता है कि प्रकृति और पुरुष का कभी संग होता ही नहीं है। ये अज्ञानता से अपने को स्त्री-पुरुष मान बैठता है। स्त्री-पुरुष आदि स्थूल शरीर के धर्म हैं सूक्ष्म शरीर के भी नहीं हैं, आत्मा

के तो हैं ही नहीं—**'न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीवः सर्वगतोऽव्यया'**। जीवात्मा स्त्री पुरुष आदि नहीं है किन्तु सबमें व्यापक है और अविनाशी है, ये आत्मा का स्वरूप है। **'ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसौन्दर्यजातयः स्थूलदेह गता एते स्थूलाद्भिन्नस्य मे नहि'** अर्जुन! ब्राह्मणपना, कुल, गोत्र, नाम, सौन्दर्य और जितनी जातियाँ हैं ये स्थूल देह में होती हैं, ये अध्यात्म उपनिषद है। स्त्री पुरुषपना और जन्म मरण आदि स्थूल देह में होते हैं मैं तो स्थूल शरीर से भिन्न हूँ, स्थूल शरीर का द्रष्टा-साक्षी हूँ इसलिये इनके धर्म मेरे धर्म कदापि नहीं हो सकते। जिसका जो धर्म होता है वो धर्मी में ही रहा करता है, धर्मी को छोड़ कर धर्म दूसरे में नहीं जा सकता है तो शरीर का धर्म शरीर में ही रहेगा आत्मा में कैसे चला जायेगा इसलिये आत्मा के धर्म नहीं है ये सब, ये तो परधर्म है—**'परधर्मो भयावहः'**, देह का धर्म परधर्म है हमारे आत्मा का धर्म नहीं है और परधर्म भय देने वाला होता है, जन्म-मरण का भय होता है। आत्मा का तो सत्-चित्-आनंद धर्म है माने स्वभाव है, उसमें जन्म-मरण आदि नहीं हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, मद्, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष ये आसुरी सम्पत्ति जितने भी हैं ये सब सूक्ष्मशरीर के धर्म हैं और दैवीय सम्पत्ति भी सूक्ष्मशरीर के धर्म हैं क्योंकि जो कर्म हैं वो सूक्ष्मशरीर में ही हैं चाहे अच्छे कर्म करे चाहे बुरे कर्म करे सब सूक्ष्मशरीर में ही होते हैं। स्थूलशरीर तो एक भवन मात्र है। १८वें अध्याय में भगवान ने ये बताया है —

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्,
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ।। BG - 18.14 **।।**
शरीरवांमनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः,
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः।। BG - 18.15 **।।**

अर्जुन! अधिष्ठान का अर्थ यहाँ स्थूल शरीर होता है जहाँ बैठकर जीव कर्म करता है, इस शरीर में बैठ करके ही (साभास सूक्ष्मशरीर जीव का स्वरूप है) वो कर्म करता है, वही कर्ता होता है साभास अन्तःकरण। कर्म करने के जो साधन हैं उनको करण कहते हैं यानि इन्द्रियाँ करण हैं और भिन्न भिन्न प्रकार की चेष्टाएँ माने क्रियाएँ प्राणों से होती हैं। सभी इन्द्रियों के अलग अलग देवता हैं जैसे बुद्धि के देवता ब्रह्मा हैं, मन का देवता चन्द्रमा है, चित्त का देवता वासुदेव है, अहंकार का देवता रुद्र है, पैरों का देवता विष्णु है, हाथों का देवता इन्द्र है, नेत्रों का देवता सूर्य है। सभी इन्द्रियों के देवता अलग अलग बताये गये हैं, ये इन्द्रियों के अनुग्राहक देवता हैं, ये सब प्रकृति राज्य में हैं। शरीर से, वाणी से या मन से जो कुछ भी नर कर्मों का प्रारम्भ करता है, चाहे न्याय से चाहे अन्याय से, उस कर्म के ये पाँच हेतु हैं।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः,
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।। BG - 18.16 **।।**

अर्जुन! इनमें कर्म हैं प्रकृति राज्य में ये होते हुए भी अज्ञानी लोग जो दुर्मति हैं अपने आप को कर्ता मान बैठते हैं जो प्रकृति से अलग हैं। इस प्रकार से क्या दैवीय सम्पत्ति, क्या आसुरी सम्पत्ति ये दोनों सूक्ष्मशरीर में ही होते हैं और इन पाँचों के द्वारा ही होते हैं, आत्मा अकर्ता ही रहता है — ये सूक्ष्मशरीर के धर्म बताये हैं। अब कारण शरीर तो अज्ञानरूप है, प्रिय, मोद, प्रमोद और अज्ञान- अविद्या — ये कारण देह के धर्म हैं। मेरा जो नित्य सत्य स्वरूप है वो निर्विकार है उसमें किसी प्रकार का विकार नही है, ये सब अज्ञान अविद्या के धर्म हैं। ये मूल प्रकृति के धर्म हैं मुझ पुरुष के नहीं। इन तीनों शरीरों से मैं अलग हूँ, तीनों अवस्थाओं से अलग हूँ — स्थूल-सूक्ष्म-कारण इन तीनों देहों का मैं द्रष्टा साक्षी हूँ, अलग हूँ। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इतनी सब माया है, इसी में कर्म है मुझमें नहीं। तो अपने अकर्म स्वरूप को जो जानता है वो नित्य मुक्त है। इसलिये भगवान ने एक ही श्लोक में ये बता दिया — *प्रकृत्यैव च*

कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः, यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति, सम्पूर्ण धर्म-कर्म प्रकृति में हैं, आत्मा अकर्ता ही है और जन्म-मरण का कारण तो कर्म ही होता है। जब आत्मा में कर्म ही नहीं है तो जन्म-मरण क्यों होगा? जैसे बीज से ही वृक्ष होता है, बीज बिना वृक्ष तो नहीं हो सकता है ऐसे ही शरीरों के जन्म का कारण कर्मरूपी बीज है। आत्मा तो कर्मरूपी बीज है नहीं, आत्मा में कर्म ही नहीं है। जब कर्मरूपी बीज ही नहीं है तो शरीर रूपी वृक्ष कहाँ से होगा? इसलिये आत्मा तीनों देहों से न्यारा है और ये तीनों देह कार्य-कारण रूप प्रकृति है। सुषुप्ति कारण है जाग्रत-स्वप्न के ये स्थूल-सूक्ष्म शरीर कार्य हैं। तो कार्य-कारण रूप प्रकृति से पुरुष चेतन आत्मा अलग है। जब अज्ञानतावश ये अपने को प्रकृति मान बैठेगा तब इसे ऊँच नीच योनियों में जन्म लेना पड़ेगा, चौरासी लाख योनियों के दु:खों को भोगना पड़ेगा।। इति।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 39 - 46

१२

आत्मा का स्वरूप

* अष्टावक्र गीता *

भगवान के ज्ञान से जीव सर्व दु:खों से और मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है अर्थात् उसे कभी किसी प्रकार का दु:ख नहीं होता और कभी मृत्यु नहीं आती। जीव मात्र यही चाहता है कि मुझे दु:ख न हो, मृत्यु न हो। तो जीव की जो चाह है वो कब पूरी होगी? कहा भगवान के ज्ञान से! ऐसा जीव क्यों चाहता है? क्योंकि ये जीव का अपना स्वभाव है, अपने स्वभाव के प्रति सबकी प्रवृत्ति होती है जैसे जल का स्वभाव है नीचे को बहना, अग्नि का स्वभाव है ऊपर को जलना ऊपर ही उसकी लौ उठती है वो उनका निज स्वभाव है, उसको कौन मिटा सकता है तो जीव का स्वभाव सत्-चित्-आनंद है तो अपने स्वभाव की तरफ खिंचाव होता है। जीव की मृत्यु नहीं होती **'न जायते म्रियते वा कदाचित्'** ये उसका स्वभाव है इसलिये अमरता की तरफ उसका खिंचाव होता है। जीव का स्वभाव सुख है, आनंद है इसलिये अपने स्वभाव की तरफ ही उसका खिंचाव होता है इसलिये सब जीव यही चाहते हैं कि नित्य सुख शान्ति रहे और मृत्यु न हो। क्योंकि हम आप आत्मा हैं, जीवात्मा हैं, जीवात्मा का स्वभाव बताया है :—

आत्मा साक्षी विभु पूर्णो एको मुक्तः चिदक्रियः ।
असंगो निस्पृहः शान्तो भ्रमात् संसारवान् इव ।।

ये हमारा तुम्हारा आत्मा का स्वभाव है। **साक्षी**—'द्रष्टा साक्षी केवलो निर्गुणश्च' ये स्वभाव है हमारा तुम्हारा, तो हम अपने द्रष्टापने को तो छोड़ नहीं सकते, देखेंगे क्योंकि स्वभाव है। जैसे कान का स्वभाव है सुनना, नाक का स्वभाव है सूँघना, ऑखों का स्वभाव है देखना, पैरों का स्वभाव है चलना तो अपने स्वभाव की तरफ ही खिंचेंगे ऐसे ही जीव का स्वभाव है साक्षी। **विभु**— 'व्यापक' आत्मा का स्वभाव है, निर्गुण निराकार है आत्मा, आकाश के समान व्यापक है इसलिये व्यापक हमारा तुम्हारा स्वभाव है, स्वरूप है, स्वभाव सिद्ध स्वरूप है। **पूर्णः**— 'पूर्ण' स्वभाव है, अपूर्णता आत्मा में है ही नहीं। किस प्रकार पूर्ण है? किन वस्तुओं से पूर्ण है? कहा सत्य से, ज्ञान से, आनंद से पूर्ण है। सत्य से पूर्ण है इसलिये कि जन्म-मरण नहीं होता सदा एक समान रहता है, ज्ञान से पूर्ण है इसलिये कभी उसे अज्ञानता होती नहीं, आनंद से पूर्ण है उसमें कभी दु:ख नहीं होता, आनंद ही आनंद है, इसलिये आत्मा को पूर्ण कहते हैं। जो अपूर्णता का अनुभव होता है, मृत्यु का, दु:खों का - ये अज्ञानता से है, अपने स्वरूप के न जानने से है। **एको**— आत्मा एक है दो आत्मा नहीं हैं, सब शरीरों में व्यापक है, सबकी ऑखों से वही देख रहा है। ऑख नहीं देखती है ऑख से आत्मा देखता है, जैसे चश्मा नहीं देखता है चश्मा से हम आप देखते हैं, ऑख भी एक चश्मा है और चश्मा उपनेत्र कहा जाता है, नेत्र के ऊपर जो लगाया जाय उसे उपनेत्र कहते हैं। ऑख मेरी है, चश्मा मेरा है और चश्में से अथवा ऑख से मैं देखता हूँ ऑख नहीं देखती इसलिये मैं द्रष्टा हूँ इसलिये सबमें आत्म दर्शन करना चाहिये, सबमें देखने वाला मैं ही हूँ, सबमें बैठकर सबकी ऑखों से मैं ही देख रहा हूँ इसीलिये सब लोग कहते हैं **'अहं पश्यामि'** मैं देखता हूँ यही कहते हैं लोग। चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो, स्त्री हो चाहे पुरुष हो सब कहते हैं मैं देखता हूँ। हिन्दु हो या मुसलमान हो एक स्वर से यही कहते हैं **'अहं पश्यामि'** मैं देखता हूँ, मैं देखता हूँ तो मैं सबमें एक ही रहा दो मैं तो रहे नहीं। अनेक शरीरों में बैठा हुआ आत्मा एक है तो हम आप एक हैं इसको आत्म दर्शन

कहते हैं। सबमें अपने द्रष्टापने का, अपने अहं तत्त्व का दर्शन करो और अहं नाम ब्रह्म का है, महावाक्य कहता है **'अहं ब्रह्मास्मि'** मैं ब्रह्म हूँ और ब्रह्म एक अद्वितीय है, दो ब्रह्म नहीं हैं। **मुक्तः** — आत्मा स्वभाव से ही मुक्त है माने जन्म-मरण से, दु:खों से छूटा ही हुआ है। अरे जो छूटा ही हुआ है उसे छूटना क्या है, यदि बन्धन हो तो उसकी मुक्ति बतायी जाय, छूटने का उपाय बताया जाय और जो छूटा ही हुआ हो और भ्रम से कहता हो कि मैं बँधा हुआ हूँ तो भ्रम की निवृत्ति ही कर्तव्य है बँधा तो है नहीं। भ्रम से, अज्ञानता से अपने को कहता है कि मैं जन्म मरण वाला हूँ, मैं सुखी-दु:खी हूँ। शरीरों का जन्म मरण होता है सबमें देखने वाले का तो नहीं, ये अज्ञानता से अपने को कहता है इसीलिये गुरु की ज़रूरत है उसको ज्ञान देकर के उसका अपना निज स्वरूप बता देते हैं कि देख तू देखने वाला है और ये दिखाई पड़ने वाला, जन्म मरण वाला ये शरीर तू नहीं है। गुरु का इतना ही उपयोग है 'ज्ञान दे देना' माने उसके स्वरूप को उसी को बता देना, इतना ही कर्तव्य है गुरु का, कोई नई चीज़ गुरु देता नहीं। ज्ञान गुरु देता नहीं है ज्ञान स्वरूप तो वही है, अज्ञान से खाली ढक गया है, आवृत हो गया है, अज्ञान का पर्दा ही हटाना है। **चिद्**— चिद् नाम अखण्ड ज्ञान का है उसका ज्ञान कभी लोप ही नहीं होता, **'नहीं दृष्टो द्रष्टे विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वात्'** हमारी तुम्हारी आत्मा की दृष्टि का कभी लोप नहीं होता, क्यों? अविनाशी है, जन्म-मरण हुआ ही नहीं है इसलिये चिद् है। **अक्रियः —** आत्मा में किसी प्रकार का क्रिया, कर्म नहीं है, जो कर्म है वो देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में है, दृश्य में कर्म है आत्मा तो अकर्म है जैसे TV में कर्म नहीं होता, TV में आने वाले जो छाया चित्र हैं उनमें कर्म होता है, वही नाचते गाते हैं जन्मते मरते हैं लड़ाई लड़ते हैं, TV का शीशा तो अचल रहता है। आत्मा भी 'अचलो अयं सनातन', आत्मा भी एक दर्पण है, शीशा है।

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम्।
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।।

हमारा तुम्हारा आत्मा दर्पण है और ये जगत छाया चित्र के समान ये सब नगर नगरी हैं, त्रिलोकी छाया चित्र है। इन्हीं में देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र ये सब छाया चित्र हैं और ये सब हलचल अपना कर रहे हैं पर आत्मा रूपी दर्पण को तो छूते नहीं हैं, छू नहीं सकते जैसे आकाश को वायु, अग्नि, जल पृथ्वी छू नहीं सकती, आकाश असंग है, सबमें व्यापक है। ऐसे ही आत्मा आकाश के समान असंग है इसको कोई छू नहीं सकता माने देह इन्द्रिय मन बुद्धि की जो क्रिया हैं कर्म हैं अच्छे-बुरे, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य ये आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते हैं, अकर्म है आत्मा। **असंगो**— संग कभी होता नहीं है। अग्नि से संग नहीं होता तो अग्नि जला नहीं सकती, अग्नि तो तभी जलायेगी जब अग्नि को छुआ जाय संग हो स्पर्श हो, आत्मा किसी को छूता नहीं है और न अग्नि ही आत्मा को छू सकती है जैसे आकाश को अग्नि छूती नहीं तो जलायेगी कैसे? वायु चलता आकाश में ही है पर छूता नहीं आकाश को तो उसे हिलायेगा डुलायेगा कैसे? जितना पानी की वर्षा होती है वो आकाश में ही होती है, आकाश गीला नहीं होता है क्योंकि छूता नहीं है इसलिये पृथ्वी के बने हुए अस्त्र-शस्त्र सब आकाश में ही चलते हैं, भाला बर्छी तीर तलवार गोला गोली आकाश को छूते नहीं इसलिये आत्मा को काट नहीं सकते। आत्मा तो आकाश से भी अति सूक्ष्म है, आत्मा को तो आकाश भी नहीं छू सकता, आकाश के भीतर भी व्यापक है। 'चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं'— हमारा तुम्हारा चेतनरूपी आकाश आकाश के भीतर भी प्रविष्ट है, इतना सूक्ष्म है आत्मा। आकाश का तो आत्मा से जन्म होता है इसलिये आकाश का तो नाश भी हो जायेगा क्योंकि जन्मा है, आत्मा का तो जन्म ही नहीं है। आत्मा चेतन है और आकाश जड़ है उसको ज्ञान भी नहीं है। आत्मा तो ज्ञान स्वरूप है क्योंकि चिद्रूपी, चेतनरूपी आकाश है इसीलिये हमारी तुम्हारी आत्मा को भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं जो आकाश से भी अति सूक्ष्म है :—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। BG - 02.23 ।।

अर्जुन! **'एनं आत्मानं'** हमारे इस आत्मा को पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले लोहे से बने भाला बर्छी तीर तलवार गोला गोली काट नहीं सकते, छेदन नहीं कर सकते। जल की जो वर्षा होती है वो आत्मा को छूती नहीं है इसलिये जल आत्मा को गीला नहीं कर सकता। आग जो जलती है आत्मा को छूती नहीं है इसलिये आत्मा को आग जला नहीं सकती है। वायु आत्मा को छूता नहीं है इसलिये आत्मा को सुखा नहीं सकता, हिला-डुला, उड़ा नहीं सकता। आकाश पोल है इसलिये आकाश आत्मा को छूता नहीं है और आत्मा सत्घन चित्घन आनंदघन ही रहता है, सच्चिदानंद आत्मा में पोल नहीं हो सकती है। आकाश पोल है देखो मकान के भीतर, घड़े के भीतर पोलाई है। आत्मा तो TV के शीशा के समान ठोस है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और सारा संसार ये सब छाया चित्र हैं, TV के शीशा में कोई प्रवेश नहीं कर सकता है क्योंकि ठोस है। ऐसे ही हमारे तुम्हारे आत्मा में कोई भीतर प्रवेश नहीं कर सकता, ऊपर ऊपर छाया चित्र दीखते हैं। छाया चित्र सब लोग जानते हैं कि झूठे हुआ करते हैं, सत्य नहीं होते क्योंकि जब शीशा ठोस है तो TV के शीशा के भीतर सच्ची चीज़ें कैसे आयेंगी? हम TV देखते हैं, घर घर में आजकल TV है उसमें महाभारत हो रहा है, राम-रावण का संग्राम हो रहा है, कृष्ण-कंस का युद्ध हो रहा है, अनेक राक्षसों का युद्ध हो रहा है, हाथी घोड़ा रथ दौड़ रहे हैं, कोई अग्नि बाण चलाता है तो अग्नि जलने लगती है, वरुण बाण चलाता है तो वर्षा होने लगती है, वायु बाण चलाता है तो ऑधी-तूफ़ान चलने लगता है पर TV के शीशा में कोई असर होता है? क्या TV का शीशा जलता है? क्या गीला होता है? क्या हिलता-डुलता है? नहीं, क्यों? झूठी अग्नि है वो, झूठी बरसात है, झूठी हवा है और जो हाथी घोड़े रथ दिखाई पड़ रहे हैं वो झूठे हैं, छाया चित्र हैं। क्यों? शीशा में तो सुई की नोक भी नहीं जा सकती है वह ठोस है न! तो सत्य का प्रवेश कैसे होगा? इसलिये ये सब सत्य नहीं झूठे हैं, झूठे ऊपर ऊपर दिखाई पड़ते हैं भीतर प्रवेश नहीं करते। सत्य के लिये देश-काल-वस्तु चाहिये, झूठे के लिये नहीं चाहिये। जो सत्य हाथी घोड़ा रथ होवें तो उनको बनाने के लिये समय चाहिये—**'काल'** चाहिये, सामग्री चाहिये बनाने के लिये—**'वस्तु'** चाहिये और **'देश'**—माने उतनी जगह चाहिये जहॉ ये हाथी घोड़ा रह सकें। इन्हें जगह चाहिये न रहने के लिये परन्तु TV के शीशा में हम देखते हैं कि न देश है माने न उनके रहने के लिये जगह है, न काल है माने समय है तुरन्त ही दिखाई पड़ने लगते हैं इकट्ठा ही, ऐसा नहीं कि जब बनाये जायें रथ वगैरह तब ही दिखाई पड़ें, बने बनाये दीखते हैं दौड़ रहे हैं और न कोई सामग्री है बनाने की। देश काल वस्तु सामग्री बिना जो उपजता है वो मिथ्या ही होता है। ये संसार भी बिना सामग्री के उत्पन्न हुआ है।

बिन सामग्री उपजत याते,
जग प्रपंच इमि मिथ्या ताते।।

जादूगर बिना सामग्री के हाथी घोड़ा बना लेता है, सिंह व्याघ्र बना लेता है, मेवा मीठा मलाई छप्पन प्रकार का भोजन बना लेता है सामग्री कुछ नहीं लेता इसलिये उसकी झूठी मिठाई है, झूठे आम अमरूद अनार अंगूर हैं और हज़ार हज़ार के नोटों की वर्षा भी करता है सामग्री लेता नहीं तुरन्त, देश-काल-वस्तु की ज़रूरत नहीं इसलिये उसके रुपये भी झूठे हैं। धोखा न खाय कि उसके रुपयों के लालच में आ जाय और उससे रुपये ले लेवे, उसकी वस्तुओं को ख़रीद लेवे नहीं तो ठगा जायेगा। सज्जनों! ये संसार भी जादूगर का बनाया हुआ है, ईश्वर जादूगरों का भी जादूगर है, मायापति को ईश्वर कहते हैं और हम माया और इनसे परे हैं, हमारा स्वरूप ब्रह्म है और माया में जो हमारा आभास है वो ईश्वर है, वो जादूगर है, जगत की उत्पत्ति-

पालन-संहार करता रहता है खेल-तमाशा छायाचित्र के समान। जो माया से बनेगा निश्चय ही वो छायाचित्र होगा सत्य नहीं होगा। **'मम माया सम्भव संसारा'** ये सारा संसार ईश्वर की माया से बना है। जैसे जादूगर की माया से आम अमरूद मेवा मिठाई मलाई बने हैं, निश्चय ही झूठे हैं। **'ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रतिवेद कहै'** अनंत कोटि ब्रह्माण्ड सब माया से बनते हैं आत्मा रूपी दर्पण में दिखाई पड़ते हैं। तो झूठी चाज़ों के लिये, छायाचित्रों के लिये देश-काल-वस्तु की ज़रूरत नहीं पड़ती है। वो TV के शीशा में ऊपर ऊपर दिखाई पड़ते हैं उनका भीतर प्रवेश नहीं होता है, लगता ऐसा है हमको आपको कि TV के शीशा के भीतर ही दिखाई पड़ रहे हैं जैसे भीतर ही भरे हुए हैं परन्तु ऐसा नहीं है सब ऊपर ही ऊपर है, ये भी भ्रम है धोखा है क्योंकि TV के शीशा में जगह नहीं है वो जा नहीं सकते और झूठी चीज़ के लिये जगह की ज़रूरत नहीं है। हमारा आत्मा भी TV का शीशा है, हमारी आत्मा में ये जगत चित्र दिखाई पड़ रहा है क्योंकि ये सब चित्रकारों का चित्रकार है, जादूगरों का जादूगर है।

केशव कहि न जाय का कहिये
देखत तौं रचना विचित्र अति
समुझि मनहिं मन रहिये
केशव कहि न जाय का कहिये

बिना सामग्री के ये छायाचित्र जगत चित्र बनाता है। **'शून्य भीति पर चित्र रंग नहिं'** रंग के बिना चित्र बनेगा तो वह निश्चिय जादू है, कोई चित्र बनेगा तो रंग से बनेगा। शून्य भीति माने आकाश में, चित्र अथवा माया शून्य है तो आकाश में चित्र कैसे बनेगा? चित्र तो बनाये जाते हैं कागज़ में, दीवार में, कपड़े में, आकाश में कैसे चित्र बनेगा और रंग के बिना! रंग के बिना कोई चित्र नहीं बनता परन्तु वो जादूगर है न झूठे चित्र बन जाते हैं। **'तन बिन लिखा चितेरे'** और जो चित्रकार है उसका शरीर नहीं है, ऐसा कभी सम्भव है? जितने चित्रकार होते हैं वो शरीर वाले होते हैं सामग्री होती है चित्र बनाने की स्याही, कलम, रंग पर उसके शरीर ही नहीं है कैसा चित्रकार है? **'धोये धुलै न मरैं भीति दुःख'** ये छाया चित्र जो ईश्वर ने बनाये हैं ये चाहे दस बार स्नान करो ये धोने से धुलते नहीं हैं, ऐसा चित्र तो किसी चित्रकार ने बनाया नहीं। जो भी दिखाई पड़ते हैं ये चित्र हैं। हम स्नान रोज़ करते हैं परन्तु ये धुल नहीं जाते, उड़ नहीं जाते और मरते भी हैं। **'धोये धुलै न मरैं भीत दुःख'** और भय भी लगता है इन चित्रों को, दुःख भी होता है, मरते भी हैं। तो सज्जनों! इन सब चित्रों का चित्रकार ईश्वर है, ऐसा विचित्र चित्र बनाया है कि ये देखते हैं, सुनते हैं। देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों को बना दिया है, ये सारे कर्म करते हैं, चित्रकार अकर्म है। सज्जनों! निश्चय ही ये छायाचित्र हैं बनाया कहाँ है—आत्मारूपी दर्पण में। पहले क्या बनाया चित्रकार ने? पहले आकाश बनाया, वेद मंत्र कहता है :—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः।
वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः।
ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।।

परमात्मा से अथवा आत्मा से (यहाँ परमात्मा और हमारा तुम्हारा आत्मा का एकत्व बताया, माने दोनों एक हैं) आकाश उत्पन्न बताया, क्यों ? संसार के बनाने के पहले उसके रहने के लिये जगह बनाना चाहिये। आप कोई गाड़ी लाओगे तो उसके रखने के लिये जगह तो चाहिये न! ये शरीर रूपी गाड़ियाँ चलेंगी कहाँ जब जगह नहीं होगी तो? अतः सारा संसार बनाने के पहले जगह चाहिये इसलिये आकाश बनाया, सारा संसार इसी आकाश में रहेगा, **'अवकाशं ददाति इति आकाशः'** जो सबको रहने की जगह दे उसको आकाश कहते हैं। अब इस आकाश में जो रहने वाले हैं उनको बनाता है। फिर वायु को बनाया ये आकाश में चलता फिरता है, जगह पहले ही बना दिया, फिर अग्नि को बनाया, फिर अग्नि से जल को बनाया, फिर जल से पृथ्वी

बनाई, पृथ्वी से फिर औषधियॉ बनाई (आम अमरूद अनार अंगूर ये सब औषधियॉ हैं) इन्हीं औषधियों से अन्न बनाया (गेहूँ जौ चना ज्वार बाजरा ये सब अन्न हैं), **अन्नात्रेतः**, रेत कहते हैं वीर्य को, अन्न से वीर्य बनाया और वीर्य से पुरुषों को बनाया। वही ये चेतन पुरुष अन्न-रसमय बन करके आया। अब देखो सज्जनो! जो जहॉ से उत्पन्न होता है उसे वहॉ ही लीन होना पड़ता है। इनका जन्म हुआ न! आत्मा परमात्मा का तो जन्म बताया नहीं। ये ईश्वर की वाणी वेद है, सर्वज्ञ है ईश्वर, ईश्वर की वाणी कभी असत्य हो सकती नहीं है **'सर्वज्ञत्वात्'** सर्वज्ञ होने से इसलिये ईश्वर की वाणी वेद परम प्रमाण माना जाता है।

श्रुत्या विरोधे न भवेत्प्रमाणं,
भवेत् अनर्थाय बिना प्रमाणं।।

श्रुति विरुद्ध किसी जीव के वचन प्रमाण नहीं माने जाते हैं क्यों? **'अल्पज्ञत्वात्'** सारे जीव अल्पज्ञ हैं ईश्वर सर्वज्ञ है इसलिये अल्पज्ञ होने से जीव ग़लत बोल सकता है। सर्वज्ञ होने से ईश्वर कभी भी ग़लत नहीं बोल सकता है। तो आत्मा या परमात्मा की उत्पत्ति नहीं बतलाई। आत्मा हमारा आपका स्वरूप है, आत्मा नाम **'अहं'** का है, अहं का अर्थ होता है 'मैं', मेरा स्वरूप अजन्मा है। मुझसे आकाश हुआ, आकाश से वायु हुआ, वायु से अग्नि हुआ, अग्नि से जल हुआ, जल से पृथ्वी भयी, पृथ्वी से औषधियॉ, औषधियों से अन्न और अन्न से ये सब पुरुष उत्पन्न भये। जब उत्पन्न भये हैं तो — **'जातस्यहि ध्रुवो मृत्युः'** इनको मरना भी पड़ेगा इसलिये सारे ही संसार के पुरुष पहले पृथ्वी में मिल जायेंगे, औषधियॉ अन्न और अन्न से हुआ रेत और ये पुरुष महाप्रलय जब आयेगी तो सब ये पृथ्वी में, माटी में मिल जायेंगे। पृथ्वी या माटी की उत्पत्ति हुई है जल से तो पृथ्वी फिर जल में लय हो जायेगी जब महाप्रलय आयेगी। जल अग्नि में लय हो जायेगा क्योंकि अग्नि से जल उत्पन्न हुआ है और अग्नि वायु से उत्पन्न हुआ है इसलिये अपने कारण वायु में लय हो जायेगा। वायु आकाश से उत्पन्न हुआ है इसलिये वायु आकाश में लय हो जायेगा और आकाश हमारी तुम्हारी आत्मा से उत्पन्न हुआ है वो आत्मा में लय हो जायेगा फिर हम आप अकेले रह गये न! 'सत्-चित्-आनंद ब्रह्म' ये हमारा आपका स्वरूप है। सत् है— क्योंकि उत्पत्ति-नाश नहीं होते इसलिये सत् कहते हैं, चिद् है— अनंत अखण्ड ज्ञानरूप है, आनंद है—आदि अंत रहित आनंद का सिन्धु है इसकी उत्पत्ति नहीं भयी इसलिये विनाश भी नहीं हो सकता, **'विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति'** कि हमारी तुम्हारी अविनाशी आत्मा का विनाश करने में कोई समर्थ नहीं है क्योंकि जो काल है वो ही सबका नाश करता है और काल उसका नाश करता है जिसकी उत्पत्ति होती है पर जिसकी उत्पत्ति नहीं हुई उसका काल क्या नाश करेगा? देश काल वस्तु भी आत्मा से उत्पन्न भये हैं उन्हीं का नाश होगा आत्मा का नहीं।

एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन

एक अद्वितीय ब्रह्म है नानापना कुछ भी नहीं है और ये सब छायाचित्र ही हैं, उनकी उत्पत्ति छायाचित्र के समान भयी है।

अनादि मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते,
अजं अनिद्रं अस्वप्नं अद्वैतं बुद्धयते तदा।।

अनादि माया से, अज्ञान से सोया हुआ ये जीव जब ईश्वरकृपा, गुरुकृपा, वेदकृपा से अपने आत्म स्वरूप का ज्ञान होता है माने अपने स्वरूप में जागता है (अपने स्वरूप को जानना ही जागना है और न जानना सोना है) ये अज्ञान निद्रा, मोह निद्रा में सो रहा है जीव,

मोह निशा सब सोवनहारा,
देखें स्वप्न अनेक प्रकारा।।

मोह निशा में सोया हुआ जीव अनेक प्रकार का, जाग्रत-स्वप्न का सपना देख रहा है। सपना कोई सत्य नहीं होता झूठा होता है। **अनादि मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते,** जब ईश्वरकृपा, गुरुकृपा, वेदकृपा से ये जीव जागता है कि मैं सच्चिदानंद ब्रह्म आत्मा हूँ तब कैसा अनुभव उसको होता है?

'अजं'— न जायते इति अजं, मेरा तो जन्म ही नहीं हुआ है तो मरने का भय क्या है फिर जब जन्म ही नहीं हुआ। **'अनिद्रं'**— मैं तो कभी सोता ही नहीं हूँ निद्रा को भी मैं देखता हूँ, निद्रा से उत्पन्न होते हैं जाग्रत और स्वप्न, उनको भी देखता हूँ, मैं सो जाऊँ तो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति को देखेगा कौन? ये देखते नहीं हैं तीनों माया हैं। **'जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति त्रयमेतत्माया मात्रं'**, मुझ द्रष्टा बिना इनकी सिद्धि भी नहीं होगी, कौन सिद्ध करेगा इनको तो ज्ञान नहीं है। ज्ञान से ही अज्ञान की सिद्धि होती है और ज्ञान स्वतः सिद्ध है, अनादि अनंत है सो हमारा तुम्हारा स्वरूप है—अजं अनिद्रं अस्वप्नं अद्वैतं। मैं एक अद्वितीय हूँ, अकेला हूँ—**'अजं अनिद्रं अस्वप्नं अद्वैतं बुद्धयते तदा'**, जब ज्ञान होता है तो इस प्रकार से उसको बोध होता है, ऐसा अपने को जानता है, संसार को स्वप्नवत् देखता है। सब लोग जानते हैं सपना झूठा ही होता है, स्वप्नवत् देखता है माने झूठा देखता है। **'संसार स्वप्नं त्यज मोह निद्रां',** सज्जनों इस मोह निद्रा से उठो जागो और इस संसार सपने का त्याग करो, इस मोह निद्रा का त्याग करो।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 52 - May 23

१३

रूपक द्वारा आत्मा का निरूपण

सच्चिदानंदघन सर्वशक्तिमान सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया हे भगवन्! मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें, मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है। मुझे वो तत्त्व बतावें जिससे जन्म-मृत्यु के दु:खों से मुझको छुटकारा मिल जाय। भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभि:।। BG – 02.16 **।।**

अर्जुन! दो ही तत्त्व हैं संसार में एक सत् है दूसरा असत् है और तीसरा कुछ भी नहीं है। ये जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति के रूप में दिखाई पड़ रहा है ये जगत ये असत् है, ये मिथ्या है। **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'** और जो ब्रह्म है वो सत् है और ये जो दृश्य दिखाई पड़ रहा है जगत ये मिथ्या है, ये ही वेद का सिद्धान्त है। तो मिथ्या वो है जो कभी नहीं होता है, दिखाई भले ही पड़े पर वो होता नहीं है। जैसे पुरुष की छाया दिखाई पड़ती है पर वो होती नहीं है, झूठी होती है छाया पुरुष सत्य होता है। स्वप्न दिखाई पड़ता है परन्तु वो झूठा होता है सब लोग जानते हैं क्योंकि वो रहता नहीं है और जो द्रष्टा है वो तो सदा रहता है। रस्सी में सॉप दिखाई पड़ता है पर वो निश्चय झूठा है, मिथ्या है, भ्रमरूप है, अध्यास रूप है। जो चीज़ दिखाई पड़ती है वो मिथ्या हैऔर जो देखता है वो सत्य है। देखने वाला तो सदा रहता है जाग्रत में, स्वप्न में, सुषुप्ति में तीनों को देखता है। पर ये दृश्य जगत, जाग्रत का जगत स्वप्न में नहीं रहता, स्वप्न का जगत सुषुप्ति में नहीं रहता, सुषुप्ति समाधि में नहीं रहती पर अपना आत्मा हमेशा रहता है क्योंकि आत्मा का स्वरूप ही सत् है, जो सत् है वो चिद्रूप भी है, आनंद रूप भी है तो वो सत्-चित्-आनंदरूप है और जो असत् है वो जड़ भी है और दु:खरूप भी है तो असत्-जड़-दु:खरूप ये दृश्य है और सत्-चित्-आनंदरूप द्रष्टा है। अर्जुन! हमारा तुम्हारा स्वरूप तो सबका द्रष्टा है, द्रष्टा कभी दृश्य नहीं होता है और दृश्य कभी द्रष्टा नहीं हो सकता। वेद कहता है :—

आत्मानॅ रथिनं विद्धि शरीरॅ रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणी हयानाहुर्विषयाॅ स्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण:।।

अर्जुन! ये शरीर रथ है और आत्मा रथी है जो रथ में बैठा है और देखता है। रथ को तो ज्ञान नहीं होता है और रथ में जो बैठा है वो देखता है वो ज्ञानवान है। ये शरीर रथ है और आत्मा रथी है। आत्मा अर्थात् अपना आपा अत: हम रथी हैं। सब लोग देखो अपने अपने शरीर रूपी रथ में बैठे हैं और देखते हैं। रथ को चलाने वाली बुद्धि सारथी है **बुद्धिं तु सारथिं विद्धि,** इस रथ को बुद्धि चलाती है इसलिये वो सारथी है। **मन: प्रग्रहमेव च,** मन लगाम है। **इन्द्रियाणी हयानाहु:,** दस इन्द्रियॉ इस रथ के घोड़े हैं शरीर रूपी रथ को दस इन्द्रियॉ खींच रहीं हैं —

वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ कर्मेन्द्रियॉ (वाक्, हाथ पॉव व मल मूत्र त्यागने की दो इन्द्रियॉ), श्रोत्र (कान), त्वचा (चमड़ा), चक्षु (ऑखें), जिह्वा (रसना), घ्राण (नासिका) ये दस इन्द्रियॉ इस रथ के घोड़े हैं, ये घोड़े ही इस रथ को चलाते हैं। **विषया ूॅस्तेषु गोचरान,** मार्ग कौन हैं जहॉ पर ये रथ चलता है? शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पंच विषय मार्ग हैं इन्हीं मार्गों में ये रथ चलता है। **आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः,** आत्मा, इन्द्रिय और मन ये सब मिल करके भोक्ता बनते हैं, आत्मा तो केवल द्रष्टा साक्षी मात्र है। आत्मा का प्रतिबिम्ब इस बुद्धि में पड़ता है वही सुख दुःख का भोक्ता बनता है। आत्मा तो शुद्ध ज्यों का त्यों इस रथ में बैठा हुआ देखता है जैसे हम आप रेल मोटर हवाई जहाज़ में बैठते हैं और खिड़की खोलकर देखते हैं ऐसे ही ये रथ में आत्मा बैठा है और इन्द्रिय रूपी दरवाज़ों से, ऑख कान नाक से देखते सुनते हैं, जैसे रथ में बैठने वाला रथ नहीं हो जाता वो तो सवार ही रहता है। हम आप रेल मोटर में बैठते हैं और खिड़की खोलकर देखते हैं तो हम रेल मोटर हवाई जहाज़ तो नहीं बन जाते! अलग ही रहते हैं न! और यात्रा पूरी हुई तो छोड़ देते हैं इन सवारियों को, यात्रा के लिये ये सवारियॉ हैं शरीर आदि। ये संसार यात्रा पूरी हुई तो इन सवारियों को छोड़ देते हैं, अपने धाम में चले जाते हैं अपने घर चले जाते हैं। जीवात्मा का धाम परमधाम परमात्मा ही है, ब्रह्म ही है। ये तो शरीरों में बैठकर संसार यात्रा को आये, यात्रा पूरी हुई तो घूम घाम के चल दिये अपने परम धाम में पहुॅच गये, इन सवारियों को छोड़ दिया। इसलिये आत्मा का और सवारियों का कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं है जो किसी से लग जाय, जुड़ जाय और फिर अपने आप को यदि सवारी ही मान लेवे तो घोर अज्ञानता है। **'अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते'** कार का सवार अपने को कार ही मान लेवे कि मैं कार हूॅ तो विशेषरूप से मूढ़ात्मा है माने अज्ञानी है। जो कोई शरीर को अपना स्वरूप ही मान बैठते हैं वो विशेषरूप से मूढ़ात्मा हैं क्योंकि सवार कभी सवारी नहीं हो सकता। कार का सवार कार नहीं हो सकता, यात्रा के लिये बैठ जाता है कार में। यात्रा पूरी हुई घर पहुॅच गया तो सवारी छोड़ दिया, ये वेदमंत्र बताता है सज्जनों! दूसरा वेदमंत्र बताता है :—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराप्राणाशरीरंगृहं,
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रासमाधिस्थितिः।।
संचारः पादयो प्रदक्षिणविधिः स्त्रोत्राणिसर्वागिरो,
यद्यद्कर्म करोमि तद्तदखिलं शम्भोतद् आराधनं।।

अब इस शरीर रूपी मंदिर के अंदर शंकर पार्वती का स्वरूप बताते हैं। **आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराप्राणाशरीरंगृहं,** ये शरीर मन्दिर है और इसमें जो *आत्मतत्त्व* माने हम आप बैठे हुए हैं ये **'शिव तत्त्व'** है, **'गिरिजा'** मति माने *बुद्धि* है, साथ में चलने वाले *प्राण* **'गण'** हैं और *शरीर* **'मन्दिर'** है। ये इन्द्रियॉ, प्राण आदि सब गण लोग हैं सेवा करते हैं, सब इन्द्रियॉ ही तो सेवा करती हैं सज्जनों! **पूजा ते विषयोपभोगरचना,** ये संसार के जो विषय भोग हैं ये ही शंकरजी की पूजा है। **निद्रासमाधिस्थितिः,** निद्रा ही समाधि है। **संचारः पादयो प्रदक्षिणविधिः,** पैरों के द्वारा जो चलना फिरना है ये ही प्रदक्षिणा है शंकर जी की। **स्त्रोत्राणिसर्वागिरो,** और जो भी बोलते हैं वो शंकर जी की स्तुति है। जो जो भी कर्म करता हूॅ मैं हे शम्भो! तुम्हारी ही आराधना है। सज्जनों ! शरीररूपी मन्दिर के अंदर हम आप आत्मा शंकर जी का स्वरूप हैं, बुद्धि पार्वती है, मन गणेश है क्योंकि इन्द्रियरूपी गणों का स्वामी मन ही है सज्जनों! आत्मा तो शिव है न! बाकी तो ये सब सेवक लोग हैं इसलिये अपने आप को इनसे सबसे माने शरीर रूपी मन्दिर से, बुद्धि से, प्राणों से अलग जानना चाहिये। एक और मंत्र हमारी आत्मा का वास्तविक शुद्ध स्वरूप बताता है :—

आत्मा साक्षी विभु पूर्णो एको मुक्तः चिदक्रियः ।
असंगो निस्पृहः शान्तो भ्रमात् संसारवान् इव ।।

कहते हैं **आत्मा साक्षी,** आत्मा माने हमारा आपका स्वरूप द्रष्टा साक्षी मात्र है ये ही हमारा

स्वरूप है। **विभु,** आकाश के समान व्यापक है आत्मा, सर्वत्र कण-कण में व्यापक है। स्त्री पुरुष मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष पर्वत जैसे आकाश सब जगह व्यापक है ऐसे ही आत्मा भी सब जगह व्यापक है और **पूर्ण** है सज्जनों! आत्मा में अपूर्णता नहीं है। आत्मा सत्य से, ज्ञान से, आनंद से स्वभाव से ही पूर्ण है। सच्चिदानंद की प्राप्ति नहीं करना है ये तो अपनी आत्मा का स्वरूप है। **एको,** आत्मा सब शरीरों में एक ही है दो नहीं हैं इसलिये आत्मा में कोई छोटा बड़ा नहीं हो सकता है। हम आप देखने वाले एक ही हैं, छोटा बड़ा तो तब हो जब आत्मा दो चार होवें। कोई छोटा होगा कोई बड़ा और जब एक ही हो तो कौन छोटा कौन बड़ा? हमारा तुम्हारा स्वरूप द्रष्टा साक्षी आत्मा सब शरीरों में एक ही है इसलिये छोटा बड़ा कोई नहीं है, छोटे बड़े जो हैं वो शरीरों में हैं। स्त्री पुरुष मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष पर्वत सूर्य चन्द्र मक्खी मच्छर इन्हीं में छोटा बड़ा पना है, आत्मा तो सब में देखने वाला है न! वो तो एक ही है। **मुक्तः,** और स्वभाव से ही वो जन्म मरण से छूटा हुआ ही है, आत्मा को तो कोई बन्धन कर नहीं सकता, मृत्यु भी मार नहीं सकता। **'न जायते म्रियते वा कदाचित्'** आत्मा का जन्म मरण होता ही नहीं है क्योंकि मुत्यु छू नहीं सकती आत्मा को, काल छू नहीं सकता, क्या मारेगा जब छू नहीं पायेगा ता मारेगा क्या। चिद्, चिद् माने अनंत अखण्ड ज्ञान स्वरूप है। हमारा तुम्हारा स्वरूप ही ज्ञान है द्रष्टा है। **अक्रियः,** आत्मा में किसी प्रकार का कर्म नहीं है, न अच्छा न बुरा कोई कर्म नहीं है कर्म है तो इन्द्रियों में है। सारे कर्म इन्द्रियों में होते हैं, मन बुद्धि और प्राणों में होते हैं, आत्मा तो इन सबके भीतर बैठा है और देखता है सबको, आत्मा कर्म नहीं करता इसलिये अक्रिय। आत्मा का ही ये सब स्वरूप वर्णन हो रहा है। **असंगो निस्पृहः शान्तो,** आत्मा असंग है माने सबके संग रहता है पर किसी को छूता नहीं है इसलिये असंग ही रहता है। जैसे आकाश सबके भीतर रहता है पर किसी को छूता नहीं है इसलिये असंग ही रहता है तो आत्मा सब में रह कर भी अलग है, असंग है, एक अद्वितीय है। **निस्पृहः,** आत्मा में कोई इच्छा नहीं है, इच्छायें मन का धर्म है। अनेक इच्छायें मन किया करता है तो मन की इच्छायें कभी पूरी नहीं हो सकतीं। दो इच्छायें पूरी होती हैं तो चार इच्छायें और हो जाती हैं मन में। चार पूरी हों तो दस इच्छा और हो जाती हैं। १०० रुपये की इच्छा हो और वो पूरी हो जाय तो वो हज़ार की इच्छा करता है, हज़ार की इच्छा पूरी हो जाय तो वो लाख की इच्छा करता है, लाख की इच्छा भी पूरी हो जाय तो वो करोड़ की इच्छा करता है, करोड़ की इच्छा पूरी हो जाय तो वो दस करोड़ की, पचास करोड़ की इच्छा करता है। कितना भी धन मिल जाय पर मन की इच्छा पूरी नहीं होती, इसका पेट कभी नहीं भरता है। ये हमारा पेट यदि दो रोटी की भूख हो और चार रोटी खालो तो पेट भर जाता है परन्तु मन की भूख कभी नहीं भरती है। फिर ये राज्य चाहता है, पृथ्वी का राज्य मिल जाय तो फिर कहता है मुझे स्वर्ग का राज्य चाहिये, स्वर्ग का राज्य मिल जाय तो कहता है पाताल का राज्य चाहिये, त्रिलोकी का राजा मैं बनूँ, तो मन में ये इच्छायें हैं भला। आत्मा तो मन की इच्छाओं को देखता रहता है। आप देखते हो जितने असुर हैं, राक्षस हैं कितनी इच्छायें करते हैं, इच्छा करते करते मर जाते हैं और इच्छायें पूरी नहीं होती हैं और वरदान माँगते हैं कि हम त्रिलोकी के विजय राजा बन जायें परन्तु इनकी इच्छायें कभी नहीं पूरी होती हैं और मर जाते हैं, ये हाल मन का है सज्जनों! एक व्यक्ति ने इच्छा किया भगवान से, कहा प्रभु मुझे खेत चाहिये, पृथ्वी चाहिये तो भगवान ने कहाकि तू दौड़ लगा जितनी पृथ्वी की तुझे इच्छा हो उतनी पृथ्वी दौड़ लगा करके घेर ले वो पृथ्वी तेरी हो जायेगी तो वो दौड़ लगाने लगा, घेरा डालने लगा पृथ्वी में। घेरा डालते डालते और थोड़ा घेरा कर लूँ, लम्बा घेरा डालते डालते मर गया वो उसकी इच्छा पूरी न हुई। तो सज्जनों ये मन का हाल है, हम तो मन के देखने वाले हैं हमको तो कोई इच्छा है नहीं। असंगो निस्पृहः, आत्मा में कोई इच्छा नहीं है। **शान्तो,** आत्मा का स्वभाव ही शान्त है, शान्त महासागर के समान आत्मा शान्त है। अशान्ति भी मन में ही होती है। जो इच्छा करे और वो न मिले तो मन अशान्त हो जाता है। इच्छानुसार जो चीज़ मिल जाय तो थोड़ी देर के लिये शान्त हो जायेगा और फिर जहाँ इच्छा हो जायेगी तो फिर अशान्त हो जायेगा। तो ये शान्त और अशान्त सब मन के ही धर्म हैं आत्मा के नहीं, आत्मा तो मन की शान्ति अशान्ति का द्रष्टा है सदा शान्त है। **भ्रमात् संसारवान्**

इव, भ्रम से अज्ञानता से अपने आप को जो शरीर मान लेगा तो जन्म मरण का भय हो ही जायेगा, और यदि मन, बुद्धि मान लेगा तो काम क्रोध लोभ मोह जो ये सब मन के धर्म हैं इनके चक्कर में फॅस जायेगा। तो सज्जनों ये भ्रम है, अज्ञानता है, नासमझी है। हम देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण आदि नहीं हैं, हम इनके द्रष्टा साक्षी मात्र हैं तो इनके धर्म भी हम नहीं हैं। हम देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों को देखते हैं और इनके अच्छे बुरे कर्मों को देखते हैं, इनकी सारी इच्छाओं को देखते हैं पर अलग रहते हैं, सबके संग रह कर भी सबसे अलग। आत्मा का यही स्वभाव है :—

रहता सभी के संग पर करता न किंचित संग है,
है रंग पक्के में रंगा चढ़ता न कच्चा रंग है।।

सबके संग हम रहते हैं, सबको देखते हैं पर किसी का संग नहीं है, **असंगो हि अयं पुरुषः**, आत्मा सदा असंग रहता है पर किसी को छूता नहीं इसलिये असंग ही रहता है। सत्-चित्-आनंद ये ही आत्मा का रंग है 'पक्का' और ये माया के रंग 'कच्चे' हैं। हर रंग में रहता है, स्त्री पुरुष मनुष्य पशु पक्षी काग कोयल हंस मोर, ये माया के रंग हैं सज्जनों! हर शरीर में रंग होते हैं, हर शरीर के भीतर रहता है आत्मा पर शरीरों का, संसार का, माया का कोई भी रंग आत्मा को स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं है अलग ही रहता है। तो सज्जनों हमारा तुम्हारा आत्मा का स्वरूप असंग ही है। जो आत्मा को नहीं जानते वो ही अपने को शरीर मान लेते हैं, इन्द्रिय मन बुद्धि मान लेते हैं। जब इन्द्रिय मन बुद्धि मान लेते हैं तो पुण्य-पाप के कर्ता बन बैठते हैं और जब कर्ता बन बैठते हैं तो इनको भोक्ता भी बनना पड़ता है। अरे जब तुम्हीं स्वीकार करोगे कि मैंने अच्छा किया बुरा किया तो फिर ईश्वर को दण्ड देने में बाध्य होना पड़ता है। अब जब तुम्हीं कह रहे हो कि मैंने अच्छा किया है, मैंने ये बुरा काम किया है तब फिर ईश्वर क्या करे उसको दण्ड देता है। परन्तु सज्जनों ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के धर्म हैं, शरीर का जन्म-मरण और इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के धर्म, शुभ अशुभ कर्मों का कर्ता और कर्ता होने से शुभ दुःख का भोक्ता और जन्म-मरण का धर्ता, ये सब अज्ञानता से अपने को शरीर मानने से, इन्द्रिय मन बुद्धि मानने से होता है। इसलिये सज्जनों! अपने को असंग व केवल द्रष्टा साक्षी मात्र जानो। ये ही भगवान कृष्ण का उपदेश है। यथार्थ उपदेश भगवान देते हैं, सत्य वक्ता हैं, जो हमारा तुम्हारा सच्चा स्वरूप है वही बता रहे हैं।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 12 - VOICE 60

१४

भगवान राम का हनुमानजी को ज्ञानोपदेश

* परमात्मा आत्मा अनात्मा *

कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीरामचन्द्र जी से हनुमानजी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया हे भगवन्!

त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतो राम मुक्तये
अनायासेन येनाहं मुंचेयं भव बन्धनात्
कृपया वद मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्।।

हे राम! शास्त्रों में मैं आपके दो स्वरूप सुनता हूँ **निर्गुण-निराकार** और **सगुण-साकार**, सगुण-साकार की तो मैं सेवा करता हूँ परन्तु मैं आपके निर्गुण-निराकार स्वरूप को नहीं जानता हूँ, और ये सुनता हूँ कि आपके निर्गुण-निराकार स्वरूप के जाानने मात्र से जीव भव सागर से मुक्त हो जाता है, छूट जाता है इसलिये हे प्रभु! आप अपना निर्गुण-निराकार स्वरूप बतावें, आपके बताये बिना ये जीव जान नहीं सकता है। तो भगवान श्रीराम बोले हे हनुमान! सावधान मन से श्रवण करो —

ततो रामः स्वयं प्राहा हनुमन्तम् उपस्थितम्
श्रृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि आत्मानात्म परात्मनाम्।

हे हनुमान! सुनो मैं तुमको आत्मा, अनात्मा और परमात्मा इन तीन का स्वरूप बताता हूँ।

आकाशस्य यथा भेदो दृश्यते त्रिविधो महान्
जलाशये महाकाशस्थ तदवच्छिन्न एवहि
प्रतिबिम्बाख्यमपरम् दृश्यते त्रिविधं नभाः।।
बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्यम् एकं पूर्णमथा परम
आभासस्त्व परमबिम्ब भूत एवम त्रिधा तितिः।।
साभास बुद्धेः कर्तृत्वं अविच्छिन्ने अविकारणी
साक्षिण्या रूप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथा बुधैः।।

ये कथा अध्यात्म रामायण में प्रथम सर्ग की है। अध्यात्म रामायण के प्रथम सर्ग में 'राम हृदय' नामक प्रसंग है उसी में ये रामजी और हनुमानजी का सम्वाद आता है। तो भगवान राम बोले हे हनुमान! एक तो आत्मा है, दूसरा परमात्मा है और तीसरा अनात्मा है, बस इतना ही सम्पूर्ण ज्ञान है। पहले एक दृष्टान्त देते हैं उस दृष्टान्त के अनुसार फिर दाष्टान्त समझाते हैं, सिद्धान्त समझाते हैं। हे हनुमान! जैसे जलाशय में तीन प्रकार का आकाश दिखाई पड़ता है—

जलाशये महाकाशस्थ तदवच्छिन्न एवहि
प्रतिबिम्बाख्यमपरम् दृश्यते त्रिविधं नभाः।।

जैसे जल से पूरित घट में, जिस घट में निर्मल जल भरा हुआ है उस घट के भीतर एक तो घटावच्छिन्न आकाश है जितने देश में घट है उतनी देश में आकाश घिरा हुआ है, आकाश घड़े के भीतर जितनी पोलाई है न! उसको घटावच्छिन्न आकाश कहते हैं और उसी पोलाई में जल

भरा जाता है घट के भीतर जो पोल है जगह है उसी में जल भरा जाता है उस जल में आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ता है और नक्षत्रों के सहित पड़ता है। जल से भर के आप घड़ा रख दो तो दिन में उसमें सूर्य भी दिखाई पड़ेगा और नीला नीला आकाश भी दिखाई पड़ेगा उस घड़े के जल के भीतर। तो एक तो आकाश हो गया घड़े के भीतर जितनी पोलाई है जिसमें जल भरा गया है और दूसरा आकाश वो हो गया जो उस जल में प्रतिबिम्ब पड़ रहा है नक्षत्रों के सहित। रात्रि के समय चन्द्रमा और तारागणों का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ेगा आकाश के सहित, आकाश भी दिखाई पड़ेगा और उसमें नक्षत्र और तारागण भी दिखाई पड़ेंगे, तो ये आकाश का प्रतिबिम्ब है। और तीसरा आकाश घड़े के बाहर वाला आकाश जो महाकाश के समान है वो किसी परिच्छेद के भीतर नहीं आया जो घड़े के बाहर आकाश है, इसप्रकार से तीन आकाश हो गये। अब आत्मा, अनात्मा, परमात्मा की बात बताते हैं यानि दृष्टान्त के द्वारा सिद्धान्त बताते हैं। ये शरीररूपी घट हैं और इनमें बुद्धिरूपी जल भरा हुआ है।

बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्यम् एकं पूर्णमथा परम
आभासस्त्व परमबिम्ब भूत एवम त्रिधा तितिः।।

एक तो शरीर के भीतर, बुद्धि के भीतर जितना व्यापक चेतन आ गया है (क्योंकि जैसे आकाश व्यापक है ऐसे ही चेतन नाम ज्ञानस्वरूप परमात्मा का है वो भी व्यापक है और आकाश से भी अति सूक्ष्म है इसलिये आकाश में भी व्यापक है **'चिदाकाशमाकाश वासं भजेहं',** ये जो चेतन आकाश है ये ज्ञानरूपी आकाश परमात्मा है और ये चिदाकाश पृथ्वी जल तेज वायु आकाश में जो भूताकाश है उसमें भी व्यापक है इतना अधिक सूक्ष्म है, तो वो चिदाकाश जितनी में बुद्धि है उस बुद्धि देश में या शरीर देश में आ गया) उसको कहेंगे घटाकाश के समान ये आत्मा है, हमारा तुम्हारा सब जीवों का ये स्वरूप है आत्मा जो बुद्धि देश के भीतर हम आ गये हैं। हम बुद्धि को जानते हैं, शरीर को जानते हैं और इन्द्रियों को भी जानते हैं सबको जानते हैं, इसको आत्मा कहते हैं और जो बुद्धिरूपी जल में प्रतिबिम्ब पड़ रहा है उसको अनात्मा कहते हैं, वो सत्य नहीं होता क्योंकि कोई भी प्रतिबिम्ब सत्य नहीं हुआ करते हैं, बिम्ब ही सत्य होता है तो आत्मा सत्य है और बुद्धि में पड़ा हुआ जो प्रतिबिम्ब है उस बुद्धि के प्रतिबिम्ब में भी थोड़ा ज्ञान होता है और वो चिदाभास शब्दादि विषयों को इन्द्रियों के द्वारा निकल करके जानता भी है और वो शब्दादि विषयों की अनुकूलता और प्रतिकूलता से सुख-दुःख भी मानता है, वो कर्मों में अहंकार भी करता है, ये चिदाभास का धर्म है। बन्ध मोक्ष भी इसी चिदाभास का है, आत्मा का परमात्मा का बन्ध मोक्ष नहीं है वो तो नित्य मुक्त है। चिदाभास को ही अज्ञान है और **अज्ञान** की **आवरण** और **विक्षेप शक्ति**—ये भी चिदाभास की ७ अवस्थाएं बतायी गयी हैं।

चिदाभास की 7 अवस्थाएं

१. अज्ञान २. आवरण ३. विक्षेप ४. ज्ञान (परोक्ष ज्ञान) ५. अज्ञान-आवरण की निवृत्ति (अपरोक्ष ज्ञान) ६. विक्षेप की निवृत्ति (सर्वदुःख एवं मृत्यु की) ७. हर्ष, नित्य सुख-शान्ति, परमानंद की प्राप्ति।

ये सात अवस्थाएं चिदाभास की ही हैं, न तो आत्मा की हैं और न ही परमात्मा की और महाकाश के समान परमात्मा है जो इस देह से और बुद्धि से बाहर व्यापक है वो ब्रह्म है, परमात्मा है। तो महाकाश के समान परमात्मा हो गया जो किसी परिच्छेद में नहीं आया है और जो बुद्धि में प्रतिबिम्बित हो गया वो अनात्मा हो गया। तो आत्मा और परमात्मा तो स्वभाव से एक हैं जैसे घटाकाश और महाकाश, वे तो स्वरूप से एक हैं उनमें कोई खण्ड खण्ड भाव नहीं हुआ है क्योंकि व्यापक वस्तु जो होती है वो अखण्ड ही रहती है। आकाश में घट बन गया, मठ बन गया क्योंकि आकाश ही तो जगह देता है न! घट मठ बनेंगे तो रहेंगे कहाँ और घट मठ बनेंगे कहाँ? ये पोलाई के अन्दर ही तो बनेंगे। ये जो मकान बना है इसके भीतर भी पोलाई है और बाहर भी पोलाई है तो बाहर वाला तो महाकाश है और इस मठ के भीतर वाला जो पोलाई है ये

मठाकाश हो गया, परन्तु भीतर और बाहर का आकाश अखण्ड ही है। इन दीवारों की वो शक्ति सामर्थ्य नहीं है जो आकाश को खण्ड खण्ड कर देवे, टुकड़ा टुकड़ा कर देवे। ये जो दीवारें हैं इनके भीतर भी आकाश का प्रवेश है, दीवारों के भीतर वाला आकाश और बाहर वाला आकाश बिल्कुल मिले हुए हैं क्योंकि चाहे लोहे की दीवार हो वो आकाश को छू नहीं सकती, आकाश उनके भीतर भी व्यापक रहेगा और बाहर भी, इतना वो सूक्ष्म है। तो परमात्मा तो इस आकाश से ज़्यादा सूक्ष्म है **'चिदाकाशमाकाश वासं भजेहं',** जो चेतन रूपी आकाश है वो तो इस आकाश में भी व्यापक है, वो तो अत्यन्त ही सूक्ष्म है इसलिये महाकाश के समान तो परमात्मा हो गया और जो देह इन्द्रिय मन बुद्धि के भीतर आ गया है, उसका आत्मा नाम पड़ गया परन्तु अखण्ड ही है, नाम मात्र का ही भेद हुआ, नाम ही दो हो गये हैं। आत्मा, जो शरीर के भीतर 'मैं' 'मैं' इस रूप से स्फुरित हो रहा है, ये 'अहं' 'अहं' 'अहं पश्यामि' मैं देख रहा हूँ, ये आत्मा है और जो बाहर व्यापक है वो परमात्मा है, वो महाकाश के समान है। तो आत्मा और परमात्मा इन दो का तो दो नाम मात्र का भेद है, वास्तविक अभेद है और अखण्ड है। परमात्मा ही आकाश के समान इन शरीरों के भीतर साक्षी रूप में और बुद्धि के भीतर परमात्मा ही विराजमान है। इसलिये सारे जीवात्मा जितने भी हैं, आत्मा नाम से कहे जाते हैं ये स्वरूप से एक ही हैं, इनमें भेद नहीं है। अब जो आभास है, चिदाभास है उसका भी बाध समानाधिकरण से अभेद हो जाता है। देखो जब अभेद होता है चिदाभास का बाध करके तब उसी को मोक्ष कहते हैं, चिदाभास नामक जो जीव है उसका मोक्ष बाध करके होता है तो देखो, पहले तो जितने भी चिदाभास हैं जीव कहने से इसमें आत्मारूपी अधिष्ठान भी आ जाता है माने जो शुद्ध चेतन है, बुद्धि और बुद्धि में चिदाभास का जो साक्षी चेतन है वो अधिष्ठान है आत्मा माने अधिष्ठान आत्मा, बुद्धि और बुद्धि में चिदाभास ये तीनों मिलकर के जीव पद का वाच्यार्थ कहलाता है। तो सत्य और मिथ्या दोनों मिले हैं इसमें, इसमें बुद्धि और चिदाभास तो मिथ्या हैं और जो चेतन आत्मा है वो सत्य है, पर आत्मा के बिना बुद्धि कहाँ होगी? और चेतन नहीं होगा तो आभास किसका पड़ेगा? जैसे हम अपना मुख देखने के लिये दर्पण लेते हैं तो हम स्वयं हैं और एक दर्पण है और फिर उस दर्पण में हमारा मुख भी है, तीनों हैं तीनों के बिना हमारा जो प्रतिबिम्ब है वो दिखाई नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार से हम चेतन हैं और बुद्धिरूपी दर्पण है और उसमें हम चेतन का आभास भी पड़ रहा है, ये तीनों मिला हुआ जीव कहलाता है। इसमें मिथ्या भाग का त्याग करके, बाध करके सत्य आत्मा के साथ में एकत्व किया जाता है क्योंकि आत्मा अधिष्ठान सत्य वस्तु है और बुद्धि और बुद्धि में आभास मिथ्या वस्तु है, ये जीव का लक्ष्यार्थ कहलाता है, सत्य अर्थ कहलाता है और तीनों मिलकर के वाच्यार्थ कहलाता है इसीलिये **'त्वं'** पद का शोधन किया जाता है। इसीप्रकार से ईश्वर में भी तीन चीज़ हैं, एक तो महामाया शक्ति है जो शुद्ध सत्वगुण प्रधान है विद्या जिसका नाम है और ब्रह्म चेतन है और उसमें पड़ा हुआ आभास है। तो ब्रह्म चेतन अधिष्ठान हो गया और माया मिथ्या हो गयी, अध्यासरूप हो गयी और उसमें पड़ा हुआ जो प्रतिबिम्ब है वो भी मिथ्या ही है तो इस **'तत्'** पद को **'तत्त्वमसि'** महावाक्य में ईश्वर कहते हैं और **'त्वं'** को जीव कहते हैं और **'असि'** पद से दोनों की एकता की जाती है। वाच्यार्थ में एकता नहीं होती है, लक्ष्यार्थ में एकता होती है क्योंकि वाच्यार्थ में वो जो चिदाभास पड़ा है माया में वो सर्वज्ञ है और जो बुद्धि में आभास पड़ा है वो अल्पज्ञ है क्योंकि बुद्धि अल्प है और वो विद्यारूप माया महान है इसलिये ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है और जगत की उत्पत्ति पालन संहार करता है तथा जीव अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान है, वो जगत की उत्पत्ति पालन संहार नहीं करता है ये भेद उपाधि भेद से है वास्तविक नहीं है। इसलिये तत् पद माने ईश्वर पद का वाच्यार्थ हुआ 'माया और आभास के सहित अधिष्ठान ब्रह्म' यानि तीनों मिलकर ईश्वर पद का वाच्यार्थ है। और जब तत् पद और त्वं पद का शोधन करते हैं तो जो मिथ्या भाग है उसका त्याग करते हैं, सत्य का त्याग हो नहीं सकता है अत: माया और उसमें पड़ा हुआ आभास, उसका त्याग हो जाता है, बाध हो जाता है तो सत्य रह गया 'वह ईश्वर-साक्षी अधिष्ठानरूप जो ब्रह्म है' और मिथ्या माया और उसमें चिदाभास इन दोनों की निवृत्ति अधिष्ठान में हो जाती है। इसी प्रकार से जीव में भी वाच्यार्थ में जो तीनों हैं—आत्मा, बुद्धि और आभास, तो बुद्धि और आभास का त्याग करके इसमें भी जो

चेतन भाग है जीव में लक्ष्यार्थ में वो सत्य है तो ईश्वर और जीव में जो चेतन भाग लक्ष्यार्थ है वो तो ब्रह्म ही है, शुद्ध ब्रह्म है और जो वाच्यार्थ है उसका उसमें बाध करके माने अध्यास की निवृत्ति करके अधिष्ठान रूप हो जाते हैं इसलिये माया, अविद्या और चिदाभास ये भी अध्यासरूप, छायारूप, प्रतिबिम्बरूप होने से बिम्ब में मिल जाते हैं, अधिष्ठान में मिल जाते हैं इस प्रकार से जीव और ईश्वर के वाच्यार्थ का बाध करके समानाधिकरण एकत्व हो जाता है। इस प्रकार से जीव को तो अज्ञानता है, जीव से पूछो भाई तू ब्रह्म को कब से नहीं जानता है? तो ये कहता है कि मैं कभी से भी नहीं जानता हूँ, तो ये जीव को अज्ञानता है ब्रह्म को जानता नहीं है। जीव की दृष्टि से ये अज्ञान जीव के लिये अनादि है क्योंकि कहता है न कि मैं कभी से भी नहीं जानता हूँ तो अनादि सिद्ध कर रहा है, तो अनादि अज्ञान से जीव सम्मोहित हो रहे हैं। एक तो ये **अज्ञान** हो गया और दूसरी अज्ञान की **आवरण** और **विक्षेप** शक्ति है, उसका स्वरूप क्या है? आवरण शक्ति के दो भेद हैं—**'न अस्ति, न भाति इति व्यवहार हेतु आवरण शक्तिः'**। *'ब्रह्म नहीं है'* एक तो ये आवरण शक्ति है, इसको **असत्वापादक आवरण** कहते हैं कि ब्रह्म नहीं है और *'ब्रह्म भासता नहीं है'* ये **अभानापादक आवरण** है। जीव कहता है कि मैं ब्रह्म को नहीं जानता ये तो अज्ञान हो गया और ब्रह्म है नहीं और भासता नहीं, ये दो प्रकार की आवरण शक्ति भी इसी जीव में हैं चिदाभास में हैं। इसी आवरण शक्ति से फिर विक्षेप शक्ति की उत्पत्ति होती है। विक्षेप शक्ति का क्या स्वरूप है? पंचमहाभूतादि प्रपंच — आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी ये पंचमहाभूत, और पंचमहाभूतों से स्थूलशरीर (जो दिखाई पड़ रहा है ऑखों से) और इसके भीतर १९ तत्त्वों का सूक्ष्मशरीर (पॉच ज्ञानेन्द्रिय, पॉच कर्मेन्द्रिय, पॉच प्राण, मन बुद्धि चित्त अहंकार) और फिर इस चिदाभास में इन्द्रियों के द्वारा जब विषयों को ग्रहण करता है तो कोई विषय अनुकूल है कोई प्रतिकूल हैं, अनुकूल से सुख मानना और प्रतिकूल से दुःख मानना ये दुःख और कर्मो में अभिमान करना क्योंकि अज्ञानतावश ये सूक्ष्म और स्थूलशरीर को अपना स्वरूप मान लेता है। तो स्थूलशरीर को अपना स्वरूप मानता है तो स्थूलशरीर के जन्म-मरण से अपना जन्म-मरण मानता है, स्थूलशरीर स्त्री पुरुष है तो अपने को भी स्त्री पुरुष मानता है। सूक्ष्मशरीर के अभिमान से कर्तापने का अभिमान करता है। इस कर्तृत्व अभिमान 'मैं अच्छे बुरे कर्मो का कर्ता हूँ' के कारण अच्छे बुरे कर्मो का फल भोगने के लिये इसको जन्म-मरण चालू हो जाता है, ये जन्म धरता है और अपने कर्मो का फल भोगता है, तो इस प्रकार का दुःख इसको प्राप्त हो जाता है, इस सबको विक्षेप कहते हैं, इतना ये विक्षेप का स्वरूप हो गया—ये तो **अज्ञान**, **आवरण** और **विक्षेप** का स्वरूप बताया, अब ज्ञान होना—एक तो **परोक्ष-ज्ञान**, दूसरा **अपरोक्ष-ज्ञान** और फिर **दुःख निवृत्ति** फिर **अत्यन्त हर्ष की प्राप्ति** इस प्रकार जीव की ये सात अवस्थायें हैं। तो देखो ये तीन तो हमने बताया न! अब परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान की बात सुनो। जब ये विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुता—चतुष्ट्य साधन से सम्पन्न होकर गुरु की शरण में जाता है तो गुरु इसको वेदों के **अवान्तर-वाक्य** और **महा-वाक्य** सुनाते हैं, जो वाक्य ब्रह्म और जीव का स्वरूप बताते हैं वो अवान्तर वाक्य कहलाते हैं। हे वत्स! हे जीव! हे शिष्य! ब्रह्म का स्वरूप है **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म',** अनंत सत्य, अनंत ज्ञान, अनंत आनंद ये ब्रह्म का स्वरूप है। इस अवान्तर वाक्य से असत्वापादक आवरण की निवृत्ति हो जाती है। जो जीव ऐसा जानता था कि ब्रह्म नहीं है तो इस अवान्तर वाक्य से इसने जाना कि नहीं! ब्रह्म है और सच्चिदानंद स्वरूप है, अवान्तर वाक्य के द्वारा परोक्ष-ज्ञान हो गया कि ब्रह्म है। अब अपरोक्ष ज्ञान के लिये गुरु महावाक्य सुनाते हैं **'तत्त्वमसि'**, हे शिष्य! जो ब्रह्म है वही तू है। इस प्रकार से सुनाने पर ये अपने आपको ब्रह्मरूप जानता है कि मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ, इस प्रकार का इसको ज्ञान होता है। जब अपने को इसने ब्रह्मरूप जान लिया तो देहाभिमान चला गया इसका। पहले स्त्री पुरुष अपने को जानता था और सूक्ष्मशरीर को अपना रूप जानकर स्वयं को कर्ता भोक्ता मानता था अब इसको ये ज्ञान हो गया कि मैं शुद्ध सच्चिदानंदघन ब्रह्म हूँ ये दोनों देह नहीं हूँ। स्थूलदेह नहीं हूँ इसलिये स्त्री पुरुष नहीं हूँ, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र नहीं हूँ, सूक्ष्मशरीर नहीं हूँ इसलिये मुझमें अच्छे बुरे कोई कर्म नहीं है इस प्रकार से इसने जान लेने पर इसके विक्षेप की निवृत्ति हो जाती है क्योंकि जन्म मरण

और दु:ख इन शरीरे-द्वौ के मानने से ही था न! अब इसने ब्रह्मरूप अपने को जाना तो पहले अज्ञान चला गया, फिर आवरण शक्ति चली गयी अवान्तर वाक्य और महावाक्य से, उसके बाद विक्षेप शक्ति भी चली गयी तो सारा दु:ख निवृत्त हो गया ब्रह्मज्ञान से और फिर इसको हर्ष की प्राप्ति, शान्ति की प्राप्ति हुई। इस प्रकार से ये सात अवस्थायें चिदाभास की वेदान्त में बताई गयी हैं। चिदाभास, ईश्वर और जीव का जो मिथ्या स्वरूप था, अध्यास रूप था वो अधिष्ठान में मिल गया, एकत्व हो गया।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 07 - 21.04.07 [P]

१५

आत्म-अनात्म विवेक एवं अवस्थात्रय परीक्षण

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से अपने परम कल्याण का उपाय पूछा, परम कल्याण जहॉ दु:ख न हो सुख ही सुख हो, नित्य सुख हो और दु:ख कभी न हो, जहॉ अनंत अखण्ड ज्ञान हो अज्ञान न हो और जहॉ अमृतत्त्व हो मृत्यु न हो, उसे ही परम कल्याण कहते हैं, उसे ही मोक्ष कहते हैं जहॉ अज्ञान से छुटकारा हो, मृत्यु से छुटकारा हो और दु:ख से छुटकारा हो। मोक्ष नाम छूटने का है। मैं आपका शिष्य हूॅ आपकी शरण में हूॅ। अर्जुन इस ज्ञान के लिये शिष्य बनता है नहीं तो भगवान को भाई मानता है और भगवान भी अर्जुन को अपनी बुआ का लड़का भाई समझते हैं अथवा अर्जुन भगवान को अपना वयस्क मित्र ही मानता है, गुरु नहीं मानता। इसीलिये भगवान ने भी इसे ज्ञान का उपदेश दिया नहीं क्योंकि '**गुरु बिन होय कि ज्ञान**' गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता। भाई में, मित्र में ज्ञान के सम्बन्ध में कोई श्रद्धा-भक्ति नहीं होती और ये ज्ञान श्रद्धा-भक्ति की चीज़ है। गुरु में श्रद्धा-भक्ति होती है। श्रद्धा-भक्ति न होगी तो भाई या मित्र के वचनों को अपने में धारण नहीं करेगा इसलिये जितने भी साधन वेदान्त में बताये गये हैं — विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुता उनमें श्रद्धा प्रधान है '**श्रद्धावान् लभते ज्ञानं**'। श्रद्धा पात्र रूप है, जैसे पात्र में ही वस्तु रखी जा सकती है यदि पात्र न होवे तो वस्तु कहॉ रखी जायेगी? वस्तु रखने के वास्ते पात्र चाहिये, गंगा जल लेना है किसी को तो पात्र की आवश्यकता है, ऐसे ही ये ज्ञान जो है ये अमृत है, अमृत भरने के लिये पात्र चाहिये तो श्रद्धा को पात्र बताया है, यदि श्रद्धा होगी तो गुरु के वचनों को अपने में धारण करेगा, श्रवण करेगा और उसका मनन करेगा और निदिध्यासन करेगा तो ज्ञान उसको सम्यक प्रकार से हो जायेगा। अब अर्जुन देखता है कि मैं तो दु:खी हूॅ पर मेरे भाई, मेरे मित्र को कोई दु:ख ही नहीं है वह प्रसन्न चित्त है ऐसे रणभूमि, युद्ध स्थल में भी! इससे जाना जाता है कि इन्हें कोई विशेष वस्तु मिली है, भय का कोई काम ही नहीं है। तो अपने से विशेषता कुछ देख रहा है। इनमें अनेक प्रकार के अद्भुत् कर्म हैं जो मैं नहीं जानता उस समस्या को ये क्षणमात्र में सुलझा देते हैं। तो विशेषता अवश्य है। तो अपने से कृष्ण में विशेषता जानकर उन्हें ईश्वररूप से स्वीकार किया कि प्रभु आप ईश्वर हैं और सर्वसमर्थ हैं, आप मेरे परम कल्याण का उपाय जानते हैं, बता सकते हैं इसलिये कहा आप गुरु हैं, मैं आपकी शरण में हूॅ। अब भगवान गीता ज्ञान का उपदेश देते हैं, अभी तक नहीं दिया हमेशा साथ रहते रहे। तो ज्ञान क्या है? अर्जुन सबको देखना, सबको जानना ज्ञान है। हे अर्जुन! सो ज्ञान हमारा, तेरा और सब जीवों का स्वरूप है, ज्ञान प्राप्त नहीं करना है। छोटे से बालक को पूछो कि बेटा तुम देखते हो कि नहीं देखते हो? वो कहता है मैं देखता हूॅ, तो देखना तो ज्ञान में ही होता है अज्ञान तो दिखाई पड़ सकता है। ये जाग्रत का जगत, सम्पूर्ण स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र ये हमको तुमको दिखाई पड़ रहे हैं और हम देख रहे हैं, जो दिखाई पड़ रहे हैं इनको ज्ञान नहीं है। सबको हम जानते हैं, देखते हैं पर ये सब हमको नहीं जानते हैं तो हमारा स्वरूप ज्ञान है नहीं तो ज्ञान बिना कैसे देख सकते हैं। किस मॉ-बाप ने अपने बेटे को ये ज्ञान दिया है कि बेटा तू देखने वाला है? किस गुरु ने ज्ञान दिया है? किसी ने नहीं। शरीर को जन्म दिया है मॉ-बाप ने, उसमें जो देखने वाला है, ज्ञान स्वरूप है उसका जन्म तो हुआ नहीं। शरीर जन्मा ऑखें खुलीं और वो ज्ञान तो अनंत-अखण्ड ब्रह्म ही है, सबमें व्यापक है — देखने लगा। इसलिये सज्जनों कोई भी अज्ञानी

नहीं है। जो अपने को अज्ञानी कहते हैं उनसे पूछो तुम अपने अज्ञान को कैसे जानते हो? अज्ञान को तो ज्ञान नहीं है, तुम अज्ञानी कैसे हो? तुम दिन को जानते हो, रात को जानते हो, स्त्री-पुरुषों को जानते हो, तुम स्वप्न देखते हो जाग्रत को देखते हो, तुम अज्ञानी कैसे हो भाई? यदि तुम अज्ञानी होते तो कुछ भी न जानते पर तुम सब जानते हो। तो संसार के जो स्त्री-पुरुष, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र हैं — ये माया के कार्य होने से अज्ञान रूप हैं, अविद्या रूप हैं, दृश्य रूप हैं इनको किसी को ज्ञान नहीं है । इन सबमें बैठा हुआ क्या स्त्री में, क्या पुरुष में, क्या बालक में, क्या वृद्ध में, क्या पंडित में, क्या मूरख में बैठ के जो देखने वाला है वो एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही है। सबमें व्यापक है। तो सज्जनों सब ज्ञानी हैं, कोई अज्ञानी देखने में आता नहीं है। किसी को ऐसा भी संशय नहीं है कि मैं कभी रहता हूँ कि नहीं रहता हूँ इसलिये सब अमृत रूप हैं, सब अमर हैं, सब सद् रूप हैं, नित्य रूप हैं। किसी को ऐसा संशय नहीं है कि 'अहं अस्मि, नवास्मि?' मैं दिन में हूँ कि नहीं हूँ ऐसा संशय किसी को नहीं है, मैं रात में हूँ कि नहीं हूँ ऐसा भी संशय किसी को नहीं है, संशय रहित ये ज्ञान है कि मैं दिन में हूँ और रात में हूँ — ये सत्पना है, रात दिन में नहीं रहती और दिन रात में नहीं रहता पर मैं रहता हूँ तो ये मेरा सद्रूप हुआ, मेरा अभाव तो न हुआ। ऐसे ही **'अहं पश्यामि, नवापश्यामि'** — मैं देखता हूँ कि नहीं देखता हूँ ये भी संशय नहीं है। मैं दिन में हूँ ये मेरा सत्रूप है और मैं दिन को देखता हूँ ये मेरा चिद्रूप है माने ज्ञानरूप है। मैं रात में हूँ ये मेरा सत्रूप है और मैं रात को देखता हूँ ये मेरा चिद्रूप है माने ज्ञानरूप है। और ये दृश्य जिस दिन को मैं देखता हूँ, जिस रात को मैं देखता हूँ ये असत्रूप है, क्यों? क्योंकि दिन रात में नहीं रहता है इसलिये दिन रात में असत् हो गया, मैं तो असत् कभी न हुआ न दिन में न रात में। अस्ति इति सत्, सत् किसको कहते हैं? मैं हूँ = अस्ति। अपना अभाव कोई कभी अनुभव करता ही नहीं है। चाहे पंडित हो चाहे मूर्ख हो, बालक हो चाहे विद्वान हो, किसको अज्ञानी कहें? और ये ज्ञान तो अनंत अखंड ब्रह्म ही है न, सबमें व्यापक है एक अद्वितीय। ऐसे ही इस रात-दिन के भीतर जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थायें बीत जाती हैं। कहो मैं जाग्रत में हूँ कि नहीं ऐसा संशय किसी को नहीं है, इस समय वर्तमान में जाग्रत अवस्था है। सब अनुभव करते हैं कि मैं जाग्रत में हूँ ये मेरा सत्रूप है, और मैं जाग्रत अवस्था को देखता हूँ ये मेरा चिद्रूप है माने ज्ञानरूप है। देखना ज्ञान में ही होता है अज्ञान में नहीं होता है अज्ञान हमेशा दृश्य रहता है और ज्ञान ही द्रष्टा रहता है। अब ये जाग्रत अवस्था रात्रि में जब सोने लगेंगे तब ये नहीं रहेगी स्वप्नावस्था आ जायेगी। माने जाग्रत जैसा ही एक सूक्ष्म संसार दिखाई पड़ेगा उसको स्वप्न कहते हैं। तो मैं स्वप्न में हूँ कि नहीं? यदि मैं नहीं होऊँगा तो सपने को देखेगा कौन? क्योंकि ज्ञानरूप तो मैं ही हूँ, सपने को तो ज्ञान नहीं है इसलिये सपने में मैं हूँ और सपने को मैं देखता हूँ। मैं सपने में मैं हूँ ये मेरा सद्रूप है, सपने को मैं देखता हूँ ये मेरा चिद्रूप है माने ज्ञानरूप है, द्रष्टारूप है तो सपने में भी मेरा अभाव नहीं है और मेरी ज्ञान दृष्टि का अभाव नहीं है। **नहिं द्रष्टो दृष्टे विपरलोपो विद्यते अविनाशित्वात्** — सज्जनों हमारी स्वभाव सिद्ध स्वरूपभूत ज्ञान दृष्टि का कभी लोप होता ही नहीं है, क्यों? अविनाशी होने से। ज्ञान की उत्पत्ति नहीं है इसीलिये ये अविनाशी है। इसका विनाश कदाचित् भी नहीं होता है। तो मैं जाग्रत को देखता हूँ, स्वप्न को देखता हूँ, मैं दोनों अवस्थाओं में हूँ। स्वप्नावस्था के बाद गाढ़ निद्रा में स्वप्नावस्था भी नहीं रहती है, घोर अज्ञान-अंधकार होता है, तम ही तम माने अंधकार ही अंधकार होता है, जाग्रत-स्वप्न का संसार नहीं होता है पर मैं रहता हूँ। तो जाग्रत का संसार तो स्वप्न में असत् हो गया क्योंकि न रहा और स्वप्न का संसार तो सुषुप्ति में असत् हो गया क्योंकि न रहा सुषुप्ति में और मैं बराबर तीनों अवस्थाओं में मौजूद हूँ व जाग्रत-स्वप्न के अभाव को देखता हूँ और अज्ञान-अंधकाररूप गाढ़ निद्रा 'सुषुप्ति' के भाव को देखता हूँ। मेरा अभाव न हुआ। तो — **जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचं यत्प्रकाशते, तद् ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।** जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को प्रकाशता है, देखता है, जानता है वह ब्रह्म है, अर्जुन वही तत्त्व मैं हूँ, वही ब्रह्म मैं हूँ क्योंकि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को मैं ही देख रहा हूँ। मेरा अभाव कदाचित् भी नहीं होता है इसलिये मैं ही ब्रह्म हूँ। ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप स्वभाव से है। तो सत् और चित्

को तो आप समझ गये अब आनंद को समझो। सुषुप्ति अवस्था में जाग्रत-स्वप्न का संसार नहीं है और स्त्री-पुरुष आदि विषय नहीं हैं, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध ये पाँचों विषय भी नहीं हैं और पाँचों विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियाँ भी नहीं हैं और सुख-दु:ख का भोक्ता ये मन भी नहीं है तथा तन भी नहीं है इसलिये सुषुप्ति अवस्था में कितना आनंद है — **'यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः — मा०उ०।।** उस समय हमारे तुम्हारे आत्मा का नाम प्राज्ञ होता है और उस समय वह आनंदमय ही होता है, उस समय केवल आनंद का ही भोग होता है, दु:ख का तो लेश नहीं है — तो ये आत्मानंद ही है। परन्तु इस आत्मानंद का उस सुषुप्ति में, अविद्या में, अज्ञान में आभास सुख है क्योंकि दृश्य रूप से, अनुभव रूप से वो मालूम पड़ रहा है। आनंद अपना स्वरूप है और जो हमारे अनुभव में आ रहा है वो अपना ही प्रतिबिम्ब है। वो निद्रारूप अविद्या में प्रतिबिम्ब पडता है, उस आनंद का हम अनुभव करते हैं तो वह आत्मानंद ही है, आत्मानंद का प्रतिबिम्ब आत्मा ही है। वो सत्य नहीं है क्योंकि निद्रा टूटी तो वो आनंद का प्रतिबिम्ब गायब हो जाता है और समाधि में? सुषुप्ति के आगे समाधि है उसमें एकरस आनंद रहता है। सुषुप्ति भी सदा रहती नहीं है वो फिर जाग्रत-स्वप्न को उत्पन्न कर देती है। इसी सुषुप्ति को ही माया कहते हैं, प्रकृति कहते हैं, अविद्या-अज्ञान कहते हैं क्योंकि ये संसार माया से उत्पन्न होता है, ये भगवान का कहना है — **'मम माया सम्भव संसारा',** 'ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रतिवेद कहे। माया का दर्शन करो, माया को समझो, माया है क्या? इस अंधकाररूप निद्रा को, सुषुप्ति को ही माया कहते हैं और इसी से जाग्रत-स्वप्न का संसार उत्पन्न होता है। संसार नाम की और तो कोई चीज़ नहीं है यही जाग्रत-स्वप्न को ही संसार कहते हैं और हम देखने वाले हैं। तो ये निद्रा से ही उत्पन्न होते हैं। इसलिये ये प्रकृति दु:खरूप, दु:ख का समुद्ररूप इस जगत को जन्म देती है, ये जगत जननी है, फिर जगत पैदा कर देती है। यदि निद्रा सदा बनी रहे तो जीव को दु:ख कहाँ? कितना भी रोगी हो, शरीर का रोगी हो तड़प रहा हो, दु:खी हो और शारीरिक दु:ख हो रोग बीमारी का, और मानसिक दु:ख हो काम क्रोध लोभ मोह चिन्ता तृष्णा का, ये मन में होती हैं पर जब नींद आ जाये तो! न शारीरिक रोग बीमारी का दु:ख है, न चिन्ता का, तृष्णा का, काम क्रोध लोभ मोह का दु:ख है, क्यों? तन और मन दोनों नहीं रहते ये जगत के अन्तर्गत् हैं। निद्रा तो कारण है न, वो कारण में लय रहते हैं, स्थूल और सूक्ष्म शरीर दोनों ही इसलिये देखना, सुनना, बोलना, हर्ष, विषाद, इच्छा, द्वेष कुछ भी नहीं। तो तन नहीं तो रोग-बीमारी का दु:ख नहीं, मन नहीं तो काम क्रोध लोभ मोह तृष्णा चिन्ता आदि से जो दु:ख होते हैं वो भी नहीं, तो सुख ही सुख का अनुभव होता है।

नींद जब तू कभी आती है, जी की बेचैनी जाती है ।
राजा रंक न मन में धरती, सब पर कृपा बराबर करती।।
कंकड़ फूल सेज बन जाते, जब तेरे डेरे डल जाते ।

यदि आत्मा आनंद रूप न होता, विषयों में ही सुख होता तो निद्रा में तो और दु:ख ही होना चाहिये क्योंकि वहाँ विषय कोई नहीं है। स्त्री, पुत्र, धन में सुख होता तो निद्रा में तो न स्त्री है, न पुत्र है, न धन ही है तो इसको दु:खी ही रहना चाहिये। सज्जनों! ये सन्यास का सुख है, ये त्याग का सुख है। विवेक विचार से ये निद्रा की भाँति स्त्री-पुत्र-धन आदि को दु:खरूप जान के पहले से त्याग देवे कि ये दु:ख का समुद्र है। भगवान के भी वचन हैं कि जगत **'दु:खालय अशाश्वतम्'**, अर्जुन! ये संसार तो दु:ख का ही समुद्र है और मृत्यु का समुद्र है। दु:ख के समुद्र से सुख चाहता है! मृत्यु के समुद्र इस संसार में क्षण-क्षण में सबकी मृत्यु हो रही है उससे अमरता चाहता है कितनी नादानी है। नमक मिर्च आटा दाल चावल की दुकान से मिठाई खरीदना चाहता है जहाँ नमक मिर्च मसाला मिलता है, वहाँ मिठाई मिलेगी? अरे मिठाई तो मिठाई की दुकान में ही मिल सकती है और मिठाई की दुकान से कोई नमक मिर्च मसाला चाहे तो वहाँ नहीं मिलेगी। सज्जनों! आत्मा या परमात्मा एक वस्तु है, ये मिठाई की दुकान है। सुख ही मीठा है सबको, आनंद ही

सबको मीठा है। तो आत्मा तो आनंद सिन्धु है, सुख सिन्धु है। यहाँ कड़वा पदार्थ ये दु:ख, नमकीन कुछ नहीं। भगवान में दु:ख मिल नहीं सकता कहाँ से देंगे जब है ही नहीं। संसार में सुख नहीं है, संसार तो दु:ख की दुकान है, मृत्यु की दुकान है। दोनों ही उदार हैं, संसार दु:ख देने में, मृत्यु देने में उदार है और भगवान सुख, आनंद देने में और अमरता देने में उदार हैं अब मर्जी तेरी है अर्जुन **'यथेच्छसि तथा कुरु'**, जैसी तेरी इच्छा हो चाहे आनंद के समुद्र में स्नान कर और चाहे दु:ख के समुद्र में स्नान कर। मैंने तुझे बता दिया दु:ख का समुद्र और सुख का समुद्र, इच्छा तेरी है बता देना गुरु का काम है। तो सच्चिदानंद सिन्धु सज्जनो! हमारा स्वभाव-सिद्ध स्वरूप है और असत-जड़-दु:खरूप (असत् माने मृत्युरूप, जड़ माने अज्ञानरूप और दु:खरूप) ये संसार का स्वरूप है और अपना आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है — ये दोनों का स्वरूप है। अपना स्वरूप तो स्वभाव सिद्ध है। कोई परवशता नहीं है, स्त्री पुत्र धन पाने में परवशता है मिले कि न मिले, निद्रा आवे कि न आवे उसमें भी परवशता है पर समाधि में क्या परवशता है, अपने आत्म स्वरूप के चिन्तन करने में कौन परवशता है। कौन दूसरे की शरण लेता है। अरे मैं सच्चिदानंद स्वरूप हूँ, सच्चिदानंदरूपोहम्, सच्चिदानंदरूपोहम! अपने स्वरूप में स्थिर होना ही तो समाधि है। आत्मा की तो नित्य ही समाधि है, ये दु:खी मन के लिये आत्म-चिन्तन समाधि है क्योंकि बन्ध-मोक्ष आत्मा का नहीं ये मन का है। मन यदि सुख चाहे, मोक्ष चाहे, दु:खों से छुटकारा चाहे तो मुझ आत्मतत्त्व का चिन्तन करे। समाधि और विक्षेप दोनों मन के ही धर्म हैं। बन्ध-मोक्ष मन का ही है, मैं तो नित्य मुक्त हूँ और नित्य अपने स्वरूप में समाहित हूँ मुझमें कभी विक्षेप है नहीं। इस प्रकार से सज्जनों भगवान श्रीकृष्ण का दिया हुआ ये ज्ञान अपने अनुभव से विचार करो कि मैं सदा रहता हूँ जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति में इसी वास्ते मैं सत् हूँ और तीनों को देखता हूँ इसीलिये मैं चिद्रूप हूँ और जहाँ कोई नहीं होता है मैं अपने आप अकेला होता हूँ तो मैं अपने आत्मानंद का ही अनुभव करता हूँ और परम प्रेमास्पद भी हूँ, परम प्रीति का विषय भी मैं ही हूँ इसलिये मैं आनंदरूप भी हूँ। तो अपने विचार से भी और भगवान के वचन प्रमाण से भी ये ही सिद्ध होता है कि आत्मा में मृत्यु नहीं है, अज्ञानता नहीं है, दु:ख नहीं है और संसार में अमरता नहीं है, सुख नहीं है और ज्ञान नहीं है अज्ञानरूप है, दोनों विरुद्ध हैं — मैं आत्मा ये संसार अनात्मा।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 07 - 03.09.06

१६

उपनिषदों का सार

अर्जुन उवाच :— हे भगवन् अज्ञानता के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है और धर्म को भी सम्यक प्रकार से नहीं जानता हूँ इसलिये जिस प्रकार से मुझे नित्य सुख शान्ति की प्राप्ति हो, आत्यन्तिक दु:खों की निवृत्ति हो आप मुझे वह उपाय बताओ मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले, हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण कर :—

मैं ही ऐसा हूँ, मैं सद्रूप चिद्रूप आनंदरूप हूँ, मैं ही परम कल्याणरूप हूँ और मैं व्यापक विष्णु ही नर-नारायण के रूप में अवतार लेता हूँ। अर्जुन तू नर है मैं नारायण हूँ। ईश्वर नारायण है और जीव नर है। ईश्वर की उपाधि समष्टि माया है और जीव की उपाधि व्यष्टि माया है। इन व्यष्टि समष्टि रूप उपाधि माया में वो जो व्यापक सच्चिदानंद ब्रह्म है उसी को विष्णु कहते हैं वो इन दोनों में अवतार लेता है प्रतिबिम्बरूप से। तो विद्यारूप माया में, समष्टि माया में जो व्यापक विष्णु का प्रतिबिम्ब पड़ गया उसका नाम नारायण हुआ वो चराचर जगत की उत्पत्ति पालन संहार करता है और अपने शुद्ध ब्रह्म स्वरूप से इनको धारण भी करता है, अधिष्ठानरूप भी है और व्यष्टि उपाधि अविद्या अथवा बुद्धि उपाधियों में वही व्यापक विष्णु प्रकट हुआ है सो उसको जीव कहते हैं, उसको नर कहते हैं तो व्यष्टि सृष्टि और समष्टि सृष्टि ये दोनों नर-नारायण करते हैं। नर तो अपने स्वरूप को भूल जाता है और जो ईश्वररूप नारायण है वो अपने ब्रह्म स्वरूप को, विष्णु स्वरूप को कभी नहीं भूलता है। जीवरूपी जो नर है वो अपने ब्रह्म स्वरूप को भूल जाता है और इसलिये ये शरीरों में अहंता-ममता कर लेता है। इस संसार में व्यापक विष्णु भी देखो और नर-नारायण माने जीव-ईश्वर भी देखो। जो सत्-चित्-आनंदरूप से आकाश के समान एक अद्वितीय व्यापक है उसको परमात्मा जानना चाहिये, उसको ब्रह्म जानना चाहिये और जो घटाकाश के समान उन घटरूपी शरीरों में व्याप्त है, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के भीतर जो इनसे परिछिन्न हो गया है बुद्धि अवच्छिन्न चैतन्य, उसको आत्मा जानना चाहिये और जो बुद्धि में प्रतिबिम्ब पड़ा है उसको जीव जानना चाहिये, उसको अनात्मा जानना चाहिये। अब इनमें देखना चाहिये कि कर्तृत्व-भोक्तृत्व किसमें है? आत्मा में, परमात्मा में कि जीव में? साभास बुद्धि को जीव कहते हैं। तो भगवान राम से रामावतार में हनुमानजी ने यही प्रश्न किया था कि मेरे कल्याण का उपाय बताओ तो भगवान राम ने हनुमानजी को ऐसा बताया था :—

ततो राम: स्वयंप्राहा हनुमन्तम् उपस्थितम्,
शिवतत्त्वम् प्रवक्ष्यामि आत्मानात्मो परात्मनाम्।।
आकाशस्य यथा भेदो दृश्यते त्रिविधो महान्,
जलाशये महाकाशस्तद्वच्छिन्न एवहि:।।
प्रतिबिम्बाख्यमपरम् दृश्यते त्रिविधं नभा:।।

ये दृष्टान्त दिया। तो भगवान राम ने कहा हनुमान तुम सुनो अपने कल्याण की बात। आत्मा,

परमात्मा और अनात्मा ये तीन तत्त्वों को मैं बताता हूँ, तीनों बातों को अच्छी तरह समझलो। तो आकाश का उदाहरण दिया— **'आकाशस्य यथा भेदो दृश्यते त्रिविधो महान्'**, हे हनुमान जैसे आकाश के महान् तीन भेद दिखाई पड़ते हैं वो तीन भेद कौन हैं? कहा एक तो महाकाश प्रसिद्ध ही है, प्रथम **महाकाश** है और फिर घट मठ आदि बन गये तो उनके भीतर भी वो व्यापक आकाश भीतर भी हो गया और बाहर भी हो गया। तो जो घट के भीतर हो गया है उसका नाम **घटाकाश** पड़ गया और फिर उस घट में जब जल भरा गया तो जल में भी नक्षत्रों के सहित महाकाश का प्रतिबिम्ब पड़ा इसको **प्रतिबिम्बाकाश** कहते हैं। तीन आकाश हो गये, एक तो **महाकाश** और एक जो घट बन गया तो घट के भीतर जो आकाश हुआ उसको **घटाकाश** कहा और जो घट में जल भरा गया तो घटजल में जो आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ा सूर्य चन्द्र तारागणों सहित, क्योंकि आकाश में ये सब दिखाई पड़ते हैं। उतने से जल में सब दिखाई पड़ेंगे, वो तो बहुत बड़े बड़े हैं आकाश में जो सूर्य चन्द्र तारागण हैं वो इस पृथ्वी से भी कई कई गुना बड़े हैं पर इतने छोटे से जल के भीतर सब दिखाई पड़ रहे हैं, इसको **प्रतिबिम्बाकाश** कहते हैं। बस दृष्टान्त को अच्छी प्रकार समझलो फिर आत्मा, परमात्मा और अनात्मा की बात बताना है। ये दृष्टान्त समझलो तो दार्ष्टान्त, सिद्धान्त समझमें आ जायेगा। तो आप समझ गये न महाकाश, घटाकाश और प्रतिबिम्बाकाश तीन आकाश हो गये। इसमें जो घटाकाश और महाकाश है वो तो सत्य है केवल घट उपाधि के भीतर आ गया है बस इसलिये घटाकाश नामभेद हो गया है पर उसकी महाकाश के साथ अखण्डता में कोई बाधा नहीं आई। घट ने महाकाश को अपने भीतर प्रकट करके कोई खण्ड खण्ड नहीं कर दिया, आकाश अखण्ड रहा बाहर भी महाकाश और घट के भीतर भी अखण्ड ही रहा और जो घट की दीवारें हैं उनके भीतर भी है। दीवारें ठोस दिखाई पड़ती हैं न! जैसे मठ की दीवारें ठोस हैं तो मठाकाश किसको कहेंगे? जो महाकाश है न! ये मठ की दीवारों के भीतर भी प्रविष्ट है इन सब दीवार खम्भों के भीतर भी और यहाँ पोलाई के रूप में भी है तो अखण्ड ही रहा। महाकाश दीवार के भीतर भी है और मकान के भीतर भी। अपनी अखण्डता में कोई बाधा विकार नहीं आया। किसी को छुआ भी नहीं और सबके भीतर-बाहर एकरस रहा। इसलिये घटाकाश, मठाकाश और महाकाश तो एक ही हैं, इनकी अखण्डता में कोई बाधा नहीं आयी। अब रहा प्रतिबिम्बाकाश तीसरा, वो सत्य नहीं है, क्यों? क्योंकि वह जलरूपी उपाधि के कारण है, जल में प्रतिबिम्बित हुआ है। यदि घड़े में जल न होवे तो सूर्य चन्द्र तारागण कहाँ से दिखाई पड़ेंगे? वो झूठे हैं, वो सत्य नहीं हैं। ये जीवरूपी प्रतिबिम्ब है, ये अनात्मा है, जीव को प्रतिबिम्ब कहा भगवान ने। तो महाकाश के समान तो परमात्मा है और घटाकाश के समान आत्मा है जो बुद्धि के भीतर घिरा हुआ है, ये शरीररूपी घट के भीतर बुद्धि है, बुद्धि के भीतर बुद्धि देश में जो भीतर है उसको आत्मा कहते हैं और जो बुद्धि में प्रतिबिम्बित हुआ है उसको अनात्मा कहते हैं अथवा जीव कहते हैं। तीन भेद हो गये न! इनमें आत्मा परमात्मा तो अखण्ड ही रहे केवल शरीर, बुद्धिरूपी घट उपाधि ही भेद है वास्तविक तो अभेद है। विष्णु व्यापक है ब्रह्म उसकी अखण्डता में कोई बाधा इस बुद्धि ने, शरीर ने कुछ नहीं किया। भीतर बाहर एकदम परिपूर्ण है इसलिये आत्मा और परमात्मा तो हनुमान! बिल्कुल एक ही रहा। आत्मा परमात्मा का **मुख्य-समानाधिकरण** है, निर्विकार बिल्कुल माने मुख्यरूप से एकत्व है और जो जीव है उसका आत्मा के साथ में **बाध-समानाधिकरण** है माने प्रतिबिम्ब को बाध करके, प्रतिबिम्ब झूठा है क्योंकि बुद्धि में पड़ा है, बुद्धिरूपी शुद्ध जल है और ये शरीररूपी घड़ा है उसमें व्यापक विष्णु का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, तो उसको अनात्मा कहते हैं। उस जीव का ब्रह्म के साथ, आत्मा के साथ बाध-समानाधिकरण है, मिथ्या को बाध करके सत्य के साथ एकत्व होना यानि अपने प्रतिबिम्बपने को हटाके बिम्ब के साथ में एकता करना क्योंकि मिथ्या चीज़ को तो हटाना ही पड़ेगा, सत्य के साथ मिलाने में मिथ्या हट जायेगी तो सत्य आत्मा से ये प्रतिबिम्बरूप जीव का बाध-समानाधिकरण है, बाधित करके हटा करके एकत्व हो गया और आत्मा परमात्मा का तो मुख्य-समानाधिकरण है ही। इस प्रकार से ये प्रतिबिम्बरूप जीव अपने

आप को **'अहं ब्रह्मास्मि'** कह सकता है। माने अपने जीव भाव को, प्रतिबिम्ब भाव को अपने कूटस्थ आत्मा के साथ में बाध करके **'मैं कूटस्थ चेतन आत्मा हूँ'**—पहले इस प्रकार से और कूटस्थ चेतन आत्मा का परमात्मा के साथ तो मुख्य-समानाधिकरण है ही, एकत्व है ही, फिर इस प्रकार से अपने आप को **'अहं ब्रह्मास्मि'** कहता है। पहले कूटस्थ रूप हुआ बुद्धि साक्षीरूप, आत्मारूप और फिर परमात्मा के साथ में एकत्व करता है अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि। तो ये जो अहं है **'चिदाभास'** इस अहं को उसने बुद्धि में नहीं लगाया, मन में नहीं लगाया उसके साथ नहीं जोड़ा क्योंकि उसमें तो वह खाली प्रतिबिम्बित हुआ है न! जैसे हमारा मुख दर्पण में प्रतिबिम्बित हो तो वो हमारा प्रतिबिम्ब हो गया, सच्चे मुख का शीशा में प्रतिबिम्ब पड़ा और मैं बिम्ब रहा सच्चा मुख तो उस प्रतिबिम्ब का शीशा तो स्वरूप हो नहीं सकता उसका जो सच्चा स्वरूप होगा वो बिम्बरूप हमारा सच्चा मुख ही होगा। जिस दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ा है वो दर्पण उसका स्वरूप नहीं होगा और यदि वो प्रतिबिम्ब अपने को दर्पण मान बैठे तो उसकी नासमझी है, अज्ञानता है। बुद्धिरूपी दर्पण कभी बनता है और कभी मिटता है तो वो भी जन्म मरण वाला होगा, बुद्धि रहेगी तब प्रतिबिम्ब रहेगा और बुद्धि नहीं रहेगी निद्रा में, समाधि में तो प्रतिबिम्बरूप जीव भी ख़त्म हो गया तो इसलिये प्रतिबिम्ब का स्वरूप बुद्धिरूप दर्पण नहीं हो सकता, मन नहीं हो सकता। बुद्धि से मन होता है और मन से इन्द्रियाँ होती हैं और फिर इन्द्रियों से ये बाह्य संसार होता है — शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध, ये पंच विषयरूप बाहर का संसार है और भीतर का संसार इन्द्रियाँ हैं, मन है, बुद्धि है और बुद्धि में पड़ा मैं प्रतिबिम्ब हूँ और फिर बुद्धि से ऊपर वही शुद्ध आत्मा है जो घटाकाश के समान है ये बुद्धि को छूता नहीं है—**'यो बुद्धेः परतस्तु सः'**, तो जो आत्मा है उसका प्रतिबिम्ब बुद्धि में पड़ा इसलिये उस प्रतिबिम्ब का सच्चा स्वरूप तो मैं आत्मा रहा, न तो बुद्धि हुआ, न मन हुआ, न इन्द्रियाँ और न इन्द्रियों के द्वारा जो संसार देख रहा है पंच विषय न वो हुए। उसका एक सच्चा स्वरूप है तो मैं चेतन आत्मा ही हूँ निर्विकार कूटस्थ। यदि यही जीव अपने आप को बुद्धि, मन, इन्द्रिय अथवा स्थूल शरीर स्त्री-पुरुष आदि मान बैठेगा तो इसको जन्म-मरण का भय होगा, ये जीव बन्धन में आ जायेगा। आत्मा तो नित्य मुक्त है जीव का, बुद्धि का साक्षी है उसको तो बन्ध-मोक्ष है नहीं, इस जीव का ही बन्ध-मोक्ष है पर वो भी जब वो अपने को बुद्धि, मन, इन्द्रिय अथवा स्थूल शरीर मान बैठे तब और जो अपने को भी वही मानता रहे कि मेरा, मुझ प्रतिबिम्ब का सच्चा स्वरूप तो बिम्ब है, बिम्ब से मैं प्रकट हुआ हूँ इसलिये मेरा सच्चा स्वरूप तो बिम्ब ही हो सकता है और जिसमें मैं प्रतिबिम्ब पड़ा हूँ ये तो मेरे प्रकट होने का केवल साधन मात्र है, दर्पण मात्र है तो मैं दर्पण कैसे हो सकता हूँ। दर्पण जड़ है और मैं चेतन का प्रतिबिम्ब चेतन रूप हूँ इसीलिये जीव में थोड़ा ज्ञान होता है वो ज्ञान का प्रतिबिम्ब है न! आत्मा बुद्धि का साक्षी है इसलिये ज्ञानरूप है और बुद्धि तो जड़ है वो दर्पणरूप है, तो जीव का स्वरूप जड़ बुद्धि नहीं हो सकती चेतन आत्मा ही हो सकता है, चेतन का प्रतिबिम्ब चेतन है इसलिये जीव जब मन में, बुद्धि में, इन्द्रियों में और शरीर में अभिमान करता है माने यही बन बैठता है कि मैं देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण हूँ तब इसको जन्म-मरण का बन्धन होता है। क्यों, व्यष्टि बुद्धि ही सब संसार रचती है मन इन्द्रिय और बाहर का संसार और समष्टि बुद्धि समष्टि संसार की रचना करती है। समष्टि बुद्धि में जो प्रतिबिम्ब है वो तो ईश्वर है वो समष्टि संसार की रचना करता है और एक एक जो व्यष्टि बुद्धियाँ हैं इसमें जो प्रतिबिम्ब है ये नर है माने जीव है और समष्टि बुद्धि उपाधि वाला नारायण है माने ईश्वर है, ये नर-नारायण के अवतार भगवान विष्णु ही जीव और ईश्वर के रूप में हैं प्रतिबिम्बरूप से। इन जीव और ईश्वररूपी दोनों प्रतिबिम्बों का सच्चा स्वरूप तो नारायण ब्रह्म ही है। ये समष्टि व्यष्टि जो माया है, बुद्धि है या मन है ये तो उपाधियाँ हैं इनमें तो खाली प्रकट हुआ है, अवतार लिया है माने प्रतिबिम्बरूप से उतर आना, प्रकट हो जाना, यही अवतार है। इसलिये ईश्वर-जीव व्यापक विष्णु के ही नर-नारायण अवतार हैं। अर्जुन जीव है, नर है तो सभी जीव अर्जुनरूप हैं, नररूप हैं और समष्टि माया उपाधि वाले श्री कृष्ण ईश्वर हैं, वो समष्टि बुद्धिरूप

उपाधि वाले हैं उनको नारायण कहा जाता है। तो नर और नारायण ये दोनों व्यापक विष्णु के अवतार हैं, व्यापक विष्णु—सच्चिदानंद ब्रह्म के प्रतिबिम्बरूप अवतार हुए। अब जब अन्तर्धान होंगे तो कहॉ होंगे? उसी व्यापक ब्रह्म में। अरे जैसे उपाधि हट गयी, शीशा हट गया तो वो प्रतिबिम्ब कहॉ जायेगा हमारा तुम्हारा? जो मुख दिखाई पड़ता है शीशा में यदि वो शीशा हट जाये तो वो कहॉ जायेगा? वो हम ही में समा जायेगा, वो अपना ही प्रतिबिम्ब था वो तो शीशा उपाधि से उसमें प्रकट भया था जब उपाधि हटी तो मुझमें समा गया। मैं व्यापक विष्णु सब उपाधियों में प्रकट हो रहा हूँ, समष्टि व्यष्टि सब उपाधियों में, तो मैं ही नर हूँ और मैं ही नारायण हूँ प्रतिबिम्बरूप से और शुद्ध स्वरूप से सच्चिदानंदघन ब्रह्म हूँ। तो सच्चा अर्थ जीव का और ईश्वर का माने प्रतिबिम्बों का व्यापक बिम्बरूप विष्णु है जिसको सच्चिदानंद ब्रह्म कहते हैं। तो शुद्ध स्वरूप तो ब्रह्म हुआ और जीव ईश्वर दोनों को बाध करके क्योंकि प्रतिबिम्बरूप हैं, जीव का कूटस्थ के साथ व ईश्वर का ब्रह्म के साथ बाध समानाधिकरण है। इसी को भाग-त्याग लक्षणा करतें हैं, मिथ्या भाग का त्याग करके सत्य के साथ में एकत्व होता है। चूँकि प्रतिबिम्ब मिथ्या है उसका बाध हो सकता है और बिम्ब तो सत्य है वो तो हटाया नहीं जा सकता, उसका तो बाध नहीं हो सकता है, मिथ्या का ही बाध हो सकता है तो जिन मायारूप उपाधि में, माया-अविद्यारूप, बुद्धिरूप उपाधियों में ये प्रकट भया है वो भी मिथ्या ही हैं जो जीव और ईश्वर की पत्नियॉ कहलाती हैं, व्यष्टि-समष्टि माया, विद्या-अविद्या माया, इन्हीं पत्नियों से तो ये जीव पैदा करता है ये संसार और ईश्वर भी। जैसे बुद्धि में जो प्रतिबिम्ब प्रकट हुआ तो बुद्धि में बल आ गया, हलचल आ गयी नहीं तो जड़ है बुद्धि, उसने मनरूपी पुत्र पैदा कर दिया और मन में भी तो प्रतिबिम्ब बराबर पड़ा है जैसे बुद्धि में तैसे मन में, मन में भी प्रेरणा हुई, हलचल हुई उसने इन्द्रियॉ पैदा कर दिया माने आप ही बनते चले जा रहे हैं यही पैदा करना है और कहॉ से पैदा करेंगे? बुद्धि ही मन बन गयी, मन में भी मैं व्यापक हूँ प्रतिबिम्बित हूँ तो मन ने इन्द्रिय रूप धर लिया। अब इन्द्रियों में भी मैं बराबर व्यापक हूँ प्रतिबिम्बरूप से भी, इन्द्रियों ने विषय रूप धर लिया। सब 'शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध' जितने भी विषय हैं ये इन्द्रियों ने रूप धारण कर लिया है इसलिये विषयरूप संसार का कारण इन्द्रियॉ हैं, इन्द्रियों का कारण मन है, मन का कारण बुद्धि है और बुद्धि का भी प्रेरकरूप कारण ये जीव है और जीव का अधिष्ठानरूप कारण आत्मा कूटस्थ है फिर आत्मा का कोई कारण नहीं है। सबसे ऊपर आत्मा है और बुद्धि के बाहर उसी को परमात्मा कहते हैं। **'साभास बुद्धे कर्तृत्त्वम्'**, अज्ञानतावश ये जो साभास बुद्धि है इसी में कर्तृत्त्व है बुद्धि में भला! आभास तो प्रेरक मात्र रहा और कर्तापन बुद्धि में रहा परन्तु बुद्धि में अहंता करके ये प्रतिबिम्बरूप जीव स्वयं कर्ता बन बैठा। देह में मन में बुद्धि में अहंता कर लिया इसने जो कि इसका स्वरूप नहीं है, इसका स्वरूप तो कूटस्थ चेतन आत्मा है। अब उनमें जो अहंता किया तो उनके कर्मों में भी अहंता कर लिया कहा **'अहं करोमि'**—मैं करता हूँ, अब देखिये भ्रम से इसको ये बन्धन आया। अब जब कर्ता तू बन बैठा तो भोक्ता फिर कौन बनेगा? भ्रम मात्र झूठा ही कर्ता बना है तू जबकि तू वो है नहीं। बुद्धि में, मन में, इन्द्रियों में कर्म हैं तुझ प्रतिबिम्ब में भी नहीं हैं। तूभी जैसा बिम्ब है तैसा प्रतिबिम्ब है, बुद्धि की हलचल से तेरी हलचल थोड़ी होती है जैसे तालाब या नदी के किनारे कोई वृक्ष खड़ा है तो वृक्ष तो अचल है वो तो चलता नहीं है जल बह रहा है, जल चल रहा है। नदी का जल चलता है, हिलता रहता है अथवा तालाब का भी जल हिलने लगता है जब हवा चले तो, तालाब का जल भी लहरें लेने लगता है भला! तो वृक्ष तो अचल है और वृक्ष का प्रतिबिम्ब जल में उल्टा पड़ रहा है वृक्ष सीधा है। आप जल के भीतर देखोगे उस वृक्ष का प्रतिबिम्ब तो एक वृक्ष और दिखाई पड़ेगा पर वो उल्टा है, नीचे को शाखा है ऊपर को मूल है, जड़ उसकी ऊपर और पृथ्वी के ऊपर जो खड़ा है वृक्ष उसकी शाखा ऊपर है और मूल अथवा जड़ नीचे हैं। तालाब के किनारे खड़े वृक्ष का जल में जो प्रतिबिम्ब पड़ा उसकी जड़ ऊपर और शाखा नीचे है और जब जल हिलता है न! तो वो प्रतिबिम्ब भी हिलता हुआ दिखाई पड़ता है जल के हिलने से। असली में जैसे वृक्ष अचल है तैसे उसका प्रतिबिम्ब भी अचल है अत: वृक्ष हिले-डुले तो प्रतिबिम्ब को हिलना चाहिये और जब वृक्ष अचल है तो

प्रतिबिम्ब भी अचल है। तो हिलता कौन है? जल, और जल के हिलने से प्रतिबिम्ब हिलता हुआ दिखाई पड़ता है, देखने वाले देखते हैं कि प्रतिबिम्ब भी हिल रहा है। विचार करके देखो तो जल ही हिलता है प्रतिबिम्ब नहीं हिलता है, न बिम्बरूप वृक्ष हिलता है न उसका प्रतिबिम्ब ही हिलता है। जल के हिलने से प्रतिबिम्ब में हिलनापना मालूम पड़ता है और वृक्ष में तो बिल्कुल नहीं मालूम पड़ता वो तो अचल ही है पर प्रतिबिम्ब भी अचल है भ्रम से जल के हिलने से प्रतिबिम्ब हिलता हुआ नज़र आता है। ऐसे ही बुद्धिरूपी जल में ही कर्म हैं, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में ही ये सब हलचल है कर्म हैं और ये प्रतिबिम्बरूप जीव में भी हलचल नहीं है ये भी अचल है। परन्तु भ्रमवश ये हिलते हुए जल के समान जो बुद्धि, मन, इन्द्रिय हैं इनको जब इसने अपना रूप माना और अपने आत्मा स्वरूप को भूला तो अनात्मा जो अपना स्वरूप नहीं है उनको अपना स्वरूप मान बैठा तो उनके कर्मों का आप कर्ता बन बैठा माने अभिमानी बनने से, कर्ता तो वो है नहीं कर्ता तो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि ही हैं ये तो केवल अभिमान कर लिया कि मैं कर्ता हूँ, पर कर्तृत्त्व इसमें है नहीं प्रतिबिम्ब में भी। अब भला बताइये जो जानबूझ करके कहे कि मैं अच्छा-बुरा कर्म किया हूँ तो फिर यमराज उसको फल देंगे जब तू ही स्वीकार कर रहा है भाई। दूसरा कोई कहता, तेरे पर आरोप लगाता तो उस पर विचार किया जाता, मुकदमा चलता कि भाई इसने अच्छा-बुरा कर्म किया है कि नहीं किया है? साक्षी गवाही से उसकी पूछताछ होती, पर जब वो मुलज़िम स्वयं कहता है कि मैंने किया है तो क्या करे दण्ड देने वाले को भी लाचारी है। यमराज भी क्या करें? वो कहता है कि मैने ये अच्छा किया इतना बुरा किया तो व्यर्थ में जानबूझ करके ये कर्ता-भोक्ता बना है ये जीव ये इसकी मूर्खता बनी जो ८४ लाख योनियों का दु:ख उठाने लगा, आप ही कर्ता-भोक्ता बन गया, **'अहं करोमीति वृथाभिमाना'**—मैं कर्ता हूँ ये व्यर्थ का अभिमान इसने करके जन्म-मरण के बन्धन में ये आ गया नहीं तो ये सारे कर्म-धर्म जैसे जल हिलता है वायु से वैसे ही माया से देह इन्द्रिय मन बुद्धि ये ही सब कर्म कर रहे हैं हिलडुल रहे हैं, प्रतिबिम्ब भी ज्यों का त्यों है, वो भी अचल है। उसको अभिमान करना चाहिये कब वो छूटे बन्धन से? जब **'कूटस्थोहं', 'आत्माहं', मैं आत्मा हूँ, सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म हूँ—ये अहं भाव करे**, अपने आपको ब्रह्मरूप जाने तो मुक्त हो जाये और देह इन्द्रिय मन बुद्धिरूप अपने को जानेगा और इनके कर्मों को अपने कर्म मानेगा तो जन्म-मरण से नहीं छूट सकता है चाहे अनंत जन्म बीत जायें। बस ज्ञान-अज्ञान से ही बन्ध-मोक्ष है सज्जनों! ये जीव की भूल है, ये अज्ञानता है जो अपने को देह इन्द्रिय मन बुद्धि मान बैठा है। नृत्य का देखने वाला तो केवल देखता ही है वो तो अलग रहता है वो तो स्वयं नहीं नाचता परन्तु ये जो जीव था ये आया तो तमाशा देखने के लिये, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण ये नटनी है, माया है, ये अपने नाना प्रकार के कर्मरूप नृत्य कर रही है। अब ये देखने वाला बुद्धि के साथ ही घुलमिल गया नहीं तो देखता था बुद्धि के निश्चय-अनिश्चय को, मन के संकल्प-विकल्प को, ये सब देखने वाला था परन्तु ये स्वयं भी इस नटनी के साथ में देखते देखते ऐसा मोहित हुआ कि आप भी नाचने लगा इनके साथ। इनके कर्मों के साथ अपना भी वही कर्म करने लगा माने मैं भी कर रहा हूँ ऐसा घुलमिल गया। अब इसके पिटने-पिटाने का बाज़ार गर्म हो गया जन्म मरण का दु:ख पाने का। अब ये कैसे छूटे जानबूझ के तो फँसा है तू, तू देखने आया था —

'तमाशा देखता तू है, तमाशा खुद न बन बैठना'।

अब बताइये तू देखने आया था नटनी का तमाशा, बुद्धि राधा है वो सब रास रचाती है। अरे तू बुद्धि में आया, बुद्धि में बैठकर देख ही तो रहा है ये प्रतिबिम्बरूप से चाहे कूटस्थरूप से, बुद्धि तो नहीं हो सकता है। ये बुद्धि में ऐसा आसक्त हुआ, ये कृष्ण है आत्मा, ये राधा के साथ घुलमिल करके स्वयं राधा बन बैठा और इन्द्रियरूपी सखियों के साथ में रास खेलने लग गया। 'शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध' जो ये पंच विषय हैं अब वो सखियाँ ये ही भोग लगाने लगीं, ये भोग करने लगा। अब ये आत्मारूपी कृष्ण ही बताइये बुद्धि के साथ, इन्द्रियों के साथ, विषय

भोगों के साथ मिलकर ये रासलीला में फॅस कर अपने स्वरूप को गया भूल कि मैं देखने आया था तमाशा पर मैं तो इस नटनी के साथ फॅसकर मैं भी नटनी नाचने लग गया। तो पिटने-पिटाने का बाज़ार गर्म तभी हुआ नहीं तो क्यों पिटता? देखने वाले को क्या पिटना है। तो यदि हमेशा ये द्रष्टा रहे तो लाखों तमाशा हम देख डाले ज्यों के त्यों हैं हम क्यों इनके साथ में नाचने गाने लगें? क्यों मिल जायें? अलग होकर देखना चाहिये कोई बन्ध नहीं। अब ये नटनी है बुद्धि थोड़ी देर नाचेगी फिर निद्रा में सो जायेगी, नाटक संसार खतम, रासलीला खतम। मैं तो सदा ही हूॅ, कृष्ण तो सदा ही है, आत्मा कृष्ण है, बुद्धि राधारानी है, इन्द्रियॉ सखियॉ हैं, शब्दादि विषय-भोग हैं पर ये सारी रासलीला तो बुद्धि राधारानी की ही है न! कृष्ण तो देखने वाला ठहरा, आत्मा तो देखने वाला ही ठहरा। इसका तो दृश्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। अब इसने ऐसा ब्याह किया राधारानी से, बुद्धि से कि राधा ही बन बैठा। अब ये रासलीला में आप ही नाचने-गाने लग गया, मिलघुल गया सब सखियों से, विषयों से सबसे। ये कर्ता-भोक्ता बन बैठा कि मैं नाचता हूॅ, गाता हूॅ, बजाता हूॅ, अच्छे-बुरे कर्म करता हूॅ फिर भोक्ता कौन बने भाई! जो कर्ता है वो ही भोक्ता है और जो कर्ता नहीं वो भोक्ता भी नहीं, ये ही न्याय है—

करे जो कर्म पाओ फल सोई, निगम नीति इसका सब कोई।।

सब वेद, शास्त्र, पुराण, रामायण, राजनीति, बहुमत सब यही कहते हैं कि भाई जो कर्म करे तो उसका फल भोगे अब क्या किया जाये जो अपने आप ही स्वीकार करे कि मैंने किया है तो दूसरी गवाही की भी ज़रूरत नहीं है इसलिये बलात् उसको कर्मो का फल भोगना पड़ता ही है जो कर्ता बना है नहीं तो वास्तव में न साक्षी कूटस्थ चेतन कर्ता है और न इसका प्रतिबिम्बरूप जीव ही कर्ता है, अकर्ता हैं दोनों। तो जानबूझ करके अज्ञानतावश इनसे मिल बैठे, ऐसे मोहित हो गये इस दृश्य में, इस लीला में, इसलिये कर्ता बन बैठे—देहाभिमान, बुद्धि में अभिमान, मन में अहंकार, तो भई इसीलिये कर्मो का भोक्ता ये बना। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, अभी भी ये जीव अपने स्वरूप आत्मा कृष्ण को जान लेवे—**'कृष्णोंहं, कृष्णोंहं' मैं कृष्ण हूॅ**, क्यों? कृष्ण का प्रतिबिम्ब हूं इसलिये। **'ममैवांशो जीवलोके'**— भगवान कृष्ण भी मुक्त कंठ से कहते हैं कि अरे जीव! तू मेरा ही अंश है, मेरा रूप है, मेरा प्रतिबिम्ब है, क्यों इनके साथ मिल करके देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि बन रहा है जन्म मरण के चक्कर में फॅसने के लिये? अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, जब ही जागे तब ही सही बहुत सोये और सोने में ये सपने का दु:ख उठाया। आत्मा कृष्ण को न जानना सोना है, तो ये सपने का संसार तैयार हुआ और इसका दु:ख हम सपने में भोगते रहे। जब ही जाग जाओ तब ही दु:ख दूर, बिना जागे तो दु:ख दूर नहीं होने वाला—

जिन सपने सिर काटे कोई, बिन जागे दु:ख दूर न होई।
जेहि जाने जग जाय हेराई, जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई।।

ये जाग्रत जगत भी सपना है इसमें हमारा तुम्हारा स्वरूप देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि नहीं है क्योंकि इसके हम देखने वाले हैं तो जागो! जो देखने वाला है वो कृष्ण कहता है **'मैं'** हूॅ, तो अपने द्रष्टा स्वरूप में जागो। जागो तो दु:ख दूर और सोओ तो सपने का दु:ख है।

मोह निशा सब सोवन हारा, देखें स्वप्न अनेक प्रकारा।।

मोह निद्रा में, माने अज्ञान निद्रा में ये जीव सो रहे हैं, नाना प्रकार के ये संसार सपना देख रहे हैं और सपने के शरीर में अहंता-ममता करके दु:ख पा रहे हैं नहीं तो इसको ये माया कहॉ दु:ख देगी, माया तो छूती नहीं द्रष्टा को। अब ये जानबूझ कर माया से छेड़खानी करे, माया को छुए तो माया का भी इसमें क्या दोष है। अरे अग्नि को कोई जानबूझ कर छुए और जले तो इसमें अग्नि का क्या दोष है? और ऊपर से ये कहे कि अग्नि ने मुझको जलाया है, अरे भाई तू क्यों छूता है अग्नि को? तूने छुआ तू ही जला। अग्नि ने दौड़ कर जलाया क्या तेरे को? व्यर्थ उसके ऊपर दोष लगाना! अरे तूने पकड़ा और तू ही जला है तो तुझको छुड़ाने वाला

कोई नहीं है, यदि तुझको दु:ख हो रहा है तो अग्नि को छोड़ कर तू सुखी हो जा भाई। तू स्वतन्त्र है, तूने पकड़ा है और जलता है, अरे तो छोड़ के तू ही सुखी हो जा। ऐसे ही माया और माया के लड़के बच्चे काम क्रोध लोभ मोह ये तो जड़ हैं किसी को पकड़ते नहीं। अब कोई कहे माया जो है बहुत खराब है, फॅसाती है, और ये काम क्रोध लोभ मोह बहुत खराब हैं, सताते हैं माने दु:ख देते हैं ये झूठे ही कहना है इस जीवात्मा का। ये जड़ पदार्थ हैं, क्रियारूप हैं ये किसी को पकड़ते नहीं हैं। तो ये माया को और ये काम क्रोध लोभ मोह को तू पकड़ता है और तू ही दु:ख पाता है तो तू स्वयं छोड़ के सुखी हो सकता है, तेरे को और कौन छुड़ावे? जो दूसरा कोई बॉधता तो छुड़ा भी सकता था पर जब तू स्वयं पकड़ा है तो तू स्वयं छोड़ के सुखी होजा, तू स्वतंत्र है क्योंकि जड़ माया नहीं पकड़ती है। चेतन ही जड़ माया को, काम क्रोध को पकड़ता है वो भी भ्रम से क्योंकि चेतन में भी कर्म नहीं है द्रष्टा मात्र है, ये कर्म तो भ्रम से ही है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलं अश्नुते,
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्मात् विमुच्यते।।

स्वयं ही जानबूझ कर ये कर्म करता है, उसका फल स्वयं भोगता है, स्वयं संसार में ८४ लाख योनियों में भटकता है और स्वयं उनसे अपने आप ही छूटता है। दूसरा कौन इसको बन्धन डालता है? कोई नहीं।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 39 - Aug 05

१७

सामान्य और विशेष आनंद

भगवान श्री कृष्ण से अर्जुन ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया कि हे भगवन! मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें, मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है तो भगवान श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो :—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। BG – 02.55 ।।

अर्जुन! जितनी भी कामनायें हैं, इच्छायें हैं वो सब मन में उठा करती हैं और एक कामना की पूर्ति के बाद दूसरी उठ गयी इस प्रकार से इच्छायें उठती ही रहती हैं तो भगवान कहते हैं कि मन में उठने वाली जितनी भी कामनायें हैं सबको त्याग करके ये जिज्ञासु अधिकारी अपनी आत्मा से अपनी आत्मा में सन्तुष्ट होता है, एक आत्मा का अर्थ है अपना अन्त:करण मन और दूसरा आत्मा कूटस्थ चेतन है जो मन का साक्षी है। तो जब अपने मन के द्वारा अपने साक्षी स्वरूप आत्मा में सन्तुष्ट होता है चिन्तन करते करते, चारों तरफ से विषयों से मन को हटा करके अपनी आत्मा का चिन्तन करता है, ये नित्य सुख-शान्ति को प्राप्त होता है तब इसकी सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं आत्मा के पाने से क्योंकि मन का दौड़ना तो सुख के लिये होता है, विषयों के लिये जीव कामना करता है तो सुख के लिये ही करता है और इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध से जो सुख होता है वो सब प्रेयसुख प्रतीति मात्र क्षणिक है। विषय सुख का अन्त दु:ख में ही होता है, जहॉ विषय सुख समाप्त हुआ तहॉ दु:ख ही होता है। इसीलिये विषय सुखों से किसी भी प्राणी को तृप्ति नहीं होती, उत्तरोत्तर ये विषयाग्नि, कामाग्नि बढ़ती ही चली जाती है और तृप्ति होती नहीं। इसी विषयरूप अग्नि की ज्वाला में प्राणी जल जाता है क्योंकि विषय विष के समान हैं। परन्तु जब आत्मा का चिन्तन करते करते मन भी सत्-चित्-आनंदरूप हो जाता है, तो आत्यन्तिक दु:खों की निवृत्ति हो जाती है क्योंकि आत्मा सत्-चित्-सुखरूप है और ये संसार के विषय असत् हैं, जड़ हैं, दु:खरूप हैं, तो जैसा चिन्तन मन करता है वैसा ही बन जाता है, विषय चिन्तन करता है तो विषयरूप हो जाता है और विषय असत-जड-दु:खरूप हैं तो मन भी असत्-जड़-दु:खरूपता को प्राप्त होता है और जो ब्रह्म है अपनी आत्मा है वो सत्-चित्-आनंदरूप है, सत्-चित्-आनंद का चिन्तन करते करते मन भी सत्-चित्-आनंदरूप हो जाता है और नित्य सुख-शान्ति को प्राप्त होता है।

// अर्जुन! हमारा तुम्हारा जो वास्तविक स्वरूप है वो सत्-चित-आनंद स्वरूप आत्मा ही है, अपना स्वरूप ही है क्योंकि आत्मा सत् है उसका जन्म-मरण होता नहीं इसीलिये सत् कहते हैं, आत्मा चित् है अनंत अखण्ड ज्ञानरूप है, सदा एक समान ज्ञान प्रकाशमान् रहता है ऐसा ही आनंद है आदि-अन्त रहित आनंद का सिन्धु है। आत्मा तो स्वरूप से ही स्वभाव से ही कल्याण स्वरूप है, केवल आत्मा के न जानने से जीव दु:ख का अनुभव करता है। आत्मा में दु:ख है नहीं किन्तु जब आत्मा को भूल जाता है तब दु:ख का अनुभव करता है। जैसे कोई राजा सुखी है, धनी है, किसी प्रकार का दु:ख नहीं है परन्तु निद्रा के कारण अपने स्वरूप को भूल जाये

अपने राजापने को क्योंकि निद्रा जो है वो आवरण करती है। जाग्रत में राजा है परन्तु निद्रा ने इस राजापने के ज्ञान को आवरण कर दिया माने ढॉक दिया, ये आवरण शक्ति है निद्रा की। निद्रा की शक्ति आवरण और विक्षेप है। तो एक तरफ तो ज्ञान ढॉक दिया, मैं राजा हूँ ये ज्ञान नहीं रहा उसको और दूसरी विक्षेप शक्ति है जिसने स्वप्न का संसार तैयार कर दिया। ये अविद्या की शक्तियॉ हैं **आवरण-शक्ति** और **विक्षेप-शक्ति**। तो विक्षेप शक्ति से अब वो राजा का शरीर वहॉ भिखारी का शरीर बन गया और 'मैं राजा हूँ' ये भूल करके 'मैं भिखारी हूँ' ऐसा हो गया। अब वो किसी शत्रु संकट में पड़ गया और कोई शत्रु उसका सिर काट रहा है। शत्रु वहीं निद्रा से बना है न सपने में और अपना भिखारी का शरीर भी सपने में बना है क्योंकि वहॉ न राजा का शरीर है और न कोई शत्रु का शरीर है। जाग्रत के तो शरीर हैं ही नहीं न वहॉ सपने में — **'जिन सपने सिर काटे कोई, बिन जागे दुःख दूर न होइ'**, सपने में कोई सिर काट रहा है, दु:ख हो रहा है तो सपने का सिर, सपने का दु:ख और वो शत्रु ये तो निद्रा से बने हैं न! विक्षेप शक्ति से बने हैं न! सचमुच में तो वे नहीं हैं। निद्रा ने अपने राजा स्वरूप को भुला रखा है और विक्षेप शक्ति से सपना दिखा रखा है, वो विक्षेप शक्ति ही दु:ख देती है। व्याकुल हो रहा है, तड़फड़ा रहा है जब कोई सिर काट रहा है तो। यदि कोई पास में पड़ा हुआ माता पिता भाई बहन उसको जगा देवे तो जगते ही दु:ख दूर हो जाता है क्योंकि जगते ही उसने अपने राजा स्वरूप को जान लिया, वो राजा का जो शरीर है वो मिल गया न! सपने का अपना शरीर जो भिखारी का था वो तो खतम हो गया, सपने का शत्रु खतम हो गया, सपने का दु:ख भी खतम हो गया जागते ही, कितनी देर लगी दु:ख दूर होने में? वो तो सुखरूप था ही केवल अपने स्वरूप को भूलने से ही उसको विक्षेप शक्ति ने दु:ख दिया था। इसी प्रकार राजा के समान हमारा तुम्हारा स्वरूप सत्-चित्-आनंद है। सदा सुखरूप है, सदा अमृतरूप है कोई मार सकता नहीं है — **'न मृतम् इति अमृतम्'**। आत्मा कभी मरता ही नहीं है — **'न जायते म्रियते वा कदाचित्'**, और अनंत अखण्ड ज्ञानरूप है परन्तु अनादि अविद्या ने जीव के अपने वास्तविक स्वरूप को भुला रखा है और विक्षेप शक्ति ने ये जाग्रत का संसार पैदा कर दिया है। हम हैं आत्मा शरीर तो हैं नहीं, ये तो माया ने बना रखा है, प्रकृति ने भुला रखा है। ये निद्रा ही प्रकृति है, निद्रा ही स्वप्न को पैदा करती है, निद्रा ही जाग्रत को भी पैदा करती है। अब अपने स्वरूप को भूल करके हम ये जाग्रत के स्त्री-पुरुष के जो शरीर हैं इनको हमने अपना स्वरूप मान लिया है। देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि ये सब शरीर ही हैं। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, जाग्रत और स्वप्न के शरीर ये दोनों हैं, निद्रा ने ही बनाये हैं ये दोनों शरीर और हमारे आत्म स्वरूप को निद्रारूपी अविद्या ने भुला रखा है। अब ये कोई जगा देवे, माता-पिता, भाई-बन्धु, कोई सन्त, महात्मा, ज्ञानी, साधु-ब्राह्मण इसको जगा देवे माने अपने स्वरूप को बता देवे कि तू सत्-चित्-आनंद ब्रह्म है। **'अनादि माययासुक्तो यदाजीवः प्रबुध्यते'** — अनादि माया से ये जीव सोया हुआ है। माया अनादि है पता नहीं कब से ये जीव अपने स्वरूप को भूला हुआ है । कोई सन्त महात्मा गुरु की कृपा से जब ये अपने स्वरूप में जागता है कि मैं सत्-चित्-आनंद स्वरूप आत्मा हूँ। (जानना ही जागना है, न जानना भूल जाना है, अज्ञान है) तब वह क्या जानता है जब जागा अपने स्वरूप में? **'अजं अनिद्रं अस्वप्नं अद्वैतम् बुध्यते तदा'**— कि मैं तो **अज** हूँ, 'अ' माने न, 'ज' माने जन्म, मेरा तो जन्म ही नहीं हुआ है, जिसका जन्म नहीं हुआ उसको मार कौन सकेगा? मृत्यु तो उसको ही आती है जिसका जन्म होता है, 'न जायते म्रियते वा कदाचित्' — आत्मा का तो जन्म ही नहीं हुआ है तो मृत्यु कैसे होगी, किन्तु नहीं हो सकती। अनिद्रं, मैं तो अनिद्र हूँ अरे निद्रा को मैं देखता हूँ, अज्ञान अन्धकाररूप निद्रा है — **सुखं सुस्वाप्तम् न किंचित् अवेदितम्**, मैं सुख से सोया कुछ भी न जानता हुआ, तो निद्रा के सुख को मैं जानता हूँ और निद्रा के अज्ञान को मैं जानता हूँ तो मैं कहॉ सोता हूँ? इसलिये मैं **अनिद्र हूँ**। **अस्वप्न हूँ**, मैं स्वप्न नहीं हूँ क्योंकि मैं सपने को देखने वाला हूं, जाग जाता हूँ तो सपना नहीं रहता है, सपने का मैं द्रष्टा हूँ मैं सपना नहीं हूँ, सपने से अलग हूँ, सपना तो निद्रा से होता है पुनः निद्रा में लीन भी हो जाता है परन्तु मैं तो सदा ही रहता हूँ तो मैं कहॉ

सोया? **अद्वैतम्**, और मैं अद्वैत् माने अकेला हूँ, सब जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति और स्थूल-सूक्ष्म-कारण ये तीन शरीर हैं। सारे संसार के शरीरों में बैठकर मैं ही देख रहा हूँ इसलिये मैं अद्वैत् माने अकेला ही हूँ। माने हर शरीर में सब शरीरों की ऑखों से बैठकर मैं देखता हूँ इसीलिये सब लोग क्या कहते हैं? **'अहं पश्यामि'** मैं देखता हूँ तो मैं तो एक ही रहा हर शरीर में देखने वाला। क्या बालक क्या वृद्ध, क्या स्त्री क्या पुरुष, क्या हिन्दु क्या मुसलमान सब लोग कहते हैं न 'मैं देखता हूँ', ये जो 'मैं' नामक तत्त्व है ये मैं ही तो हूँ। मैं तो एक ही रहा सब शरीरों में और ये अनेक शरीर ये निद्रा से बने हैं जाग्रत के भी और स्वप्न के भी। फिर निद्रा में लीन हो जाते हैं, निद्रा प्रकृति है, निद्रा माया है और निद्रा कोई चीज़ नहीं है एक अज्ञान अंधकार है उसी से ये उत्पन्न होता है जाग्रत-स्वप्न का संसार और मैं तीनों को देखता हूँ। तो सब शरीरों में बैठकर देखने वाला एक मात्र मैं ही हूँ इसलिये आत्मा अद्वैत है, दो आत्मा नहीं हैं क्योंकि सब लोग कहते हैं कि मैं देखता हूँ। अपने देखने में किसी को संशय नहीं है, अपना द्रष्टापना सबको प्रत्यक्ष है, अपरोक्ष है परोक्ष नहीं है। प्रत्यक्ष है कि मैं देखता हूँ ऐसा सबको अनुभव है न! किसी को संशय भी नहीं है कि मैं देखता हूँ कि नहीं देखता हूँ। सबको ये पक्का ज्ञान है कि मैं देखता ही हूँ। तो सज्जनों दो आत्मा तो हैं नहीं एक ही आत्मा है। अब ये आत्मा स्वभाव से सत् है क्योंकि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों में ये रहता है, इसका अभाव कभी होता ही नहीं। चिद् है क्योंकि तीनों अवस्थाओं को देखता है, चिद् नाम ज्ञान का है और आनंद स्वरूप है।

// एक **'सामान्य आनंद'** होता है एक **'विशेष आनंद'** होता है। तो सामान्य आनंद तो मेरा स्वरूप ही हो गया, उसमें द्रष्टा दृश्य भाव नहीं बनेगा लेकिन जाग्रत में जो इन्द्रियों और विषयों के सम्बन्ध से सुख मिलता है उसमें क्या होता है जब मन वॉन्छित विषय मिलते हैं मन को न तो थोड़ी देर के लिये मन शान्त हो जाता है, उस शान्त मन में हमारे नित्यानंद आत्मा का आभास पड़ जाता है उसको विषयानंद कहते हैं। ये विषयानंद हमारे तुम्हारे आत्मा का आभास है। आभास थोड़ी देर दिखाई पड़ता है जब तक मन शान्त रहता है और जहॉ मन चंचल हुआ फिर वो आभास खत्म हो जाता है। स्थिर मन में अपनी आत्मा का आनंद प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है परन्तु वो आभास है सत्य नहीं है, सत्य तो अपना आत्मानंद ही है। जैसे उदाहरण से समझ सकते हो, दर्पण में हम जो अपना मुख देखते हैं तो दर्पण में हमारा सच्चा मुख तो जा नहीं सकता क्योंकि अपनी गर्दन को छोड़कर यदि हमारा मुख दर्पण में चला जायेगा तो ये शरीर अमंगल होकर गिर जायेगा, मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा फिर देखेगा कौन? इसलिये ये पक्का है कि हमारे शरीर को छोड़कर हमारा ये इतना सिर जिसमें ऑख नाक कान मुँख सब कुछ है और ये मुँख सिर में जुड़ा हुआ है तो इतना बड़ा सिर यदि हमारा शरीर छोड़ कर शीशा में चला जायेगा तो ये शरीर धड़ गिर नहीं जायेगा? तो सच्चा सिर जा सकता है दर्पण में? कभी नहीं जा सकता, एक बात तो ये है किसी भी प्रकार से अपने शरीर को छोड़कर अपना सिर दूसरी जगह जा ही नहीं सकता और दूसरी बात ये है कि दर्पण ठोस है उसमें तो सुई की नोक भी जाने की जगह नहीं है तो इतना बड़ा सिर कहॉ समायेगा? फिर यही निश्चय हुआ कि निश्चय ही वो झूठा मुख है हमारा जो दर्पण में हम देखते हैं। सच्चा मुख अपना शरीर छोड़कर जायेगा नहीं और दर्पण में जगह भी नहीं है, किसी भी रीति से अपना सच्चा सिर अपने शरीर में ही रहेगा। तो जो हम अपना मुख देखते हैं शीशा में वह क्या है? छाया है, प्रतिबिम्ब ही है, ये निश्चय हुआ न! परन्तु वो दर्पण यदि हिलता हो तो हमारा छाया मुख भी उसमें ठीक दिखाई नहीं पड़ेगा और यदि ढका हुआ हो तो भी अपना मुख दिखाई नहीं पड़ेगा। स्थिर शीशा में ही हमारा ठीक मुख दिखाई पड़ेगा इसी प्रकार से अन्तःकरणरूपी दर्पण है, मन बुद्धि चित्त अहंकार ये अन्तःकरण है, ये दर्पण है भला। ये मन जो शान्त होगा तो आत्मा का आनंदरूपी आभास, प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ेगा छाया के समान और हम ही देखेंगे क्योंकि आनंद को ज्ञान नहीं है। ज्ञान स्वरूप तो हम ही हैं तो अपने आनंद को भी हम ही देखेंगे परन्तु उस प्रतिबिम्बरूप आनंद को देखेंगे, सच्चा आनंद तो अपने सच्चे मुख के समान अपने पास है वो तो उधर जायेगा नहीं आभास ही जायेगा। तो जो विषयानंद है वो भी अपनी सत्य आत्मा के

आनंद का आभासरूप आनंद है और वो भी क्षणभर के लिये जब मन शान्त होता है मन चाहा विषय के मिलने पर, तो उस शान्त मन में आभास पड़ जाता है, तो अपने प्रतिबिम्बानंद को, आभास के आनंद को हम ही देखते हैं। दूसरे क्षण जहॉ मन फिर चंचल हो जाता है तो फिर वो आभासरूप आनंद भी गायब हो जाता है। इसलिये जाग्रत में, स्वप्न में जितने आनंद हैं वो आत्मा का ही आनंद है। सुषुप्ति में मन होता नहीं है अविद्या अज्ञान रहता है, वो थोड़ी स्थिर रहती है, उसमें स्थिर आनंद का आभास पड़ जाता है अविद्या की वृत्ति में, वो थोड़ी देर स्थिर रहता है इसलिये वहॉ बहुत आनंद मिलता है निद्रा जब आ जाती है बहुत सुख मिल जाता है गाढ़ निद्रा आ जाये तो। कितना भी दु:खी प्राणी हो नींद आ जाये तो सुखी हो जाता है।

नींद जब तू कभी आती है, जी की बेचैनी जाती है ।
राजा रंक न मन में धरती, सब पर कृपा बराबर करती।।
कंकड़ फूल सेज बन जाते, जब तेरे डेरे डल जाते ।

कितना भी जी बेचैन हो नींद आ जाये सब बेचैनी खतम हो जाती है। कितना भी दु:ख हो सब दु:ख चला जाता है क्योंकि शरीर का दु:ख होता है रोग बीमारी से और मानसिक दु:ख होता है काम क्रोध लोभ मोह, तो निद्रा में न शरीर रहता है न मन रहता है इसलिये शरीरिक और मानसिक दु:ख तो वहॉ होते ही नहीं। तन मन दोनों ही निद्रा से उत्पन्न होते हैं, तन मन की वो जननी है। निद्रा के पास दु:ख है ही नहीं, सुख ही सुख है आनंद ही आनंद है इसलिये निद्रा को जगत जननी माता कहा गया है।

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै: नमस्तस्यै: नमस्तस्यै: नमो नम:।।

ये देवी जगत जननी सब में स्थित है निद्रा रूप में। निद्रा सबको समान सुख देती है चाहे राजा हो चाहे रंक हो, गरीब हो चाहे अमीर हो, मनुष्य हो चाहे पशु-पक्षी हो। माता के लिये तो सभी पुत्र बराबर हैं वो सबको सुखरूपी दूध पिलाती है इसलिये उस समय सभी सुखी रहते हैं स्त्री पुरुष मनुष्य और पशु पक्षी भी। परन्तु ये नींद का जो सुख है वो फिर निद्रा की वृत्ति से, अविद्या की वृत्ति में वो भी एक प्रतिबिम्ब ही है पर वो स्थिर रहता है क्योंकि निद्रा थोड़ी देर स्थिर है और हमारा जो आनंद है वो तो आत्म स्वरूप ही है, वो तो प्रतिबिम्बरूप से उधर दृश्य रूप में जा नहीं सकता है, न जाग्रत में, न स्वप्न में, न सुषुप्ति में, आत्मा का प्रतिबिम्ब ही उनमें जाता है इसलिये आत्मानंद दृश्य नहीं होता सज्जनों, वो सत्-चित्-आनंद स्वरूप व्यापक है और अदृष्ट है। परन्तु इससे जानो कि यदि नित्य आनंद नहीं होता तो ये आभासरूप आनंद कहॉ से आता? यदि हमारा सत्य सिर-मुख नहीं होता तो छायारूप आभासरूप दर्पण में कहॉ से आयेगा? तो जितने संसार में शरीर हैं वो हमारे 'सत्' रूप की छाया हैं, और जितनी संसार में सबकी बुद्धियॉ हैं उनमें जो ज्ञान प्रकट हो रहा है वो भी हमारे 'चिद्' स्वरूप आत्मा का आभास है जिसको जीव कहते हैं वो चिदाभास है, चिद् अपना स्वरूप है, चिद् नाम ज्ञान का है और जितने आनंद हैं वो हमारे आनंद स्वरूप के आभास हैं। इसलिये सारे शरीर और सब बुद्धियॉ और बुद्धियों में जो ज्ञान है वो और जितने विषयानंद हैं ये सब हमारे आत्मदेव के आभास या छाया ही हैं, प्रतिबिम्ब ही हैं और पुरुष के समान अपना सच्चिदानंद स्वरूप है। पुरुष नाम पूर्ण का है, सत्य ज्ञान आनंद से हमारा आत्मा पूर्ण है इसलिये यदि मन शान्त हो सकता है तो ये संसार के सुखों को छोड़ करके जब आत्मा में स्थिर होगा तभी मन शान्त हो सकता है उसे **'स्थितप्रज्ञ'** कहते हैं जिसकी बुद्धि स्थिर हो गयी है अपनी आत्मा में, संसार में स्थिर हो ही नहीं सकती क्षणिक आनंद में, चंचल ही रहेगा मन ।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 39 - August 38

१८

अपरा - परा प्रकृति और ब्रह्म

अशरण शरण अकारण करुण करुणावरुणालय कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त: स्वरूप अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परम ब्रह्म सच्चिदानंदघन सर्वशक्तिमान सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया हे भगवन्! मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें अर्थात् आत्यन्तिक दु:खों की निवृत्ति नित्य सुख शान्ति की प्राप्ति, मृत्यु की निवृत्ति अमृतत्त्व की प्राप्ति किस प्रकार से होगी, मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है, आप मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें।

तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! एक तो मैं हूँ और दूसरी मेरी माया है बस दो ही चीज़ हैं। मैं स्वभाव से ही सच्चिदानंदघन ब्रह्म हूँ और मेरा अंश होने से जीव भी मेरा स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है। जो ब्रह्म है, 'तत्त्वमसि', वही तू भी है। तू जीव है मैं ईश्वर हूँ, हमारा तुम्हारा जो वास्तविक स्वरूप है वो ब्रह्म है। रही मेरी माया, वो तो छाया के समान झूठी है, वो दृश्य रूप है। माया अनेक रूप धारण करती है। अब तुम माया का स्वरूप सुनो :—

भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च,
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। BG - 07.04 **।।**

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्,
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। BG - 07.05 **।।**

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय,
अहं कृत्स्नस्य जगत: प्रभव: प्रलयस्तथा।। BG - 07.06 **।।**

अर्जुन दो प्रकार की मेरी महामाया शक्ति है उसी को प्रकृति भी कहते हैं। जड़ और चेतन, चेतन कहने से मुझ सच्चिदानंद ब्रह्म का आभास समझना, प्रतिबिम्ब समझना। उसको ज्ञान होता है, चेतन होता है न जीव! प्रतिबिम्ब भी चेतन होता है। जैसे मैं चेतन हूँ वैसे ही मेरा प्रतिबिम्ब भी चेतन होता है। तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार ये आठ हो गये। **भूमिरापोऽनलो वायु:खं** — भूमि (पृथ्वी), आपो (जल), अनल (अग्नि), वायु:, खं (आकाश), मन, बुद्धि और अहंकार, ये आठ हो गये। **अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा**— आठ भागों में विभक्त भयी ये मेरी अष्टधा प्रकृति है। इसको **अपरा** कहते हैं। **'अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्'—** इससे जो भिन्न है वो मेरी **परा** प्रकृति है क्योंकि वो चेतन है और ये जड़ है। इस अपरा प्रकृति को कुछ ज्ञान नहीं है पर जो परा प्रकृति है वो जीव रूप है माने मेरा प्रतिबिम्ब रूप है, वह मेरी परा प्रकृति है क्योंकि चेतन है। मेरी ये चेतन प्रकृति अपरा जड़ प्रकृति की प्रेरक है। वो जड़ प्रकृति को प्रेरणा देती है तो जड़ प्रकृति में हलचल होती है, सत्ता स्फूर्ति आती है और जड़ प्रकृति जगत का रूप धारण कर लेती है और चेतन प्रकृति, जीव जो है वो प्रेरक मात्र है। उसकी

प्रेरणा बिना जड़ प्रकृति कुछ नहीं कर सकती। एक तो चेतन तत्त्व है वो तो मेरा स्वरूप है सत्-चित्-आनंद—'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म', वो तो मेरा स्वरूप शुद्ध है, जीव का वास्तविक स्वरूप है और जो प्रतिबिम्ब है वो झूठा है। प्रतिबिम्ब कोई सच्चा नहीं होता है। जैसे हम आप शीशा में अपना मुख देखते हैं तो वो जो मुख शीशा में दिखाई पड़ता है वो झूठा हुआ करता है, वो सच्चा नहीं होता है और हमारे शरीर में जो मुख है ये सच्चा होता है। और जो शीशा में दिखाई पड़ता है मुख वो झूठा होता है क्योंकि सच्चा मुख तो हम अपनी ऑखों से देख नहीं सकते। यद्यपि हमारी ऑखें भी हमारे मुख में ही हैं परन्तु ऑखों की जो देखने की शक्ति है, power है वो बहुत नज़दीक की नहीं है और बहुत दूर की भी नहीं है। बहुत नज़दीक की चीज़ हमको हमारी ऑखों से नहीं दीखती जैसे हमारा मुख ऑख कान नाक। न मुख दिखाई पड़ता है अपना और न अपनी ऑख, नाक, कान दिखाई पड़ता है अपनी ऑखों से। क्या दिखाई पड़ते हैं किसी को अपने कान, नाक, ऑख? नहीं दिखाई पड़ते हैं क्योंकि ऑखों की शक्ति सीमित है, बहुत पास का नहीं देख पातीं। तो हम सच्चा मुख तो देख नहीं सकते अपनी ऑखों से और बहुत दूर का भी ऑखों से नहीं दिखाई पड़ता है क्योंकि दूर देखने में भी सीमित power है ऑखों की, कितनी दूर तक देख सकते हैं? जैसे यहॉ से बैठे बैठे हम गंगा के इस पार का हाल देख सकते हैं कुछ दूर तक और उस पार का हाल हमको ऑख से नहीं दिखाई पड़ेगा फिर हरद्वार और उसके आगे का तो दीखेगा ही कैसे? फिर उसके आगे जो देश हैं वो कैसे दिखाई पड़ेंगे? तो बहुत दूर का भी नहीं दीखता है और बहुत नज़दीक का भी नहीं दीखता है। लोग कहते हैं कि तुम्हारा मुख बहुत सुन्दर है परन्तु सारा जीवन बीत गया हम अपने मुख को न देख पाये। जब लोगों से हम उपाय पूछते हैं अपने मुख देखने का, कुछ उपाय तो बताओ? तो लोग उपाय बताते हैं कि अपना मुख तुम शीशा में देख सकते हो, दर्पण में देख सकते हो तुम अपना मुख, ये लोग उपाय बताते हैं बड़े बूढ़े सब। जिन्होंने शीशा में देखा है अपने मुख को वो बच्चों को भी बताते हैं कि तुम यदि अपना मुख देखना चाहते हो तो शीशा में देखो, दिखाई पड़ेगा, तब हम सज्जनों! शीशा लेते हैं, शीशा में अपना मुख देखते हैं। वो शीशा भी साफ होना चाहिये, मैला नहीं होना चाहिये, चंचल नहीं होना चाहिये और किसी वस्त्रादि से ढका हुआ नहीं होना चाहिये। **'मल-विक्षेप-आवरण'**, मल माने मैला, विक्षेप माने चंचल, आवरण माने ढका हुआ आगे से कोई कपड़े से माने शीशा मैला भी न हो साफ होवे और हिलता हुआ भी न होवे। यदि हिलता हुआ होगा तो भी हमारा ठीक मुख नहीं दिखाई पड़ेगा और जो ढका हुआ होगा तब तो कुछ दीखेगा ही कैसे, तीनों दोषों से रहित होवे तब हमारा मुख शीशा में दिखाई पड़ेगा परन्तु वो सच्चा मुख नहीं होगा, क्यों नहीं होगा सच्चा मुख? सच्चा मुख हमारी गर्दन को छोड़ करके शीशा में कैसे चला जायेगा? असम्भव है न! यदि हमारे शरीर को छोड़ कर पूरा सिर चला जायेगा शीशा में तो ये धड़ कैसे सॅभलेगा? धड़ तो गिर जायेगा न अमंगल हो करके, मृतक होकर गिर जायेगा न यदि सिर कट जायेगा तो। तो आप समझ गये होंगे कि सच्चा मुख तो शीशा में नहीं जा सकता। अब रही बात शीशा की तो सच्चा मुख शीशा में आ भी नहीं सकता, क्यों? क्योंकि शीशा ठोस है, पोलाई नहीं है। सिर सहित इतने मुख को शीशा में आने के लिये पोलाई तो चाहिये, पर शीशा में तो सुई की नोक जाने की भी जगह नहीं है इसलिये सच्चा मुख नहीं जा सकता। तो निश्चय हो गया न कि सच्चा मुख नहीं है दर्पण में झूठा मुख है परन्तु सच्चा मुख जैसा ही वो भी है। सच्चा तो नहीं है पर सच्चा मुख जैसा है। हम झूठे मुख को देखकर भी अपने मुख की सुन्दरता जान लेते हैं। जैसा हमारा मुख है न! वैसा हमारा प्रतिबिम्ब है, वो छाया है उसको प्रतिबिम्ब कहते हैं, छाया कहते हैं। फोटो भी छाया हैं हमारे मुख की, हमारे शरीर की फोटो भी झूठी हैं, सच्चे मुख व शरीर की पहचान कराते हैं ये फोटो, वो सच्चे नहीं हैं पर फोटो सच्चे जैसे होती हैं। राम, कृष्ण, विष्णु की हम फोटो देख करके राम कृष्ण को हम जान लेते हैं कि ऐसे ही होंगे वो। अपने गुरुजनों की, माता.पिता की फोटो को देख करके हम जान लेते हैं कि ऐसे हमारे माता-पिता के शरीर थे, ऐसा रूप था। कोई वर-कन्या का विवाह करना चाहते हैं और वर भी दूर हो और कन्या भी दूर हो तो खाली फोटो भेज देते हैं कन्या की वर के पास और वर की फोटो कन्या वालों के पास। उस

फोटो को देख करके वो वर और कन्या की सुन्दरता को जान लेते हैं। सच्ची कन्या तो है नहीं वो फोटो या सच्चा वर तो है नहीं, पर सच्ची कन्या जैसी तो वो फाटो है उसमें तो फर्क नहीं है। इसी रीति से सज्जनों! हमारा जो मुख दिखाई पड़ता है दर्पण में वो झूठा है। हम एक हैं हमारी फोटो हज़ारों हो सकती हैं कितनी भी लोग उतार लें। भगवान राम या कृष्ण एक हैं पर उनकी फोटो कितनी हैं? गिने जा सकते हैं संसार में उन भगवान राम के, भगवान कृष्ण के कितने भक्त हैं? जगह जगह फोटो लगा रखे हैं, कोई मन्दिर बना रखे हैं तो मन्दिर में माटी की या पत्थर की और कोई सोने चॉदी की मूर्ति बना रखे हैं पर वो भी फोटो जैसी ही हैं न! सच्चे तो नहीं हैं। सच्चे राम या कृष्ण तो एक हैं और उनके मन्दिर अनेक हैं और मूर्ति अनेक हैं, तो सच्चा तो एक ही होगा जैसे हम आप एक सच्चे हैं तो एक ही हैं पर हमारे फोटो तो अनेक हैं, हमारी कोई मूर्ति बनाले तो अनेक हो सकती हैं। एक तो सच्चा होता है और अनेक झूठा हुआ करते हैं, सच्चे नहीं हुआ करते हैं इस बात को अच्छी प्रकार से समझ लो सज्जनों। इसी प्रकार से अष्टधा जो प्रकृति है 'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, मन, बुद्धि और अहंकार' ये छाया है जैसे पुरुष की छाया होती है, तो पुरुष की छाया भी पुरुष जैसी होती है। पुरुष सच्चा होता है छाया झूठी होती है। ऐसे ही ये देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण ये सब हमारे सत् स्वरूप की छाया हैं। हमारा तुम्हारा स्वरूप है सत्-चित्-आनंद, इसको ब्रह्म कहते हैं, वही हमारा तुम्हारा स्वरूप है ब्रह्म। ये जो शरीर दिखाई पड़ते हैं ये सत् की छाया हैं और जो बुद्धियों में प्रतिबिम्ब पड़ रहा है वो हमारे चिद् रूप की छाया है। चेतन माने ज्ञान, ज्ञान के प्रतिबिम्ब में भी थोड़ा ज्ञान होता है जैसे सूर्य परम प्रकाश रूप है पर सूर्य का जो प्रतिबिम्ब पड़ता है शीशा में थोड़ा प्रकाश तो उसमें भी होता है न! माने शीशा में जो प्रतिबिम्ब पड़ता है न उसमें भी थोड़ा प्रकाश है। उस सूर्य का प्रकाश बाहर के शीशा में ले करके और टेढ़ा करके किसी अँधेरे कमरे में यदि खिड़की या दरवाज़े से डालो तो वो दीवार में पड़ेगा जाकर प्रकाश गोल गोल, तो वहॉ भी उजियाला कर देगा दीवार में जा करके और यदि आतिसी शीशा में पड़ेगा प्रकाश तो (सूर्य तो बहुत गरम है पर उसका जो प्रतिबिम्ब पड़ा है शीशा में वो भी गरम है) यदि उस शीशा के प्रतिबिम्ब को आप किसी रुई में डालो या कपड़े में डालो तो वो भी जलने लगेगा इतनी गर्मी है उसमें। इसी प्रकार से हमारे जो चेतन का प्रतिबिम्ब है ज्ञान का उसमें भी थोड़ा ज्ञान रहता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पॉच विषयों का ये ज्ञान कर लेता है, अनुकूलता-प्रतिकूलता में सुख-दु:ख भी मान लेता है। यदि पॉचों विषय उसे अनुकूल रहे तो उसे सुख मानता है और प्रतिकूल भये तो दु:ख भी मानता है और ये विषयों में जो सुख मालूम पड़ता है न वो हमारे आनंद स्वरूप का प्रतिबिम्ब है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पॉच विषय हैं इनमें हमारा प्रतिबिम्ब पड़ता है तथा मन और बुद्धि में आनंद का प्रतिबिम्ब पड़ता है। जब मनचाहा विषय मिल जाता है, जैसे मन ने चाहा कि हमको स्त्री मिल जाये और स्त्री सुन्दर हमारे मन की मिल गयी, तो थोड़ी देर के लिये हमारा मन शान्त हो जाता है। उस शान्त मन में आनंद स्वरूप का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है उसी को विषयानंद कहते हैं। हमारे आनंद स्वरूप आत्मा का प्रतिबिम्ब शान्त मन में पड़ता है, यूँ तो मन चंचल रहता है पर जिस विषय की इच्छा हो और वो चीज़ हमें मिल जाय (जैसे बहुत बढ़िया कोई खाने के पदार्थ में हमारा मन है और वो चीज़ हमें मिल जाये खाने को) तो थोड़ा सा मन शान्त हो जायेगा और जहॉ मन शान्त हुआ तो बड़ा आनंद आता है, कहते हैं वाह भई बहुत आनंद आया ये चीज़ खाने में। आनंद दिखाई तो पड़ता नहीं है ऑखों से, कोई पूछे कैसा आनंद आया दिखाओ हम को भी? तो क्या दिखाया जाय, पर हम ज्ञान स्वरूप आत्मा हैं न! उस आनंद को हम ही जानते हैं क्योंकि वह ऑखों से नहीं दिखाई पड़ता। हमारे सत् रूप की छाया ये स्थूल शरीर हैं सब, ये तो ऑखों से दिखाई पड़ते हैं और चिद् रूप का जो प्रतिबिम्ब है बुद्धि में वो भी दिखाई नहीं पड़ता है, वो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि का प्रेरक होता है, इनमें हलचल उसी से मिलती है, वो जीव निकल जाय तो ये मुर्दा हो जायेगा शरीर, कोई इन्द्रिय काम नहीं करेगी। वो प्रतिबिम्ब है उसमें इतनी शक्ति-सामर्थ्य है कि वो ही शब्दादि विषयों को देखता है, जानता है, वो ही आनंद का भोक्ता भी होता है और विषयों के मिलने से चंचल मन एकाग्र होता है तो हमारे आनंद स्वरूप का प्रतिबिम्ब थोड़ी

देर पड़ जाता है तो कहते हैं बड़ा आनंद आया। अब सज्जनों समझो, हमारे सत् स्वरूप की छाया ये सब स्थूल शरीर हैं और चिद् रूप का प्रतिबिम्ब सबकी बुद्धियों में ज्ञान रूप से है, वही सब जानता है शब्दादि विषयों को और आनंद स्वरूप का प्रतिबिम्ब एकाग्र मन में पड़ता है जिसको विषयानंद कहते हैं। सत्-चित्-आनंद हमारा तुम्हारा स्वरूप सत्य होगा पर ये छाया रूप शरीर एवं बुद्धि में पड़ा ज्ञानरूप प्रतिबिम्ब (जितनी बुद्धियों के ज्ञान हैं वो सब प्रतिबिम्ब हैं) तथा जितने विषयानंद हैं (वो भी प्रतिबिम्ब हैं) वो सब झूठे ही होंगे। इस रूप से सारा संसार, शरीर छाया होने से झूठे हैं, और जितने बुद्धि में ज्ञान हैं वो हमारे चेतन के (ज्ञानरूप के) प्रतिबिम्ब होने से झूठे हैं, और जितने विषयों में आनंद हैं वो प्रतिबिम्ब होने से झूठे हैं। क्षण भर के बाद में जहाँ फिर मन चंचल हो गया, दूसरे विषय की इच्छा करने लगा, चंचल मन में प्रतिबिम्ब गायब हो गया, फिर एकाग्र मन हुआ तो फिर हमारे आनंद स्वरूप का प्रतिबिम्ब पड़ गया। अज्ञानी लोग जिनको अपनी आत्मा का ज्ञान नहीं है कि ये सारे प्रतिबिम्ब झूठे हैं और मैं आनंद रूवरूप सत्य हूँ स्वभाव से ही, वो क्या जानते हैं कि ये विषयानंद सच्चा है, ये शरीर सच्चे हैं, यही मैं हूँ ऐसा समझते हैं, प्रतिबिम्ब को अपना स्वरूप मान लेते हैं। ज्ञानी अज्ञानी में यही फर्क है। प्रतिबिम्ब सच्चे हो नहीं सकते वो झूठे ही रहते हैं, जिसके प्रतिबिम्ब हैं वो ही सत्य है तो हमारे प्रतिबिम्ब हैं ये तीनों, संसार में। ये सब झूठे हैं। तो अज्ञानी जब अपने को ये छायारूप शरीर को अपना स्वरूप मान लेगा तो वो जन्म मरण के दु:खों से वो कैसे बच सकेगा? छाया तो सब झूठी होती हैं वो बनती बिगड़ती रहती हैं। जो शरीर ही अपने को मान बैठेगा तो उसके जन्म मरण को कौन बचा सकेगा? हमारे सत् स्वरूप की छाया ये शरीर तो उत्पन्न नाश होंगे पर हमारा सत् स्वरूप तो सत् ही है, सदा ही रहेगा। जो बुद्धि में प्रतिबिम्ब है अपने को बुद्धि ही मान बैठैंगे कि मैं बड़ा बुद्धिमान हूँ, मैं बड़ा ज्ञानी हूँ, बड़ा विद्वान हूँ, वो प्रतिबिम्ब में ही ये सब ज्ञान होता है, बुद्धि में ज्ञान होता है। अब थोड़ा सा नशा खा लेवे तो बुद्धि का ज्ञान नष्ट हो जाता है पर साक्षी का ज्ञान तो नष्ट नहीं होता है, वास्तविक जो हमारा चेतन स्वरूप है वो ज्ञान तो अविनाशी है। तो जो अपने को बुद्धि ही मान लेगा तो जानेगा मैं सबसे ज्यादा बुद्धिमान हूँ, मैं बड़ा विद्वान हूँ। बुद्धि में ही तो विद्या याद की जाती है, कुछ खाले तो सब भूल जाता है, विस्मृति हो जाती है। बड़े बड़े विद्वान, याद रहता है पर समय पर भूल जाते हैं। ये बुद्धि का ज्ञान जो है प्रतिबिम्ब का ज्ञान है, याद आ जाना फिर भूल जाना पर हमारा साक्षी का ज्ञान तो अखण्ड है। ऐसे ही आनंद, विषयानंद, विषय मिले मन एकाग्र हुआ तो आनंद आया और मन चंचल हुआ तो आनंद ख़त्म हो गया। तो जो विषयानंद को सच्चा मानते हैं वो विषयानंद को ही खोजते रहते हैं, इसी में अपने प्राण भी छोड़ देते हैं क्योंकि स्त्री, पुत्र, धन ये जितने विषय हैं ये सदा तो नहीं रहेंगे ये तो छाया रूप हैं। ये सदा नहीं रहेंगे तो ये दु:खी हो जायेगा उनके न रहने से। स्त्री न रही, दु:खी होकर कितने ही प्राण छोड़ देते हैं। अरे वो तो छाया ही थी जो गई, वो सदा कैसे रह सकती है। तो जो छाया को ही कोई अपना स्वरूप मान बैठे हैं वो अज्ञानी हैं, उनको दु:खों से कोई कैसे बचा सकता है? जन्म मरण से कैसे बचा सकता है जब अपने को स्त्रीयोहं, पुरुषोहं, ब्राह्मणोंहं, क्षत्रियोहं, वैश्योहं, शूद्रोहं ये ही माने बैठे हैं? जाति वर्णादि भी स्थूल शरीर में ही हैं और जितने भी कर्म हैं अच्छे-बुरे वो सूक्ष्म शरीर में रहते हैं क्योंकि इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण सूक्ष्म शरीर में हैं। वो अपने को कर्ता मानते हैं माने अच्छा काम किया है बहुत खुश! कहते हैं मैंने पुण्य किया है, मुझे स्वर्ग मिलेगा और जो विरुद्ध कर्म हो गया, अशुभ कर्म हो गया तो कहता है मैं बहुत पापी हूँ। जब तू ही पापी अपने को माने बैठा है तो तुझे नर्क से कौन बचायेगा? ईश्वर भी कहेगा कोई गवाह ही नहीं तू स्वयं कह रहा है कि मैं पापी हूँ, तू स्वयं कह रहा है मैंने बहुत पुण्य किया है तो तुझे मरने से कौन बचायेगा? यदि अपने को पुण्यात्मा मानता है, पुण्य किया है तो तुझे जन्म लेना पड़ेगा स्वर्ग में, देवता बनना पड़ेगा पर मरना वहाँ भी पड़ेगा बचेगा नहीं और जो पापी मानता है तो नर्क में जाना पड़ेगा या पशु-पक्षी, वृक्षादि की योनियों में जाना पड़ेगा। जन्म मरण न पुण्य से मिटेगा, न पाप से मिटेगा। कर्ता अपने को मानेगा तो ज़रूर या तो पुण्यात्मा मानेगा या पापात्मा मानेगा और ये सब सूक्ष्म शरीर में ही हैं। तू तो पाप-पुण्य का दृष्टा-साक्षी है।

मन में ही आते हैं पहले पाप-पुण्य, मन के विचारों को तू पहले ही जान लेता है कि तेरे मन में पुण्य आया है कि पाप आया है। तू तो अलग है न मन से और मन और इन्द्रियों के कर्मो से। पहले मन में ही पाप-पुण्य आता है फिर इन्द्रियों से वो पाप-पुण्य करता है। इस प्रकार से सज्जनों! ये जीवात्मा है प्रतिबिम्ब, ये प्रकृति है इसको परा प्रकृति कहते हैं क्योंकि इसमें थोड़ा ज्ञान है। इसके रहने से शरीर जीवित रहता है, प्रतिबिम्ब न रहे तो शरीर मर जाता है। ये दोनों भगवान ने प्रकृति बताया, माया बताया और इन दोनों का जो अधिष्ठान जो पुरुष है सो शुद्ध ब्रह्म है। तो संसार की उत्पत्ति-पालन-संहार, कहा ये दोनों प्रकृतियों का काम है अधिष्ठान आत्मा का नहीं, ब्रह्म का नहीं। ब्रह्म तो दोनों प्रकृतियों का द्रष्टा-साक्षी है, वही हम हैं सज्जनों! दोनों प्रकृतियों को जानते हैं, पंच महाभूत मन बुद्धि अहंकार को भी जानते हैं और कर्ता-भोक्ता रूप जीव को भी जानते हैं और इसके सुख-दुःख को भी जानते हैं तो हम अलग न हो गये? इन दोनों प्रकृति से अलग तीसरे न हो गये? इसलिये हमारा तुम्हारा स्वरूप —

'प्रकृतेः परा पुरुषः साकाष्ठा सा परा गतिः'

दोनों प्रकार की प्रकृति से परे है, आधार अधिष्ठान हैं, हमारे आधार अधिष्ठान में ही इन दोनों प्रकृतियों का खेल चलता रहता है और हम ज्यों के त्यों द्रष्टा रूप रहते हैं साक्षात् इसलिये हम दोनों प्रकृतियों से परे हैं। ये श्रीकृष्ण भगवान ईश्वर के वचन हैं इनको बारम्बार सुनने से पक्का होता है ज्ञान। स्वयं भी मनन करना चाहिये सुन करके और ये बात झूठी तो हो नहीं सकती क्योंकि सर्वज्ञ ईश्वर का ये उपदेश है, जीव तो अल्पज्ञ होने से जान नहीं सकता। ईश्वर सर्वज्ञ होने से अपनी सब माया को जानता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं ये दोनों माया हैं मेरी माने झूठी चीज़ है मैं ही सत्य हूँ। मेरे बताने से मेरी माया को जान लो।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 5 - 28.08.06

१९

क्षर अक्षर एवं उत्तम पुरुष

* भ0गी0 पंचदशोऽध्यायः *

श्लोक 16 - 20

सच्चिदानंद सर्वशक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया —

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढ़चेताः,
यच्छेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यतेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। BG – 02.07 ।।

हे भगवन! अज्ञानता के कारण, अज्ञान जनित मोह के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है, धर्म को भी सम्यक प्रकार से नहीं जानता हूँ, मेरा परम कल्याण किस प्रकार से होगा उस उपाय को भी नहीं जानता हूँ इसलिये मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है, आप मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण कर :—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च,
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।। BG – 15.16 ।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः,
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।। BG – 15.17 ।।
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः,
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।। BG – 15.18 ।।
यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्,
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ।। BG – 15.19 ।।

हे अर्जुन! क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं। सम्पूर्ण भूत तो क्षर हैं, जो क्षण क्षण में क्षीण होवें, विनाशी होवें उनको क्षर कहते हैं। पंचमहाभूत और पंचमहाभूतों का कार्य स्थूल सूक्ष्म शरीर ये सब क्षर हैं और जो कूटस्थ है, कपटरूप से स्थित है वो निद्रारूप माया, प्रकृति अक्षर है क्योंकि प्रकृति से जाग्रत-स्वप्न का संसार, पंचमहाभूत और पंचमहाभूतों का कार्य उत्पन्न होता है इसलिये स्थूल सूक्ष्म शरीर अथवा जाग्रत-स्वप्न का संसार, इसको **क्षर** कहते हैं, ये क्षण क्षण में विनाश होता रहता है और जो निद्रारूप प्रकृति है उसको **अक्षर** कहते हैं वो अपने कार्य की अपेक्षा से अक्षर है और **कूटस्थ** माने जो कपट रूप से स्थित है, जीव को मोहित करती है, धोखा देती है यही कपट है। है स्वयं असत्-जड़-दुःखरूप ये कार्य-कारण रूप प्रकृति और अपने आपको सच्चिदानंदरूप दिखा करके जीव को मोहित कर रही है, जीव इस संसार को सत्रूप सुखरूप मान बैठा है और ये सब प्रकृति का कार्य है। प्रकृति ने ये रूप धारण किया है पंचमहाभूत भी और स्थूल-सूक्ष्म शरीर भी इसलिये इसका नाम कुहक है, कपट है, छल है, छद्म है, माया है, धोखा है मतलब जैसे कि वो मारीच राक्षस था वो माया का मृग बन गय, ये सब धोखा ही देना है और सोने का मृग बन गया था तो वो कपट है, कपटरूप है क्योंकि सचमुच में सोने का मृग है नहीं पर छल से कपट से छल लिया सीता को और राम को भी अपने पीछे दौड़ा लिया, धोखा दिया उसने। तो ये संसार माया मृग है, निद्रारूप माया ने,

अज्ञानरूप माया ने (अज्ञान को असुर कहते हैं) और उसने जाग्रत-स्वप्न का संसार बना लिया अपने आप को, ये तो फिर माया का मृग है संसार और सबकी बुद्धि रूपी सीता को मोहित कर रहा है माने अपने को सत्‌रूप सुखरूप और सुन्दर दिखा रहा है कि देखो मैं कैसा सुन्दर हूँ। ये कपट है, जाग्रत-स्वप्न का संसार न सत्‌रूप है, न सुखरूप है बल्कि असत्‌-जड़-दुःखरूप है। ये धोखा देना है। नारद भगवान के भक्त थे और वो राजा शीलनिधि, उसके राज्य और उसकी कन्या ये सब माया थी, माया ने ये सब रूप धारण किये थे और नारद उसमें मोहित हो गये। ये माया मृग है और नारद को उसने मोहित कर लिया वो तो कहो भगवान ने बचा लिया नहीं तो मोहित तो कर ही लिया था। वो कन्या माया का मृग है पहले तो काम हुआ, माया मृग को पाने की कामना हुई इच्छा हुई और बीच में विघ्न डाला भगवान ने तो भगवान के ऊपर क्रोध किया, तो इतने मात्र से वो बच तो गया माया मृग से, ठग लिया उसने धोखा दिया, कुछ थी नहीं माया परन्तु मोहित कर दिया इनको, इनका सब ज्ञान ध्यान भूल गया, भगवान की भक्ति भूल गयी। सीता भगवान राम की भक्त थी, राम के पीछे सीता ने माता-पिता को छोड़ा, सखी सहेलियों को छोड़ा, और अयोध्या का राज्य और सास-स्वसुर को छोड़ा और राम के साथ वन वन भटकी, दुःख सहा पर एक माया मृग के पीछे मोहित हो गयी फिर राम की भक्ति कहाँ चली गयी जो सोने के मृग में मन चला गया? क्या सोने की कमी थी उसके पिता के यहाँ या सास स्वसुर के यहाँ, अयोध्या में या जनकपुरी में क्या कमी थी? उनको सब छोड़ दिया अब ये थोड़े से सोने के मृग में मन चला गया। भगवान ने भी कहा तेरा मन सोने-चाँदी में गया है तो जा तू सोने की लंका में जहाँ सोना ही सोना है। ये तो थोड़ा सोना है, ये मृग सोने का तो थोड़ा ही है तो ऐसी जगह में पहुँच जा जहाँ जिधर निहारेगी वहाँ सोना ही सोना नज़र आयेगा, पूरी लंका सोने की बनी है। जैसी भक्त की इच्छा हो भगवान वही प्रीति पूरी करेंगे। सीता भक्ति का स्वरूप हैं उन्होंने इच्छा किया सोने के मृग की भगवान ने सोने की लंका में भेज दिया परन्तु ये सब दुःख दायक है, झूठा है। न तो सोने का मृग मिला और इधर राम भी छूट गया, न माया मिली न राम। इसलिये माया को कपट कहते हैं, धोखा दे रही है जीव को, लुभा रही है मोहित कर रही है बिल्कुल झूठी है। जाग्रत का संसार झूठा, स्वप्न का संसार झूठा और सुषुप्ति में ये दोनों छिप जाते हैं, वही माया है जो कभी प्रकट हो जाय और कभी छिप जाय, उसी को माया कहते हैं। तो निद्रा से ये प्रकट हो जाता है और फिर ये निद्रा रूप अज्ञान-अंधकार में छिप जाता है, ये माया है। तो निद्रा अपने कार्य की अपेक्षा से अक्षर है, अविनाशी है और कपट रूप है। कपट रूप है इसलिये इसे कूटस्थ कहते हैं और जाग्रत-स्वप्न की अपेक्षा से निद्रा कुछ अविनाशी एवं अक्षर कही जाती है क्योंकि बारम्बार निद्रा से संसार निकलता है और निद्रा में लीन होता है, निद्रा अविद्या अज्ञानता बनी रहती है। निद्रा और जाग्रत-स्वप्न का संसार ये दोनों ईश्वर और जीव की उपाधि हैं। इन्हीं उपाधियों से —

कार्योपाधिरयं जीवः कारणोंपाधिरीश्वरः,
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते।।

कार्य की उपाधि से माने पंचमहाभूत और पंचमहाभूतों का कार्य स्थूल-सूक्ष्म शरीर ये कार्य हैं, इन उपाधियों से ब्रह्म को जीव कहते हैं और कारण उपाधि जो निद्रा है उस निद्रा उपाधि से ब्रह्म को ही ईश्वर कहते हैं। ये माया की कल्पना है, जीव ईश्वर की कल्पना कर दिया इस माया ने। शुद्ध ब्रह्म का इन उपाधियों के भीतर आने से ईश्वर और जीव नाम पड़ गया तो ईश्वर जीव भी इन्हीं में आ गये क्षर-अक्षर में। अब रहा **पुरुषोत्तम** वो इन दोनों से भिन्न रहा, कार्य-कारण माया से और उपाधियों में जो जीव-ईश्वर नाम पड़े हैं इनसे जो शुद्ध ब्रह्म जो निरुपाधिक ब्रह्म है वो भिन्न ही रहा। तो —

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः,

यो लोकेत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।। BG – 15.17 ।।

भगवान बोले हे अर्जुन! जो उत्तम पुरुष है वो इन दोनों से भिन्न है, उसको ब्रह्म कहते हैं। **'उत्तमः पुरुषः तु अन्यः'**, उसका नाम क्या है? कहा **'परमात्मा इति उदाहृतः'** वो परमात्मा नाम से पुकारा जाता है, जो कार्य-कारण रूप माया से परे है, पर है सो उसे परम कहा जाता है वह सबकी आत्मा है इसलिये आत्मा कहा जाता है इसलिये उसे परमात्मा कहते हैं, सबसे परे, कार्य-कारण रूप माया से परे माने ईश्वर जीव से भी परे क्योंकि कार्य-कारण उपाधि से ये दोनों नाम हैं जीव और ईश्वर। कार्य-कारण से जो परे है वो परमात्मा कहा जाता है। ये अपना ही स्वरूप है कार्य-कारण माने जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति से परे, आत्मा ही है अपना ही स्वरूप है। तीनों के प्रकाशक हैं हम और इन्हीं तीनों में जीव ईश्वर जगत माया सब कुछ आ गया। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति माया हो गयी और इन उपाधियों से, कार्य उपाधि से जीव व कारण उपाधि से ईश्वर ये सब आ गये इस दृश्य कोटि में, चौथा आत्मा माने अपना स्वरूप है उसको परमात्मा कहते हैं। **'यो लोकेत्रयमाविश्य'**—जो तीनों लोकों में प्रविष्ट हो करके, **'बिभर्ति'**—जो तीनों लोकों को धारण करता है और तीनों लोकों में प्रविष्ट भी है, **'ईश्वरः'**—उस परमात्मा का नाम ही ईश्वर है। **यो लोकः त्रयम् आविश्य** — तीन लोक कौन हैं ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, ये तीनों लोक हैं इनको ज्ञान नहीं है, इनको जो देखता है अवलोकन करता है वो ज्ञान स्वरूप ब्रह्म है। तो जो देखने में आते हैं वो सब लोक हैं। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति हमारे तुम्हारे देखने में आते हैं, ये तीनों लोक हैं। पृथ्वी हमको देखने में आती है ये लोक हैं, पंचमहाभूत देखने में आते हैं ये लोक हैं, पंचमहाभूतों का कार्य ये पिण्ड हैं ये शरीर हैं देखने में आते हैं ये सब लोक हैं। सूर्य चन्द्र तारागण ये सब हमको दिखाई पड़ते हैं ये सब लोक हैं परन्तु ये लोक स्वयं तो देखते नहीं, इन लोकों को देखने वाला तो मैं चेतन आत्मा हूँ। अनेक लोक माया से बन जाते हैं। इन्हीं लोकों को ब्रह्माण्ड कहते हैं — ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहे। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड ये सब लोक माया से एक मिनट में बन जाते हैं। वो सर्व लोकों में प्रविष्ट है कौन? जिसको परमात्मा कहा गया है, सबसे परे भी है और सबके भीतर प्रविष्ट भी है और सबको अपने में धारण करता है, आकाश के समान सबके भीतर है और जैसे आकाश सबके भीतर है और आकाश में सब कोई संसार रहता है, वायु अग्नि जल पृथ्वी और चराचर जगत आकाश में ही रहता है क्योंकि सबको जो रहने की जगह दे, अवकाश दे उसको आकाश कहते हैं—'अवकाशं ददाति इति आकाशः'। सब आकाश में रहते हैं मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष पर्वत सूर्य चन्द्र सब आकाश में रहते हैं, आकाश में चलते -फिरते हैं और आकाश सबके भीतर रहता है तो भी असंग है, निर्लेप है, शुद्ध का शुद्ध है। ऐसे ही ईश्वर, परमात्मा आकाश से भी अति सूक्ष्म और महान है, आकाश में भी प्रविष्ट है और सबको अपने में धारण करता है जैसे आकाश में सब रहते हैं ऐसे ही चिदाकाश में सब रहते हैं परन्तु ये परमात्मा असंग है, सबमें रहता है सब अपने में हैं तो भी संग होता नहीं क्योंकि माया और माया का कार्य झूठा है, कल्पित है, कल्पित वस्तु सत्य को स्पर्श नहीं करती। जैसे छाया चित्र झूठे हैं, कल्पित हैं और TV के शीशा में दिखाई भी पड़ते हैं परन्तु सत्य नहीं झूठे हैं, व्यवहार दशा में शीशा सच्चा है और छाया चित्र झूठे हैं। छाया चित्रों के मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, पर्वत, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, हाथी, घोड़ा, रथ और वो जो वीर महाभारत में युद्ध कर रहे हैं TV के शीशा में सब दिखाई पड़ते हैं ये सब झूठे हैं, छाया चित्र हैं और TV के शीशा में सब दिखाई पड़ रहे हैं तो सत्य और झूठ का कोई सम्बन्ध तो न हुआ। TV का शीशा सच्चा और ये सब झूठे, सब दिखाई भी पड़ते हैं पर तो भी शीशा में प्रवेश नहीं होता। ऊपर ऊपर दिखाई पड़े फिर लापता हो गये, इसी को माया कहते हैं छाया चित्र को, शीशा शुद्ध का शुद्ध बना रहा। ऐसे ही आत्मा रूपी दर्पण में ये जगत चित्र दिखाई पड़ता है, जाग्रत-स्वप्न का जगत और सुषुप्ति भी। परन्तु आत्मा रूपी दर्पण को ये 'जगत चित्र' छाया चित्र होने से छूते नहीं इसलिये अग्नि जलती है, वायु चलती है, वर्षा होती है पर आत्मा रूपी आकाश का कुछ होता नहीं, दर्पण का कुछ

बनता बिगड़ता नहीं।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः,
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। BG – 02.23 **।।**

इस आत्मा को अग्नि, वायु, जल कोई स्पर्श नहीं करते इसलिये आत्मा अग्नि से जलता नहीं, वायु से हिलता-डुलता नहीं और सूखता नहीं, जल से गीला होता नहीं, पृथ्वी के कार्य अस्त्र-शस्त्र से कटता नहीं नष्ट नहीं होता है क्योंकि कोई सम्बन्ध होता ही नहीं है, शुद्ध का शुद्ध रहा। सत्य और झूठे का क्या सम्बन्ध हो, आत्मा सत्य है, जगत छायाचित्र झूठा है फिर क्या सम्बन्ध इसलिये नहीं जलता जैसे TV के शीशा में आग भी जलती है, ऑधी चलती है, वर्षा होती है पर वो छाया की अग्नि है, छाया की बरसात है तो सत्य शीशा से कोई सम्बन्ध नहीं ऐसे ही सत्य आत्मा से ये छाया चित्र की अग्नि, वायु, जल का आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है, आत्मा शुद्ध का शुद्ध ही रहता है। इसलिये हे अर्जुन! आत्मा में चराचर जगत है और चराचर जगत में आत्मा समाया हुआ है, व्याप्त है पर तो भी असंग है।

रहता सभी के संग पर करता न किंचित संग है।
है रंग पक्के में रंगा चढ़ता न कच्चा रंग है।।

ये जाग्रत के संसार में समाया है सब स्त्री-पुरुषों में, स्वप्न के संसार में समाया है, सबमें समाया है। सुषुप्ति में समाया है, देह इन्द्रिय मन बुद्धि में समाया है, देश-काल-वस्तु में समाया है, देवता-दैत्यों में समाया है और मृत्यु यमराज व काल में भी समाया है परन्तु किसी को छूता ही नहीं। अग्नि को छुए तो जलावेगी अग्नि, हम नहीं छुएं तो क्या जलायेगी या तो अग्नि छुए तो जलावे। न तो अग्नि हमको छू सकती है क्योंकि छाया चित्र है उसमें क्या शक्ति सामर्थ्य और न हम छू सकते हैं हम भी अकर्म हैं, द्रष्टा मात्र हैं अग्नि के, व्यापक हैं अग्नि में पर अग्नि को देखते हैं। इतने सूक्ष्म हैं कि अग्नि छू नहीं सकती, तो सबके संग हैं फिर भी असंग हैं। ये सब कच्चे रंग हैं — जाग्रत के रंग स्वप्न में उड़ जाते हैं, स्वप्न के रंग सुषुप्ति में उड़ जाते हैं, अपनी आत्मा में कोई रंग न चढ़ा और रहे भी सबके साथ। जाग्रत के लोगों में रहे स्वप्न के लोगों में रहे पर किसी का रंग अपनी आत्मा में नहीं चढ़ा। सच्चिदानंद अपना स्वरूप ज्यों का त्यों शुद्ध ही रहा। सुषुप्ति का एक दम अज्ञानरूप अंधकार काला रंग है वो भी न चढ़ा, ज्यों के त्यों शुद्ध, TV के शीशा के समान बिल्कुल निर्लेप निर्विकार। तो हज़ारों बार संसार बनता बिगड़ता है, जाग्रत-स्वप्न का संसार सुषुप्ति से निकलता है व पुनः सुषुप्ति में लीन होता है पर आत्मा ज्यों का त्यों रहता है। **'यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः'** — इसी को ईश्वर कहते हैं, इसी को परमात्मा कहते हैं, यही सब शरीरों में व्यापक होकर जीव भी कहलाता है परन्तु तो भी ये उपाधियॉ छूती नहीं हैं सबके भीतर रहने पर भी — 'असंगो हि अयं पुरुषः' ये पुरुष असंग ही रहा इसलिये कोई उसका घातक नहीं है, नाशक नहीं है आत्मा का। माया 'झूठी' छाया के समान है और ब्रह्म 'सत्य' पुरुष के समान है। जैसे पुरुष को पुरुष की छाया नाश नहीं कर सकती, छाया ही उत्पत्ति-विनाशशील है पुरुष नहीं। ऐसे ही ज्ञान को पुरुष कहते हैं, इन शरीरों को छाया कहते हैं। जो दिखाई पड़े सो छाया और जो देखे सो पुरुष। तो शरीर भी दिखाई पड़ते हैं, छाया भी दिखाई पड़ती है, बराबर हैं और सब शरीरों के भीतर और बाहर ये देखने वाला पुरुष भी बराबर है, एक जैसा ही है भेद नहीं है, तो कोई सम्बन्ध नहीं होता। पुरुष को क्या भय है छाया से? ये उत्पन्न होती है फिर विलीन होती है इसलिये इसको माया कहते हैं, कभी दिखाई पड़ गयी कभी नहीं दिखाई पड़ी। ये संसार भी ऐसा ही है कभी दीखता है कभी नहीं दीखता है। आत्मा तो सभी अवस्थाओं में, जाग्रत में स्वप्न में सुषुप्ति निर्निमेष दृष्टि से देखता ही रहता है। आत्मा की ज्ञान दृष्टि का कभी नाश नहीं होता, ज्ञान अखण्ड है। ये ज्ञान ही असली नेत्र है इस नेत्र को कौन नाश करे, ये हमेशा एक समान प्रकाशमान रहता है, देखता ही रहता है। ये कभी सोता नहीं, सो जाये तो निद्रा को, अज्ञान-अंधकार को कौन

देखेगा? और जाग्रत-स्वप्न के संसार के अभाव को कौन देखेगा? जाग्रत-स्वप्न नहीं हैं सुषुप्ति में, इसको अभाव कहते हैं इस अभाव को कौन देखेगा? और सुषुप्ति के अज्ञान के भाव को कौन देखेगा? क्योंकि देखने वाला एक मैं चेतन आत्मा पुरुष ही हूँ, पुरुष सब शरीरों में एक है। ये माया के रचे हुए शरीर रूपी पुर तो अनेक हैं, छोटे बड़े ये पुर हैं—मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, कीड़े-मकोड़े ये सब शरीर पुर हैं और इन सबके भीतर शयन करने वाला, रहने वाला पुरुष है जो पुर में रहे सो पुरुष। मैं ज्ञान आत्मा सबमें बराबर बैठकर देख रहा हूँ सम भाव से और ये पुर तो बनते बिगड़ते हैं, शरीर तो बनते बिगड़ते हैं पर मैं ज्यों का त्यों रहता हूँ इसलिये इस पुरुष का विनाशक कोई है नहीं। झूठा संसार सत्य पुरुष का कैसे नाश कर सकता है। हज़ारों बार आप ही उत्पन्न होता है और आप ही नाश होता है, आत्मा ज्यों का त्यों ही रहता है। कितने सपने देख चुके और कितने जाग्रत भी देख चुके और हम वही के वही हैं कुछ गिनती है क्या? जब से इस शरीर का जन्म हुआ कितने स्वप्न, कितने जाग्रत और कितने दिन रात महीने और वर्ष हम देख चुके। ये जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति सब आये और चले गये, ये दिन महीने और वर्ष भी कितने आये और चले गये जीवन भर में हमारे देखते देखते परन्तु हम वही के वही हैं, न आये न गये।

माषाब्दयुगकल्पेषु गतागम्येष्वनेकधा।
नोदेति नास्तमेति संविदेषा स्वयं प्रभा।।

कितने ही मास वर्ष युग कल्प, देश काल वस्तु, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थायें बीत गयीं परन्तु ये चेतन आत्मा की ज्ञान दृष्टि न उदय हुई न अस्त हुई, एक समान प्रकाशमान रही, कोई विकार नहीं आया, इस नेत्र में कोई दोष न आया, कोई जाला न आया, माया जाल नहीं आया, मायाजाल को प्रकाशने वाला ये ज्ञान ज्यों का त्यों बना ही रहा। ये माया को जाल क्यों कहते हो? अज्ञानी जीव इसमें फॅस जाता है, जाग्रत स्वप्न के स्त्री पुरुषों को देखकर फॅस जाता है इसलिये माया को जाल कहते हैं। कैसा जाल बिछा रखा है फॅसाने के लिये जीवों को जैसे पक्षियों को फॅसाने के लिये जो बधिक होते हैं वो जाल बिछा देते हैं, दाना डाल देते हैं जाल में, पक्षी फॅस जाते हैं उसी लोभ में। ऐसे ही माया ने ये जाल बिछा रखा है और विषयरूपी दाना डाल दिया है — शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध, ये विषय -भोग के लिये और इन्हीं विषय-भोगों के पीछे ये जीव रूपी पंछी इस जाल में फॅस जाता है फिर वो बधिक है मार के खा जाता है, ये काल इनको मार मार के खा जाता है संसार को ही मारता खाता रहता है। जीव इस प्रकार से भ्रम से अज्ञान के कारण ८४ लाख योनियों में जन्मता मरता रहता है इस माया में फॅस करके। यदि विषय रूपी चारा का, दाना का लोभ न हो तो नहीं फॅसे। और इनमें सत्-बुद्धि सुख-बुद्धि न हो इस संसार में तो भी नहीं फॅसे पर ये सत्-बुद्धि सुख-बुद्धि करके इसमें फॅस जाता है और विषय सुखरूप हैं ये मेरा भोजन है इसलिये फॅस जाता है। तो भगवान जगाते हें, माया को माया बताते हैं, पुरुष को पुरुष बता रहे हैं। अपने को पुरुष ब्रह्म जानो व माया को झूठी माया जानो, सब माया में तुम समाये हो और माया तुम में खेल कर रही है पर तुमको छूती नहीं है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का खेल कर रही है, तुम द्रष्टा बनकर देखो तुमको तो छूती नहीं जो तुम्हारा नाश करे। ‘ **उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः, यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः, यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः, अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः’** हे अर्जुन! क्योंकि मैं क्षर और अक्षर दोनों से अतीत हूँ, परे हूँ। ‘क्षर’ माने जाग्रत स्वप्न का संसार ये कार्य माया और सुषुप्ति कारण माया वो ‘अक्षर’, इन दोनों से मैं परे हूँ, अतीत हूँ **‘यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः’** और अक्षर से भी उत्तम माने ऊपर हूँ माने सुषुप्ति से भी ऊपर हूँ। तो क्षर से (जाग्रत-स्वप्न से) अक्षर (सुषुप्ति) से भी ऊपर हूँ इसलिये मुझे पुरुषोत्तम कहते हैं लोक में भी, वेद में भी - पुरुषोत्तम नाम से मैं प्रसिद्ध हूँ। मैं चेतन पुरुष सबसे उत्तम माने सबसे ऊपर हूँ, ये सब नीचे हैं। ब्रह्म से नीचे सुषुप्ति, सुषुप्ति से नीचे स्वप्न, स्वप्न से नीचे जाग्रत, सबसे ऊपर मैं रहा। सूर्य के समान इस त्रिलोकी को मैं प्रकाशित कर रहा

हूँ, 'जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति' ये माया की त्रिलोकी है। जैसे सूर्य सबसे ऊपर है सबको प्रकाशता है पर किसी को छूता नहीं है ऐसे ही मैं सबके ऊपर हो करके सबको प्रकाशता हूँ पर किसी को छूता नहीं और किसी के पाप-पुण्य कर्म-धर्म से मुझे कोई मतलब नहीं, खाली प्रकाशता हूँ।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः,
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशति भारत ।। BG – 13.33 **।।**

हे भारत! ज्ञानरत अर्जुन! जैसे सूर्य सर्व लोकों को प्रकाशता है और सर्व लाकों से भिन्न है, अलग है ऐसे ही मैं चेतन आत्मा सब संसार को प्रकाशता हूँ पर माया से परे हूँ। **'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः, अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः'** इसलिये लोक वेद में मेरी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्धि है। **'यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्, स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत'**—अर्जुन जो कोई जीव भी इस प्रकार से मुझको जानता है पुरुषोत्तम रूप से, अपने आप को भी पुरुषोत्तम जानता है वो सर्वविद् है, वो सबको जानता है। 'जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति' को जान लिया इतनी माया है और 'जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति' की उपाधि से जीव और ईश्वर को भी जान लिया और जीव-ईश्वर से व 'जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति' से परे अपने आप मुझ परमात्मा को भी जान लिया अपने आत्मा के रूप में, वो सर्वविद् है। उसने सबको जान लिया, उसको अब कुछ जानना बाकी न रहा। वो सर्वभावों से मेरा ही भजन करता है। उसका देखना, बोलना, सुनना, चलना सब मेरा ही भजन है, मेरा ही पूजन कर रहे हैं ये सब। फिर उनके देह इन्द्रिय मन बुद्धि यही सब पूजा कर रहे हैं क्योंकि देखना सुनना इन्हीं में है। मेरी पूजा करते हैं मेरी भक्ति करते हैं ये भी मुझमें लीन हो जायेंगे। जीव ईश्वर और ये सब जगत भी, इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण भी 'पुजारी लोग' मेरी पूजा करते करते मुझमें ही समा जायेंगे, मेरा ही रूप हो जायेंगे क्योंकि जो छाया हैं आखिर कहाँ जायेगी पुरुष को छोड़ कर, पुरुष में पैदा भयी, पुरुष ने देखा, पुरुष में ही समा जायेगी। ऐसे ये माया पुरुष (ब्रह्म) से उत्पन्न भयी और ब्रह्म ही देखता है और ब्रह्म में ही ये समा जाती है। पुरुष को छोड़कर ये छायारूप माया अन्यत्र रह सकती नहीं है, पुरुष से अलग होकर ये नहीं रह सकती, पुरुष के अधीन है बस फिर शुद्ध ब्रह्म ही रह गया।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
ऐतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। BG – 15.20 **।।**

अर्जुन! ये गुह्यतम् शास्त्र है इसको जान करके वो तत्त्ववेत्ता हो जाता है, हे अनघ! हे निष्पाप अर्जुन! ये मैंने तुझको सुनाया, 'ऐतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्'—इसको जान लेने से बुद्धिमान हो जाता है, वो कृतकृत्य हो जाता है, उसको कुछ करना बाकी न रहा, कुछ जानना बाकी न रहा, कुछ पाना शेष नहीं रहा, सब कुछ पा लिया, सब कुछ जान लिया , सब कुछ कर लिया अब वो निष्कर्तव्य हुआ है। अपने को पुरुष जानता है शेष जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये माया है, प्रारब्ध पर्यन्त ये छायारूप में दिखाई पड़ती है प्रारब्ध समाप्त होते ही ये छाया भी पुरुष में लीन हो जाती है फिर कभी दिखाई भी नहीं पड़ती। अब पुरुष तो सत्य है वो तो रह ही जायेगा ज्यों का त्यों। तो हमारा तुम्हारा स्वरूप तो पुरुष ब्रह्म है और पूर्ण है, सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण को पुरुष कहते हैं। ऐसा ब्रह्म स्वरूप अपना आत्मा है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 06 - 12.09.06

२०

जीवन मुक्त की गति एवं स्थिति

सर्वाधार सर्वाधिष्ठान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा हे भगवन्! आत्यन्तिक दु:खों की निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति का आप मुझे उपाय बतावें। मृत्यु की निवृत्ति अमृतत्त्व की प्राप्ति, अज्ञान की निवृत्ति अनंत अखण्ड ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार से होगी उसका उपाय आप बतावें, मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ, तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो :—

एक शक्ति है दूसरा शक्तिमान है। जितना भी संसार है वो शक्ति से ही होता है, शक्तिमान केवल द्रष्टा-साक्षी मात्र रहता है। शक्ति सब संसार का काम कर रही है और जैसे अग्नि और अग्नि की शक्ति होती है तो अग्नि तो कुछ काम नहीं करती वो व्यापक है, अद्वितीय है, एक है और उसमें किसी भी प्रकार का कर्म नहीं है। अग्नि की शक्ति क्या है? ऊष्णत्व, प्रकाशकत्व, ये दो अग्नि की शक्ति हैं ऊष्णता और प्रकाश। ऊष्णता गर्मी को कहते हैं, प्रकाश जो नेत्रों से देखने में आता है, उसका आकार होता है। इसी को सगुण और साकार भी कहते हैं। गर्म उसका गुण है और प्रकाश आकार है। आकार ऑखों से दीखता है और ऊष्ण गुण त्वचा से अनुभव होता है, त्वचा में, चमड़े में गर्मी लगती है। ठण्डी लगी हो तो अग्नि के गर्म गुण से ठण्डी दूर हो जाती है, भोजन पक जाता है उसी गर्मी से और जो प्रकाश है वो अँधेरा हटाता है। तो प्रकाश तो आकार हुआ और उसका जो गुण है ऊष्ण गुण हुआ, ये अग्नि की शक्ति है। अनंत शक्तियों के रूप में ये प्रकट हो रहा है, घर-घर में दीपक जल रहे हैं, घर-घर में चूल्हे जल रहे हैं, सूर्य में भी प्रकट हो रहा है। ये अग्नि की दो शक्ति हैं—ऊष्णत्व और प्रकाशकत्व। अग्नि एक है, व्यापक है, शक्तियॉ कहॉ से प्रकट होती हैं? शक्ति अग्नि से ही प्रकट होती है, ऊष्णता और प्रकाश व्यापक अग्नि से प्रकट हो गये। इसी प्रकार से व्यापक अग्नि के समान तो शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म है, एक अद्वितीय है, सर्वत्र व्यापक है। अब वही बुद्धिरूप उपाधि में प्रकट होता है तब उसको जीव कहते हैं और निद्रारूप सुषुप्ति में प्रकट होता है तो उसको ईश्वर कहते हैं। व्यापक ब्रह्म जब निद्रारूप उपाधि में प्रकट हुआ तो व्यष्टि को प्राज्ञ और समष्टि प्राज्ञ को ईश्वर कहते हैं और व्यष्टि-समष्टि का एकत्व होता है भेद नहीं होता है तो ईश्वर और प्राज्ञ एक ही हुए। हर बुद्धियों में जो प्रकट हो रहा है वही व्यापक चेतन जो अग्नि के समान है उसका नाम जीव हुआ है—ये प्रकट ज्ञान है, प्रकट चेतन है, ये शक्ति है। इन्हीं ईश्वर और जीव से सब संसार भर का काम चल रहा है। ईश्वर जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करता है और जीव? ईश्वर के बताये हुए जो धर्म-अधर्म हैं उनका पालन करता है। ईश्वर सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ है। ईश्वर को अपने स्वरूप का ज्ञान है और जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है तो देह में ही अभिमान करता है कि मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, इन्द्रिय मन बुद्धि में अभिमान करता है इसलिये कर्ता बन जाता है कि मैं पुण्य-पाप का कर्ता हूँ। जैसे ईश्वर में कोई अभिमान नहीं है कर्तापन का, उसको सर्वज्ञता है—अपने स्वरूप ब्रह्म को जानता है पर जीव अज्ञानता के कारण नहीं जानता है तो देह में अभिमान करता है—मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, इन्द्रियों में अभिमान करता है तो कर्ता-भोक्ता बनता है। कर्म तो सब इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में ही हैं जीव में नहीं हैं पर अपने आप को सूक्ष्मशरीर मानकर कर्ता बन गया और स्थूलशरीर मानकर जन्म-मरण वाला हो गया क्योंकि स्थूलशरीर ही

जन्मता-मरता है, सूक्ष्मशरीर नहीं जन्मता मरता। उसी में कर्तृत्त्व है, सूक्ष्मशरीर उपाधि वाला ये जीव है जो सूक्ष्मशरीर में, बुद्धि में प्रकट हुआ है। उसमें पूरे १९ तत्त्व हैं, उसका जन्म-मरण नहीं होता है—पॉच कर्मेन्द्रिय + पॉच ज्ञानेन्द्रिय + पॉच प्राण + मन + बुद्धि + चित्त + अहंकार, ये १९ हो गये। इसी में बुद्धि है उसी में प्रकट हुआ है चिदाभास। हमारे-तुम्हारे व्यापक चेतन का जो आभास है वो ही जीव है, वही सूक्ष्मशरीर में अभिमान करके कर्ता बना कि मैं धर्म-अधर्म का कर्ता हूँ नहीं तो कर्म तो उसी सूक्ष्मशरीर में हैं, चिदाभास में नहीं है वो तो केवल प्रेरक मात्र है। कर्म तो बुद्धि में, इन्द्रियों में, मन में, प्राणों में है परन्तु ये अपने आपको मन बुद्धि इन्द्रिय प्राण मान करके आप ही कर्ता बन बैठा, स्थूल देह में अभिमान करके स्त्री-पुरुष मान बैठा और स्थूलशरीर के जन्म-मरण से अपना जन्म-मरण मान लिया, नहीं तो जीव का भी जन्म-मरण नहीं होता क्योंकि सूक्ष्मशरीर वही का वही रहता है। केवल स्थूलशरीर ही जन्मता-मरता है। स्थूलशरीर तो एक मकान के समान है। मकान ही बदलते रहते हैं, जीव तो अपने परिवार के सहित यानि बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राण इन सबके सहित (जैसे मन में उसके संस्कार हैं, जहॉ इसका प्रेम है, जहॉ वासना है) उन दूसरे शरीरों को प्राप्त करेगा और स्वर्ग, वैकुण्ठ आदि लोकों में चला जायेगा अपनी वासनाओं के अनुसार, खाली स्थूलशरीर रूपी भवन ही छूटा।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः,
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। BG - 15.07 **।।**
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः,
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।। BG - 15.08 **।।**

अर्जुन! ये जीव मेरा अंश है। इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण आदि को ले करके एक शरीर से दूसरे शरीर में लेकर चला जाता है, एक लोक से दूसरे लोक को चला जाता है जैसी इसकी वासना होती है, खाली स्थूलशरीर ही छूटता रहता है और स्थूलशरीर ही मिलता रहता है, जैसे जो सरकारी अधिकारी हैं उनकी जब बदली होती है तो वे पत्नी, पुत्र, परिवार को लेकर के उस बॅगले को तो छोड़ देते हैं अब जहॉ जिस जिले में, जिस नगर में जायेंगे उनको दूसरा बॅगला मिल जायेगा, अधिकारियों के बॅगले बने बनाये हैं उस बॅगले में रहेगा जाकर के। फिर बदली होगी फिर उस बॅगले को ही छोड़ेगा, अपनी पत्नी, पुत्र, परिवार को तो साथ ही ले जायेगा। ऐसे ही ये जीव बुद्धिरूपी पत्नी, मनरूपी पुत्र, इन्द्रियरूपी पुत्रियों और परिवार को साथ ले जाता है। जहॉ जायेगा वहॉ दूसरा शरीर मिलेगा तो वो दूसरे बॅगले के समान हुआ, तो खाली स्थूलशरीर ही छूटता रहता है, सूक्ष्मशरीर वही का वही रहता है। इसी सूक्ष्मशरीर में चिदाभास जीव है इसको जब ये ज्ञान होता है कि मैं बुद्धि का साक्षी चेतन कूटस्थ आत्मा हूँ तो ये स्त्री-पुरुषपने का, शरीर का अभिमान छोड़ देता है तो फिर जन्म-मरण खत्म हो जाता है और सूक्ष्मशरीर का अभिमान छोड़ देता है तो कर्ता-भोक्तापना नहीं रहता। जब कर्तापना नहीं रहेगा तो दूसरा शरीर नहीं मिलेगा क्योंकि जन्म का बीज तो कर्म ही है, यदि कर्म नहीं तो जन्म नहीं। बीज है तभी वृक्ष होता है और जो बीज नहीं है तो वृक्ष कहॉ से होगा। तो जब इसको कर्तापन का अभिमान छूट गया अभी इसी जाग्रत अवस्था में, इसी जन्म में माने स्थूलशरीर का अभिमान छूटा तो कर्तापने का अभिमान छूट गया तो जब तक ये सूक्ष्म शरीर है, स्थूलशरीर है तभी तक है प्रारब्ध पर्यन्त और जब ये स्थूलशरीर छूटेगा तो सूक्ष्मशरीर भी इसका नष्ट हो जायेगा। **'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तिऽत्रैव समौलियन्ते'** — इसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता माने इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण आदि १९ तत्त्व (सूक्ष्मशरीर) फिर दूसरे शरीर या दूसरे लोक में नहीं जायेंगे, यहॉ ही विलीन हो जायेंगे और ब्रहम रूप से स्थित हो जायेंगे, जो चिदाभास प्रतिबिम्ब है वो बिम्बरूप हो जायेगा और जो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण हैं वो भी जैसे छाया पुरुष में मिल जाती है ऐसे ये भी सब उसी चेतन पुरुष में मिल जायेंगे, जन्म-मरण खत्म हुआ। यद्यपि प्रारब्ध पर्यन्त ज्ञानी के भी देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण दिखाई पड़ते रहेंगे जब तक प्रारब्ध है माने ये शरीर मिल चुका है उतने दिन ये रहेगा तुरन्त ही

नाश नहीं होगा नहीं तो जब अज्ञान जाता रहा क्योंकि कारण के अभाव होने से, नष्ट हो जाने से अज्ञान तो ज्ञानरूपी अग्नि से दग्ध हुआ तो निद्रारूपी अज्ञान के कार्य ये देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण आदि स्थूल-सूक्ष्म शरीर भी नहीं रहना चाहिये ये कैसे रह गये? कहा ये प्रारब्ध के कारण रह गये हैं। प्रारब्ध कर्मों से ये शरीर बन चुका है अब और ईश्वर का संकल्प है कि इस शरीर में इतने कर्मों का भोग होगा। कर्म तीन प्रकार के बताये गये हैं। इस जीव ने जो अनंत जन्मों में जो कर्म किये हैं न! तो बहुत कर्म संचित हैं इसके, प्रकृति में वो संचित रहते हैं और ईश्वर सर्वज्ञ रहता है जीवों के सब कर्मों को जानता है पूरे जीवन के कि क्या क्या इसने शुभ-अशुभ कर्म किये हैं पर जीव नहीं जानता क्योंकि ये अल्पज्ञ है और वो सब प्रकृति में ही हैं । मान लो प्रकृति कागज़ है और सब जीवों के कर्म सूक्ष्मरूप में उसमें लिखे हुए हैं, छपे हैं तो वो तो जान लेगा। जैसे लोक में कोई डाकू-बदमाश हैं, चोर हैं और कोई कत्ल करने वाले हैं ऐसे लोग स्थूलरूप से तो कर्म कर चुके पर उनके मन में सूक्ष्मरूप से 'मैंने ऐसा बुरा काम किया है' वो रह जाते हैं। कर्म तो भयंकर थे न! स्थूल शरीर व इन्द्रियों से किये थे न! वो मारने काटने के स्थूल कर्म तो नष्ट हो गये पर मन में उसके संस्कार रह गये वो नहीं भूलते उसको जीवन भर, अब वो ही जन्म का कारण बनेंगे। उस बदमाश के मारने काटने के स्थूल कर्म सरकारी कर्मचारियों के कागज़ में भी नोट हो जाते हैं सूक्ष्मरूप से उनके रजिस्टर में कि अमुक नाम का व्यक्ति अमुक किसी का कत्ल किया है। वो व्यक्ति तो स्थूल है और उसके कर्म भी स्थूल थे भयंकर थे जो उसने किये थे परन्तु उसका नाम और उसके कर्म २-३ पंक्ति में सरकारी रजिस्टर में सिपाही और दरोगा लोग लिख लेते हैं। अब उसके पकड़ने का आधार भी वही बना जो कागज़ में लिखा हुआ है क्योंकि उस व्यक्ति को तो उन्होंने देखा नहीं है और उसके मारने काटने के स्थूल कर्म भी नहीं देखे तो उसको कैसे पकड़ेंगे? अब जहाँ मारा काटा गया है, जिसने देखा होगा उन गवाहियों के आधार पर उसका नाम खाली जानते हैं और रूप तो देखा नहीं उसने तो उसका नाम खाली लिख लिया। इस व्यक्ति ने ये कर्म किया है, अमुक गाँव के अमुक नाम वाले व्यक्ति को इसने मारा है ये तो दो लाइन में लिख लिया न कागज़ में, इसको **वासना** कहते हैं यानि उसके कर्मों को अपने कागज़ में बसा लिया, अब उसके पकड़ने का आधार यही वासना बनी जो कागज़ में लिखा हुआ है। अब उसके नाम, उसके गाँव का नाम, उसके माँ-बाप और जाति के नाम के आधार पर वो ढूँढा जायेगा जहाँ कहीं होगा, जंगल में छिपे रहते हैं बदमाश लोग, उसी आधार पर वो पकड़ा जायेगा। उसके कर्म स्थूल थे और कागज़ में बसाये गये कर्म यानि वासना सूक्ष्म हैं तो उसके सूक्ष्म कर्म अथवा वासना ही उसके पकड़ने का आधार बने। अब कर्मों का फल भोगने के लिये वो सूक्ष्म वासना ही रही, उसके आधार पर वो पकड़ा जायेगा, उसको प्राण दण्ड दिया जायेगा क्योंकि दूसरे का प्राण लिया है उसने। अब यदि उस बदमाश का कोई बड़ा अधिकारी परिचित होवे और बड़े अधिकारी द्वारा उसकी प्रार्थना स्वीकार की जाये और वो अधिकारी उसको छुड़ाना चाहे तो यदि वो कागज़, जिसमें उस बदमाश का नाम और कर्म लिखा है, जला दिया जाय तो वो बदमाश नहीं पकड़ा जा सकता क्योंकि पकड़ने के आधार उसका नाम और कर्म तो जल गये तो वो बच गया न अब! इसी प्रकार से ज्ञान रूपी अग्नि से ये सब अनेक जन्मों के कर्म भस्म हो जाते हैं। अनेक जन्मों के कर्म प्रकृतिरूपी मायारूपी कागज़ में सब बसे हुए हैं, ईश्वर ने सब लिख रखे हैं और ईश्वर ही ज्ञान भी देता है। ईश्वर की शरण में जब कोई जाता है तो जब ईश्वर ज्ञान देता है तो अज्ञान, अविद्या, माया जिसके नाम हैं वो कागज़ जल जाता है। अब जल गया तो यमराज भी जो पकड़ते हैं जीवों को और स्वर्ग या नर्क में ले जाते हैं, उसके कर्मों के आधार पर ही तो ले जाते हैं न! चित्र और गुप्त नाम के उनके गुप्तचर रहा करते हैं। हर राजा के राज्य में गुप्तचर रहा करते हैं और सब जगह वो छिपे रहते हैं गुप्तचर, उनको जल्दी कोई पहचान नहीं सकता, छिपे हुए वेश में रहते हैं। साधारण मनुष्यों में बैठा हो गुप्तचर तो आप नहीं जान सकते हो, जैसे सब लोग बैठे हैं ऐसे ही वो भी बैठा सुन रहा है पर जिसको उसको पकड़ना है, कोई कातिल आदमी या डकैत यहाँ बैठा हो तो उसकी खोज में है वो, उस पर निगाह करके देखेंगे और तुम्हारे साथ सतसंगी बना बैठा है। बाज़ार में जैसे अनेक आदमी हैं वैसे वो भी एक है

क्या पहचान? अरे बाज़ार में अनेक यात्री आते जाते है कौन C.I.D. है क्या पता लगे? किसी का नाम पता तो कोई पूछते नहीं और वो बताते भी नहीं अपना नाम पता किसी को C.I.D. लोग, ऐसे भेष बदल बदल करके वो रहा करते हैं। इसी प्रकार से यमराज, जिसको धर्मराज कहते हैं, जो जीवों को कर्मों का दण्ड देता है स्वर्ग या नर्क, स्वर्ग में सुख और नर्क में दु:ख देता है। अच्छे कर्म किया है पुण्य कर्म किया है तो उसको तो स्वर्ग भेजेगा और जिसने बुरे कर्म किया है उसको नर्क में दण्ड देगा। ये काम यमराज को ईश्वर की तरफ से सौंपा गया है, कर्मचारी है वो भी। जैसे सरकारी अधिकारी पुलिस वाले हैं उनको पकड़ने का काम सौंपा जाता है इसी प्रकार से ईश्वर के यहॉ इनको भी अधिकारी बनाया गया है कि तुम पकड़ो उनको और अच्छा काम किया है तो स्वर्ग और बुरा कर्म किया है तो नर्क में उसको दण्ड दो परन्तु सज्जनों यदि जीवों के कर्म भस्म हो जायें तो यमराज के दो गुप्तचर रहते हैं चित्र और गुप्त वे जीवों के, हर मनुष्य के कंधों में बैठे रहते हैं, तो मन में जो अच्छा-बुरा कर्म सोचता है जीव वो 'गुप्त' नाम का गुप्तचर उसको लिख लेता है और जो चित्र माने प्रकट कर्म हैं, सबके देखने में आ रहे हैं उसको 'चित्र' ने लिख लिया अब वो चाहे मन में सोचे वो कर्म भी लिखे जा रहे हैं, ये गुप्तचर से बचेंगे नहीं। कोई सोचे कि मैंने छिप के काम कर दिया, उसको ये पता नहीं है कि यमराज के गुप्तचर बैठे हैं मेरे पास में, ये सब जीवों को पता ही नहीं है। प्रजा के लोगों को पता नहीं रहता सरकारी गुप्तचरों का, ऐसे ही ईश्वर सरकार है उसके गुप्तचर सबके कन्धों में बैठे हुए हैं, जीव को पता ही नहीं है कि कोई गुप्तचर होगा, वो जानता है कि कोई देखता नहीं है। तुम्हारे मन में आया और वहॉ ही 'गुप्त' नाम के गुप्तचर ने देख लिया और जो बाहर तुमने प्रकट किया उसको चित्र ने लिख लिया, अब तुम कहॉ बचोगे वो तो लिखे जा चुके। अब वही कर्म यमराज को पेश किये जाते हैं उसी के आधार पर वो स्वर्ग या नर्क देता है नहीं तो यमराज को क्या पता यदि गुप्तचर खबर न देवें, कुछ लिखा-पढ़ी न देवें? जैसे राजा को क्या पता कौन क्या कर रहा है? जब ये गुप्तचर खबर देते हैं तब राजा को पता लगता है। इस प्रकार से फिर उसको दण्ड दिया जाता है जिस दण्ड लायक हुआ — स्वर्ग के, नर्क के या मनुष्य लोक के, कौन सी योनि में जाने के लिये? ये शरीर क्या हैं ये जेलखाने के कमरे हैं, ८४ लाख योनियों की जेल है, जीव इस शरीररूपी कमरों में कैद किये जाते हैं। परन्तु सज्जनों यदि कर्म जला दिये जायेंगे तो यमराज क्या करेंगे अब? ईश्वर संसार का मालिक है वो ज्ञान दे देवे कि जीव जो भक्त होवे भगवान की शरण जाये और भगवान ऐसा ज्ञान दे देवें फिर वो कर्म तो भस्म हो जायेंगे फिर यमराज के गुप्तचर लिखेंगे क्या? कर्म तो भस्म हो गये और यमराज भी क्या पढ़ेंगे कागज़ जल गया न! अज्ञान में ही लिखे रहते हैं, अज्ञान भस्म हुआ, ज्ञान का काम ही ये है कि अज्ञानरूपी कागज़ ही भस्म कर दो। अनेक जन्मों के कर्म इस अज्ञान में लिखे रहते हैं, छपे रहते हैं सूक्ष्म रूप से जिसको संस्कार कहते हैं, वासना कहते हैं। अज्ञान ही भस्म हुआ, अब कोई सवाल नहीं है इसके जन्म मरण का — **'ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा'**, अर्जुन! ज्ञानरूपी अग्नि से अज्ञान सहित अज्ञान से जितने कर्मेन्द्रियॉ, ज्ञानेन्द्रियॉ सब होती हैं और इनके कर्म होते हैं वो सभी भस्म हो जाते हैं। अब जब भस्म हो गये सब कर्म तो जन्म मरण का कोई सवाल नहीं होता क्योंकि बीज ही वृक्ष का कारण होता है। बीज को यदि भून दिया जाय, चना है गेहूँ है इनको भून दिया जाय और फिर बोया जाय तो क्या वो अंकुर दे सकेंगे? भूना हुआ बीज अंकुर अब दे नहीं सकेगा, वृक्ष पैदा नहीं कर सकेगा पर अभी वो बीज ऑखों से तो दिखाई पड़ेगा गेहूँ जौ चना और चबाने के काम भी आ सकेंगे न! जन्म तो नहीं होगा, पौधे तो नहीं होंगे, सृष्टि तो नहीं करेंगे आगे परन्तु वर्तमान में वो भुने हुए गेहूँ जौ चने खाने के काम में आ सकते हैं। उसको पीस करके सत्तू बना सकते हो और घोल करके पी सकते हो, सत्तू खा सकते हो, तो कुछ देर के लिये भूख तो मिट जायेगी की नहीं? चने ऐसे ही चबा के एक लोटा जल पी लोगे तो क्षुधा की निवृत्ति होगी कि नहीं होगी? इतना काम वो कर सकते हैं ऐसे ही ज्ञानी जनों के जो शरीर हैं वो ज्ञानरूपी अग्नि से उनका बीज जन्म मरण का जो देह में अहंता ममता थी न सूक्ष्म शरीर में वो तो भस्म हो गयी क्योंकि उन्होंने जाना के स्थूल सूक्ष्म शरीर मैं हूँ नहीं इन तीनों से परे मैं शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ और ये तीनों शरीर माया मात्र हैं, छाया मात्र हैं। जैसे छाया चित्र टी०वी० के शीशे में दीखते हैं

ऐसे ही ये हैं। ये मेरा स्वरूप नहीं है जब मेरा कोई शरीर ही नहीं है तो मैंने कोई कर्म किया ही नहीं न अभी न कभी, मुझमें कर्म है ही नहीं — ये ज्ञान हुआ तो कर्म भस्म हुए। अज्ञानीजनों का शरीर दीखता है, कर्तापन का अभिमान जब शरीर का अभिमान करते तभी होता न! देहाभिमान न रहने से कर्म न रहे तो खाली स्थूल शरीर प्रारब्ध पर्यन्त रहेगा, अब वो जन्म का कारण तो नहीं हैं ज्ञानीजनों व सन्त महात्माओं के शरीर परन्तु जैसे भुने चने से कुछ क्षुधा की निवृत्ति होती है, लोगों की जो क्षुधा है अनंत आनंदरूपी भोजन की कि ऐसा आनंदरूपी भोजन मिले जो मेरी क्षुधा मिट जाय, सुख की जो प्यास है वो मिट जाय, तो इतना काम तो ये ज्ञानीजनों के शरीर कर सकते हैं, आगे जन्म तो नहीं होगा। लोगों की क्षुधा और पिपासा मिटा सकते हैं। आनंद की, सुख की जो भूख-प्यास है इतना काम इन शरीरों से हो सकता है और ये शरीर जब छूटेगा, खत्म हो जायेगा, अरे भुने हुए चने कब तक रहेंगे? जली हुई रस्सी कब तक रहेगी? रस्सी को जला दो तो थोड़ी देर वैसी ही लगती है वो तो राख हो गयी है न! हवा चली तो वो राख भी उड़ जायेगी तैसे ही ये भुने हुए, जले जलाये शरीर भी कब तक रहेंगे? जहॉ प्रारब्ध पूरा हुआ, प्रारब्धरूपी हवा खत्म तहॉ ये शरीर उड़ गये। अब ये शरीर प्रारब्ध पर्यन्त रहेंगे पर आगे जन्म का हेतु नहीं होंगे। दूसरों की भूख-प्यास मिटा सकेंगे, आगे जन्म होना नहीं है। ईश्वर संकल्पित हैं ये शरीर, ईश्वर ने इतने दिनों के लिये प्रारब्ध कर्मों का फल भोगने के लिये जन्म दिया था और बीच में ही ये ज्ञान हो गया तो आगे वाले कर्म भस्म हो गये, पीछे वाले जो संचित थे वो सब भस्म हो गये, प्रारब्ध कर्म भी भस्म हो गये हैं लेकिन अब जले जलाये थोड़ी देर दिखाई पड़ रहे हैं। प्रारब्ध कर्मों का ही ये शरीर है न! ये जले जलाये समझो, भुने भुनाये समझो। इस प्रकार से भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! ये सारा व्यवहार ये मेरी शक्ति में हो रहा है मैं शक्तिमान हूँ। कर्म-उपासना-ज्ञान भी शक्ति ही है क्योंकि चेतन आत्मा तो शक्तिमान है न! जैसे उष्णत्व प्रकाशकत्व शक्ति से अग्नि जुदा ही है तैसे ही ये जीव ईश्वर जगत ये सब शक्ति है। वो शुद्ध सच्चिदानंद हमारा तुम्हारा स्वरूप जो ईश्वर को, जीव को, जगत को जो देखता है, जानता है, साक्षी है वो तो जुदा ही है, उसमें तो कोई व्यवहार नहीं है। न वो सर्वज्ञ, न अल्पज्ञ और न कोई जगत रूप, न शरीर रूप। जितना भी व्यवहार है ये सब माया राज्य में ही है। ईश्वर जीव जगत सब माया है, ये सब शक्ति है, हमारा तुम्हारा स्वरूप शुद्ध सच्चिदानंदघन ब्रह्म शक्तिमान है। तो काम तो केवल शक्तियॉ कर रही हैं—ईश्वर जीव जगत, शक्तिमान तो इनका, अपनी शक्ति का देखने वाला है। हम ईश्वर जीव जगत तीनों के साक्षी मात्र हैं, प्रकाशक मात्र हैं और तीनों से अलग हैं।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 38 - VOICE 27

२१

आत्मा परमात्मा अनात्मा

कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्च्दिानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीरामचन्द्र जी से हनुमानजी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया हे भगवन्!

त्वद् रूपम् ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः राम मुक्तये
अनायासेन ये नाहं मुक्तेयं भव बन्धनात्
कृपया वद् मे राम ये न मुक्तो भवाम्यहम्।।

हे राम! शास्त्रों में मैं आपके दो स्वरूप सुनता हूँ **निर्गुण-निराकार** और **सगुण-साकार**, सगुण-साकार की तो मैं सेवा करता हूँ परन्तु मैं आपके निर्गुण-निराकार स्वरूप को नहीं जानता हूँ, और ये सुनता हूँ कि आपके निर्गुण-निराकार स्वरूप के जाानने मात्र से जीव सर्व दुःखों से और मृत्यु से भी सदा के लिये मुक्त हो जाता है इसलिये आप अपना निर्गुण-निराकार स्वरूप बतावें। तो भगवान राम बोले हे हनुमान! सावधान मन से श्रवण करो —

ततो रामः स्वयं प्राहा हनुमन्तम् उपस्थितम्
श्रृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि आत्मानात्म परात्मनाम्।

हे हनुमान! अब मैं आत्मा, अनात्मा और परमात्मा का स्वरूप बताता हूँ तो तुम सावधान मन से श्रवण करो और धारण करो —

आकाशस्य यथा भेदो दृश्यते त्रिविधो महान्
जलाशये महाकाशस्थ तदवच्छिन्न एवहि
प्रतिबिम्बाख्यमपरम् दृश्यते त्रिविधं नभाः।।

हे हनुमान ! जैसे आकाश के तीन भेद देखने में आते हैं — जल से भरे घड़े के भीतर एक तो प्रतिबिम्बाकाश होता है जो जल में प्रतिबिम्ब पड़ता है, जैसे घड़ा भरके आप रखो तो उस जल में आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको प्रतिबिम्बाकाश कहते हैं और घड़े में जल भरने के लिये जितनी पोलाई है यानि जल भरने के लिये जो अवकाश देता है उसको घटाकाश कहते हैं और जो घड़े के बाहर परिपूर्ण आकाश है उसको महाकाश कहते हैं, तीन आकाश हो गये न! घड़े के बाहर वाला आकाश **'महाकाश'**, घड़े के भीतर वाला आकाश **'घटाकाश'** और घट जल में जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा है आकाश का उसको **'प्रतिबिम्बाकाश'** कहते हैं, नक्षत्रों के सहित घड़े के जल में सज्जनों आकाश का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। कथा है श्रीमद्भागवत् में — एक दिन भगवान कृष्ण चन्द्रमा को खिलौना खेलने के लिये मैया से माँगने लगे, 'मैया मैं तो चन्द्र खिलौना लहियौं,

धौरी को पय पान न करिहौं चोटी सिर न गुँथहियौं', धौरी गैया का दूध नहीं पियूंगा चोटी नहीं गुँथाउंगा ऐसा कह के मचल गये और रोने लगे। अब मैया यशोदा भला चन्द्रमा को कैसे मँगावे? कहाँ आकाश में चन्द्रमा और कहाँ ये धरती में, कैसे वो आयेगा और कैसे मँगाया जाय? परन्तु कन्हैया कहता है नहीं मैं तो अभी लूँगा मुझे मँगा दे जल्दी। अब ये बाल हठ है सज्जनों! अर्थ तो बालक समझते नहीं कि चन्द्रमा बहुत दूर है यहाँ नहीं आ सकता, अर्थ का ज्ञान बालकों को होता नहीं, बालकों को तो जिस लिये मचले हैं वो चीज़ चाहिये बस कुछ भी हो। इतने में एक सखी पड़ोस से आ गयी। कन्हैया को मचला हुआ देख करके वो गोपी बोली कि अरी यशोदा! ये लाला को क्यों रुला रखी है? यशोदा कहती है सखी तू ही सोच ये कहता है कि चन्द्र खिलौना मँगा दे खेलने के लिये, तू ही बता कैसे मैं मँगा दूँ उसको? गोपी ने कहा इसमें कौन सी बड़ी बात है, कन्हैया रो मत! मैं अभी मँगा देती हूँ एक मिनट में। गोपी ने कहा यशोदा वो चाँदी का थाल लेती आ, चाँदी का थाल ले आई यशोदा। कहा वो यमुना जल भरा हुआ घड़ा रखा है न वो भी ले आ, वो भी ले आई। अब चाँदी के थाल में जल डाल दिया, कहा कन्हैया! मैंने मँगा दिया चन्द्रमा को, खेल अब इसके साथ। जो कन्हैया ने देखा उस थाली में तो नक्षत्रों के सहित चन्द्रमा दिखाई पड़ने लगा और नीला नीला आकाश दिखाई पड़ा, उसमें चन्द्रमा दिखाई पड़ा, तारागण भी दिखाई पड़े, अब बोले खेल ले जी भर के। कन्हैया ने फौरन हाथ डाला पकड़ने के लिये परन्तु वो पकड़ में तो आता ही नहीं है, दिखाई तो पड़ता है पर पकड़ में नहीं आता, फिर हाथ हटाते हैं तो फिर दिखाई पड़ता है पर पकड़ में नहीं आता है। ये प्रतिबिम्बाकाश है सज्जनों! ये झूठा आकाश है प्रतिबिम्बाकाश, ये सत्य नहीं है। घटाकाश और महाकाश सत्य हैं क्योंकि जो घट के भीतर पोलाई है वही घट के बाहर है, आकाश का खण्ड खण्ड तो होता नहीं है, आकाश अखण्ड है। तो भगवान श्रीराम कहते हैं हनुमानजी से कि हनुमान! —

बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्यम् एकं पूर्णमऽथा परम
प्रतिबिम्बाख्यमपरम् दृश्यते त्रिविधं तितिः।।

एक तो ये शरीर के भीतर बुद्धि है, बुद्धि में आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी को **जीव** कहते हैं, जीव का ये मिथ्या अर्थ है भला। जो घटाकाश के समान आत्मा है, चैतन्य है उसको **आत्मा** कहते हैं और जो शरीर के बाहर परिपूर्ण है उसको परमात्मा कहते हैं। आकाश से भी अति सूक्ष्म है चेतन परमात्मा इसलिये अखण्ड है, वही शरीर रूपी घड़ों के बाहर परमात्मा कहलाता है और वही शरीरों के भीतर सबमें बैठ करके देख रहा है उसको आत्मा कहते हैं और जो बुद्धि में प्रतिबिम्ब पड़ रहा है परमात्मा का उसको जीव कहते हैं, ये जीव का मिथ्या अर्थ है जीव का सत्य अर्थ तो आत्मा है। तो जो आत्मा है वो परमात्मा है और जो परमात्मा है वो ही आत्मा है — **'अयं आत्मा ब्रह्म, सो अयं आत्मा'**, ये आत्मा ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही आत्मा है।

सोऽहं अस्मि इति वृत्ति अखण्डा,
दीप शिखा सोई परम प्रचण्डा।।
आतम अनुभव सूत प्रकाशा,
तब भव मूल भेद भ्रम नाशा।।

ये जो आत्मा का अनुभव है वही परमात्मा का अनुभव है तो आत्मा और परमात्मा तो एक हो गये क्योंकि अखण्ड हैं और जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा है बुद्धि में वो मिथ्या है। अब ये ज्ञान किसको दिया जाता है? तो ७ अवस्थायें इस चिदाभास की बताई गयी हैं क्योंकि जो सामान्य ज्ञान है वो तो आत्मा और परमात्मा है सज्जनों! वो व्यापक ज्ञान है, वो सामान्य ज्ञान कहलाता है उसमें जानना रूपी क्रिया नहीं है, जानने की जो क्रिया है वो बुद्धि में पड़े हुए इस चिदाभास में है, यही इन्द्रियों के द्वारा शब्दादि विषयों का ज्ञान करता है, कौन? यही चिदाभास और कर्म किसमें होते हैं? देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में कर्म होते हैं और ये ही देह इन्द्रिय मन बुद्धि का प्रेरक भी होता

है, यही प्रतिबिम्बाकाश माने चिदाभास, क्योंकि आत्मा परमात्मा में विशेष ज्ञान नहीं होता है, वो व्यापक ज्ञान होता है। विशेष ज्ञान चिदाभास ही में है जैसे अग्नि के दो रूप बताये गये हैं, एक सगुण-साकार और एक निर्गुण-निराकार, निर्गुण-निराकार अग्नि में प्रकाश नहीं होता, वो व्यापक होती है और जो सगुण-साकार अग्नि है वो काष्ठ में, कोयला में, ईंधन में, दीपक में प्रकट होती है, उसमें विशेष प्रकाश होता है वही घर के अंधकार को दूर करती है, सामान्य अग्नि तो हमेशा व्यापक है वो अन्धकार का नाश नहीं करती सज्जनों! और वही अग्नि सूर्य में प्रकट होती है तो सारे ब्रह्माण्ड का अन्धकार दूर करती है। इस विशेष अग्नि में ही अन्धकार नाश करने की शक्ति है और व्यापक अग्नि में नहीं है। व्यापक अग्नि एक है और प्रकट अग्नि — घर-घर में चूल्हे जल रहे हैं, घर-घर में दीपक जल रहे हैं, सूर्य प्रकट होता है सारे विश्व का अन्धकार दूर करता है। इसी प्रकार से सज्जनों! जो व्यापक ब्रह्म है उसमें विशेष ज्ञान नहीं है जो अज्ञान का नाश कर सके इसलिये वेदान्त शास्त्र में इस प्रतिबिम्ब की ७ अवस्थायें बताई गयी हैं:—

१. **अज्ञान** २. **आवरण** ३. **विक्षेप** ४. **परोक्ष ज्ञान** ५. **अपरोक्ष ज्ञान** ६. **सर्वदुःखों की एवं मृत्यु की निवृत्ति** ७. **परमानंद की प्राप्ति।**

ये सात अवस्थायें चिदाभास की हैं। जो चेतन है उसमें तो अज्ञान का कोई कारण ही नहीं है, सामान्य ज्ञान है वो तो। व्याकरण में **विद्ज्ञाने** एक धातु है, वेत्ति वित: विदन्ति उसके रूप चलते हैं। वेद माने ज्ञान, ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक प्रकट ज्ञान होता है और दूसरा व्यापक ज्ञान होता है, व्यापक और प्रकट अग्नि के समान। जो व्यापक ज्ञान है उसके लिये भी विद् धातु है वो **विद्सत्तायाम्** है, विद् धातु का अर्थ है ज्ञान और ज्ञान कैसा है सत्तारूप, सामान्य, व्यापक और विशेष ज्ञान के सम्बन्ध में एक धातु है **विद्विचारणे**, ये जो विचार होता है ये विशेष ज्ञान होता है, ये ईश्वर में होता है और जीव में होता है। ईश्वर सर्वज्ञ होता है और जीव में अल्प ज्ञान होता है **'ईश्वर सर्वज्ञः जीव अल्पज्ञः'**, ये विशेष ज्ञान है। ईश्वर को सारे संसार का ज्ञान है, सारे जीवों का ज्ञान है, जीवों के कर्मो का ज्ञान है और कर्मो के फलों का ज्ञान है। कर्मो के अनुसार ईश्वर ही जीवों को फल प्रदान करता है इसलिये ईश्वर सर्वज्ञ है। भगवान कृष्ण कहते हैं अर्जुन! —

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन,
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।। BG - 07. 26 **।।**

अर्जुन! कितने ही सतयुग द्वापर त्रेता कलयुग बीत गये, आगे भी आवेंगे, उन सब युगों का हाल मैं जानता हूँ भूत के, भविष्य के और वर्तमान के भी और उन भूतकाल में जितने जीव हो गये हैं न उनको मैं जानता हूँ, वर्तमान में जो हैं उनको जानता हूँ और भविष्य में जो होवेंगे उनको भी जानता हूँ । मैं सभी जीवों के कर्मों को भी जानता हूँ, कर्मों के फलों को भी जानता हूँ फिर जीवों के कर्मानुसार मैं ईश्वर ही उनको फल प्रदान करता हूँ। किसी के सात्विक कर्म हैं, किसी के राजस कर्म हैं, किसी के तामस कर्म हैं, फिर चार वर्ण की सृष्टि मैं जीवों के कर्मानुसार करता हूँ इसलिये मुझमें विषमता का दोष नहीं होता है कि शूद्र क्यों बना दिया, वैश्य क्यों बना दिया? सबको ब्राह्मण ही क्यों नहीं बनाया? ये विषमता का दोष मुझमें इसीलिये नहीं होता क्योंकि कर्मानुसार मैं सृष्टि करता हूँ।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।। BG - 04. 13 **।।**

अर्जुन! चार वर्ण की सृष्टि मैं करता हूँ पर जीवों के गुण और कर्मानुसार ही करता हूँ इसलिये मैं निष्पक्ष हूँ, मुझमें किसी प्रकार का पक्षपात् या विषमता का दोष नहीं है। ईश्वर सर्वज्ञ हुआ न! जीव अल्पज्ञ होता है सज्जनों क्यों, ईश्वर की उपाधि विद्यारूप माया है और जीव की उपाधि

अविद्यारूप माया है। भगवान राम लक्ष्मण से कहते हैं कि लक्ष्मण माया का भेद सुनो—

गो गोचर जॅह लग मन जाई सो सब माया जानेउ भाई,
ताकर भेद सुनो तुम सोई, विद्या अपर अविद्या दोई ।।

एक ही माया के दो भेद हैं विद्या और अविद्या, सत्वगुण की प्रधानता से विद्या कहलाती है वही माया और रजोगुण की प्रधानता से अविद्या कहलाती है। एक ही माया के दो भेद हो गये। विद्या में भी प्रतिबिम्ब पड़ता है व्यापक ब्रह्म का और अविद्या में भी पड़ता है परन्तु जो विद्या में प्रतिबिम्ब पड़ा वो सर्वज्ञ होता है, वो ईश्वर होता है और जो अविद्या में पड़ा वो अल्पज्ञ होता है, उसे थोड़ा ज्ञान होता है। ब्रह्म का ज्ञान तो इसे होता ही नहीं है, संसार का भी थोड़ा ज्ञान होता है क्योंकि इसके ज्ञान के साधन इन्द्रियॉ हैं, मन और बुद्धि हैं और ईश्वर के ज्ञान का साधन साक्षात् विद्यारूप माया है। इन्द्रियॉ तो सीमित हैं थोड़ा ही ज्ञान कर सकती हैं। आत्मा परमात्मा का ज्ञान जीव को होता नहीं इसलिये —

एक दुष्ट अतिशय दुःखरूपा
जा बस जीव परा भवकूपा।।

एक अविद्यारूपी जो माया है उस अविद्या के वश में ये जीव हो जाता है बेचारा और ('भवति इति भव' ये संसार भवकूप है) बारम्बार जन्मता है फिर मरता है, जन्मता है मरता है और दूसरी जो विद्यारूपी माया है —

एक रचै जग गुरु वश जाके
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।।

वो जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करती है परन्तु ईश्वर जो प्रतिबिम्ब है वो प्रेरक होता है इस प्रकार से सज्जनों ये विशेष ज्ञान है ये विद्विचारणे धातु से बताया गया है। तो जितने भी प्रतिबिम्ब होते हैं वो सत्य नहीं होते। ये जीवरूपी जो प्रतिबिम्ब है न ईश्वर की कृपा से, ईश्वर के बताने से अथवा ईश्वर के कृपा पात्र जो साधु हैं ब्राह्मण हैं इनके बताने से जीव को ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान होता है।

सो जाने जेहि देव जनाई
जानत तुमहि तुमहि होई जाई।।

इस प्रकार से आत्मा और परमात्मा तो एक ही हो गये उसमें तो भेद नहीं है और जो प्रतिबिम्ब है वो जीव भी प्रतिबिम्ब है और ईश्वर भी प्रतिबिम्ब है। ईश्वर के बताने से जीव को अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा-परमात्मा का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार से भगवान ने हनुमान को आत्मा, अनात्मा और परमात्मा का भेद बताया तो आत्मा परमात्मा को तो एक बताया और जो अनात्मा है वो सत्य नहीं हैं चाहे वो ईश्वर रूप का प्रतिबिम्ब हो या वो जीव रूप का प्रतिबिम्ब हो। चाहे सूर्य में अग्नि प्रकट हो और सारे संसार को प्रकाशे और चाहे दीपक में प्रकट हो, तो सूर्य के समान मानो ईश्वर है ज़्यादा ज्ञान है और दीपक के समान जीव है माने थोड़ा ज्ञान है परन्तु प्रकट अग्नि सत्य नहीं है।

धरा को प्रमाण यह है तुलसी
जो फरा सो झरा और बरा सो बुताना।।

ये प्रकट अग्नि को तो बुझना ही पड़ेगा, तो जो प्रकट ज्ञान हैं जिस निर्गुण निराकार से ये प्रकट भये हैं विद्या अविद्या में उसमें तो लीन होना ही पड़ेगा सज्जनों! तो संक्षेप में हमने आपको भगवान ने हनुमानजी को जो उपदेश दिया वो बताया। फिर हनुमानजी से रामजी ने पूछा कि तुमने ठीक ठीक समझा कि नहीं? क्या समझा तुमने अपने आप को? तो हनुमानजी बताते हैं अपनी समझ —

देह दृष्ट्या त्वदासोऽहं, जीव बुद्ध्या त्वदंशकः
वस्तु तस्तु त्वमेवाऽहं, इति मे निश्चला मतिः।।

हे प्रभु! देह दृष्टि से, सगुण साकार की दृष्टि से आप स्वामी हो मैं सेवक हूँ, आपका दास हूँ और जीव दृष्टि से **'त्वदंशकः'—'ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुख राशी'** और वास्तविक दृष्टि से जो तुम्हारा स्वरूप है वो ही मेरा स्वरूप है, ये मेरी निश्चल मति है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 02 - 11.05.06

२२

ज्ञान योग

कार्य-कारण विचार

* छान्दोग्योपनिषद *

जब श्वेतकेतु को उसके पिता उद्दालक ऋषि ने ये कहा कि एक के ज्ञान से सब कुछ जान लिया जाता है श्वेतकेतु को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कैसी ये अद्भुत विद्या है कि एक को जान लो और कुछ जानना बाकी न रहे। ईश्वर, जीव, जगत, ब्रह्म, आत्मा, कूटस्थ माने एक को जान लेने से ये सब कुछ जान लिया जाय। ऐसी विद्या ये बड़ी अद्भुत है। श्वेतकेतु ने कहा पिताजी मुझे वही विद्या बताओ। तो उद्दालक बोले हे सौम्य! सृष्टि के आदि में ये जो दृश्यमान जगत हमें-तुम्हे दीख रहा है ये पहले एक सद्ब्रह्मरूप ही था माने ये नाम-रूप व्यक्त नहीं थे, अव्यक्त थे। जैसे घट-मठ आदि अपनी उत्पत्ति के पहले घट-मठ रूप में व्यक्त नहीं हैं किन्तु अपने कारण माटी रूप हैं, तरंगें अपनी उत्पत्ति के पहले जल रूप हैं - एक रूप हैं, अग्नि की चिगारियॉ अपनी उत्पत्ति के पहले एक अग्निरूप हैं। मुकुट कुण्डल कंगन कंठा कॉछी अपनी उत्पत्ति के पहले स्वर्णरूप हैं - एकरूप हैं। ऐसे ही हे सौम्य ये नामरूप जगत उत्पत्ति के पहले एक सद्रूप था, जो सदा रहता है उसको सद् कहते हैं। सत् कहने से चिद् और आनंद भी ग्रहण करना चाहिये माने ये ब्रह्म का स्वरूप है। सृष्टि के आदि में एक ब्रहम ही था। सत् से ही जगत की उत्पत्ति होती है उसी में स्थिति होती है और उसी में लय हो जाता है इसलिये वह जगत कारण है। तो कारण के ज्ञान से कार्य जाना हुआ हो जाता है जैसे सुवर्ण के ज्ञान से मुकुट कुण्डल आदि जितना भी कार्य है सब जाना हुआ हो गया। क्योंकि सुवर्ण सत्य है और उसमें जो आभूषण आदि नामरूप की कल्पना है वो सुनार की अपनी मानस कल्पना है, वो सत्य नहीं है।

दृष्टि-सृष्टि वाद

इसी प्रकार से ये जो नामरूप प्रपंच दिखाई पड़ रहा है हे सौम्य! ये भी सब मानस कल्पना ही है। चराचर जगत मन का ही विलास मात्र है। सुवर्ण तो एक द्रव्य है, देखने में आता है और सुनार उसको लेकर के उस सुवर्ण में अपने मानस मुकुट कुण्डल कंगन कंठा आदि नामरूप बना देता है। परन्तु जो सच्चिदानंद ब्रह्म है वह निर्गुण-निराकार है, मन उसको पकड़ करके जगत रूप बना नहीं सकता तो मन स्वयं ही उसकी दृष्टि पड़ने से चराचर जगत का रूप धारण कर लेता है क्योंकि सच्चिदानंद ब्रह्म को ये छू पाया नहीं कि उसको ही जगत के रूप में बनाता। ब्रह्म निर्गुण-निराकार है, मन बुद्धि का अविषय है, मन बुद्धि से जानने में आता नहीं है वो ब्रह्म इसलिये उसकी दृष्टि पड़ने से ये आप ही विकास को प्राप्त होता है। ये अद्भुत जगत मन की माया है।

शरीर एक अचिन्त्य रचना

माया अघटन घटना पटीयसी है, अचिन्त्य रचना है, जाना नहीं जा सकता है, बुद्धि काम नहीं करती। कैसे ये स्थूल-सूक्ष्म संसार शरीर बन गये? बताइये एक बूँद भर रज-वीर्य में (पति-पत्नी का सम्बन्ध हुआ व रज-वीर्य क्या है एक पानी का बुल्ला है) उतने से जल में कैसे तो ये शरीर बने होंगे, किसने बनाया होगा, कौन से औज़ार लिये होंगे, इसमें हाथ-पॉव बन गये, पेट बन गया

पीठ बन गयी, मुख ऑख कान नाक मुख में ये सब बन गये और इसमें जीवत्व भी प्रविष्ट है। ये बना बनाया पेट में बाहर निकला, कैसे इसको समझा जा सकता है? अपने शरीर का ये हाल है, हमारा तुम्हारा शरीर माता पिता के रज-वीर्य के उतने जल से बना है। किसकी समझ में ये आ सकता है। इसी प्रकार से अपने से बाहर बट बीज में इतना बड़ा बट का वृक्ष, पीपल के बीज में इतना बड़ा पीपल का वृक्ष बीज के भीतर से कैसे निकला होगा? बीज तो इतना छोटा है और वृक्ष इतना विशाल है। कैसे बनाया होगा इसमें अंकुर, शाखा, डाली, पत्ते, फूल, फल ये बात भी समझ में नहीं आती है। न तो डाली पत्ते बनाने वाला कोई दीख रहा है और देखने वाला मैं ही हूॅ। एक मात्र ब्रह्म ही चेतन है। वीर्य भी जड़ है और बीज भी जड़ है उनको भी ज्ञान नहीं है। हम आप ज्ञानवान हैं कि ये बीज कैसे बन रहा है वृक्ष का रूप धारण कर रहा है ये भी नहीं समझ में आता। इसलिये कहा कि ये माया अद्भुत है। जो बात समझ में नहीं आये वो बात यूॅ ही छोड़ दी जाती है कि मैं नहीं जानता हूॅ। ये अज्ञानता ही माया है। जो एक शरीर का हाल है वही सारे संसार का हाल है क्योंकि एक एक शरीर मिल कर ही संसार कहलाता है। अत: संसार नाम की चीज़ एक व्यष्टि शरीर से कुछ ज्यादा नहीं। ये शरीर रज-वीर्य से बने फिर इनमें चेतनता आ गयी देखिये आश्चर्य। ये शरीर देखता है, सुनता है, काम करता है, गाता है, कभी खेलता है, कभी रोता है, पत्नी-पुत्र परिवार में रमण करता है। ये ऐसे अद्भुत चित्र मैं ही देख रहा हूॅ माने ये जड़ और चेतन, जीव और जगत — ये शरीर जड़ हैं व जीव चेतन है इन शरीरों में, वो जीव बुद्धि में पड़ा हुआ चेतन का आभास है और देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि ये जड़ हैं अद्भुत खेल ये माया का है। हे श्वेतकेतु! इस प्रकार से उस सच्चिदानंद ब्रह्म में जगत बन गया फिर कुछ देर रहा फिर उसी में लीन हो गया। तो ये आदि में भी ये जगत नहीं था सद् ब्रह्म ही था और अंत में भी सद् ब्रह्म ही है। जो व्यक्त जगत है उत्पत्ति के पहले भी अव्यक्त है और निधन के बाद में भी अव्यक्त है बीच में व्यक्त मालूम पड़ रहा है पर ये कैसे व्यक्त हुआ कुछ दीखता तो है नहीं। कल्पना करते हैं कि ये मन भी व्यक्त हुआ है और फिर मन ही नाना रूपों में व्यक्त हो गया है, आप ही बन गया क्योंकि आखिर हम यही देखते हैं कि जब मन होता है तो ये जगत बन जाता है और जब मन नहीं होता तो संसार सुषुप्ति में, मूर्छा में, समाधि में गायब हो जाता है, हम द्रष्टा तो एक जैसे ही रहते हैं हमेशा, न उत्पत्ति न ही नाश। तो मैं ये ही देखता हूॅ कि जब मन होता है तभी संसार होता है, मन नहीं होता तो संसार नहीं होता। जैसे हम अपने एक व्यष्टि मन से देखते हैं ये संसार, तो समष्टि मन क्या है? समष्टि मन हैं सबके मन और सबके मन का यही हाल है।

दृग्-दृश्य विवेक

हम एक हैं मन अनेक हैं व्यष्टि और समष्टि पर देखने वाला तो मैं एक अकेला ही सबके मन में बैठ कर देख रहा हूॅ क्योंकि देखने वाला द्रष्टा जो सच्चिदानंद ब्रह्म है वो एक ही है। तो सभी मन में बैठकर आखिर देख मैं ही रहा हूॅ। तो ये संसार मन से बनता है इसका साक्षी मैं हूॅ क्योंकि ज्ञानरूप मैं ही हूॅ, ज्ञान ही गवाही हो सकता है। मैं ही इसकी गवाही हूॅ कि जब मन होता है तभी संसार दिखाई पड़ता है इकट्ठा ही बना हुआ, कोई क्रम नहीं दीखता। सारा संसार जब मन उदय होता है निद्रा से तो हम-आप संसार बना-बनाया ही देखते है। कोई क्रम नहीं दीखता कि पहले स्त्री बना कि पुरुष बना, कि पहले पशु-पक्षी बना, पहले पिता बना कि पहले पुत्र बना ये नहीं देखने में आता। जब हम जागते हैं तो पिता-पुत्र, पति-पत्नी और मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र इकट्ठा ही सब बने बनाये देखने में आते हैं। इनमें कोई ज़्यादा उमर के हैं और कोई कम उमर के हैं, कोई कारण है और कोई कार्य हैं — पिता कारण है और पुत्र कार्य है परन्तु सज्जनों जागने पर मन ने इकट्ठे ही कार्य-कारण सबकी की कल्पना कर दिया। सब एक उमर वाले हैं क्योंकि सब एक साथ भये हैं किसकी उमर ज़्यादा कहो किसकी कम कहो? और जब मन सोया तो पहले कम उमर वाला नाश हुआ या पहले बुड्ढा ही मरा है, न बुड्ढा बचे न जवान न

बालक। नींद आ गयी, मूर्छा आ गयी, मन मर गया अथवा आत्म चिन्तन करते करते, ब्रह्म चिन्तन करते करते मन ब्रह्माकार होगया तब संसार नहीं है, इससे जाना जाता है कि ये मन की माया है इसका गवाही मैं ही हूँ। शास्त्र प्रमाण है 'चराचरम् भाति मनो विलासम् चित्त एव हि संसार: तत् प्रयत्नेन् शोधयेत्'। चित्त ही संसार है, चित्त कहो, मन कहो, बुद्धि कहो एक ही बात है। 'मन बुद्धि चित्त अहंकार' ये सब एक ही बात है, ये सब अन्त:करण की वृत्तियाँ हैं। कहते हैं प्रयत्न से चित्त का ही शोधन करो अपने आप को जानने के लिये।

चित् एवं चित्त में भेद — एक द्रष्टा, एक दृश्य

तुम्हारा स्वरूप तो चित् है और मन का स्वरूप है चित्त इसमें एक 'त' और आ गया, इसमें जो दूसरा 'त' है वही संसार बना है उसी को हम देख रहे हैं, चित्त् के बने संसार को चित् ही देख रहा है। तो 'त' को हटा दो तो चित् ही शेष रहेगा। चित् नाम अनंत अखंड ज्ञान का है जो सच्चिानंद ब्रह्म का स्वरूप है। चित् चित्त के साथ ही है, चित् देखता है कि ये सब चित्त की ही रचना है, चित्त नहीं रहता निद्रा में या वो मेरा चिन्तन करता है और मुझ चित् का चिन्तन करते करते चिद्रूप ही हो जाता है तब भी संसार नहीं रहता। चित्त, मन या बुद्धि के न रहने की ये ही अवस्थायें देखी जाती हैं संसार में — मूर्छा, मरण, सुषुप्ति, समाधि पर मैं रहता हूँ देखने वाला। तो संसार को गायब करने के लिये चित्त को गायब करना है तो ब्रह्म चिन्तन में इसके लगने की स्वतंत्रता है इसकी। चित्त में मेरा आभास पड़ा हुआ है उसी का नाम जीव है। चित्त मन बुद्धि मेरे आभास के सहित है इसलिये उनमें चेतनता है, कुछ ज्ञान है वह चिद् का प्रतिबिम्ब है। संसार को गायब करने के लिये मूर्छा या मरण आ जाय या निद्रा आ जायतो परवशता है, निद्रा भी मरण तुल्य ही है क्योंकि उसमें भी मन नहीं है, मन नहीं तो संसार नहीं। इन सबमें परवशता है, इनमें मन नहीं रहेगा तो संसार के दु:ख भी नहीं रहेंगे। स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीर और उसमें चिदाभास—ये ही संसार है और मैं चित् भी साथ ही हूँ इनके। बुद्धि में चिदाभास है और मैं चिद् भी साथ ही हूँ इनके।

'समाधि' — आत्म चिन्तन

परन्तु समाधि में क्या परवशता है, चिद्रूप तो मैं ही हूँ न, ये मन मेरा ही चिन्तन करे (मैं ही चिद् रूप हूँ, आनंदरूप हूँ) इसमें निद्रा, मूर्छा, मरण किसी की परवशता नहीं। इतना ही न है कि बाहर न निहार करके जरा अन्तर्मुख हो जाये तो अन्तर तो मैं ही मिल जाउंगा न अनंत प्रकाश रूप जो मन-बुद्धि को भी प्रकाश रहा है। इसको बाहर तो कहीं जाना ही नहीं है सुख शान्ति को पाने के लिये। अपनी ही तरफ इस चित्त का, मन को लौटालना है क्योंकि ये सारा संसार मन का ही विलास है, अपनी तरफ लौट आया, आत्म चिन्तन करने लग गया तो बस संसार गायब, मन शान्त — **ये आत्म योग है, ये ब्रह्म योग है, ये ज्ञान योग है सज्जनों! इस ज्ञान योग से सद्य: मुक्ति मिलती है माने तुरन्त शान्ति मिल जाती है, ये समाधि है। निद्रा तक चित्त लीन होता है और समाधि में ज्ञानरूप, चेतनरूप, ब्रह्मरूप हो जाता है इसलिये आगे जन्म-मरण का चक्कर मिट जाता है और निद्रा से तो फिर जन्म होता रहता है इस चित्त का। समाधि से फिर जन्म नहीं होता, आत्म चिन्तन करते करते आत्मा में लीन होता है।** भगवान कृष्ण ने भी यही बात बताई — अर्जुन! मन ही जीव है, चित्त ही जीव है सम्पूर्ण सूक्ष्मशरीर के सहित ये चिदाभास ही जीव है पर अधिष्ठान चेतन के सहित ही है।

बन्ध और मोक्ष का स्वरूप

बन्ध और मोक्ष क्या है?

- विषय चिन्तन बन्ध है,
- आत्म चिन्तन मोक्ष है,

कहा बाहर की तरफ देखना और बाहर ही दौड़े चले जाना सुख शान्ति के लिये — मन सुख शान्ति चाहता है, दु:खी है क्योंकि मन के ही धर्म हैं सुख-दु:ख। अनादि काल से ये मन चंचल है तो अर्जुन इसको धीरे-धीरे बुद्धि के द्वारा समझा-बुझा के कि संसार में जाओगे तो दु:ख पाओगे इसलिये आत्म चिन्तन करो तो तुम सुख पाओगे। संसार के दोष बताओ कि संसार दु:खरूप है वहाँ दु:ख मिलेगा और आत्मा तो सुखरूप ही है इसलिये आत्मा में तुम सुख पाओगे। आत्म चिन्तन स्ववश काम है, बाहर जाओगे संसार में स्त्री-पुत्र-धन में लुभाओगे तो तुम्हारा सुख परवश हो जायेगा। स्त्री-पुत्र-धन मिले कि न मिले, स्त्री-पुत्र-धन मिले तो मैं सुखी होउँ और नहीं मिले तो दु:खी।

वैराग्य

तुम्हारे भीतर ही आनंद का समुद्र भरा है तुम अपने भीतर ही क्यों नहीं लौटते? बाहर ढूँढ रहे हो — 'दु:खालयमशाश्वतम्' दु:ख के समुद्र में, इस मन को समझाओ। समझलो कि बुद्धि माता है और मन पुत्र है और हम-तुम आत्मा इसके पिता हैं तो बुद्धि माता को ये योग्य है कि पुत्र के दु:ख को मिटावे, पुत्र मन के ऊपर दया करे और पिता की गोद में डाले, पिता तो आत्मा है। बुद्धि पत्नी हो गयी हमारी हम पति हो गये, बुद्धि से मन पुत्र पैदा हुआ है इसलिये वह पुत्र हुआ। बुद्धि बहुत पास है हमारे-तुम्हारे, आत्मा के बहुत पास है बुद्धि, तो बुद्धि को चाहिये कि धीरे-धीरे मन को संसार के दोष बतावे और आत्मा के गुण बतावे कि तुम सुखी हो जाओगे तुम आत्म चिन्तन करो। संसार तो दु:ख का समुद्र है दु:ख ही पाओगे क्योंकि तुम्हारा मन संसार में होगा तो स्त्री-पुत्र-धन मिले तो तुम सुखी होओगे नहीं तो दु:खी ही बने रहोगे और वो हैं परवश मिलें कि न मिलें और मिलें भी तो तुम्हारे मन की न मिलें। सुख तो वहाँ ढूँढना चाहिये जहाँ होवे, वस्तु जहाँ होगी वहीं न मिलेगी और जहाँ नहीं होगी वहाँ कैसे मिलेगी सोचो तो सही। तो बुद्धि को ये चाहिये कि अपने बेटे को प्यार से समझावे कि बेटा चीज़ जहाँ होती है वहाँ ही मिलती है। मिठाई तो मिठाई की दुकान में ही मिलेगी हल्दी नमक धनिया मिर्च की दुकान में नहीं, अरे जब है ही नहीं तो कैसे मिले। मिठाई लेनी है तो मिठाई की दुकान में जाओ। मिठाई की दुकान में ही मिठाई मिलती है क्योंकि मिठाई की दुकान में नमक मिर्च मसाले का अत्यन्त अभाव है। तो सज्जनों ये आत्मा परमात्मा ब्रह्म मिठाई की दुकान है माने आनंद ही आनंद की मिठास है सुख ही मीठा लगता है सबको। जीव मात्र को सुख चाहिये, मन ही जीव है, मिठाई चाहता है और ये संसार — इसमें आटा दाल चावल नमक मिर्च मसाला ही मिलता है और इनमें दु:ख भरा है, दु:ख की दुकान है। भगवान कृष्ण ने कहा कि दु:ख का समुद्र है ये संसार और मृत्यु का भी समुद्र है, क्षण-क्षण में संसार की मृत्यु हो रही है और ये मन दु:ख ही पा रहा है — गर्भ दु:खम्, जन्म दु:खम्, आधि दु:खम्, व्याधि दु:खम्, वियोग दु:खम्, जरा दु:खम्, मृत्यु दु:खम् पुन: पुन:, कोई दु:ख की थाह है इस संसार में? ये मन अथाह दु:ख के समुद्र में डूब रहा है जो खोज रहा है सुख। भारी मूर्खता है, भारी अज्ञानता है।

अभ्यास

हे पुत्र! ये बुद्धि मन को समझाले कि तेरा पिता आत्मा परमात्मा है वो मेरा पति है और तू मेरा पुत्र है तो तुझे चाहिये कि तू अपने पिता का चिन्तन कर, आत्म चिन्तन कर। जो आत्मा है सोई परमात्मा है, जो परमात्मा है वही सबका आत्मा है माने हमारा तुम्हारा स्वरूप है। ऐसे समझा-बुझा

करके आत्म चिन्तन में लगावे। आत्मा 'सत्-चित्-आनंद' स्वरूप है ऐसा समझावे। यहॉ दु:ख और मृत्यु का लेश मात्र भी नहीं है सुख ही सुख है, अमरता ही अमरता है। इस प्रकार से बारम्बार उसको समझा-बुझा के आत्म चिन्तन में लगावे ये बुद्धि का काम है, विषय चिन्तन से हटावे, ब्रह्म चिन्तन में लगावे। फिर भी अनंत जन्मों से इसका ऐसा ही अभ्यास पड़ा है — 'बहिर्मुख' बाहर घूमने का अभ्यास पड़ गया है फिर भी यदि चला जाय बाहर मन तो बुद्धि को चाहिये कि वे मन को निगाह में रखे जैसे मॉ बालक को निगाह में रखती है। ऐसे ही ये अज्ञानी छोटा बालक होता है व ज्ञानी सयाना बालक होता है तब चिन्ता नहीं करनी पड़ती। इस अज्ञानी बालक को जब पिता का ज्ञान हो जायेगा तब ये आग नहीं पकड़ेगा, संसार आग है, संसार सर्प है और सुख समझकर ये उसे पकड़ने जा रहा है। सज्जनो बालक को कुछ पता नहीं होता वो अज्ञानी है। ये मन भी अज्ञानी है बिना समझाये नहीं समझेगा।

ज्ञान की दुर्लभता

ये अज्ञान अनादि है हमेशा का अज्ञान भरा पड़ा है, ये ज्ञान का मौका तो कदाचित् आता है वो भी नर शरीर में, और नर शरीर में भी कब आता है जब संतों के पास जाय और सतसंग करे तब आता है। ये मन हर बार अंगारे को पकड़ने को जाता है और हमेशा जल कर मर जाता है — 'संसार जलती आग है इस आग से झट भाग कर, आ शान्त शीतल देश में होजा अजर हो जा अमर'। बुद्धि को चाहिये कि इस प्रकार से बालक को समझावे कि जब भी ये विषयों की तरफ, संसार की तरफ जावे तो इसको बतावे कि बेटा जितने भी विषय हैं संसार में ये विष ही हैं, विष खाने से मरता ही है ऐसा भयंकर विष है।

संसार समुद्र का विचार रूपी मन्थन

संसार भी एक समुद्र है विचार रूपी मथानी से जब मन्थन किया गया तो दो चीज़ निकलीं — विष और अमृत। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये संसार सारा विषय है — ये विष निकला, विषय विष है और अमृत क्या है? सब शरीरों के भीतर जो चेतन आत्मा बैठा है वो अमृत है क्योंकि उसकी मृत्यु नहीं होती। इस शरीर का मन्थन किया तो इसके भीतर मैं बैठा हूँ और इसको देख रहा हूँ, मैं अमृत हूँ। जो एक शरीर में मिलेगा वही सारे संसार में मिलेगा। तो ये संसार विषय विष है और इसका द्रष्टा साक्षी चेतन आत्मा अमृत है। इस प्रकार से बुद्धि को चाहिये कि मन को भली-भॉति समझा-बुझा करके आत्म चिन्तन में लगावे। तब क्या होगा? ये जब आत्मा का आनंद रस पाने लगेगा न, तो धीरे-धीरे फिर इसको आनंद जब मिलेगा तो स्वयं ये रुक जायेगा बाहर के विषय इसको समझ में आयेंगे कि इनमें दु:ख होता है और मृत्यु होती है तो फिर ये आत्म सुख का, ब्रह्म सुख का अनुभव करेगा, तृप्त हो जायेगा, इसकी भाग-दौड़ खत्म हो जायेगी, फिर ये आनंद सिन्धु में डूबेगा, समाधि में डूबेगा। जब ये अनंत आनंद पायेगा तो फिर संसार की तरफ क्यों जायेगा और इसमें फिर दु:ख तो है नहीं आत्मा में। तो एक तो सुख का समुद्र है ये आत्मा-परमात्मा जो आनंद सिन्धु सुख की राशि है समुद्र है, आनंद के समुद्र को पाया यहॉ तो दु:ख का लेश नहीं है, मृत्यु है नहीं सुख ही सुख है। यहॉ आकर यदि कोई विषय सुख मॉगे, विष मॉगे, दु:ख मॉगे तो वो यहॉ कहॉ से मिले?

आत्म-अनात्म विवेक

ये संसार दु:ख का समुद्र है और आत्मा सुख सिन्धु है अब बेटा तू डुबकी लगाके देख ले, संसार में भी तू घूम कर देखता है और अब तू आत्म चिन्तन करके देख, दोनों अपनी अपनी जगह उदार हैं — संसार भी और भगवान/आत्मा भी। संसार दु:ख और मृत्यु देने में उदार है क्योंकि

संसार के घर में दु:ख और मृत्यु है और भगवान के यहॉ सुख है और अमृतत्त्व है वहॉ दु:ख नहीं है और मृत्यु नहीं है ऐसा मन को समझाना चाहिये — भगवान कृष्ण भी यही कहते हैं अर्जुन से, हे अर्जुन! जो मैं तुझको समझा रहा हूॅ आत्मा अनात्मा का विवेक सो तू अच्छी प्रकार से विचार करले, सम्पूर्णता से विचार करले फिर जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो।

परोक्ष व अपरोक्ष ज्ञान

(९ बार तत्त्वमसि उपदेश)

सभी जीवों की इच्छा तो सुख की ही हुआ करती है सुख की बात भगवान ने बता दिया कि सुख अपना आत्मा ही है बाहर नहीं, और तुम्हारी आत्मा मैं ही हूॅ भगवान कृष्ण ने बताया तो मुझे तुम अपनी आत्मा जानो। मुझ परमात्मा का न जन्म है न मरण है न कोई दु:ख है न कोई अज्ञानता है। इस प्रकार से उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को अनेक अनेक प्रकार के दृष्टान्त दे दे करके अपने आत्म तत्त्व को ब्रह्मरूप बताया और बाद में यह कहते हैं 'तत्त्वमसि, तत्त्वमसि', बेटा! वही ब्रह्म जो शास्त्रों में बताया संसार का आदि कारण, जहॉ रज्जु में सर्प के समान ये संसार उत्पन्न होता है, रहता है और लय होता है — तत्त्वमसि, वही ब्रह्म तू है। तू ब्रह्म है और ब्रह्म तू है माने एक ही बात है - परोक्ष नहीं, तू अपनी आत्मा को देख ले यही ब्रह्म है। तू ज्ञान स्वरूप है ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है, अपने से ही ब्रह्म की पहचान कर। मैं ज्ञानरूप हूॅ ज्ञानरूप ही ब्रह्म है जिसको परोक्ष कहा गया है कि 'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म' वो तू ही है। यही अपरोक्ष ज्ञान है और ब्रह्म है सच्चिदानंद है ये परोक्ष ज्ञान है, तत्त्वमसि वही ब्रह्म बेटा तू है ये अपरोक्ष ज्ञान है। द्वैत गया नहीं तो पता नही कि सच्चिदानंद ब्रह्म कहॉ है, कहॉ हम ढूॅढते फिरते। कहा तू ही सच्चिदानंद ब्रह्म है उसके लक्षण अपने में घटा, तू दिन में रहता है, रात में रहता है, जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति में रहता है इसलिये तू **'सत्'** है, कोई मना कर सकता है कि मैं नहीं रहता दिन में कि रात में, किसी को संशय भी है क्या? किसी को नहीं और मैं दिन को, रात को, जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति सबको देखता हूॅ इसमें भी किसी को संशय नहीं, तो मैं **'ज्ञानरूप'** भी हूॅ। जहॉ कोई नहीं होता निद्रा और समाधि में तहॉ मैं अपना ही आनंद भोगता हूॅ, अपने आनंद को ही देखता हूॅ। तुम इस प्रकार से सच्चिदानंद रूप हो। मुझे ही ब्रह्म कहते हैं और इस शरीर के भीतर मुझे ही कूटस्थ कहते हैं माने निर्विकार ही रहता हूॅ। ऐसा नहीं कि शरीर के भीतर आने से मुझमें कोई विकार आ जाय। आकाश के समान व्यापक और निर्विकार रहता हूॅ, शरीर के भीतर आने पर भी देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण का साक्षी ही रहता हूॅ इसलिये मेरा नाम कूटस्थ है माने कूटस्थ ब्रह्म ही हमारी तुम्हारी आत्मा के रूप में विराजमान है। इसलिये वही तू है। सज्जनो! छान्दोग्य उपनिषद् में नौ बार इस प्रकार से उपदेश दिया है, हमको आपको चाहिये कि इसको हमेशा दोहराते रहें ये उद्दालक का दिया हुआ ज्ञान, श्वेतकेतु माने सभी जीवों के लिये ये उचित है कि इसको दोहराते रहें मनन करते रहें माने —

श्रवणं तो गुरोः पूर्वम् मननं तदनन्तरम् ।
निदिध्यासनमित्येत् पूर्ण बोधस्य लक्षणम् ।।

जब उपदेशकर्ता ९ बार उपदेश करता है तो शिष्य को चाहिये कि १०० बार मनन करे कि मैं आत्मा हूॅ और ये संसार अनात्मा है, मैं ब्रह्म हूॅ ये संसार दृश्य माया है — बारम्बार इसको दोहराया जाये। मैं चेतन हूॅ ये संसार जड़ है, मैं सदा रहता हूॅ पर ये संसार सदा नहीं रहता, बारम्बार यही विचार करे कि ये संसार 'असत्-जड़-दु:खरूप' है मैं सच्चिदानंदरूप हूॅ मेरा संसार से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं असत्-जड़-दु:खरूप संसार में व्यापक हूॅ तो भी असंग हूॅ, कूटस्थ हूॅ माने निर्विकार हूॅ। इस प्रकार से सौ बार मनन करने से ये ज्ञान आ जायेगा, पर हज़ार बार यही मनन करेगा, विचार विवेक करेगा तो फिर ये ठहर जायेगा भूलेगा नहीं और लाख बार इसका मनन करेगा तो निदिध्यासन में आ जायेगा तो इस जन्म में तो ये ज्ञान भूलने का है नहीं कदाचित् किसी

प्रारब्ध शेषवश दूसरा जन्म हो भी गया तो दूसरे जन्म में भी इस जन्म का ज्ञान नहीं भूलेगा इतना पक्का हो जायेगा।

शतेन ज्ञानं आयाति सहस्त्रेण च तिष्ठति ।
लक्ष्यवारं जपेत्यस्तु प्रेत्यचेत्य च तिष्ठति ।।

तो ज्ञान को पक्का करने के लिये एक बार गुरु से सुने हुए उपदेश को बार बार मनन और निदिध्यासन करना चाहिये, यही साधन है ज्ञान मज़बूत करने का। हमेशा आत्मा, परमात्मा, अनात्मा के विवेक हेतु गीता रामायण सुनते रहना चाहिये फिर मनन करते रहना चाहिये, निदिध्यासन करना चाहिये, कोई पूछे कब तक — अरे जब तक पक्का न हो जाये और कब तक।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 37 - Jun 27

२३

प्रकृति - पुरुष विभाग

* माया-ब्रह्म निरूपण *

भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी से अर्जुन ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया कि हे भगवन्! मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें, मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है। भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो —

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः,
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। BG – 02.16 **।।**

अर्जुन एक सत् है दूसरा असत् है, बस दो ही पदार्थ संसार में हैं। जो सत् है वो सदा रहता है और जो असत् है वह कभी नहीं रहता है, यद्यपि दिखाई पड़ता है तो भी वो रहता नहीं है झूठा होता है। जैसे सपना दिखाई तो पड़ता है परन्तु वो जब दिखाई पड़ता है तब भी नहीं है, जागो तो फिर दिखाई भी नहीं पड़ता इसलिये वो झूठा कहलाता है। पुरुष की छाया दिखाई पड़ती है परन्तु वो है नहीं पुरुष ही सत्य है। छाया तो झूठी हुआ करती है सत्य नहीं होती। रस्सी में सॉप भी दिखाई पड़ता है भ्रम से, परन्तु रस्सी में प्रतीत होने वाला सर्प सत्य नहीं होता है झूठा होता है, रस्सी ही सत्य होती है। जब प्रकाश करके देखते हैं तो रस्सी ही सत्य निकलती है, सॉप वहॉ नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि सॉप वहॉ था ही नहीं। रस्सी को न जानने से लोग रस्सी को ही सॉप देख रहे थे। इसी प्रकार से अर्जुन! अब तक दिखाई भले ही पड़े परन्तु वो होता नहीं है, वो तो झूठा ही होता है, झूठे की तो गिनती होती नहीं है सत्य की ही गिनती होती है। जो हमारा तुम्हारा आत्मा है वो सत् है क्योंकि सदा रहता है पुरुष के समान जैसे पुरुष सदा रहता है और ये दृश्यमान् जगत, ये दिखाई पड़ता है, ये छाया के समान है। हमारा तुम्हारा स्वरूप स्वप्न द्रष्टा के समान है, स्वप्न द्रष्टा सत् है और स्वप्न मिथ्या है। स्वप्न दिखाई पड़ता है पर वो झूठा है। इसी प्रकार हमारा तुम्हारा स्वरूप रज्जु के समान है और ये दृश्यमान् संसार सर्प के समान है, ये झूठा है। ये झूठा संसार इतने रूपों में दिखाई पड़ता है—जाग्रत के रूप में, स्वप्न के रूप में, सुषुप्ति के रूप में, इतने रूपों में दिखाई पड़ता है—ये तीनों रूप झूठे हैं इसके जाग्रत भी, स्वप्न भी, सुषुप्ति भी और इन्हीं तीन अवस्थाओं में ३ शरीर होते हैं, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर। ऑखों से दिखाई पड़ने वाले ये स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र के जो रूप हैं ये **स्थूल-शरीर** हैं, इन्हीं का जन्म होता है, इन्हीं का मरण होता है। इन्हीं में स्त्री-पुरुषपना है—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रपना है। जाति-वर्णाश्रम आदि सब इन्हीं स्थूल शरीरों में हैं, सूक्ष्म शरीर में भी नहीं हैं। ये स्थूल शरीर ही गर्भ में आते हैं, ये ही जन्मते हैं, ये ही बढ़ते हैं, ये ही बदलते हैं, ये ही क्षीण होते हैं, ये ही बढ़ते हैं, ये ही मर जाते हैं। इस शरीर के भीतर दूसरा **सूक्ष्म-शरीर** है उसमें १७ अथवा १९ तत्त्व हैं— पॉच ज्ञानेन्द्रिय, पॉच कर्मेन्द्रिय, पॉच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। इन १९ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर है, इसी में सब अच्छे-बुरे कर्म हैं, इन्हीं में धर्म और अधर्म है क्योंकि इन्द्रियॉ इसी में हैं और इन्द्रियों से ही कर्म होता है। स्थूल शरीर तो सूक्ष्म शरीर के रहने का स्थान मात्र है, घर मात्र है, भवन मात्र है और इसी सूक्ष्मशरीर में आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है वो चेतन है न, चेतन

आत्मा है जो सत्य है। सत्य का जो प्रतिबिम्ब है, ज्ञान का, उसमें भी थोड़ा ज्ञान होता है। सूक्ष्म शरीर में बुद्धि भी है उसी बुद्धि में प्रतिबिम्ब पड़ता है, वो बहुत शुद्ध है इसलिये सूक्ष्म शरीर में ज्ञान होता है और वही सूक्ष्म शरीर का, इन्द्रियों का प्रेरक भी होता है। वो प्रतिबिम्ब न होवे तो इन्द्रियाँ अपना अपना काम नहीं कर सकतीं। जैसे बिजली के रहने से मशीनें काम करती हैं, बिजली चली जाय तो मशीनें काम नहीं करतीं। ऐसे ही वो बिजली के समान है जो चेतन का आभास है, प्रतिबिम्ब है, उसके रहने से सब इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण अपना अपना काम करते हैं और उसके निकल जाने से ये सब बेकार हो जाते है, सब अपना काम नहीं करते। तो सूक्ष्म शरीर में ही सब कर्म हैं। भूख-प्यास भी उसी में लगती है क्योंकि प्राण हैं न उसमें, प्राणों को ही भूख-प्यास लगती है। सुख-दु:ख जो हैं वो मन के धर्म हैं, मन भी है सूक्ष्म शरीर में (मन बुद्धि चित्त अहंकार) इसलिये सुख-दु:ख भी सूक्ष्म शरीर के धर्म हैं हमारी-तुम्हारी आत्मा के नहीं। आत्मा तो मन को देखता है और मन के सुख-दु:ख को भी देखता है। मन कभी सुखी होता है कभी दु:खी होता है और आत्मा? देखने वाला तो अलग ही हुआ करता है न। दृश्य से द्रष्टा अलग ही हुआ करता है, दृश्य में नहीं मिलता है इसलिये द्रष्टा आत्मा मन और मन के धर्म 'सुख-दु:ख' से अलग है। बन्ध-मोक्ष भी इसी मन का है, मन ही अज्ञानता से बन्धन में है और जब आत्मा का ज्ञान होता है तब मन ही मुक्त होता है। आत्मा को तो कोई बन्धन नहीं है तो मुक्ति भी क्या होनी है। बन्ध-मोक्ष मन का है और आत्मा उसको देखने वाला है इसलिये बन्धन वाले मन को भी देखता है अज्ञानी को और ज्ञानी मन को भी देखता है। अब ये मुक्ति और सुख.शान्ति का अनुभव करता है। आत्मा तो **'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'**। अर्जुन! ये सूक्ष्म शरीर है, हमारा तुम्हारा आत्मा तो सूक्ष्म शरीर से अलग है। तीसरा **कारण-शरीर** है, 'अपनी आत्मा को न जानना' उसको कारण-शरीर कहते हैं। **अज्ञान**—कारण इसलिये कहते हैं कि स्थूल-सूक्ष्म शरीर उसी से उत्पन्न होते हैं। सूक्ष्म-शरीर भी कारण अज्ञान से ही उत्पन्न होता है और स्थूल-शरीर भी, और फिर कारण में लीन भी होते हैं। स्थूल-शरीर, सूक्ष्म-शरीर, कारण-शरीर फिर अज्ञान में लीन हो जाते हैं जैसे जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति। जाग्रत में स्थूल शरीर होते हैं, स्वप्न में सूक्ष्म शरीर होते हैं और सुषुप्ति कारण शरीर है, वो अज्ञानरूप है उसी में जाग्रत स्वप्न सब लीन हो जाते हैं। अर्जुन! इतनी ये माया है माने झूठी चीज़ का नाम माया है, छाया के समान है, स्वप्न के समान है, रज्जु में सर्प के समान है। इस झूठी चीज़ का नाम माया होता है। ये त्रिपुटी भयी, स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीन मिलकर त्रिपुटी कहलाती है। ऐसे ही जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, विश्व-तैजस-प्राज्ञ (जाग्रत का अभिमानी विश्व, स्वप्न का अभिमानी तैजस, सुषुप्ति का अभिमानी प्राज्ञ) ये सब त्रिपुटी माया राज्य में हैं। ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, ये अन्त:करण में ही होता है। मन बुद्धि चित्त अहंकार में ही होता है ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, ध्याता-ध्यान-ध्येय, प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय, द्रष्टा-दर्शन-दृश्य, ये त्रिपुटी हैं, ये सब माया राज्य में हैं। देवताओं में मुख्य देवता ब्रह्मा-विष्णु-महेश, इनकी पत्नियाँ उमा-रमा-ब्रह्माणी, ये त्रिपुटी माया राज्य में ही है क्योंकि ये सब दृश्य है बस एक द्रष्टा जो है वो इन तीनों से अलग है, वो चौथा है उसको तुरीय कहते हैं। जो तीन को देखने वाला होता है वो तो चौथा अपने आप ही स्वत: सिद्ध होता है उसकी गिनती नहीं की जा सकती। जिसने तीन को गिन दिया वो चौथा अपने आप ही सिद्ध हो जाता है। ये सम्पूर्ण माया को (स्थूल-सूक्ष्म-कारण, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, द्रष्टा-दर्शन-दृश्य, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, ध्याता-ध्यान-ध्येय, प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय) सारी त्रिपुटी को, सारी माया के विस्तार को भगवान ने सातवें अध्याय में सात भागों में विभक्त करके कहा है:—

भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च,
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।। BG – 07.04 **।।**

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्,
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। BG – 07.05 ।।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय,
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।। BG – 07.06 ।।

अर्जुन! ये अष्टधा प्रकृति है माने माया है। भूमि, (आपो)जल, (अनल)अग्नि, वायु, (खं) आकाश ये पाँच तथा मन, बुद्धि और अहंकार — ये सब आठ हो गये, ये भिन्न-भिन्न नाम गिना दिये गये। इन पाँच महाभूत और मन, बुद्धि, अहंकार को अपरा प्रकृति कहते हैं। अर्जुन! इनसे भिन्न मेरी परा प्रकृति है, वो जीवरूप है माने मेरा चिदाभास, मुझ चेतन का जो बुद्धि में आभास पड़ता है, प्रतिबिम्ब पड़ता है वह परा प्रकृति है। परा प्रकृति माने चेतन प्रकृति, श्रेष्ठ प्रकृति क्योंकि मैं ज्ञान स्वरूप हूँ, चेतन स्वरूप हूँ। प्रतिबिम्ब में भी थोड़ा ज्ञान होता है। जैसे सूर्य में परम प्रकाश है पर सूर्य का जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसमें भी थोड़ा प्रकाश होता है। शीशा में आप प्रतिबिम्ब लो सूर्य का दोपहर में, प्रतिबिम्ब को ले करके मकान के किसी कमरे में डालो उस प्रतिबिम्ब को खिड़की या दरवाज़े के द्वारा, तो मकान में भी वो उजियाला करेगा जैसे बाहर घाम है, धूप है वैसे ही भीतर दिखाई पड़ेगा गोल गोल प्रतिबिम्ब और एक आतिशी शीशा में लोगे उस प्रतिबिम्ब को तो वो कपड़े या रुई को जला भी देगा क्योंकि थोड़ा तेज, थोड़ा प्रकाश उस प्रतिबिम्ब में भी है। इसी प्रकार से थोड़ा प्रतिबिम्ब जो बुद्धि में पड़ता है चेतन आत्मा का, ज्ञान का, उसमें भी थोड़ा ज्ञान होता है जो इस जगत को धारण करता है। माने जीव के रहने से देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण सब रहते हैं, उसने ही धारण कर रखा है। यदि वो जीव निकल जाय तो ये सब मुर्दा होकर गिर जायेंगे। इसीलिये उसको परा प्रकृति कहते हैं, चेतन प्रकृति माने अपरा प्रकृति से वो श्रेष्ठ है क्योंकि वह जीवरूप है, चेतनरूप है। जड़ और चेतन ये दोनों प्रकृति हैं। अर्जुन! इन्हीं दोनों प्रकृति से चराचर जगत की उत्पत्ति स्थिति प्रलय होता रहता है। जड़ अष्टधा प्रकृति और प्रतिबिम्ब, ये मिलकर ९ भये परन्तु मैं दसवाँ हूँ और मेरा स्वरूप होने से तू भी दसवाँ है। दसवाँ वो होता है जो इन ९ का आधार-अधिष्ठान होवे। इन ९ को हम जानते हैं अर्जुन परन्तु ये नौ की नौ प्रकृति हमको तुमको नहीं जानती हैं जैसे स्वप्न-द्रष्टा स्वप्न जगत का आधार-अधिष्ठान है। स्वप्न स्वप्न-द्रष्टा में ही उत्पन्न होता है, उसी में रहता है और जागने पर उसी द्रष्टा में लीन होता है कहीं भाग नहीं जाता, कहीं भाग गया क्या? अपने में ही लीन हो गया। रज्जु से सर्प उत्पन्न होता है, रज्जु में रहता है, जहाँ रज्जु का ज्ञान हुआ तहाँ रज्जु में ही लीन हो गया। पुरुष से छाया निकलती है, पुरुष के आश्रित रहती है फिर पुरुष में ही समा जाती है। ये आधार-अधिष्ठान है आत्मा। आत्मा से ही ये चराचर जगत उत्पन्न होता है, आत्मा में रहता है, आत्मा में समा जाता है। परन्तु ये दानों प्रकृतियों के द्वारा ही होता है, दोनों का खेल आत्मारूपी अधिष्ठान में होता है और आत्मा का जब सम्यक ज्ञान होता है यह आभास ही तो ज्ञान करता है आत्मा का, प्रतिबिम्ब ही तो ज्ञान करता है किसका? कि मैं बिम्बरूप ब्रह्म हूँ, आत्मा हूँ, तो अपने को बाध करके माने मिला करके बिम्ब में ये कहता है मैं बिम्बरूप ब्रह्म हूँ और मेरा प्रतिबिम्बरूप झूठा है। इस प्रतिबिम्ब का बाध समानाधिकरण है बिम्ब के साथ। और जो बिम्ब है सभी शरीरों के भीतर साक्षी चेतन मन बुद्धि को देखने वाला उसको कूटस्थ कहते हैं। हर शरीरों में ये कूटस्थ आत्मा है, कूटस्थ माने निर्विकार, इस कूटस्थ का जो शरीर के बाहर ब्रह्म है उसके साथ में मुख्य समानाधिकरण है माने कूटस्थ और ब्रह्म तो एक ही हैं उसमें भेद नहीं है। और जो प्रतिबिम्ब है जिसको ये ज्ञान होता है ब्रह्म का वो चिदाभास है। चिदाभास को ज्ञान होता है कि मैं चिद्रूप हूँ, कूटस्थरूप हूँ। और कूटस्थ फिर अभिमान करता है ब्रह्म का कि मैं ब्रह्मरूप हूँ इस प्रकार से आत्मा और ब्रह्म की एकता होती है। तो जब प्रतिबिम्ब सज्जनों ब्रह्म में मिलता है न तो देह इन्द्रिय मन बुद्धि फिर कहाँ रहेंगे प्रतिबिम्ब के बिना? ये तो मरे मराये हैं ख़त्म हो जायेंगे न। प्रतिबिम्ब के द्वारा ही तो इन देह

इन्द्रिय मन बुद्धि का जीवन है न। तो ये प्रतिबिम्ब जो है जीव का वाच्यार्थ है लक्ष्यार्थ नहीं है, लक्ष्यार्थ तो बिम्बरूप कूटस्थ आत्मा है। इसलिये असत्य की निवृत्ति सत्य में हुआ करती है। तो देह इन्द्रिय मन बुद्धि असत् हैं और प्रतिबिम्ब भी असत् है। सत् से अलग होकर असत् हमेशा रह ही नहीं सकता है। सत् से उत्पन्न हुआ है, सत् के आश्रित टिका हुआ है फिर सत् में तो लीन होना ही पड़ेगा। पुरुष सत् है छाया असत् है। पुरुष से छाया उत्पन्न हुई है, पुरुष के आश्रित रहती है और सत् पुरुष में तो लीन होना ही पड़ेगा। अन्त में सत् ही रह जायेगा इसलिये सत् को सत् कहा है और असत् को असत् कहा है। यही उत्तम यथार्थ ज्ञान है। यही वेदान्त का सिद्धान्त है :—

वेदान्त सिद्धान्त निरुक्तिरेषा, ब्रह्मैव जीवः सकलं जगत च।
अखण्ड रूपस्थितिरेव मोक्षः, ब्रह्माद्वितीये सुतयाप्रमाणम्।।

माया-ब्रह्म, ईश्वर-जीव-जगत एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही रूप है। ब्रह्म तो सत्य है और ईश्वर-जीव-जगत मिथ्या हैं। ये सब माया राज्य में हैं। माया पुरुष की छाया के समान है तो झूठी भयी कि नहीं? तो माया को तो पुरुष में मिलना ही पड़ेगा। मिल करके तो सत् हो ही जायेगी न! जैसे पत्नी पति के साथ में सती हो जाती है तो माया पत्नी है और मायापति ब्रह्म है, परमात्मा है तो ये माया अपने पति परमात्मा के साथ में जायेगी यही सती होना है। अलग रहने से छाया झूठी है पर जब पुरुष में मिल जायेगी तब तो सत् हो जायेगी न! ये ही माया का सती होना है माया अपने परिवार के सहित, सारा संसार माया का ही परिवार है। माया ब्रह्म से प्रकट होती है जैसे पुरुष से छाया। पुरुष के आश्रित रहती है फिर पुरुष में समा जाती है इसलिये एक अद्वितीय ब्रह्म रह गया न! **'ब्रह्मैव जीवः सकलं जगत च'**—ये जीव और सम्पूर्ण जगत, सम्पूर्ण जगत छाया है, जीव भी प्रतिबिम्ब ही है इसलिये ये सब ब्रह्म ही है। माने लक्ष्यार्थ को ध्यान में रख करके ये एकत्व बताया गया है। तो द्वैत की सिद्धि नहीं होती है, अद्वैत ही सत्य वस्तु है। पुरुष और छाया दो हैं न, दो को द्वैत कहते हैं परन्तु छाया सत्य न होने के कारण पुरुष में मिल जाती है तो सिद्वान्त अद्वैत ही रहेगा। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इतनी माया है और चौथा ब्रह्म है। ये माया जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ब्रह्म में मिल जायेगी तो एक अद्वितीय ब्रह्म ही रह जायेगा सज्जनों! इसलिये **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवौ ब्रह्मैव नापरः'**। ब्रह्म सत्य है और ये जगत मिथ्या है और जीव ब्रह्म ही है। ये वेदान्त का सिद्धान्त अद्वैत है और माया राज्य में द्वैत है। ये द्वैत माया का किया हुआ है, ये माया राज्य में कितने हैं — ब्रह्मा-विष्णा-महेश, उमा-रमा-ब्रह्माणी, स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र, देव-दानव-मानव, कितना विस्तार है? कितना नानात्व है? ये द्वैत ही द्वैत है। तो इनका अद्वैत तो परमार्थ में ही होगा — **'परमार्थे अद्वैतं कुर्यात् व्यवहारे न कदाचन'**, परमार्थ में सदा अद्वैत ही जानना चाहिये, परमार्थ क्या है? ब्रह्म है, परम अर्थ माने सत्य, परम सत्य ब्रह्म है। असत् जगत में द्वैत व्यवहार है। इसी में पिता-पुत्रपना है, गुरु-शिष्यपना है, राजा-प्रजापना है, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र ये सब कितना द्वैत है इनमें एकत्व नहीं हो सकता माया में, ब्रह्म ही में एकत्व हो सकता है। घट-मठ में द्वैत ही रहेगा और माटी में अद्वैत होगा। कितने घट-मठ हैं क्या कोई गिन सकता है संसार में? घट-मठ के व्यवहार में भी द्वैत है? घट अलग है और मठ अलग है, इनका दोनों का नामरूप अलग है और इनके काम भी अलग हैं। घट पानी भरने का काम देता है और मठ रहने का काम देता है परन्तु माटी के साथ तो एकत्व हो ही जायेगा न! तो संसार भर के घट-मठ माटी से उत्पन्न भये हैं और माटी में ही रहते हैं घट भी और मठ भी, अन्त में फिर माटी में मिल जायेंगे इसलिये जब घट-मठ हैं तब भी माटी के द्रष्टा घट-मठ के भीतर समायी हुई व्यापक माटी का ही दर्शन करते हैं एकत्व दर्शी होते हैं घट-मठ के रहते हुए भी, ये नहीं कि जब घट-मठ नष्ट हो जाये तब ही जाना जाय कि ये सब माटी है। संसार भर के घटमठ माटी से उत्पन्न भये हैं, माटी में रहते हैं पुनः माटी में लय हो जायेंगे

इसलिये माटी से भिन्न नहीं हैं। ऐसे ही ब्रह्म से सब उत्पन्न भये हैं। सारा संसार, द्वैत संसार ब्रह्म में ही रहता है और ब्रह्म में ही लय हो जाता है। एक अद्वितीय ब्रह्म ही रह जाता है। **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तत्ब्रह्म'**—जिससे ये जगत उत्पन होता है, जिसमें रहता है, सभी भूत प्राणी फिर जिसमें लय हो जाते हैं वह ब्रह्म है। ये एकत्व की सिद्धि भयी। वेदों का अन्तिम सिद्धान्त यही है। सत्य दो नहीं हो सकते, सत्य एक ही है, असत् में ही नानात्व है सो असत् माया है तो — **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** — सत् ब्रह्म का कभी अभाव नहीं, असत् माया का कभी भाव नहीं ।। इति।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 45 - 23

२४

भ0गी0 पंचदशोऽध्यायः का प्राण श्लोक

* श्लोक 15 *

अशरण शरण अकारण करुण करुणा वरुणालय, कर्तु अकर्तु अन्यथा कर्तु समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया हे भगवन्! मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें अर्थात् जिससे अत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति नित्य सुख शान्ति की प्राप्ति हो, मृत्यु की निवृत्ति अमृतत्त्व की प्राप्ति हो, वह तत्तव मुझे बतावें। मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है, तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो। श्रीभगवानुवाच :—

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च,
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।। BG – 15.15 **।।**

अर्जुन! मैं सभी के हृदय में विराजमान हूँ और जीव मेरा ही अंश है माने मैं ही जीवात्मा रूप से सब जीवों के हृदय में विराजमान हूँ। ये देहरूपी मन्दिर है, हृदयरूपी सिंहासन है, उसी में बैठा हूँ साक्षी चेतन रूप से।

देहो देवालयः प्रोक्ता, सजीवः केवलः शिवः।
त्यजेत् अज्ञान निर्माल्यं, सोहं भावेन् पूजयेत्।।

भगवान शंकर ने स्कंद को कहा कि हे स्कंद! ये देह देवालय है और इस देह रूपी मन्दिर के अन्दर जो बैठा हुआ है हृदय रूपी सिंहासन में उस देखने वाले को देव कहते हैं, वो देव एक है और शरीर रूपी जितने भी ये मन्दिर हैं - स्त्री का शरीर, पुरुष का शरीर, पशु-पक्षी का शरीर, देवताओं और दैत्यों का शरीर ये सब मन्दिर हैं। कोई छोटे, कोई बड़े, अनेक प्रकार के ये सब मन्दिर हैं परन्तु जो देखने वाला देव है वो तो सब मन्दिरों में एक ही है, मन्दिर ही अनेक हैं देव अनेक नहीं है। इसी लिये वेद भी कहता है कि —

एको देवः सर्व भूतेषु गूढ़ः, सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षाः सर्वभूतादिवासः, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।

एको देवः सर्व भूतेषु गूढ़ः — देखने वाला देव सब शरीरों के अन्दर एक ही है, सर्व भूतों में वो गूढ़ है माने छिपा हुआ है माने वो दिखाई नहीं पड़ता है क्योंकि वो देखता है। जो देखता है वो दिखाई कैसे पड़ेगा? और जो दिखाई पड़ते हैं वो तो सब देवालय मन्दिर हैं। मन्दिरों को तो ज्ञान नहीं है और जो देखने वाला है, द्रष्टा है वो देव है, वो दिखाई नहीं पड़ता है, निर्गुण-निराकार है इसलिये वो गुप्त है अदृष्टो द्रष्टा, द्रष्टा सदा अदृश्य रहता है दिखाई नहीं पड़ता, देखता है सबको इसीलिये वो गुप्त है, छिपा हुआ है। **सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा —** आकाश के समान सभी देश, काल, वस्तुओं में, दानव मानव में, पशु-पक्षियों में, ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त सबमें व्यापक है।

अर्जुन! सभी भूत प्राणियों का वो अन्तरात्मा है माने अपना स्वरूप है। जो सबसे भीतर है उसे अन्तर कहते हैं। जैसे भगवान कृष्ण कहते हैं कि —

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः,
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।। BG - 03.42 **।।**
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना,
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।। BG - 03.43 **।।**

अर्जुन! इस शरीर के बाहर जो है ये शब्दादि विषय हैं, ये संसार है और शरीर के भीतर ऑख कान नाक इन्द्रियॉ हैं। इन इन्द्रियों से ही ये संसार निकलता है। यदि ऑख न हो तो ये संसार के रूप कहॉ हैं? कान न हो तो संसार के शब्द कहॉ हैं? इसलिये शब्दादि विषयों से इन्द्रियॉ अन्तर हैं माने भीतर हैं और परे हैं और कारण भी हैं। और इन्द्रियों से भी भीतर मन है, जो संकल्प-विकल्प करता है उसको मन कहते हैं, ये काशी काश्मीर क्षण मात्र में पहुॅच जाता है, बहुत तेज़ गति वाला है, चंचल है, वो इन्द्रियों के भी भीतर है। मन के भी भीतर बुद्धि है जो निश्चय करती है निश्चयात्मिका बुद्धि। बुद्धि में आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो उसमें ज्ञान होता है इसीलिये वो निर्णय करती है, निश्चय करती है। **यो बुद्धेः परतस्तु सः —** जो बुद्धि से भी परे है, अर्जुन! वही अन्तरात्मा द्रष्टा साक्षी है। वही मेरा स्वरूप है सब शरीरों के भीतर, नहीं तो मैं सबको देखता हूॅ मुझे कौन देखे? मैं बुद्धि को देखता हूॅ बुद्धि मुझको नहीं देख सकती, मन को मैं देखता हूॅ मन मुझको नहीं देख सकता, इन्द्रियों को मैं देखता हूॅ इन्द्रियॉ मुझको नहीं देख सकतीं, इन्द्रियों से बाहर निकल कर मैं ही संसार को देखता हूॅ संसार मुझको नहीं देख सकता। इस प्रकार सब बुद्धियों के भी भीतर सर्वभूतान्तरात्मा हूॅ यानि सर्व भूतों का अन्तरात्मा हूॅ माने जीवों का अपना निजी स्वरूप हूॅ। **कर्माध्यक्षा सर्वभूतादिवासः —** सभी कर्मों का अधिष्ठान रूपी अध्यक्ष हूॅ, सब भूतों में बसा हुआ हूॅ और सब भूत मुझमें बसे हुए हैं। **साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च —** केवल साक्षी चेतन मात्र हूॅ, चेतन हूॅ माने ज्ञान स्वरूप हूॅ और निर्गुण हूॅ और केवल माने अकेला हूॅ। सभी भूत प्राणियों का अन्तरात्मा मैं ही परमात्मा हूॅ दूसरा कोई नहीं है। **अदृष्टो द्रष्टा —** इसीलिये जो द्रष्टा है वो अदृष्ट है और द्रष्टा की दृष्टि का कभी लोप नहीं होता है। **'नहिं द्रष्टो दृष्टे विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वात्'** — इस द्रष्टा की दृष्टि का कभी भी लोप नहीं होता है, विनाश नहीं होता है क्योंकि अविनाशी है, हमेशा एक समान प्रकाशमान रहता है। अर्जुन! कितने ही मास वर्ष युग कल्प बीत गये, उन बीते हुए सब युग कल्पों को ये देखता है, और आगे भी आवेंगे उनको भी ये देखता है, और वर्तमान में जो हैं उनको सबको देखता है। इसकी दृष्टि का कभी भी लोप नहीं होता है, मास वर्ष युग कल्प ही आते जाते रहते हैं, देश काल वस्तुएं आती जाती रहती हैं, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये माया आती जाती रहती है पर द्रष्टा तो ज्यों का त्यों इन सबको प्रकाशित करता रहता है, इसका कभी अभाव नहीं होता है। जैसे टी०वी० के शीशा में छाया चित्र आते जाते रहते हैं पर टी०वी० का शीशा ज्यों का त्यों शुद्ध ही रहता है उसमें कोई विकार नहीं आता है ऐसे ही आत्मा रूपी दर्पण है और इसमें संसार रूपी जगत-चित्र आता जाता रहता है परन्तु आत्मा रूपी दर्पण निर्दोष रहता है।

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम्,
पश्यनात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।।

कहते हैं ये सारा विश्व कैसा अपनी आत्मा में दिखाई पड़ता है, **दर्पण दृश्यमान् नगरी तुल्यं —** जैसे दर्पण में दिखाई पड़ने वाली नगरी, छाया चित्र दिखाई पड़ते हैं आते हैं और चले जाते हैं पर आत्मा रूपी दर्पण ज्यों का त्यों रहता है। टी०वी० के शीशा में और आत्मा रूपी शीशा में इतना अन्तर है कि टी०वी० के शीशा को ज्ञान नहीं है, अपने में आने वाले चित्रों को टी०वी० का शीशा नहीं देख सकता क्योंकि उसको ज्ञान नहीं है, वो जड़ है परन्तु आत्मा रूपी दर्पण चेतन है, ज्ञानवान् है तो दर्पण भी है और द्रष्टा भी है चेतन होने से। इस प्रकार से ये संसार आत्मा में आता जाता रहता है और सबसे भीतर है, बुद्धि से भी परे है। बुद्धि, मन, इन्द्रियॉ और संसार, ये

निद्रा आती है तब नहीं रहते हैं पर ये अन्तरात्मा हमेशा रहता है, वही मेरा वास्तविक स्वरूप है अर्जुन।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो → सबके हृदय में मैं विराजमान हूँ। अपने को द्रष्टा साक्षी चेतन जानो, तू मेरा ही स्वरूप है। **मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च —** और मैं ही देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के भीतर रह करके इनको प्रेरित करता हूँ तो मेरी प्रेरणा से ये सब अपना अपना काम करते हैं जैसे बिजली की प्रेरणा से मशीनें काम करती हैं, बिजली चली जाये तो ये काम नहीं करतीं। इसी प्रकार से मैं देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण सबका प्रेरक हूँ। मुझसे ही सब स्मरण शक्ति होती है और मेरी कृपा से ही मेरी स्मृति होती है, और फिर मेरा ज्ञान भी मेरी कृपा से ही होता है, और जो संशय-विपर्यय होते हैं न उनका अपोहन माने विनाश भी हो जाता है, संशय-विपर्यय हट भी जाते हैं निश्चय ही। संशय-विपर्यय क्या होता है? वेदान्त शास्त्र जीव और ब्रह्म का एकत्व वर्णन करता है अथवा कर्म-उपासना का वर्णन करता है। जिसको ये संशय हो वो वेदान्त शास्त्र गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र पढ़े तो उसको पता चल जाता है कि वेदान्त शास्त्र क्या कहता है। उसको मालूम हो जाता है कि वेदान्त शास्त्र जीवात्मा परमात्मा का एकत्व वर्णन करता है तो वेदान्त पढ़ने से वेदान्त में जो संशय है उसकी निवृत्ति हो जाती है।

ये **संशय** दो प्रकार का हुआ, **प्रमाणगत्** संशय और **प्रमेयगत्** संशय। प्रमाण वेदान्त शास्त्र है जीव ब्रह्म की एकता का। कर्म उपासना वाला शास्त्र पहले है और ये वेदान्त अन्तिम काण्ड है, इसमें जीव और ब्रह्म का एकत्व ही वर्णन किया गया है, और जीव-ब्रह्म का जो भेद है वो सत्य है अथवा अभेद सत्य है ये प्रमेयगत् संशय कहलाता है। ये मनन से दूर होता है। तो प्रमाणगत् संशय तो तब दूर हुआ जब वेदान्त शास्त्र समझ लिया और बारम्बार जीव-ब्रह्म का एकत्व जो वेद बताता है **'जीवो ब्रह्मैव ना परः'**, जीव तो ब्रह्म ही है भिन्न नहीं है, ऐसा बार बार जो ब्रह्म है **'तत्त्वमसि'**, वही तू है ये सब महावाक्य वेद में अभेद बताते हैं। अतः वेदान्त शास्त्र श्रवण से प्रमाणगत् संशय दूर हो जाता है और बार बार मनन करने से कि **'सच्चिदानंद रूपोहं',** मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ, असत्-जड़-दुःखरूप संसार नहीं हूँ मैं। मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर असत् है जड़ है दुःखरूप है, मैं सच्चिदानंद स्वरूप हूँ इसलिये मैं शरीर नहीं हो सकता। ये बारम्बार यदि मनन किया जाय तो प्रमेयगत् संशय दूर हो जाता है यानि ब्रह्म-जीवात्मा का एकत्व पक्का हो जाता है। और फिर इसके बाद में विपरीत ज्ञान है जिसको विपर्यय कहते हैं।

विपर्यय किसको कहते हैं? **'बहुजन्म दृढ़ाभ्यासात् देहादिषु आत्मधी भवेत्' —** बहुत जन्मों के दृढ़ अभ्यास के कारण जीवात्मा का ऐसा अभ्यास है अपने को तो भूला हुआ है परन्तु मैं देह हूँ यही अभ्यास हुआ है। अहं स्त्री, अहं पुमान् — मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ ऐसा विपरीत ज्ञान को विपर्यय कहते हैं—'उल्टा ज्ञान', जब कि मैं देह, स्त्री, पुरुष नहीं हूँ — **'न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः'** — जीवात्मा न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है किन्तु सबमें है, सबको देखता है, सबका साक्षी चेतन है। ये देह जड़ है जीवात्मा चेतन है परन्तु ये विपरीत ज्ञान, उल्टा ज्ञान बहुत जन्मों से चला आ रहा है। देह में आत्म बुद्धि हो गयी है —

बहुजन्म दृढ़ाभ्यासात् देहादिषुआत्मधीः क्षणेत्,
पुनः पुनः उदेत्तेवं संसार सत्यत्त्वधीरपि।।

बार बार ये उदय हो जाती है कि मैं शरीर हूँ, स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, ये भूलता ही नहीं है क्योंकि बहुत जन्मों का अभ्यास है। इसीलिये निदिध्यासन करना चाहिये, पुनः पुनः यही अभ्यास करना चाहिये —

'नाहं देहोऽहमात्मेति निश्चयो ज्ञान लक्षणम्'

मैं देह नहीं हूँ किन्तु देह द्रष्टा आत्मा हूँ ऐसा दृढ़ निश्चय करना यही ज्ञान का लक्षण है और 'मैं

देह हूँ' ये अज्ञान है, विपरीत भावना इसको कहते हैं। इसी प्रकार से ये संसार में सत्-बुद्धि और सुख-बुद्धि भी हो गयी है इसको, अनेक जन्मों से इसको यही अभ्यास है कि संसार सत् है और संसार सुखरूप है। संसार सत् भी नहीं है और सुखरूप भी नहीं है, **दुःखालयमशाश्वतम्** — अर्जुन! ये संसार तो दुःख का समुद्र है सुखरूप नहीं है और सत् नहीं है, क्षण क्षण में विनाशी है, शाश्वत् नहीं है अशाश्वत् है, विनाशशील है। ये विपरीत भावना जीव को बहुत जन्मों के ऐसे ही अभ्यास से हो गयी है इसलिये बार बार यही अभ्यास करना चाहिये कि मैं देह नहीं हूँ और ये संसार सत् नहीं है और सुखरूप भी नहीं है, बारम्बार यही विचार करना चाहिये क्योंकि —

अविचार कृतो बन्धः अथोविचारान्निवर्तते,
तस्मात् जीव जगत ब्रह्म सर्वदैव विचारेण।।

अविचार का किया हुआ बन्धन है जीव को जन्म-मरण का इसलिये बारम्बार विचार करे। क्या विचार करे? ईश्वर क्या है, जीव क्या है? जगत क्या है? माया क्या है, ब्रह्म क्या है, वेदान्त शास्त्र के अनुसार इसका विचार करे। जो ब्रह्म है वो सत्य है और माया का कार्य होने से जीव, ईश्वर और जगत ये सब मिथ्या है। **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव न परः'**— ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है और जीव तो ब्रह्म ही है, यही बारम्बार अभ्यास करे। जब से सो कर जागे और फिर से सोने का समय जब तक न आवे तब तक यही बारम्बार विचार करता रहे कि मैं सच्चिदानंदघन ब्रह्म हूँ, ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है यही विचार करे। **'अहिर्निशं किं परिचिन्तनीयं'** — शिष्य ने गुरु से पूछा रात दिन क्या चिन्तन करे? गुरु ने कहा **'संसार मिथ्यात्व शिव आत्म तत्त्वम्'**, ये संसार मिथ्या है और कल्याण स्वरूप जो सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म शिव है वो ही सत्य है, वो ही मेरा स्वरूप है, वो अपना आत्म तत्त्व है। सज्जनो! इस प्रकार बारम्बार विचार करने से संशय और विपर्यय सब नाश हो जाता है और यथार्थ ज्ञान हृदय में बैठ जाता है। **मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च** → मुझसे ही मेरी स्मृति और मेरा ज्ञान होता है और विपर्यय, जो विपरीत भावना है न, 'संशय-विपर्यय' जिसको कहते हैं, उसका भी नाश होता है।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो → अर्जुन सब वेदों से मैं ही वेद्य हूँ। वेदों का और कोई प्रयोजन नहीं है, मुझको बताने के लिये ही और मुझसे ही वेद का प्रादुर्भाव हुआ है इसलिये सब वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेद कोई पढ़े और मुझको न जाने तो उसका वेद पढ़ना तो व्यर्थ ही हुआ। **'अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला, विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला'** — अर्जुन! यदि वेद के द्वारा ब्रह्म को जान लिया तो अब उसको शास्त्रों का, वेदों का कोई भी प्रयोजन नहीं रहा क्योंकि वेद के द्वारा जो जानना था 'ब्रह्म' उसको जान लिया, अब वेदों से कोई प्रयोजन नहीं रहा। वेद पढ़ा और वेद को नहीं जाना तो भी वेद पढ़ने से क्या फ़ायदा हुआ? 'पर तत्त्व' जो बह्म है उसको न जाना तो शास्त्रों का अध्ययन निष्फल ही गया और जो ब्रह्म तत्त्व को जान लिया तो जानने के बाद फिर प्रयोजन न होने से उसके लिये वेद निष्फल है। जैसे संसार की खबर जानने के लिये लोग अख़बार खरीदते हैं और संसार की ख़बर अख़बार से पढ़ लिया तो अख़बार का अब क्या प्रयोजन रहा? तो रद्दी की टोकरी में अब डालदो उसको क्योंकि जिसलिये ख़रीदा था संसार की ख़बर जान लिया उससे, अब उसका कोई प्रयोजन नहीं है या दूसरे किसी को दे दिया, जिसने माँगा उसको दे दिया और यदि संसार की ख़बर नहीं जाना जिसलिये अख़बार ख़रीदा था तो भी अख़बार का ख़रीदना व्यर्थ रहा। इसलिये —

शब्दजाल महारण्यम् चित्तवभ्रमण कारणं।
अतः प्रयत्नात् ज्ञातव्यम् तत्त्वज्ञैः तत्त्वमात्मनः।।

शब्दजाल एक महान अरण्य है, अरण्य कहते हैं वन को। बहुत शब्दजाल में नहीं पड़ना चाहिये, सभी शब्दजाल माने वेद, शास्त्र, पुराण, रामायण ये सब शब्द ही हैं। किसी तत्त्व ज्ञानी महापुरुष से सभी वेद, शास्त्र, पुराण, रामायण, गीता, भागवत् का तत्त्व जान लेना चाहिये। **'अतः प्रयत्नात् ज्ञातव्यम् तत्त्वज्ञैः तत्त्वमात्मनः'** आत्म तत्त्व को सम्यक किसी तत्त्ववेत्ता महापुरुष से जान लेना चाहिये नहीं तो व्यर्थ ही जीवन चला जायेगा। भगवान सब वेद शास्त्रों का सार बता रहे हैं, गीता

जो है वो सभी वेद, शास्त्र और उपनिषदों का सार है। इसलिये भगवान कहते हैं —
वेदैश्च सर्वैः अहं एव वेद्यः → सब वेदों से मैं ही जानने योग्य हूँ, और वेद पढ़ा पर मुझको नहीं जाना तो क्या फ़ायदा हुआ? किसी मित्र से मिलने उसके घर में गये, मित्र नहीं मिला तो जाना व्यर्थ हो गया, परिश्रम ही रहा क्योंकि जिससे मिलने गये थे वो मिला ही नहीं अब वो चाहे सोने का भवन हो, सोने के भवन से क्या प्रयोजन है? इसी प्रकार ये वेद शास्त्र ब्रह्म तत्त्व को बताते हैं माने भगवान के रहने का स्थान हैं, घर हैं। गीता रामायण भगवान के जानने के अयन हैं माने घर हैं, राम अयन = रामायण, राम के रहने की जगह, स्थान। रामायण पढ़ा और जो सबका सखा है, मित्र है, भगवान तो सबके सखा हैं जीवात्मा के। **'प्राण प्राण के जीवन जी के, स्वारथ रहित सखा सबही के'**— भगवान तो सभी जीवों के स्वार्थ रहित सखा हैं माने साथी हैं सदा साथ रहते हैं भगवान, वो तो जीव का साथ कभी छोड़ते ही नहीं हैं और बाकी संसारी लोग तो आज मिले और कल बिछुड़ जाते हैं इसलिये भगवान तो प्राणों के प्राण हैं जीवन के जीव तत्त्व हैं और स्वार्थ रहित मित्र है। तो रामायण पढ़ा और राम को जाना ही नहीं जिससे मिलना था। रामायण का अर्थ होता है राम का अयन माने राम का भवन, वहाँ गये यानि रामायण पढ़े और राम को नहीं जाना तो व्यर्थ ही रहा न! इसलिये भगवान कहते हैं **'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो'**—सब वेदों से मैं ही जानने योग्य हूँ, मुझे ही जानकर जीव को सुख शान्ति मिलेगी, अमरता प्राप्त होगी, जन्म मरण से छुटकारा मिलेगा।
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् → अर्जुन! वेदान्त का कर्ता भी मैं ही हूँ, उपनिषदें भी मुझसे ही प्रकट भयी हैं, यही वेदान्त है परन्तु व्यासजी ने ब्रह्मसूत्र लिखा है, उसको भी वेदान्त दर्शन कहा जाता है तो व्यास रूप में मैं ही अवतरित हुआ हूँ। भगवान कृष्ण कहते हैं कि व्यास मेरा ही अवतार हैं जिन्होंने ब्रह्म सूत्र लिखा है इसलिये वेदान्त का कर्ता व्यास भी मैं हूँ। **शंकरम् शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्** — और जो शंकराचार्य हैं जिन्होंने वेदों पर भाष्य किया है वो शंकर के अवतार हैं और व्यास विष्णु के अवतार हैं इसलिये शंकराचार्यजी और व्यासजी के वचन परम प्रमाण रूप हैं। तो ब्रह्म सूत्र तो व्यासजी ने लिख दिया और शंकाराचार्यजी ने उसका भाष्य लिख दिया। वेद वेत्ता भी अर्जुन! मैं ही हूँ यानि सम्यक प्रकार से वेद तत्त्व को जानने वाला भी मैं ही हूँ। इस प्रकार से सज्जनों! सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान की वाणी पर विचार करो और विश्वास करो। अपने आप को सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा जानो, भगवत् स्वरूप जानो और जो भी संसार है ये सब दृश्य भगवान की माया है। ये सब मन्दिर हैं, मन्दिर सब भगवान की माया से बने हैं। सब मन्दिरों के अन्दर द्रष्टा रूप से जो देव बैठे हैं वो तो स्वयं भगवान ही विराजमान हैं इसलिये अपने को द्रष्टा जानकर देवरूप जानो और अपने शरीर को मन्दिर जानो।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 05 - 12.08.06

२५

हृदय ग्रन्थि का छेदन

हे प्रभो! मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें मैं, आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है। भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! ऐसा तो मैं ही हूँ। कार्य-कारण रूप मैं ही मैं हूँ दूसरा कोई है नहीं। जितना भी दृश्य है वो सब मेरा कार्यरूप है और जो द्रष्टा है वो कारणरूप है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वः संशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

हे अर्जुन! उस परावर ब्रह्म को देख लेने पर, जान लेने पर जीव के हृदय की जो ग्रन्थि है जड़-चेतन की, वो खुल जाती है।

जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई,
जदपि मृषा छूटत कठिनई।।

यद्यपि जड़ चेतन की गॉठ नहीं पड़ सकती है, मृषा है, झूठी है क्योंकि जड़ चेतन का विरोध है दोनों मिल नहीं सकते। ये देह जड़ है और जो देही आत्मा है वो चेतन है, देह दृश्य है व देही चेतन होने से द्रष्टा है। तो चेतन द्रष्टा ये दृश्य शरीर बनना भी चाहे तो नहीं बन सकता। जैसे घर में रहने वाला पुरुष चेतन है घर जड़ है, तो घर में रहने वाला घर नहीं बन सकता तैसे ही ये शरीर भी घर है व रहने वाला जो जीव है वो चेतन है, वो शरीर रूपी घर कदापि नहीं हो सकता तो जड़ और चेतन की गॉठ कैसे पड़ेगी? दोनों कैसे मिलेंगे? मिल नहीं सकते, इनका मेल तो केवल अज्ञान के कारण ही है। चेतन जीव ने अपने को शरीर मान लिया है—मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, ब्राह्मणोंऽहं, क्षत्रियोऽहं, मैं वैश्य हूँ शूद्र हूँ ऐसा मान लिया है पर यह हो सकता नहीं है तो बस भ्रम ही है ये, अज्ञानता ही है। जड़ चेतन मिल नहीं सकते तो अज्ञानता के कारण ये जड़ चेतन की गॉठ पड़ी हुई है, दोनों ये मिले हुए हैं और ये अलगा नहीं पा रहा है जीव। बिना गुरु के जीव का और शरीर का अलगाव नहीं हो पाता इसलिये **'जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई'** यद्यपि ये झूठी है फिर भी **'छूटत कठिनई'** गुरु के बिना ये छूटती नहीं है। चेतन होकर भी अपने को जड़ में मिला रखा है और जड़ शरीर ही मान बैठा है, ये पक्का निश्चय कर लिया है कि स्त्री पुरुष ही हूँ मैं, स्वप्न में भी नहीं भूलता ऐसा पक्का निश्चय किया। तो भगवान कहते हैं मेरी कृपा से, गुरु की कृपा से जो कोई मेरा जो निर्गुण-निराकार स्वरूप है वो द्रष्टा चेतन है और जो सगुण-साकार है वह मुझ राम कृष्ण विष्णु शिव-शक्ति सूर्य गणेश के और ये सारा विश्व विराट भी, ये सब दृश्य है। ये सब का सब मेरा सगुण-साकार स्वरूप है, ये कार्य-ब्रह्म है और मैं कारण-ब्रह्म हूँ। कारण-ब्रह्म भी कैसा हूँ? दो प्रकार का कार्य-कारण भाव होता है — एक विर्वतोपादान कारण और एक परिणामी उपादान कारण। परिणामी उपादान कारण को अपना रूप

त्याग करके दूसरा रूप धारण करना पड़ता है जैसे दुग्धस्य दधि। दूध का दही कार्य है तो दूध को दही बनने के लिये अपना रूप छोड़ना पड़ेगा । दूध मीठा है और पतला है, जब वो दही बनेगा तो उसमें कुछ खट्टापन आ जायेगा और गाढ़ापन आ जायेगा, तो उसने अपने पूर्वरूप का त्याग कर दिया **'पूर्वरूप परित्यागेन अन्यथा वर्तनम् परिणामः'** इसको परिणाम कहते हैं। निर्गुण-निराकार जो ब्रह्म है वो परिणामी हो नहीं सकता है क्योंकि ब्रह्म को वेदों ने निर्विकार बताया है, **'निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निर्विकारं निरंजनं'** ब्रह्म में कला नहीं है, क्रिया नहीं है, कोई विकार नहीं है, शान्त एवं माया से परे है, ये **पर-ब्रह्म** (कारण-ब्रह्म) है और जो दिखाई पड़ रहा है ये **अपर-ब्रह्म** है माने कार्य-ब्रह्म। तो निर्विकार होने से वो स्वयं कुछ बन नहीं सकता, बनता है तो विकारी हो जायेगा फिर विकारी चीज़ तो नाशवान होती है, दूध का दही बन गया तो वो नाश ही हो गया अपने स्वरूप से अब पुनः तो दूध नहीं बन सकता वो, तो भगवान भी नाशवान हो जायेगा यदि परिणाम होगा बदलेगा तो विनाशी हो जायेगा तो ऐसा सर्वथा असम्भव है। दूसरा विवर्तोपादान कारण होता है उसमें **'पूर्व रूप अपरित्यागेन अन्यथा वर्तनम् विवर्तः'** पूर्वरूप को ये विवर्तोपादान कारण त्याग नहीं करता, पूर्वरूप में ज्यों का त्यों रहता है बदलता नहीं कुछ और दूसरे रूप में दिखाई पड़ता है जैसे रज्जु में सर्प का भ्रम तो रज्जु सर्प भ्रम का कारण है, ये विवर्तोपादान कारण है। रज्जु को सर्परूप बनना न पड़ा, रज्जु अपने स्वरूप में ज्यों की त्यों है। अज्ञानता से, रज्जु के अज्ञान से रज्जु सर्प के रूप में दिखाई पड़ने लग गयी तो वो अज्ञान का ही परिणाम रहा सर्प माने अज्ञान ही सर्प बन बैठा, रज्जु तो ज्यों की त्यों है कुछ बनी नहीं। इस प्रकार से भगवान इस जगत का विवर्तोपादान कारण हो सकते हैं और भगवान जगत के कारण हैं ये श्रुतियाँ बताती हैं।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्ब्रह्म।

जिससे जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है पुनः जिसमें लीन हो जाता है वह ब्रह्म है। तो भगवान स्वयं तो कुछ बनेगा नहीं, नहीं तो विकारी हो जायेगा, अच्छा और वो निष्क्रिय है तो कर्म नहीं है बनाने का तो बना भी नहीं सकता है जैसे रस्सी न कुछ बनती है न बनाती है ऐसे अधिष्ठान रूप जो कारण ब्रह्म है वो न कुछ बनता है क्योंकि विकारी हो जायेगा बनने से और न बनाता है बनाने में कर्म है और ब्रह्म में कर्म नहीं है इसलिये विवर्तोपादान कारण ही हो सकता है इस जगत का। तो रज्जु से वो जो विवर्तरूप, भ्रमरूप सर्प है उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता है ऐसे ही भगवान का इस जगत से कोई सम्बन्ध नहीं होता है क्योंकि ये अध्यासरूप है, विवर्तरूप है, सदा असंग रहता है **माया गुणगोपार** रहता है। इस प्रकार से **'भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशया, क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् द्रष्टे परावरे'** तस्मिन् माने उस **पर** और **अवर** (पर माने परमब्रह्म, कारणब्रह्म और अवर माने कार्यब्रह्म) ब्रह्म को जान लेने से अब हृदय की ये ग्रन्थि कि मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं मिल गया हूँ इन जड़ शरीरों में इस ग्रन्थि का भेदन हो गया। जीव ने जान लिया कि मैं कभी शरीर से नहीं मिल सकता, जीव अलग है और शरीर अलग है दोनों का मेल नहीं हो सकता है। अब इसे भूलकर भी ये भ्रम नहीं होगा कि मैं स्त्री-पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हूँ क्योंकि सब श्रुतियाँ यही कहती हैं **'न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः'**, ये जो जीव है ये स्त्री पुरुष या नपुन्सक कभी नहीं हो सकता क्योंकि जीव सबमें है और अविनाशी है, जीव में स्त्री पुरुषपना नहीं है ये तो शरीरों में है। तो ये झूठी गाँठ थी और थी तो थी ही नहीं, भ्रम की निवृत्ति हो गयी **भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशया**, और सब संशय का छेदन हो गया। इस जीव को ही ब्रह्म कहते हैं अब मैं शरीर हूँ कि जीव हूँ और वो जीव हूँ कि ब्रह्म हूँ ऐसा जो संदेह है ये भी ख़त्म हो गया। जीव तो ब्रह्म ही है, सब शरीरों में बैठकर के निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही देख रहा है इसलिये ये शरीर मैं हो सकता नहीं तो संशय हो

ही नहीं सकता, संशय की निवृत्ति हो गयी संशय का कोई काम ही न रहा, पक्का निर्णय हो गया कि मैं जीव हूँ इसलिये पुरुष शरीर नहीं हूँ, भगवान के वचन संशय रहित हैं। फिर और क्या होता है? कहा **क्षीयन्ते चास्य कर्माणि,** इसके अनंत जन्मों के जो शुभाशुभ कर्म हैं वो क्षीण हो गये, भस्मसात् हो गये क्यों कि कर्म तो देह इन्द्रिय मन बुद्धि में ही रहते हैं और मुझ द्रष्टा में तो हैं नहीं कर्म। अत: अपने को अकर्म ही जाना ख़त्म भये कर्म, मुझमें कर्म हैं ही नहीं तीनों काल में, मैं अकर्म ही हूँ।

प्रकृते: क्रियमाणानि गुणै: कर्माणि सर्वश:
अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। BG - 03.27 **।।**

अर्जुन! सारे कर्म प्रकृति में—देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में ही हैं और देही आत्मा अकर्म है। जो अपने को शरीर देह इन्द्रिय मन बुद्धि मानेगा वो अपने को कर्ता मानेगा तो अर्जुन वो विमूढ़ात्मा है, वो अज्ञानी है, नासमझ है। अपने में कर्म हैं ही नहीं, द्रष्टा केवल देखता है, कर्म तो देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में हो रहे हैं, प्राण स्वॉस चल रहा है, मन बुद्धि इन्द्रियॉ सब चलायमान हैं। सभी चंचल हैं, सब चल रहे हैं, अपना अपना कर्म कर रहे हैं पर मैं तो देखता ही हूँ, द्रष्टा में कर्म कहॉ हैं? निर्गुण निराकार तत्त्व है कोई आकार नहीं है, अकर्म हूँ तो अनंत जन्मों के जो पापरूपी कर्म थे वो भस्मसात् हो गये।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन
ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।। BG - 4.37 **।।**

जैसे अग्नि काष्ठ को क्षण मात्र में भस्मसात् कर देती है, ईंधन जलाकर भस्मसात् कर देती है ऐसे ही ज्ञानरूपी अग्नि भी शुभाशुभ कर्मों को और कर्मों के कारण अज्ञान को क्योंकि अज्ञान से दोनों शरीर होते हैं जिनमें कर्म हैं स्थूल सूक्ष्म शरीर जो अज्ञानरूप कारण शरीर से उत्पन्न होते हैं तो कारण शरीर को भी, सबको भस्म कर देता है ज्ञान ऐसा है। अज्ञान में ही आग लगती है, अज्ञान ही भस्म होता है ज्ञान से तो उसका कार्य तो भस्म ही हो जायेगा। अब जन्म मरण का कारण कोई रहा नहीं न भ्रान्ति रही।

भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्व: संशया:
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

पर और **अवर**, पर—परमब्रह्म और अवर—कार्यब्रह्म, कार्यब्रह्म अध्यासरूप कार्य है, माया का कार्य है, अज्ञान का कार्य है—ऐसा है। माया का, अज्ञान का और कारण परब्रह्म का कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं है, माया अध्यासरूप है अधिष्ठानरूप कारण है तो हमारा तुम्हारा अधिष्ठानरूप है और ये सब सगुण-साकार ब्रह्म है जो भी दिखाई पड़ रहा है, ये बनता बिगड़ता है। ये परिणामी है, विकारी है जैसे सगुण-साकार अग्नि और निर्गुण-निराकार अग्नि। निर्गुण-निराकार अग्नि व्यापक है और जो सगुण-साकार अग्नि है वो प्रकट है। ईंधन में प्रकट है अग्नि, दीपक में प्रकट है अग्नि, सूर्य में प्रकट होती है इसी में सब कर्म होता है प्रकट अग्नि में, व्यापक अग्नि में कोई कर्म नहीं है। प्रकट अग्नि में कर्म है और व्यापक अग्नि निर्गुण-निराकार है वो दिखाई नहीं पड़ती। व्यापक अग्नि काष्ठ में है, कोयले में है, ईंधन में, दीपक में है अग्नि, पत्थर में है, लोहे में है पर दिखाई तो पड़ती नहीं न ही उसमें कोई व्यवहार होता है। उसी व्यापक अग्नि को लोग प्रकट कर लेते हैं, उससे काम सब लोगों का चलता है। पहाड़ों में एक सफेद पत्थर और एक लोहा रखते हैं, सफेद पत्थर के साथ में थोड़ी सी रुई पकड़ ली चुटकी में और लोहा ऐसा मारते हैं कि पत्थर घिसता है लोहे में तो उससे चिन्गारी निकलती हैं और वो रुई में लग जाती हैं बस अग्नि प्रकट हो गयी, तो

वो जो सूखा चिलम पीते हैं पहाड़ी लोग तो वो रुई चिलम में रख लिये तम्बाकू उनकी सुलग गयी, पी लिये। भोजन बनाने वाले कागज़ और पतली लकड़ी रख के भोजन बना लिये जंगल में। यज्ञ करने वाले याज्ञिक ब्राह्मण लोग अरण्य मन्थन करते थे अग्नि को प्रकट करने के लिये क्योंकि व्यापक अग्नि तो है ही है पर यज्ञ तो प्रकट अग्नि से होगा, तो एक कुँआ जैसा काष्ठ का नीचे बना के रखते और ऊपर मथानी जैसा एक काष्ठ रखते और उसको मन्थन करते उससे चिन्गारियाँ प्रकट होने लगतीं, उसमें कोई रुई वगैरह चीज़ें रख दिये जिसमें अग्नि प्रकट हो गयी फिर अग्नि यज्ञ कुण्ड में ईंधन में सुलगा लिये उससे यज्ञ कर लिये। अब बहुत विज्ञान का ज़माना है बड़ा सरल उपाय हो गया है, घर घर में माचिस पहुँच गयी है अब ये लम्बी प्रक्रिया नहीं करनी पड़ती, बस माचिस खिंचाये अग्नि प्रकट, माचिस में है पर दिखाई नहीं पड़ती और न कुछ काम ही बनता। अब प्रकट कर लिये तो दिखाई भी पड़ने लग गयी, अब भोजन बन गया ईंधन में प्रकट होकर, गुण उसका प्रकट है और प्रकाशरूप उसका जो आकार है वो दीपक में प्रकट है, उस प्रकाश से अन्धकार दूर हो गया, सब काम प्रकट अग्नि से होता है तो भी जहाँ सत् और असत् का निर्णय किया जाता है तहाँ व्यापक अग्नि ही सत् है, ज्यों कि त्यों है चाहे दिन में कितनी जगह चूल्हे जल रहे होंगे संसार भर में और रात में कितनी जगह दीपक जल रहे होंगे तो जो व्यापक अग्नि है उसमें क्या फर्क पड़ता है? क्या विकार आया? कुछ नहीं, वो तो ज्यों कि त्यों है यही विकारी रही जो प्रकट भयी है वो ही बुझ गयी फिर, वो हमेशा कहाँ रहेगी?

धरा को प्रमाण यह है तुलसी,
जो फरा सो झरा और बरा सो बुताना।।

ऐसे ही जो भगवान प्रकट होंगे राम कृष्ण विष्णु शिव शक्ति सूर्य गणेश कच्छ मच्छ वामन वराह नरसिंह आदि वो क्या हमेशा बने रहेंगे? अरे प्रकट भये हैं न! कार्यब्रह्म हैं न! लोगों का काम कर देंगे फिर अन्तर्धान हो जायेंगे क्योंकि कर्म इसी में हैं सगुण साकार ब्रह्म में, काम हो गया तो अपने परमधाम को चले गये, अन्तर्धान हो गये माने अपने व्यापक स्वरूप में समा गये। अग्नि का परमधाम सब जगह व्यापक है, अग्नि अपने व्यापक स्वरूप में समा जाती है ऐसे ही स०सा० भगवान अपने व्यापक स्वरूप में समा जाते हैं। तो ये अग्नि के दृष्टान्त से ब्रह्म का विचार करना चाहिये।

एक दारुगत देखिये एकू,
पावक युगसम ब्रह्म विवेकू।।

जैसे युग माने दो प्रकार का पावक हैं अग्नि है, एक सगुण साकार देखने में आता है जिससे सब व्यवहार होता है और एक देखने में नहीं आता है, व्यापक है वैसे ही ब्रह्म भी है। तो सत् असत् के निर्णय में जो निर्गुण-निराकार है वही परम सत्य है उसको परमब्रह्म कहते हैं और इसको अवर ब्रह्म कहते हैं। पर-अवर — 'पर' परमब्रह्म, 'अवर' ये प्रकट ब्रह्म, कार्यब्रह्म। तो जैसे कार्य-कारणरूप ब्रह्म ही है दूसरा तो कुछ नहीं, निर्गुण व सगुण ब्रह्म ही है दूसरा तो कोई नहीं है, प्रकट भी अग्नि ही है और बिना प्रकट भी अग्नि ही है। प्रकट से सब व्यवहार होता है अप्रकट नित्य सत्य रहती है, सज्जनों ऐसा हमारा तुम्हारा स्वरूप भी है। हम आप अलग से तो कुछ आ नहीं सकते हैं, भगवान के दो रूपों में सब कुछ आ गया। जितना व्यवहार है पूजा-पाठ गुरु-शिष्य वो सगुण-साकार भगवान में ही है, वो ही कृष्ण बने हैं वो ही अर्जुन बने हैं, वो ही गुरु बने है वो ही शिष्य बने हैं, सगुण-साकार ब्रह्म में ये सब रूप हैं और निर्गुण-निराकार तो सबका एक रूप है जहाँ से ये सब प्रकट भये हैं वो निर्गुण-निराकार है तो दोनों प्रकार के ब्रह्म को या अपनी आत्मा को जानना चाहिये। सत्य को सत्य जानो और असत्य को असत्य जानो, जड़ को जड़ जानो चेतन को चेतन जानो, कर्म में कर्म जानो अकर्म में अकर्म ही जानो, आत्मा को अकर्म ही

जानो। भगवान कृष्ण कहते हैं कि अर्जुन! इस प्रकार से सगुण व निर्गुण, साकार व निराकार उभय रूप एक मैं ही मैं हूँ दूसरा तो कोई है नहीं मेरे सिवाय।

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। BG – 07.07 **।।**

अर्जुन! मेरे से परतर, मेरे से ऊपर इस जगत का कारण और कोई नहीं है, सबके ऊपर मैं ही हूँ जगत का कारण और ये जगत मेरा कार्य है तो कार्य-कारण रूप मैं ही रहा, मुझसे भिन्न तो कुछ रहा नहीं। कार्य-ब्रह्म में सब व्यवहार है, कारण-ब्रह्म अव्यवहार्य है और मैं सबमें व्यापक हूँ। कार्य-ब्रह्म में कारण-ब्रह्म व्यापक है, हर नाम-रूप में मैं व्यापक हूँ जीवरूप से प्रविष्ट हुआ हूँ और मैं ही देख रहा हूँ। ये कार्य-ब्रह्म का जीवन जीव के रहने से ही है नहीं तो मुर्दा का मुर्दा है, शरीर सब मुर्दा ही जैसे हैं। इसमें भगवान जीवरूप से बैठे हैं तो ये मुर्दा उठ खड़े हुए हैं, देखते हैं, सुनते हैं, बोलते हैं, एक दूसरे की बात समझते हैं, सब हलचल हो रही है जीव के बैठने से और जीव हम ही हैं जो देह को देख रहे हैं और मैं देखने वाला इस शरीर से उतर जाऊँ तो फिर मुर्दा के मुर्दा। तो मुर्दा तो है ही है, अब भी मुर्दा ही है, हम द्रष्टा हैं और ये शरीर दृश्य है, दृश्य को कुछ ज्ञान नहीं है मुर्दा के मुर्दा। इसमें चेतनता तो खाली मेरी है, मैं बैठा हूँ मैं ही देखता सुनता हूँ, समझता हूँ, जीव के बिना तो शरीर क्या जाने समझे। मैं शरीर के एक एक अंग को देखता हूँ जानता हूँ, शरीर का कोई अंग मुझको नहीं जानता। ऑख कान नाक पेट पीठ ये सब शरीर के अनेक अंग हैं, कितनी नस नाड़ियॉ हैं, कितने रोम हैं सबको मैं ही जानता हूँ ये तो कुछ जानते नहीं किसी को। ये ही राम तत्त्व है, ये ही सत्य तत्त्व है, जीव ही राम है सो सत्य है। अन्त में लोग कहते हैं न कि माटी की माटी रह गयी है राम निकल गया तो राम राम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है, सत्य बोलने से मुक्ति है, राम ही सत्य है। ये शरीर तो मुर्दा का मुर्दा है, राम बैठा है तो सत्य जैसा ये लगता है पर सत्य है नहीं अब भी। अपने आप को ही सत्य जानो, न आत्मा का, जीव का जन्म है न मरण है। **'न जायते मृयते वा कदाचित्'** जीवात्मा का न जन्म होता है न ही मरण होता है वह निर्विकार है, जन्म मरण विकार हैं, ये तो शरीर में हैं, ये कार्य-ब्रह्म है। कार्य-ब्रह्म भी मैं ही हूँ और कारण-ब्रह्म भी मैं ही हूँ। कार्य-ब्रह्म में सब व्यवहार है पर असत्य है। कारण-ब्रह्म में व्यवहार तो कुछ नहीं है पर सत्य वही है। कार्य-ब्रह्म दिखाई पड़ता है, कारण-ब्रह्म खाली देखता है दिखाई नहीं पड़ता, तो मैं कहॉ दिखाई पड़ता हूँ? मेरा कोई आकार थोड़ी है न कोई मेरा नाम है न रूप है, सब लोग कहते हैं **'अहं पश्यामि'** मैं देखता हूँ ऐसा सब लोग कह रहे हैं तो देखने वाले का कौन सा रूप है? तू अपने आप को (देखने वाले को) तो स्त्री-पुरुष बता नहीं सकता क्योंकि ये तो दृश्य है इसको तो तू देख रहा है, ये तो तेरा रूप है नहीं देखने वाले का, ये तो अरूप है और न तेरा कोई नाम है। सब कहते हैं 'मैं देखता हूँ' और इस देखने वाले का कोई नाम नहीं है, नाम जितने हैं वो सब शरीरों के हैं और रूप भी शरीरों के हैं। सब नाम रूप के भीतर मैं बैठा हूँ तो मेरा क्या नाम है क्या रूप है कुछ नहीं, अनाम अरूप हूँ। इस प्रकार से भगवान श्रीकृष्ण ने कहा अर्जुन! मेरे दोनों रूपों को सम्यक प्रकार से जान लेने से अपने निर्गुण-निराकार स्वरूप से परम सच्चिदानंद स्वरूप है, ये अजन्मा है, अनंत-अखण्ड ज्ञान है, अनंत आनंद है, अमृत है और ये जो सगुण-साकार है ये माया मात्र है, बनता बिगड़ता रहता है इसमें आत्म बुद्धि नहीं करना चाहिये कि ये शरीर ही मैं हूँ। शरीर मेरा है मैं शरीर नहीं हूँ, ये प्रकट है मैं अप्रकट हूँ ऐसा जानना चाहिये, दोनों रूप मेरे ही हैं एक छायारूप एक पुरुषरूप। मैं ज्ञानरूप पुरुष हूँ शरीर छायारूप है ये कार्यरूप है, ऐसा नहीं कि मैं अपने को छायारूप ही कार्यरूप ही मान बैठूँ और कारण को भूल ही जाऊँ। जितना भी दुःख है जीव को अपने को कार्य ही मान लिया है अपने को कारणपने को, द्रष्टापने को बिल्कुल भूल गया है तो भगवान यही याद दिलाते हैं कि तुम दोनों रूप अपने समझो भैया एक ही रूप क्यों माने बैठे हो

कि मैं सगुण-साकार ये शरीर ही हूँ जो नाशवान् है। इसी को माने रहोगे तो मृत्यु का भय अवश्य होगा क्योंकि ये शरीर जन्मता है ये ही मरता है, तुम अपने को शरीर ही मान लोगे तो कैसे मृत्यु के भय से छूटोगे फिर? और जो अपने को देही मानोगे तो छूटे ही हो मृत्यु के भय से, मृत्यु है ही नहीं। हज़ारों बार शरीर बनते हैं मिटते हैं मैं वही का वही रहता हूँ मेरा क्या बनता बिगड़ता है। कितनी सगुण-साकार अग्नियॉ प्रकट होती है फिर लीन होती हैं, व्यापक अग्नि का क्या बना बिगड़ा? ऐसे कितने संसार के शरीर मुझसे प्रकट होते हैं पुन: लीन होते हैं, मुझ निर्गुण-निराकार का क्या बना और क्या बिगड़ा, क्या हानि-लाभ हुआ कुछ नहीं। कितनी भी छाया बनती बिगड़ती रहें अपना स्वरूप निर्विकार है। ये भगवान कृष्ण का बताया हुआ ज्ञान है इसको विवेक विचार करके हृदय में धारण करना चाहिये, हम नित्य मुक्त ही हैं कोई बन्धन है ही नहीं न बन्धन कभी हुआ है, कौन जीव को बॉध सकता है, कोई नहीं।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 19 - 17.08.08

२६

ॐ अनादि और चिदाभास की ७ अवस्थाएं

सृष्टि के आदि में एक मात्र ब्रह्म ही था **'एकमेवाद्वयंब्रह्म नेहनानास्ति किंचनम्'**, एक अद्वितीय ब्रह्म है उसमें नानापना कुछ भी नहीं है। उस ब्रह्म में रज्जु में सर्प के समान, स्थाणु में पुरुष के समान प्रकृति का प्रादुर्भाव हुआ जो प्रकृति न सत् है, न असत् है, न उभय रूप है, अनादि है, सत् असत् से विलक्षण है, अनिर्वचनीय है पर ज्ञान निवर्त्य है। प्रकृति को ही अव्यक्त, अविद्या, अज्ञान अथवा माया कहते हैं इसका प्रादुर्भाव हुआ। फिर वो माया, वो प्रकृति 'विद्या च अविद्या च स्वयमेव भवति', विद्या और अविद्या रूप वो स्वयं हो गई। उस विद्या और अविद्यारूप माया में जो सच्चिदानंद ब्रह्म था, उस माया का जो आधार अधिष्ठान है जिसमें ये माया अध्यास रूप रज्जु में सर्प की भाँति प्रकट हुई है, उसमें आभास पड़ा। विद्यारूप माया शुद्ध सत्वगुण प्रधान है, अविद्यारूप माया मलिन सत्वगुण प्रधान है। माया में तीन गुण हैं—सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। शुद्ध सत्वगुण की प्रधानता से वो विद्यारूप बनी व मलिन सत्वगुण की प्रधानता से वो अविद्यारूप भयी। इन विद्या अविद्या दोनों माया में ब्रह्म चेतन का आभासरूप प्रतिबिम्ब पड़ा, तो जो विद्यारूप माया में प्रतिबिम्ब पड़ा उसका नाम सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करने वाला ईश्वर पड़ गया और अविद्या में जो शुद्ध चेतन ब्रह्म का आभास पड़ा, प्रतिबिम्ब पड़ा उसका नाम अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान जीव पड़ गया। तो विद्या-अविद्यारूप माया में जो शुद्ध चेतन का आभासरूप प्रतिबिम्ब है उसी को क्रमशः ईश्वर और जीव कहा गया, उपाधि बिना न ईश्वर है न जीव है। उपाधि भेद से ही ईश्वर और जीव ब्रह्म के दो नाम पड़ गये। इनमें विद्या और विद्या में पड़ा चेतन ब्रह्म का आभास और चेतन ब्रह्म भी ये तीन मिलकर के ईश्वर का वाच्यार्थ कहलाता है, अविद्या और अविद्या में पड़ा चेतन ब्रह्म का आभास और चेतन ब्रह्म भी ये तीन मिलकर के जीव का वाच्यार्थ कहलाता है। तो वाच्यार्थ में जीव ईश्वर का भेद है। इसमें जो प्रतिबिम्ब भाग है वही सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है, जगत की उत्पत्ति पालन करने वाला है और वही भक्तों के ऊपर अनुग्रह करके सगुण साकार राम कृष्ण विष्णु शिव शक्ति सूर्य गणेश आदि के रूप में अवतार लेता है। और जीव में जो आभास भाग है प्रतिबिम्ब भाग है वही अल्पज्ञ होता है, अल्पशक्तिमान होता है और यही अज्ञान और अज्ञान का कार्य मोह के वश में होकर के अपने को देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण जानता है, अपने स्वरूप ब्रह्म को नहीं जानता है इसी लिये इसे जन्म मरण का बन्धन होता है, और ईश्वर अपने स्वरूप ब्रह्म को जानता है क्योंकि सर्वज्ञ है, माया को जानता है, अविद्या को जानता है और जीवों को जानता है, जीवों के कर्मों को जानता है इसलिये ईश्वर स्वभाव से ही सर्वज्ञ है, इसलिये नित्य मुक्त है। और जीव नहीं जानता है अपने स्वरूप ब्रह्म को इसलिये ये जन्म मरण के बन्धन में पड़ा है। जब ये जीव ईश्वर की भक्ति करता है या ईश्वर के कृपापात्र गुरु की भक्ति करता है तो ये भी अपने स्वरूप ब्रह्म को जान लेता है। ईश्वर कृपा या गुरुकृपा से ये भी मुक्त हो जाता है, जन्म-मृत्यु का बन्धन छूट जाता है क्योंकि ये जो बन्धन है जीव को ये अपने स्वरूप के अज्ञान का ही किया हुआ है और तो कोई बन्धन का कारण है नहीं, **'अज्ञान कृतो बन्धः अतोज्ञानान्निवर्ततते'** — अज्ञान का किया हुआ ये बन्धन है इसलिये अज्ञान की निवृत्ति ज्ञान से हो जाती है, अज्ञान की निवृत्ति होते ही जन्म-मरण का बन्धन भी छूट गया और कोई कारण है नहीं बन्धन में। तो कल बता रहे थे **चिदाभास की सात अवस्थाएं**। तो वो जो जीव में चेतन का आभास है उस जीव की ये सात

अवस्थाएं हैं क्योंकि चिदाभास को ही अज्ञान है और जो चेतन है साक्षी है उसमें कोई अज्ञानता है नहीं, इसलिये जीव यानि चिदाभास की ही ये सात अवस्थाएं हैं। ईश्वर तो अपना स्वरूप ब्रह्म को जानता है उसमें अज्ञानता है नहीं इसलिये उपदेश आदि करना, जीवों पर दयालु कृपालु होना ये भी चिदाभास का ही धर्म है, ईश्वर में जो चिदाभास अंश है। और जो ईश्वर साक्षी शुद्ध चेतन ब्रह्म है उसमें ये उपदेश आदि नहीं है, उसमें कोई व्यापार नहीं है, कर्म नहीं है। तो चिदाभास ईश्वर ही जीव को उपदेश देता है और जीव ही उपदेश को श्रवण करता हैं, शुद्ध चेतन ब्रह्म न उपदेश करता है, न उपदेश का सुनने वाला है। उसमें कोई व्यापार नहीं है, वो एक अद्वितीय है। जीव में जो चेतन का आभास है उसकी सात अवस्थाएं ये हैं। जीव को ही अपने स्वरूप ब्रह्म का अज्ञान है सो अनादि है। कब से ये ब्रह्म को नहीं जानता है ये जीव को पता नहीं है इसलिये अज्ञान को अनादि कहा गया है। वेदान्त शास्त्र में छः चीज़ों को अनादि बताया गया है।

जीवईशो विशुद्धाचित् तथा जीवेषयोर्भिदा,
अविद्या तच्चितो योगः खडस्माकमनादया।।

ये छः चीज़ें अनादि हैं — ब्रह्म, अज्ञानरूप माया, माया ब्रह्म का सम्बन्ध, जीव, ईश्वर और जीव-ईश्वर का सर्वज्ञ-अल्पज्ञ का जो भेद है, ये छः हो गये—ये अनादि है। इसलिये जीव की सात अवस्थाओं में प्रथम अवस्था **अज्ञान** है, जो अपने ब्रह्म स्वरूप को ये नहीं जानता है। परन्तु ये छः अनादि तो हैं इनमें इतना भेद है कि जो ब्रह्म है वो अनादि **अनंत** है और शेष जो पॉच हैं वो अनादि **सान्त** हैं क्योंकि ब्रह्म आधार-अधिष्ठान है इन पॉचों का इसलिये वो ब्रह्म अनादि अनंत है और जिस समय इस जीव को ब्रह्मज्ञान होता है, अधिष्ठान का ज्ञान होता है उसी समय ये पॉचों शान्त हो जाते हैं, इनका अन्त हो जाता है, इसलिये पॉच अनादि सान्त हैं। तो देखो पहली अवस्था जीव को क्या है **1-अज्ञान**, ये याद रखना जीव कहने से कूटस्थ चेतन, अविद्या और चिदाभास ये तीनों आ जाते हैं, ये वाच्यार्थ है इसलिये चिदाभास भाग में ही अज्ञान है कूटस्थ चेतन में नहीं, इतना ध्यान रखना। तो एक तो अज्ञान हो गया अपने स्वरूप ब्रह्म का और दूसरा आवरण है, अज्ञान की दो शक्तियॉ हैं, एक आवरण शक्ति और दूसरी विक्षेप शक्ति। **2-आवरणशक्ति** का स्वरूप ये है— *'न अस्ति न भाति इति व्यवहार हेतु आवरण शक्तिः'* माने ब्रह्म नहीं है और भासता नहीं है ये दो प्रकार का आवरण है। अज्ञान की दूसरी शक्ति है **3-विक्षेपशक्ति**, विक्षेपशक्ति से क्या होता है पंचमहाभूत — आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और पंचमहाभूतों का कार्य स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर, इस प्रपंच की उत्पत्ति हो जाती है और ये स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर में जो जीवात्मा है, चिदाभास है उसका अहंभाव हो जाता है। स्थूलशरीर में अहंभाव होता है तो अपने को स्त्री पुरुष आदि मानने लगता है, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र मानने लगता है इससे क्या होता है कि इसको जन्म-मरण का बन्धन होता है क्योंकि ये माया के कार्य हैं पंचमहाभूतों के कार्य हैं स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर दोनों। स्थूलशरीर के मानने से इसको जन्म-मरण का भय उत्पन्न हो जाता है। सूक्ष्मशरीर में ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये १९ तत्त्व हैं, तो सूक्ष्मशरीर में अहंकार करने से ये कर्ता-भोक्ता अपने को मानने लगता है कि मैं शुभाशुभ कर्मों का कर्ता हूॅ। तो शुभाशुभ कर्मों का कर्ता होने से शुभ कर्मों का फल सुख होता है और अशुभ का दुःख होता है। शुभ-अशुभ को ही धर्म-अधर्म कहते हैं, पाप-पुण्य कहते हैं, तो ये पुण्य-पाप का फल है। ये जीव सूक्ष्मशरीर में अभिमान करके कर्ता-भोक्ता बनके पुण्य-पाप का फल सुख-दुःख का भोक्ता बन जाता है और ये सुख-दुःख का, पुण्य-पाप का फल भोगने के लिये इसके फिर आगे के जन्म-मरण चालू हो जाते हैं। अनेक योनियों में अपने कर्मों का फल भोगने के लिये ये जन्म लेता है इसप्रकार से इसको ये जन्म-मरण का दुःख चालू हो गया, इसप्रकार ये दुःख में पड़ा है स्थूल-सूक्ष्मशरीर के अभिमान से।

अब ये सोचता है कितने जन्म इसके हो गये कितनी बार ये मरा इसको कुछ पता नहीं, फिर जन्मता है फिर मरता है फिर जन्मता है फिर मरता है फिर माता के गर्भ में जाता है —

पुनरपिजननम् पुनरपिमरणम् पुनरपिजननी जठरे शयनम्,
इहि संसारे खलु दुस्तारे कृपया पारे पाहि मुरारे।।

बारम्बार जन्मता है, बारम्बार मरता है और ये जन्म-मरण के दु:खों से छूट नहीं पाता है। जन्म-मरण में इसको बहुत दु:ख होता है। प्रथम जब जीव संसार में आता है तो किसी माता के गर्भ में आता है तो गर्भ का दु:ख सहन करता है फिर जब जन्म लेता है तो जन्म का दु:ख सहन करता है तो—

गर्भ दु:खं जन्म दु:खं आधि दु:खं व्याधि दु:खं,
वियोग दु:खं जरा दु:खं मृत्यु दु:खं पुनः पुनः — गर्भ दु:खं ....

गर्भ का दु:ख सहता है फिर जन्म का फिर आधि व्याधि, आधि नाम मानसिक दु:खों का है और व्याधि नाम शारीरिक रोग बीमारी के दु:खों का है। आधि दु:ख जो होते हैं वो मानसिक हैं माने मानसिक रोग हैं काम क्रोध लोभ मोह, ये मानसिक रोग बताया गया है। काम क्रोध लोभ मोह आदि जो रोग हैं इससे जो दु:ख होता है इस मानस दु:ख को आधिदु:ख कहते हैं और जो शरीर में रोग बीमारी से सर्दी जुक़ाम बुख़ार आदि से जो दु:ख होता है उसको व्याधि दु:ख कहते हैं। वियोग दु:खं, जिनमें प्रेम हो गया है मोह हो गया है अपने शरीर में अहंता और दूसरे शरीरों में ममता, माता पिता भ्राता भगिनी पुत्र परिवार इनमें प्रेम हो गया है, मोह हो गया है, जब इनमें से मरते हैं कोई जन तो उनके वियोग से दु:ख होता है तो ये वियोग दु:ख कहा जाता है। जब संयोग हुआ है तो वियोग तो अनिवार्य ही है, तो वियोग का दु:ख होता है। तो प्रियजनों के वियोग से और जो अप्रिय लोग हैं, जैसे सर्प है सिंह है व्याघ्र है शत्रु है इनमें भी ममता है माने ये मेरे शत्रु हैं और ये मित्र है ये पुत्र हैं, तो मित्र और पुत्र के वियोग का दु:ख होता है और शत्रु के संयोग का दु:ख होता है, जब शत्रु मिलता है तो दु:ख देता है और स्त्री पुत्र मित्र का जब वियोग होता है तब ये दु:ख देते हैं। इस प्रकार से सारा संसार इसको दु:खदायी बन गया, कोई भी इसको सुख देने वाला न रहा। क्योंकि जिनको प्रियजन समझते हैं उनका वियोग तो अनिवार्य है, वह होगा ही तो अवश्य वो रुलायेंगे।

मिलत एक दारुण दु:ख देहीं,
बिछुड़त एक प्राण हर लेहीं।।

एक मिलने में दु:ख देते हैं सर्प सिंह व्याघ्र शत्रु और जो प्रियजन हैं वो अपने वियोग में दु:ख देते हैं, अब संसार में कोई भी सुख देने वाला रहा नहीं। दो ही प्रकार के लोग हैं एक प्रियजन हैं जिनमें हम सुख मानते हैं पत्नी है पुत्र है मित्र है और दूसरे ये शत्रु लोग हैं सर्प सिंह व्याघ्र हैं, ये दो प्रकार का संसार दिखाई पड़ता है। दोनों प्रकार का संसार दु:खदायी है, एक संयोग से शत्रु आदि और दूसरे वियोग होने से दु:ख देने वाले, इसप्रकार से ये वियोग दु:ख अनुभव करता है। फिर जरा दु:खं क्योंकि देह में अभिमान है कि मैं ये शरीर हूँ, तो जब वृद्धावस्था आती है तो वृद्धावस्था का अनुभव करता है। वृद्धावस्था में शरीर काम नहीं करता, इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं इन्द्रियाँ भी शिथिल हो जाती हैं, पैरों से चला नहीं जाता है, हाथों से कुछ काम नहीं किया जाता है और आँखों से अब दिखाई भी कम पड़ता है, कानों से अब सुनाई भी कम पड़ता है। सभी

इन्द्रियॉ जवाब देने लगती हैं, शिथिल होने लगती हैं। तब इस वृद्ध को बहुत दु:ख होता है और भगवान से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! ये वृद्धावस्था का दु:ख सहा नहीं जाता है अब मेरे प्राण चले जॉय तो अच्छा है। रोग बीमारी भी बहुत सताती हैं वृद्धावस्था में और बहुत कमज़ोरी आ जाती है। घर में जो स्त्री पुत्र लायक भये तो सेवा करते हैं वृद्ध की परन्तु दु:ख तो नहीं बॅटा लेंगे सेवा तो कर देंगे। तो जो दु:ख है वृद्धावस्था का वो तो नहीं बॉट सकते हैं। इतना ही कर सके हैं कि बाहरी रोग बीमारी की कोई दवा कर सकते हैं, चरण सेवा कर देंगे, भोजन बनाकर खिला देंगे समय पर, पर उसका अपना जो इन्द्रियों की शिथिलता का दु:ख है उसको तो नहीं बॉट सकेंगे। रोग बीमारी से जो दु:ख हुआ है उसको तो उस वृद्ध को ही अनुभव करना पड़ेगा। और जो नालायक हैं स्त्री पुत्रादि वा तो सेवा भी नहीं करते हैं तो वृद्ध बहुत दु:खी होता है। अब उसको जब वृद्धावस्था का दु:ख सहा नहीं जाता है तो उसको यही लगता है कि मेरे प्राण जल्दी चले जॉय तो अच्छा है क्योंकि दु:ख असह्य हो गया है, ये वृद्धावस्था का दु:ख बताया गया है, ये संसार के दु:ख हैं और फिर मृत्यु का दु:ख आता है। मृत्यु में भी भयंकर दु:ख होता है पर ये अन्तिम नहीं है, यदि मृत्यु का दु:ख ही अन्तिम होता तो मरने के बाद में फिर दु:ख से पार हो जाना चाहिये था। जन्म का दु:ख आदि होता है व मृत्यु का अन्तिम दु:ख होता है तब इतने दु:ख झेल करके अब इसको कम से कम पार हो जाना चाहिये था इस दु:ख समुद्र संसार को परन्तु ये दु:ख समुद्र संसार को पार न कर सका, पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्, ये एक आवर्त में पड़ गया जैसे समुद्र में आवर्त पड़ते हैं, चक्र पड़ जाते हैं उसमें जो कीड़ा पड़ जाय तो वो भी घूमने लगता है वहॉ पानी घूमता रहता है चक्र में, घूमते घूमते वो कीड़ा फिर डूब जाता है, नीचे भी समुद्र में पानी घूमता रहता है, उसी चक्र में पड़ा हुआ कीड़ा भीतर भी घूमता रहता है। घूमते घूमते घूमते जब पानी ऊपर आता है तो वो कीड़ा भी पानी के साथ ऊपर आ जाता है फिर ऊपर घूम रहा है और फिर घूमते घूमते डूब जाता है इसप्रकार ये संसार समुद्र का एक चक्र है। चक्र उठते रहते हैं समुद्रों में, तो इस चक्र में ये जीव पड़ गया है इसलिये इस चक्र से निकल नहीं पा रहा है, बारम्बार फिर डूब जाता है और फिर घूमते घूमते ऊपर आता है इसको जन्म कहते हैं, जब ऊपर आ जाता है संसार समुद्र के तो जन्म कहा जाता है और डूब गया तो मृत्यु कही जाती है। अब ये अनंत जन्म बीत गये इस चक्र से निकल नहीं पाया, सोचता है मैं किसी प्रकार से इस चक्र से निकल जाऊॅ परन्तु कोई उपाय नहीं सूझता है कैसे निकले इस चक्र से और कौन निकाले? तब ये भगवान की प्रार्थना करता है, भगवान याद आते हैं, स्मरण आते हैं। गर्भ के भीतर बहुत दु:खी होता है कोई उपाय नहीं है गर्भ से बाहर निकलने का, बहुत प्रार्थना करता है। तो भगवान की प्रार्थना से ये गर्भ से बाहर आता है और इसको भगवान की फिर स्मृति होती है बारम्बार कि भगवान ने मुझे गर्भ के दु:ख से बाहर कर दिया है जहॉ मुझको कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। कोई तो है नहीं वहॉ गर्भ के भीतर जो इसकी सहायता करे, जठर की जठराग्नि से जल रहा था, कोमल शरीर, दु:ख सहा नहीं जाता। उस दु:ख से बाहर निकाला है ईश्वर ने तो उसी ईश्वर की कृपा इसे कभी कभी याद आ जाती है, उसी का स्मरण करता है जिसने गर्भ में रक्षा किया था। ईश्वर की कृपा से ये मनुष्य शरीर पाया, फिर ये ईश्वर की कृपा से ही फिर गुरु की शरण जाता है। इसको कोई सद्गुरु मिल जाते हैं ईश्वर की कृपा से और इसको मोक्ष की इच्छा होती है कि मैं इस दु:ख सागर समुद्र में जो पड़ गया हूॅ चक्र में दु:ख के इस से किसी प्रकार जल्दी निकल जाऊॅ, इसको ये झटपटी पड़ती है जल्दी। तब ईश्वर की कृपा से इसको गुरु की शरण में जाने से गुरु इसको वेद पढ़ाता है, कर्म उपासना ज्ञान त्रिकाण्डमय वेद है। निष्काम कर्म करके ये अपने मन को निर्मल बनाता है। फिर भगवान की सगुण व निर्गुण भक्ति करके अपने मन को शान्त बनाता है, निश्चल बनाता है। फिर विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति और मुमुक्षुता चतुष्ट्य साधन से सम्पन्न होता है। तब गुरु की शरण में जाकर के इसको गुरु ब्रह्म विद्या का उपदेश देता है। जब इसको ब्रह्म विद्या का उपदेश देता है तो प्रथम इसको वेद का अवान्तर वाक्य सुनाता है। वेद में दो प्रकार के वाक्य हैं जो जीव और ईश्वर के स्वरूप को बताते हैं। तो अवान्तर वाक्य तो जीव और ईश्वर के स्वरूप को बताते हैं और महावाक्य जीव और ईश्वर का एकत्व बताता है। तो प्रथम अवान्तर वाक्य सुनाते हैं गुरु, मन विक्षेप रहित है इसका मन निर्मल है और शान्त है, निश्चल है

और विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति और मुमुक्षुता चतुष्ट्य साधन से सम्पन्न है, ऐसे शुद्ध निर्मल हृदय में ज्ञान बहुत जल्दी हो जाता है क्योंकि साधन सम्पन्न है। तो गुरु बताता है पहले ***अवान्तर वाक्य*— *'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म'***, ब्रह्म सत्य है, ज्ञान स्वरूप है, आनंद स्वरूप है और अनंत रूप है जिसका आदि अंत नहीं है। सत्य है—उसका जन्म मरण नहीं होता, ज्ञान है—अखण्ड अविनाशी ज्ञान है और आनंद भी अविनाशी है आदि-अन्त रहित आनंद का सिन्धु है, ऐसा ब्रह्म का स्वरूप है। जीव को ब्रह्म का ये **परोक्ष ज्ञान** होता है अवान्तर वाक्य से। अज्ञान की दो शक्तियॉ थीं आवरण और विक्षेप शक्ति, आवरण शक्ति में भी दो भाग थे १. ब्रह्म नहीं है २. ब्रह्म भासता नहीं है। गुरु जब अवान्तर वाक्य सुनाता है तो इससे 'ब्रह्म नहीं है' इस **असत्वापादक आवरण** की निवृत्ति हो जाती है क्योंकि गुरु ने बताया कि ब्रह्म है और सत्-चित-आनंद स्वरूप है, तो ब्रह्म नहीं है ऐसी जो अज्ञान की आवरण शक्ति थी उसका नाश तो हो गया भला, ये परोक्ष ज्ञान हुआ और जीव का स्वरूप अवान्तर वाक्य में बताया है—**'यः ऐष हृदि अन्तर्ज्योतिः पुरुषः'** — हमारे तुम्हारे शरीर के भीतर, देह के भीतर इन्द्रियॉ हैं, इन्द्रियों के भीतर मन है और मन के भीतर बुद्धि है और बुद्धि से भी भीतर वो चेतन आत्मा है वो हमारा तुम्हारा स्वरूप है, वो उदय-अस्त रहित अनंत ज्ञान ज्योति निरन्तर जगमगाती रहती है। ये जीव का स्वरूप अवान्तर वाक्य में वेद ने बताया। इसका मतलब ये हुआ कि वो हम ज्योति हैं इस शरीर के भीतर, बुद्धि हमसे नीचे है, बुद्धि के नीचे मन है, मन के नीचे इन्द्रियॉ हैं और इन्द्रियों के नीचे ये संसार है, सबसे नीचे ये बाहर का संसार है, वो हमारा स्वरूप है। तो हम न तो बुद्धि हैं, न मन हैं, न देह हैं, न इन्द्रिय हैं और न बाहर का संसार कोई हैं। अलगाव ये हो गया हमारे तुम्हारे स्वरूप के बताने से, वो हमारा तुम्हारा स्वरूप हुआ तो इन सबसे अलग हो गये देह इन्द्रिय मन बुद्धि सबसे। अब ***महावाक्य*** सुनाते हैं कि ये जो चैतन्य ज्योति है जीव का यही लक्ष्यार्थ है, इसको ये बताया जाता है कि **'तत्त्वमसि'**, हे जीव! वो जो शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप बताया था वही तेरा स्वरूप है **'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' 'सच्चिदानंदम् ब्रह्म'**। तब ब्रह्म भान नहीं होता है इस अभानापादक आवरण की निवृत्ति महावाक्य से हो जाती है जब बताया गया कि वो सच्चिदानंद ब्रह्म तू ही है तो ये **अपरोक्ष ज्ञान** हुआ क्योंकि वो मैं ही हूँ, महावाक्य के द्वारा ऐसा जानने में आया।

अस्ति ब्रह्मेति चेत्वेद परोक्ष ज्ञानमेवतः,
अहं ब्रह्मेति चेत्वेद साक्षात्कारः स उच्यते।।

ब्रह्म है, सच्च्दिानंद है, ऐसा जानना ये परोक्ष ज्ञान है और वह ब्रह्म मैं ही हूँ, मैं ही सच्चिदानंद स्वरूप हूँ, यह अपरोक्ष ज्ञान है। तो अज्ञान की जो आवरण शक्ति है उन दोनों प्रकार की आवरण शक्ति का नाश हो गया। अब जो विक्षेप शक्ति थी न! क्योंकि इन दोनों आवरण शक्तियों का नाश हो गया, तो 'मैं देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण हूँ' ये अहंकार न रहा, दोनों शरीरों का अभिमान अब हट गया क्योंकि ये जो इसमें अभिमान था अब ये यहॉ से हट करके तो पहले अपने लक्ष्यार्थ चेतन में ही हो गया था वो चेतन का ब्रह्म से एकत्व हो गया, तो देह इन्द्रिय मन बुद्धि में न अहंता रही और देह इन्द्रिय मन बुद्धि से जो बाहर के लोग थे माता पिता भ्राता भगिनी स्त्री पुत्र परिवार उनमें ममता थी कि ये मेरे हैं, तो ममता का भी अभाव हो गया तो अहंता और ममता अब दोनों ही चले गये। ये जो जन्म मरण का दुःख था वो तो देह के अभिमान से था, अब देह मैं हूँ नहीं देह का साक्षी चेतन द्रष्टा हूँ, अलग हो गया। तो जन्म-मरण का भय जो इसको विक्षेप शक्ति है, ये दुःख भी चला गया, जन्म मरण भी चला गया। तो दुःख निवृत्ति और अत्यन्त आनंद की, हर्ष की प्राप्ति महान हर्ष को प्राप्त हुआ कि आहा! मेरे समान कौन भाग्यवान होगा, ईश्वरकृपा, गुरुकृपा और वेद कृपा से मैंने अपने ब्रह्म स्वरूप को जाना है। धन्य हो धन्य हो! अहो भाग्यं अहो भाग्यं! मेरे अहो भाग्य हैं मैं धन्य हुआ हूँ। ईश्वर को, गुरु को और वेद को भी मेरा बारम्बार नमन है, नमस्कार है, ये कृतज्ञता प्रकट करता है यही कि मुझको भवसागर से ईश्वर ने गुरु ने वेद ने पार किया है। अब ये कृत्कृत्य हो रहा है, ये महान् हर्ष है। अब इसको ब्रह्म के

पाने के लिये कोई साधन करना बाकी न रहा। कर चुका जो करना था साधन—कर्म उपासना और विवेक वैराग्य षट्क सम्पत्ति मुमुक्षुता और ये ज्ञान, अब ये सब कर चुका है तो अब पीछे लौटकर आना नहीं है, अब ये ब्रह्मपद में स्थित हो गया है। तो जैसे जब अपने घर में पहुँच जाता है कोई यात्री तो यात्रा के जो रेल मोटर हवाई जहाज़ के जो आने जाने का कर्म था उससे फुरसत मिल जाती है, अब घर में आ गया तो विश्राम पाता है और रास्ते में विश्राम रहता नहीं। ऐसे ही मान लो ये जीव यात्री था इन सब साधनों के द्वारा, कर्म उपासना ज्ञान मान लो रेल मोटर हवाई जहाज़ ये साधन बन गये इसके लिये, इन सब साधनों से अपने ब्रह्मपद को पाकर विश्राम पाता है, वो अपना घर है, ये एक ही हमारा विश्राम स्थान है। अपने ब्रह्म स्वरूप में, ब्रह्मधाम में पहुँच करके **'पायो परम विश्राम'** परम विश्राम को प्राप्त होता है। अब यात्रा के सारे कर्म खत्म हो गये, यात्रा भी खत्म हुई और यात्रा के जो साधन थे वो कर्म भी खत्म हो गये। अब ये कृत्कृत्यता का अनुभव करता है। अब मुझको कुछ भी करना शेष नहीं क्योंकि जिसको जानने के लिये, पाने के लिये कर्म करना था वो कर्म मैं अब कर चुका, उसको पा लिया है इसलिये मुझको अब कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रहा। अब इसको पूर्ण विश्राम मिला है, कृत्कृत्य हुआ है। तो जीव की जो ये सात अवस्थाएं थीं—अज्ञान, आवरण व दोनों प्रकार की आवरण की शक्तियॉं, विक्षेप, अवान्तर वाक्य से परोक्ष ज्ञान, महावाक्य से अपरोक्ष ज्ञान तो दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और कृत्कृत्यतारूप परमानन्द की प्राप्ति। जब इसका काम पूरा हो जाता है लोक में भी कोई मकान बनाना है, जब मकान का काम पूरा हो गया उसमें रहने लग गया तो इसको बड़ा हर्ष होता है, जब तक नहीं बना मकान रात दिन उसकी चिन्ता में, सामान जुटाने में और काम कराने में लगा रहता है, बन जाय तो ज़रा आनंद आता है। फुरसत मिलती है कि इस काम से मैं फुरसत पाया। ऐसे ही इसका बड़ा काम था परमधाम, उसको पा लिया तो सब काम से फुरसत मिल गई, कुछ करना शेष नहीं रहा। तो सज्जनों ईश्वर का भी काम पूरा हुआ, सर्वज्ञ ईश्वर ने और गुरु ने वेदरूपी नौका में बैठाल कर जीव को पार किया। ईश्वर कहता है भाई अब तुम्हारा काम तो बन गया, तुमने अपने ब्रह्म स्वरूप को जान लिया और महावाक्य ये ईश्वर की वाणी वेद हैं सब, ईश्वर का काम भी पूरा हुआ, जीव का काम भी पूरा हुआ, गुरु का काम भी पूरा हुआ और वेद का काम भी पूरा हुआ। जैसे कोई नौका में चढ़कर नदी पार करता है। मानलो किसी का घर है नदीपार, अब नदी पार जाने के लिये उसको नौका चाहिये, घाट में गया नदी किनारे नौका उसको मिल गई, नौका में बैठ गया और मल्लाह मिल गया। मल्लाह ने उस यात्री को नौका में बैठाल कर पार कर दिया। अब जब ये यात्री पार हो गया, पार उसका घर है उसे अपने घर जाना है तो अब नौका का तो प्रयोजन रहा नहीं क्योंकि नदी पार कर चुका और मल्लाह का भी प्रयोजन नहीं रहा क्योंकि जब नदीपार हो जाता है कोई यात्री तब उचित उतराई देकर के मल्लाह को भी नमस्कार करता है भाई आपने हमको पार कर दिया ये अपार नदी को, अब हम अपने घर जाते हैं। अब नौका को भी प्रणाम है, नौका न होती तो मल्लाह भी किसमें बैठाकर पार करता? नौका को भी प्रणाम है, मल्लाह को भी प्रणाम है, दोनों को प्रणाम करके फिर अपने घर को जाता है। ऐसे ही जीव वेदरूपी नौका को और गुरुरूपी मल्लाह को दोनों को प्रणाम करके अपने परमधाम में विश्राम करता है इसीलिये गुरु को मल्लाह रूप बताया है। **'मल्लाह कहता टेर कर नैया खड़ी तैयार है'** ये वेदरूपी नैया तैयार खड़ी है, गुरु लोग कहते हैं कि आओ बैठो इस वेदरूपी नौका में, ये ज्ञानरूपी जहाज़ है ये क्षणमात्र में तुम्हें पार करेगा, संसार समुद्र पार करना है, ये ज्ञानरूपी जहाज़ है इसमें बैठो, क्षण में पार हो जाओगे।

मल्लाह कहता टेर कर नैया खड़ी तैयार है,
जो रह गया सो रह गया जो चढ़ गया वो पार है।।

जो रह जायेगा तो रह जायेगा और जो चढ़ जायेगा इस वेदरूपी नौका में वो निश्चय ही पार हो जायेगा। तो गुरु लोग तो इस प्रकार से वेद ज्ञान देते हैं, वेदरूपी नौका में बैठाल कर जीवों को

पार करते हैं, जो बैठ जायेगा पार हो जायेगा। वो बैठ जायेगा तो पार हो ही जायेगा इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि उसका अपना काम खत्म हो गया है अब गुरु का काम रहा। जैसे जब तक नौका में यात्री नहीं बैठता तब तक पैदल चलने का काम रहता है भाई, अब जब नौका में बैठ गया तो उसका अपना काम खत्म हुआ अब गुरु का काम है मल्लाह का काम है जो नौका को खेवे और पार करे, अपना काम तो उसका नौका में बैठने तक ही था न! तो जो नौका में बैठ जाता है गुरु उसे पार कर ही देता है इसमें संदेह नहीं। इसप्रकार से ये पंचदशी में और विचार सागर में ये सात अवस्थाएं जीव की बताई गई हैं जो हमने तुमको सुनाया। ये चिदाभास की अवस्थाएं हैं, जीव साक्षी कूटस्थ की और ईश्वर साक्षी ब्रह्म की ये अवस्थाएं नहीं हैं क्योंकि उनको अज्ञान नहीं है। तो ये जो उपदेश आदि है ये चिदाभास रूपी जीव के लिये है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 21 - Voice 10

२७

ज्ञान सबसे पवित्र है, ज्ञान से सद्यः मुक्ति

हमारा तुम्हारा जो वास्तविक स्वरूप है वो सत्-चित्-आनंद है, **सत्** है इसलिये कि वो नित्य है, उसका जन्म मरण नहीं होता 'न जायते म्रियते वा कदाचिन्', **चित्** है माने अनंत अखण्ड ज्ञान है ज्ञान स्वरूप है और **आनंद** है माने आदि अन्त रहित आनंद का सिन्धु है। ये स्वभाव सिद्ध हमारा तुम्हारा स्वरूप है इसलिये परम कल्याण स्वरूप ही है। तो सुनो —

श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः,
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। BG - 04.39 **।।**

हे अर्जुन! ये ज्ञान श्रद्धावान् पुरुष को होता है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते,
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।। BG - 04.38 **।।**

अर्जुन! ज्ञान के समान इस लोक में निश्चय ही संशय रहित कोई भी पवित्र वस्तु नहीं है और जो संसार की पवित्र वस्तुएं हैं वो ज्ञान के समान नहीं हैं जैसे भगवान का नाम और गंगाजल, ये पवित्र हैं और पावक अग्नि, उसका नाम ही पावक है पावक माने पवित्र ये सब पवित्र हैं परन्तु ज्ञान के समान नहीं हैं। निस्संदेह संसार में ज्ञान के समान कोई भी पवित्र वस्तु नहीं है। सच्चिदानंद ब्रह्म का स्वरूप है—सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म, ज्ञान तो ब्रह्म का स्वरूप है। स्वयं ये पवित्र है और जिस शरीर में ये ज्ञान चेतन आत्मा है, द्रष्टा रूप में विराजमान है यद्यपि ये शरीर मलिन है अपवित्र है तथापि ये ज्ञानतत्त्व द्रष्टातत्त्व आत्मा मलिन शरीर में रहकर भी पवित्र ही रहता है, मलिन नहीं होता है।

अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः,
उभयो अन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते।।

अर्जुन! ये देह तो अत्यन्त ही मलिन है माने अपवित्र है और देही आत्मा पवित्र है, निर्मल है तो मलिन देह में रहता हुआ भी ये निर्मल आत्म तत्त्व निर्मल ही रहता है, पवित्र ही रहता है, अपवित्र कभी नहीं होता है। ऐसा क्यों है? कहा देह देही का सम्बन्ध नहीं होता है, स्पर्श नहीं होता है। निर्मल आत्मा देह में रहता हुआ भी देह को स्पर्श नहीं करता है इसलिये निर्मल आत्मा निर्मल ही रहता है। उल्टा आत्मा के रहने से अपवित्र मलिन देह भी पवित्र जैसा लगता है और आत्मा के न रहने से फिर वो अपवित्र तो है ही है। आत्मा के न रहने से देह मुर्दा हो जाता है फिर लोग उसको छूकर स्नान करते हैं और आत्मा जब तक है तो अपवित्र हुआ भी ये पवित्र जैसा लगता है। ये देह अपवित्र क्यों है?

माता पित्रोत्मलोत्भूत्वा मलमांसोमयं वपुः,
त्यजेत् चाण्डालवत्दूरं ब्रह्मीभूय सुखी भव।।

अर्जुन! ये देह माता-पिता के मल-मूत्र से, रज-वीर्य से उत्पन्न हुआ है इसलिये ये पूरा का पूरा मलिन है। ऊपर से चमड़ा मढ़ा हुआ है तो इसकी मलिनता छिपी हुई है ढकी हुई है, दीखती नहीं

है मलिनता नहीं तो भीतर तो मलिन ही है। कथा है — कोई बहुत बड़ी नुमाइश लगी उसमें एक बड़ी ऊँची मिठाई की दुकान आई, उसने गोबर की मिठाई बनायी और चाँदी सोने के वर्कों से उनको मढ़ दिया। सबसे ऊँची दुकान और सबसे सुन्दर दिखाई पड़े मिठाई उसकी, क़ीमत भी अधिक रखी पर भीतर क्या भरा है वो तो दीखता नहीं वो ढका हुआ है सोने-चाँदी के वर्कों से परन्तु जो ले जाता घर में और ले जाकर के खाता तो भीतर गोबर भरा हुआ है तो थूक देता। इसी प्रकार से इस शरीर के भीतर गोबर ही गोबर भरा हुआ है और चमड़ा से मढ़ा हुआ है तो ये चमड़ा किसी का गोरा है, किसी का काला है, किसी का सुनहरे रंग का है, ये ही समझलो वर्क से मढ़ा हुआ है। तो भीतर का मल-मूत्र, खाल के भीतर तो खून है माँस है हड्डी है मल-मूत्र है ये ही भरा हुआ है और तो कोई पवित्र वस्तु है नहीं, इसलिये किसी कवि ने एक शेर लिखा है —

भूलना नहीं यारों दुनियाँ की खुशनुमाई पर,
हैं वर्क चाँदी के लगे गोबर की मिठाई पर।।

हे यारों! हे मित्रों! दुनिया की, इस शरीर की सुन्दरता पर भूल नहीं जाना, ये मीठे लगते है अच्छे लगते हैं देखने में शरीर सुन्दर लगते हैं परन्तु ये चमड़े से मढ़े हैं इसलिये इनकी मलिनता ढकी हुई है और दूसरे हमारे तुम्हारे आत्मा के इसमें रहने से ये सुन्दर लगते हैं, अच्छे लगते हैं, चमकते हैं और यदि आत्मा निकल जाय तो सुन्दर नहीं लगेंगे, फिर मुर्दा तो भयंकर ही है। तो हमारा तुम्हारा जो चेतन आत्मा है ये ही सुन्दर है शरीर सुन्दर नहीं है। तो **'माता पित्रोत्मलोत्भूत्वा मलमांसोमयं वपुः, त्यजेत् चाण्डालवत्दूरं ब्रह्मीभूय सुखी भव'** ये वेद मंत्र है— चाण्डाल के समान इसका त्याग कर दो जैसे चाण्डाल को छूकर के कोई स्नान करता है उसको छूता नहीं है और अपनी आत्मा को ब्रह्म रूप जानो और सुखी हो जाओ क्योंकि आत्मा तो सुख स्वरूप है ही **'ब्रह्मीभूय सुखी भव'**, और जो अपनी आत्मा को नहीं जानता शरीर में ही अहं भाव करता है—देहोऽहं, स्त्रीहोऽहं तो वह तो चाण्डाल का भी बाप है। कहो कैसे? चाण्डाल तो घंटे दो घंटे या ज़्यादा से ज़्यादा चार घंटे कूड़ा कबाड़, झाड़ू बहाड़ू या मल मूत्र का काम करता है, टोकरी में भर के फेंक आता है परन्तु मैं ही ये मल-मूत्र की टोकरी हूँ, मैं ही मल-मूत्र हूँ ऐसा चाण्डाल नहीं मानता है। कोई भी चाण्डाल फेंक करके और स्नान करके फिर शुद्ध हो जाता है पर मल-मूत्र को अपना स्वरूप तो नहीं मानता है और इस अज्ञानी जीव ने मल-मूत्र का स्वरूप जो देह है इसको अपना ही स्वरूप मान लिया है इसलिये मेहतर का भी बड़ा भाई है। कोई मेहतर ऐसा नहीं मानता कि मैं ही मल-मूत्र स्वरूप हूँ क्योंकि भीतर तक इसमें मल-मूत्र ही भरा हुआ है शुद्ध चीज़, पवित्र चीज़ इसमें कुछ है नहीं। जैसे काला कोयला होता है वो भीतर तक काला होता है उसको कितना भी साबुन सोडा लगा के गंगाजल से धोओ परन्तु उसका कालापन नहीं जाता। ऐसे ही ये शरीर की मलिनता नहीं जाती है, रोज़ स्नान करते हैं तो ऊपर ऊपर की मलिनता थोड़ी जो पसीना है, धूलि गर्दा है बस यही छूट जाता है पर भीतर की मलिनता तो नहीं जाती है, भीतर की मलिनता तो नहीं धुलती है। कैसे शुद्ध किया जाय भीतर? काला कोयला यदि ऊपर ऊपर से काला होता तो साबुन सोडा लगाके गंगाजल से धोने से उज्ज्वल हो सकता था पर जब वो भीतर तक काला है तब कैसे वो उज्ज्वल होगा? कितना भी साबुन सोडा लगाओ और गंगाजल से धोओ पर वो उज्ज्वल नहीं होने का। है कोई संसार में उपाय काले कोयले को उज्जवल बनाने का? तो ऋषियों ने एक उपाय निकाला है वो क्या है जो काले कोयले को उज्ज्वल बना दे? कहा जिसके वियोग से ये कोयला काला हुआ है उसी का संयोग करा दिया जाय। किसके वियोग से काला हुआ है? अग्नि के, तो अग्नि के साथ योग माने संयोग करा दिया जाय, अग्नि में डाल दिया जाय तो तुरन्त ही उसका सब कालापन जल जायेगा और उज्ज्वल विभूति बन जायेगी तब तो शंकरजी भी उसको अपने अंग में लगा लेते हैं, चिता माने सब काष्ठ कोयला सब जल जाता है, मुर्दा भी जल जाता है, अपवित्र है परन्तु सब जल गया तो वो ही राख रह गई विभूति, शंकरजी भी उसको लगा लेते हैं, कालापन चला गया। ऐसे ही ये माया देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण और अज्ञान

काला कोयला ही है, घोर अज्ञान अंधकार ही है। यदि ज्ञानरूपी अग्नि से जला दिया जाय, भस्म किया जाय, इसके साथ संयोग हो जाय तो ये भस्म हो जायेगा।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन,
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।। BG - 04.37 **।।**

अर्जुन! ज्ञानरूपी अग्नि देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण और इनका कारण अज्ञान सबको भस्मसात् कर देता है। जब भस्म ही हो गया तो मलिनता कहॉ रहेगी? जैसे निद्रा से स्वप्न हुआ तो जैसे निद्रा अज्ञान रूप है स्वप्न भी अज्ञानरूप है और निद्रा टूटी और जागृत का ज्ञान हुआ तो जागृत के ज्ञानरूपी अग्नि से स्वप्न भस्मीभूत हुआ, ढूँढे भी नहीं मिलता है भस्म हो गया। तो अर्जुन ! ये जागृत जगत भी निद्रा का ही कार्य है। अपने स्वरूप आत्मा का जब ज्ञान होता है तो ये जागृत का सपना भी खत्म होता है, भस्म होता है ज्ञानाग्नि से, मिथ्या हो जाता है। जब अज्ञान ही, देह इन्द्रिय ये सब भस्म हो गये तो पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म, कर्म कहॉ बचेंगे? वो भी भस्म हो जायेंगे। तो भस्म होकर क्या होंगे? बोले तद्रूप हो जायेंगे। जैसे सूर्य के प्रकाश से, जब सूर्य उदय होता है तो रात्रि का अन्धकार भस्म हो जाता है पर भस्म हाकर के कहॉ जाता है? कहा प्रकाशरूप ही हो जाता है और तो कहीं भाग के जाता नहीं है। ऐसे अज्ञान सहित अज्ञान का परिवार सारा संसार ज्ञानाग्नि से भस्म होता है तद्रूप हो जाता है, यही एक उपाय है। जब से विलग हुआ है ये जीव उसी में फिर मिल जाय।

जब से जीव हरि से बिलगान्यो, तब से देह गेय निज जान्यो।।
माया बस स्वरूप बिसरायो, तेहि कारण दारुण दुःख पायो।।
आनंद सिन्धु मध्य तौ बासा, बिन जाने कत मरत पियासा।।

तो जीव का वियोग जब से हुआ है तब से ये माया के वश होकर के नाना प्रकार के दुःख भोग रहा है। तो ज्ञान से क्या होता है कि अज्ञान भस्म हो जाता है तो अज्ञान का कार्य फिर कहॉ रहेगा? वो भी भस्म हो जाता है। यद्यपि अज्ञान का कार्य देह इन्द्रिय मन बुद्धि थोड़ी देर दिखाई पड़ता है माने रहता है कुछ काल तक, उसको प्रारब्ध कहते हैं। प्रारब्धवश ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि बने रहते हैं पर अज्ञान तो ज्ञान से नष्ट हो गया है। तो अज्ञान जब मूल ही कट गई तो डाली शाखा पत्ते कैसे बने रहते हैं थोड़ी देर? कहा किसी वृक्ष की जड़ काट दो तो भी थोड़ी देर तो हरा भरा रहता ही है फिर सूख जायेगा, इसी प्रकार से इस शरीर का जो मूल है अज्ञान वो तो कट गई है पर थोड़ी देर तक ये हरा भरा रहता है इसको प्रारब्ध कहा है और अविद्या-लेश भी कहा है। जैसे बर्तन से घी निकाल लिया तो थोड़ी सी चिकनई उसमें लेशमात्र लगी रह जाती है इसको अविद्या-लेश कहते हैं, प्रारब्ध कहते हैं क्योंकि ये पहले से बन चुका है और ज्ञान अब हुआ है, प्रारब्ध पहले से बन चुका है इसलिये **'प्रारब्ध कर्मणाम् भोगादेव क्षया'**— जितने कर्मों का भोग इस शरीर से होना है उतने कर्मों का भोग होकर के फिर ये क्षीण हो जायेगा **'प्रारब्ध नाशात् प्रतिभान नाशः'**—प्रारब्ध के नाश से प्रतिभान माने प्रतीति का भी नाश हो जायेगा। दृष्टान्त देते हैं — महाभारत के युद्ध में जब ब्रह्मास्त्र चलते थे तो दूसरों के रथ भस्म हो जाते थे, ब्रह्मास्त्र से, अग्न्यास्त्र से, अग्निबाण, ब्रह्मबाण से रथ जल जाते थे। तैसे अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से अर्जुन का भी रथ भस्म हो गया था परन्तु श्रीकृष्ण ने युद्धारम्भ के पहले ही ये संकल्प किया था कि मैं इसी एक रथ से पूरा युद्ध करूँगा तो श्रीकृष्ण के संकल्प के कारण वो जला जलाया रथ भी और घोड़े भी वैसे ही सबको प्रतीत होते रहे क्योंकि 'सत्य संकल्प ईश्वरः'—ईश्वर का संकल्प सत्य होता है और जब युद्ध समाप्त हुआ और अपने शिविर में आये भगवान तब अर्जुन को कहा हे अर्जुन! अब तुम रथ से उतर जाओ। अर्जुन ने कहा रोज़ तो पहले आप उतरते थे और पीछे मैं उतरता था, आज आप कहते हो तुम पहले उतर जाओ तो इसका क्या कारण है? भगवान ने कहा तुम पहले उतर जाओ फिर कारण मालूम हो जायेगा, अर्जुन उतर गया। ज्यों ही भगवान ने उस रथ को छोड़ा तो अर्जुन के सामने देखते देखते उसमें आग लग गई, वो भस्म हो गया क्षणमात्र में, बड़ा आश्चर्य हुआ। अर्जुन ने कहा प्रभो कोई आग नहीं, अग्निबाण नहीं ये कैसे

भस्म हो गया? तो भगवान ने बताया कि अश्वत्थामा के ब्रह्मबाण से ये पहले ही भस्म हो चुका था पर मेरा संकल्प था कि इसी रथ से पूरा युद्ध करूँगा तो मुझ ईश्वर के संकल्प के कारण ये वैसा ही दीखता रहा। मेरा संकल्प इसी समय तक था पूरा हो गया, तुम बैठे रहते तो तुम भी भस्म हो जाते मेरे रथ छोड़ने से इसीलिये मैंने तुमसे कहा तुम पहले उतर जाओ। तो ये जो शरीर रूपी रथ हैं संसार भर के शरीर ये रथ हैं और जितने भी कर्म हैं, प्रारब्ध भोगने के लिये बहुत से संचित कर्म हैं उनमें से जितने कर्मों को भोगने के लिये ये शरीर रूपी रथ ईश्वर के संकल्प से मिला है क्योंकि ये सब शरीर ईश्वर ही देते हैं जीवों के कर्मों के अनुसार कि इतने कर्मों का भोग इस शरीर से हो जायेगा। संचित कर्म बहुत हैं उनमें से जो तीव्र पुण्य या पाप भये, फल भोगने के सम्मुख आये हैं उतने कर्मों का फल भोगने के लिये ये शरीर दिया है भगवान ने तो उतने कर्मों का फल तो भोगना अनिवार्य है क्योंकि ईश्वर का संकल्प है। अब यहाँ बीच में ही ईश्वरकृपा, गुरुकृपा, वेदकृपा से ब्रह्मज्ञान हो गया और ईश्वर का संकल्प अभी कुछ दिन का और है इस शरीर के रहने का माने जितने कर्मों का फल भोगना है उतने दिन रहेगा इसलिये ज्ञानाग्नि से ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि सभी जल गये हैं परन्तु ईश्वर के संकल्प वशात् ये वैसे के वैसे दिखाई पड़ते हैं।

आत्मानँ रथिनं विद्धि शरीरँ रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणी हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।

कठोपनिषद में इस शरीर को रथ का रूपक देकर समझाया है—ये शरीर रथ है और आत्मा रथी है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं और विषय पथ हैं मार्ग हैं, इन्हीं में ये रथ दौड़ता रहता है विषयों में। तो ये जला जलाया ही दीखता रहता है थोड़े दिन के लिये और जब प्रारब्ध भोग पूरा हो जाता है, ईश्वर का संकल्प पूरा हो गया तो ये तो पहले से ही ज्ञानाग्नि से भस्म हो ही चुका है। जैसे भुने हुए बीज का फिर जन्म नहीं होता है, गेहूँ जौ चना यदि भूँज दिया जाय तो उत्पत्ति उसकी नहीं होगी। वो गेहूँ चना चबाने के काम तो आ जायेगा, क्षुधा की निवृत्ति तो थोड़ा कर सकता है पर बोने के काम में नहीं आयेगा, उसका अंकुर जल चुका है। ऐसे ही ज्ञानियों के शरीर भुने हुए बीज के समान हो गये हैं इनका जन्म आगे नहीं होगा क्योंकि अज्ञान ही मूल था अंकुर देने के लिये और सूक्ष्म शरीर था। तो अज्ञान तो जल गया है ज्ञानरूपी अग्नि से, सूक्ष्म शरीर भी भस्म हो गया है, स्थूल शरीर भी भस्म ही हुआ है अब ये भुना भुनाया वैसे का वैसा दिखाई पड़ रहा है क्योंकि अंकुर जल गया है। आगे जन्म तो होगा नहीं परन्तु ये जब तक है प्रारब्ध तक तब तक ये दूसरों के लिये देह इन्द्रिय मन बुद्धि का उपयोग कर सकते हैं, दूसरे को ज्ञान दे सकते हैं। अपना काम तो इनका हो गया, ज्ञान हो गया अब अपने काम के तो ये हैं नहीं पर इन देह इन्द्रिय मन बुद्धि से यदि दूसरे का काम बन जाय तो अच्छा है, यही सोच करके ज्ञानीजन दूसरों को उपदेश देते हैं। इस शरीर से जितना जिसका हित हो जाय, कल्याण हो जाय उतना ही अच्छा है नहीं तो अब तो आने वाले हैं नहीं, अतः प्रारब्ध को मानना पड़ता है और नहीं तो गुरु परम्परा भी नहीं चलेगी यदि ये प्रारब्ध नहीं माना जायेगा, क्यों? ज्ञान होते ही स्थूल शरीर भी भुने हुए बीज के समान भी नहीं रहेगा बिल्कुल राख हो जायेगा, दूसरे गुरु संसार में रहेंगे नहीं ज्ञान हुआ और खत्म हो गये ।तो भगवान नारायण से लेकर के जो गुरुओं की परम्परा है —

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च,
व्यासं शुकं गौड़पदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्,
श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्,
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद् गुरूरुन्संततमानतोस्मि।।

और अब तक के जितने गुरु हैं ये परम्परा के अनुसार, तो ज्ञान होते ही यदि ये सबके शरीर यदि तुरन्त भस्म हो जाते तो दूसरों को उपदेश देने वाला बचता ही कौन फिर? इसलिये प्रारब्ध मानना पड़ता है और ईश्वर का संकल्प है, ईश्वर का संकल्प झूठा नहीं होता है। उतने कर्मों का फल भोग कर ही ये शरीर गिर जायेगा, स्थूलशरीर गिर जायेगा और सूक्ष्मशरीर यहाँ ही विलीन हो जायेगा और कारणशरीर तो अज्ञान था वो तो उसी समय नष्ट हो गया था जब ज्ञान हुआ था, भस्म हो गया था।

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैवसमविलीयन्ते।।

क्योंकि उसके प्राणों का फिर उत्क्रमण नहीं होता है, यहाँ ही वो ब्रह्मरूप से लीन हो जाते हैं और स्थूलशरीर तो खत्म हो गया। कारणशरीर तो जब ज्ञान हुआ वो अज्ञानरूप था वो उसी समय नष्ट हो गया । तो तीन प्रकार के कर्म बताये गये हैं—संचित, क्रियमान और प्रारब्ध। अनंतानंत जन्मों के जो कर्म संचित हैं, इकट्ठा हैं वो ज्ञान से भस्म हो जाते हैं।

अहं ब्रह्मेति विज्ञानात् जन्मकोटि शतार्जितं,
संचितं विलयं यान्ति प्रबोधात्स्वप्न कर्मवत्।

अनंत जन्मों के अर्जित जो संचित कर्म हैं वो ज्ञान होते ही सब नष्ट हो जाते हैं कोटि कोटि के संचित कर्म भस्म हो जाते हैं, **संचितं विलयमयान्ति** संचित कर्मों का विलय होना ही भस्म होना है, कैसे? **प्रबोधात्स्वप्न कर्मवत्** जैसे स्वप्न में अनेक पुण्य किया अथवा पाप ही किया जब जाग पड़ा तब? तो स्वप्न के कर्म खत्म हो गये, वो फल क्या देंगे? वो रहे ही नहीं। वो देह इन्द्रिय मन बुद्धि भी नहीं रहे स्वप्न वाले, कर्म भी न रहे।

यत्कृतंस्वप्नवेलायां पुण्यंवा पापमुल्लोणम्,
सुप्तोस्थितस्य किंतत्स्यात् स्वर्गाय नर्कायवा।।

स्वप्न में पुण्य किया अथवा पाप ही किया पर जब स्वप्न से जग पड़ा तो उस जगे हुए पुरुष को स्वप्न के पुण्य पाप कहो स्वर्ग देंगे कि नर्क देंगे? न स्वर्ग देंगे न नर्क देंगे, वो तो झूठे ही थे। ऐसे ही स्वप्न के समान ये सब अनंत कल्पों के पाप पुण्य सब नष्ट हो जाते हैं ज्ञान होते ही, तब सपना जाग गया अपने स्वरूप में ये सब खत्म हो गये। अब जो क्रियमाण कर्म हैं, संचित तो खत्म हो गये ज्ञान होते ही भला, जाग गया न अपने स्वरूप में, तो सपना था ये सब खत्म हो गये। अब दो रह गये न! क्रियमाण और प्रारब्ध, प्रारब्ध तो भोग से नष्ट हो जायेंगे जब भोग पूरा हो जायेगा तो वो नष्ट हो जायेंगे और क्रियमाण, कहा क्रियमाण इसप्रकार से नष्ट होगा—देहाभिमान न होने से, मैं देह इन्द्रिय मन बुद्धि हूँ ऐसा अभिमान न होने से, ये क्रियमाण कर्म होंगे ही नहीं क्योंकि देह इन्द्रिय मन बुद्धि से ये अलगा लेगा अपने को, इनमें अहं भाव नहीं रहेगा तो कर्तापना कहाँ रहेगा? अरे मैं स्त्री हूँ पुरुष हूँ, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हूँ तब तो कर्म लागू होंगे कि मैं क्षत्रिय वैश्य के कर्म करूँ। जब शरीर से मैंने अपने को अलग जान लिया है, मैं द्रष्टा साक्षी मात्र हूँ, मुझमें कर्म हैं ही नहीं अकर्म तत्त्व हूँ। तो कर्तापन के अभिमान न होने से ये क्रियमाण कर्म ज्ञानी के होंगे ही नहीं। और अज्ञानी के होंगे क्योंकि वो मानता है मैं स्त्री हूँ पुरुष हूँ पति हूँ पत्नी हूँ, तो ये कर्म लागू हो जायेंगे। तू पति है तो भाई पति का कर्म निभा, तू पत्नी है तो पत्नी का कर्म निभा, तू ब्राहमण है क्षत्रिय है तो भाई ब्राहमण क्षत्रिय के कर्मों को कर। इस शरीर में हैं सब कर्म इन्द्रिय मन बुद्धि में और जिसने अलगा लिया है, द्रष्टा साक्षी मान लिया है कि इस शरीर में मैं रहता हूँ और द्रष्टा साक्षी मात्र हूँ मेरा कोई इससे सम्बन्ध नहीं है। **अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः, उभयो अन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते।।** इस मलिन देह की मलिनता या पुण्य-पापरूपी कर्म मुझको स्पर्श नहीं करते हैं, द्रष्टा-साक्षी मात्र रहता हूँ, निर्मल ही रहता हूँ, सदा शुद्ध हूँ। तो देही तो नित्य शुद्ध निर्मल होने से उसकी शुद्धि करना नहीं है और जो देह मलिन है वो ज्ञानरूपी अग्नि से अज्ञान तत्काल सब स्वप्नवत् भस्म हो गया जैसे जागने से स्वप्न जगत भस्म हो जाता है।

यस्य नाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते,
हत्वापिसर्वान्लोकान् न हन्ति न निबध्यते।।

जिसका देह में अभिमान नहीं है तीनों लोकों को मार करके भी वो नहीं मारता है, वो कर्मों का कर्ता ही नहीं है।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन,
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।। BG - 04.37 ।।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते,
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।। BG - 04.38 ।।

हे अर्जुन! ज्ञान के समान नि:संदेह इस संसार में और कोई पवित्र वस्तु नहीं है। ज्ञानरूपी आत्मा के रहने से अपवित्र शरीर भी पवित्र जैसा लगता है पर ज्ञान कभी भी अपवित्र नहीं होता अपवित्र शरीर में रह करके भी क्योंकि सम्बन्ध नहीं होता है, स्पर्श नहीं होता है। इसलिये ज्ञानात्मा की तो शुद्धि करना ही नहीं है वो तो नित्य शुद्ध है। अर्जुन! **तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति,** फिर कर्म और उपासना के द्वारा, निष्काम कर्म करेगा और उपासना करेगा भक्ति करेगा ये योग है—कर्मयोग और भक्तियोग। श्रवण, मनन, निदिध्यासन करेगा तो समय पर जब योग की सिद्धि होगी तब ज्ञान होगा और समय पाकर के जहाँ साधन सिद्ध हुआ अपनी आत्मा को ये जान ही लेगा, ज्ञान हो ही जायेगा क्योंकि समय पर ही फल लगते हैं पहले नहीं। तो कर्म-उपासना के द्वारा मल-विक्षेप दूर हो जायेगा इन्हीं में समय लगेगा और फिर ज्ञान होते ही अज्ञान दग्ध हो जायेगा। आत्मा को विन्दति (प्राप्त) हो जायेगी, फिर आत्मा-परमात्मा का एकत्व हो जायेगा।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 21 - VOICE 09

२८

अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्,
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना।। BG - 04.24 **।।**

हे अर्जुन! एक ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं, यही यथार्थ ज्ञान है, ज्ञानियों की यही दृष्टि है, एक अद्वितीय ब्रह्म है **'एकमेवाद्वयंब्रह्म नेहनानास्ति किंचनम्'**, अर्जुन! एक ही अद्वितीय ब्रह्म है दूसरा नानात्व कुछ है ही नहीं। ब्रह्म को ही यज्ञ कहते हैं दूसरा कुछ यज्ञ नहीं है। **'यज्ञौ हि विष्णुः'**, व्यापक ब्रह्म को यज्ञ कहते हैं, विष्णु से भिन्न दूसरा कुछ है ही नहीं। हे अर्जुन! जो अर्पण है वो ब्रह्म ही है और हवि भी ब्रह्म ही है, अग्नि भी ब्रह्म ही है, ब्रह्मरूपी अग्नि में जो हवन किया जाता है वो भी ब्रह्म है और जो हवन करता है वो भी ब्रह्म ही है। ये ब्रह्म को ही वो प्राप्त होता है, कर्म भी ब्रह्म है और समाधि भी ब्रह्म ही है दूसरा कुछ है नहीं अर्जुन! ये ही यथार्थ ज्ञान दृष्टि है। अब अर्जुन तुम दृष्टान्त से समझो — जैसे जल की लहरें जल ही हैं, जल से भिन्न लहर फ़ेन बुलबुले ये नाम मात्र हैं **'वाचारम्भणम् विकारो जलमेव सत्यम्'**, ये तो वाणी का विकार मात्र हैं जल से भिन्न कुछ है ही नहीं। लहरों की कोई गिनती नहीं की जाती है, झूठी चीज़ों की कोई गिनती नहीं की जाती है, सत्य जल की ही गिनती की जाती है उसी की गिनती हो भी सकती है। लहरों की गिनती ही नहीं हो सकती, एक उत्पन्न होती है चलते चलते उधर लय हो जाती है इतने में और दो तीन चार लहरें उत्पन्न होती हैं फिर उधर लय होती जाती हैं। झूठी ही वायु निमित्त से ये जल में तरंगों का आभास मात्र होता है, हैं नहीं और जल में दिखाई पड़ती हैं मिथ्या इसलिये जल के ज्ञाता को जल से भिन्न दूसरी कोई चीज़ दिखाई नहीं पड़ती है। लहर नाम की कोई चीज़ है ही नहीं, जिसको लहर कहते हैं वो जल ही है। लहर को पकड़ो तो जल ही हाथ आता है, यदि लहर नाम की कोई वस्तु होती तो लहर भी हाथ के पकड़ में आ जाती परन्तु लहर नाम की कोई वस्तु ही नहीं है, वस्तु तो जल ही है। सत्य वस्तु ही पकड़ में आती है झूठी नहीं। जल ही सत्य है वही हाथ में पकड़ में आता है, लहर कुछ है ही नहीं पकड़ में आवे तो क्या आवे? ऐसे ही हे अर्जुन —

मय्यखण्डसुखाम्बुधौ बहुधा विश्ववीचयः
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामारुतविभ्रमात्।।

हे अर्जुन! मुझ अनंत अखण्ड सुख सिन्धु में माया रूपी पवन के वेग से अनंत कोटि ब्रह्माण्ड रूप ये लहरें **उत्पद्यन्ते**, उत्पन्न होती हैं पुनः **विलीयन्ते**, मुझ सुख-सिन्धु आनंद-सिन्धु मुझमें ही विलीन हो जाती हैं तो मैं ही एक सत्य हूँ। मायारूपी पवन जब चलती है तब लहरें उठती हैं, जब माया शान्त भयी वायु शान्त भई तो लहरें मिट जाती हैं इसलिये मैं ही एक सत्य हूँ। ये नामरूप संसार, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड ये सब लहरें मिथ्या ही प्रतीत होती हैं।

आनंदाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
आनन्देनजातानि जीवन्ति,
आनंदम्प्रयन्त्यिभसंविशन्ति

हे अर्जुन! सच्चिदानंद आनंदसिन्धु से ही ये सब भूत प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनंदसिन्धु में ही रहते हैं पुनः आनंदसिन्धु में लय हो जाते हैं। ये मिथ्या वस्तु लहरें केवल प्रतीति मात्र हैं, आनंदसिन्धु ब्रह्म ही सत्य है, सत्य सदा रहता है। लहरें नामरूप जगत ये तो केवल थोड़ी देर के लिये प्रतीति मात्र हैं, हैं नहीं। इस मिथ्या प्रतीति को ही माया कहते हैं, भ्रम कहते हैं, अध्यास कहते हैं। आत्मा अधिष्ठान है, आत्मा ही ब्रह्म है **'अयं आत्मा ब्रह्म'** अर्जुन! हमारा तुम्हारा आत्मा ही ब्रह्म है, 'सो अयं आत्मा' और वो जो ब्रह्म है सोई हमारा तुम्हारा स्वरूप आत्मा है ऐसा जानो। आत्मा से भिन्न कुछ है नहीं अर्जुन! जैसे माटी से उत्पन्न होने वाले घट मठ आदि माटी से भिन्न नहीं हैं —

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं
मृन्मयं विज्ञात ँस्याद्वाचारम्भणं
विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् (छा०उ०)

हे सौम्य! जैसे एक माटी के पिण्ड को जान लेने मात्र से संसार भर के घट-मठ जाने जाते हैं क्योंकि घट-मठ आदि जो नाम हैं ये वाणी में ही सब विकार हैं और जो वस्तु है वो तो माटी ही है **'मृत्तिकेत्येव सत्यम्',** माटी ही सत्य है। जैसे अग्नि से उत्पन्न होने वाली चिन्गारियाँ, ज्योतियाँ अग्नि से भिन्न कुछ हैं ही नहीं। अग्नि से चिन्गारियाँ उत्पन्न होती है, ज्योतियाँ उत्पन्न होती है पुनः अग्नि में लीन हो जाती हैं तो अग्नि ही सत्य है, ये चिन्गारियाँ झूठी प्रतीति मात्र हैं। हे अर्जुन! जैसे सुवर्ण में सुनार आभूषणों की कल्पना करता है, नामरूप की कल्पना करता है—मुकुट कुण्डल कंठा काँछी कंगन अँगूठी, इनकी कल्पना अपने मन में करता है और अपनी मानस कल्पना को सोने में वो आकार बना देता है और उनका नाम रख देता है मुकुट कुण्डल कंठा काँछी कंगन अँगूठी। तो नामरूप की कल्पना सोने में सुनार ही करता है, वास्तव में सोने में नामरूप हैं नहीं। मुकुट कुण्डल कंठा तीनों काल में सोने में नहीं हैं परन्तु कल्पित चीज़ तो कुछ होती नहीं है सोना ही सत्य है, वो तो मन की कल्पना है जो नामरूप को गढ़ दिया। इसलिये सुवर्ण के ज्ञाता को सुवर्ण से भिन्न मुकुट कुण्डल कंठा कोई चीज़ है ही नहीं और न सुवर्ण से अलग करके कोई दिखा सकता है, सुवर्ण निकाल लो फिर मुकुट कुण्डल कंठा कुछ नहीं है, सोना ही है। अनेक रूप तो सुनार ने मन से कल्पना करके गढ़ दिया इसलिये ज्ञानी की दृष्टि में सुवर्ण से दूसरी सत्य वस्तु है ही नहीं। वो सुनार की मानस कल्पना है, नामरूप आभूषण तो मिथ्या हैं। सुनार ने सोना नहीं बनाया सोने में नामरूप की केवल कल्पना ही किया है, कल्पित वस्तु सब मिथ्या ही हुआ करती है सत्य नहीं इसलिये **'स्वर्णमेव सत्यं'** स्वर्ण ही सत्य है। कथा है — कोई सेठ गणेशजी का भक्त था, बहुत धन था तो सोने के गणेश सुनार से बनवाया और सुवर्ण का ही मूषा वाहन भी बनवाया और गणेशजी की नित्य पूजा करता था भाव-भक्ति से। काल पाकर के सेठ को ग़रीबी आ गई उसने सोचा अब ये गणेशजी को और मूषा को बेच दूँ तो कुछ धन आ जायेगा तो कुछ खर्चा पानी चलेगा तो सर्राफ़ के पास ले गया। सर्राफ़ ने तौला तो पाँच पाचँ तोले के वो गणेशजी और मूषाजी थे तो दोनों की क़ीमत बराबर किया। सेठजी ने कहा तुमने गणेशजी और मूषाजी को एक ही क़ीमत कर दिया? कहाँ गणेशजी और कहाँ उनका वाहन मूषा! सर्राफ़ ने कहा मैंने गणेशजी और मूषा को नहीं खरीदा है, मैंने तो सोने की खरीद किया है। मैं सर्राफ़ हूँ सोना खरीदता हूँ गणेश और मूषा वाहन नहीं खरीदता, तुम ले जाओ अपने गणेश और मूषा को, मुझे तो सोना ही चाहिये। अब ये सोना निकाल लिया गया तो गणेश और मूषा कहाँ रहेंगे? वो कल्पना मात्र थे। तो सर्राफ़ की दृष्टि में एक सुवर्ण ही हुआ करता है। ऐसे ही ज्ञानी की दृष्टि में मुकुट कुण्डल कंठा काँछी कंगन अँगूठी में एक सुवर्ण दृष्टि होती है। सज्जनों! ज्ञानी चराचर जगत को सुवर्णरूप ब्रह्म देखते हैं और ये नामरूप स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र मनरूपी सुनार की कल्पना हैं, अनेक प्रकार के ये नामरूपों को मन ने गढ़ा है। कैसे जाना जाय कि ये **'चराचरं भाति मनो विलासं'** चराचर जगत मन का ही विलास है, मन की कारीगरी है? कहा अन्वय-व्यतिरेक से समझो। जब मन होता है तो नामरूप जगत रहता है मन का ही गढ़ा हुआ, जाग्रत स्वप्न का संसार नामरूपमय है तो मन ही जाग्रत-स्वप्न में है तो मन ने नामरूप जगत को जाग्रत-स्वप्न में गढ़ लिया और जब मन नहीं रहता तब मूर्छा में, मरण में,

सुषुप्ति में, समाधि में जगत भी नहीं है, इससे जाना जाता है इस अन्वय-व्यतिरेक से, अन्वय माने है व्यतिरेक माने नहीं है, तो जब मन है तब नामरूप संसार है और मन नहीं है तो नामरूप संसार नहीं है। यदि मन ने ये संसार न गढ़ा होता तो मन के न रहने पर भी संसार रहना चाहिये क्योंकि मैं द्रष्टा तो सदा ही रहता हूँ। मेरा अभाव तो कभी होता ही नहीं है क्योंकि मन के न रहने पर यदि संसार होगा तो मैं देखूँगा अवश्य परन्तु मैं देखता हूँ कि जब मन रहता है तब जाग्रत-स्वप्न का संसार होता है और जब मन नहीं होता तो जाग्रत-स्वप्न का संसार भी नहीं होता है। इससे जाना जाता है कि चराचर जगत मन का विलास मात्र है क्योंकि मैं ही साक्षी हूँ इस बात का। तो मूर्छा में मन नहीं रहता, सुषुप्ति में मन नहीं रहता, समाधि में मन नहीं रहता तब संसार भी नहीं रहता, इसको व्यतिरेक कहते हैं, न रहने को व्यतिरेक कहते हैं पर रहने को अन्वय कहते हैं। तो जब मन है तब संसार है, जब मन नहीं है तब संसार नहीं है, इससे जाना जाता है कि ये संसार मानस कल्पना है इसलिये सत्य नहीं है, कल्पित वस्तु कोई सत्य नहीं हुआ करती मिथ्या ही हुआ करती है। जैसे स्वप्न मानस कल्पना है, निद्रा से स्वप्न होता है और मनोराज्य, जागने पर भी मनोराज्य नाना प्रकार के संसार की कल्पना करता है जो मिथ्या होती है ऐसे ही मानस कल्पना होने से ये जाग्रत जगत भी मिथ्या है सत्य नहीं है। मैं ही सत्य हूँ मन को और मन से कल्पित जाग्रत-स्वप्न के संसार को देखने वाला क्योंकि मेरा अभाव कभी होता नहीं, जो सदा रहता है वही सत्य है और जो कभी रहता है कभी नहीं रहता है उसको माया कहते हैं। **'संतो आवे जाय सो माया'** जो आती जाती है उसको माया कहते हैं। मन कभी रहता है कभी नहीं रहता है इसलिये माया है। तो सज्जनों कारण से भिन्न कार्य नहीं हुआ करता है किन्तु कारण ही सत्य हुआ करता है। ज्ञानी की कारण दृष्टि होती है, कार्य कल्पित है इसलिये ज्ञानी की कल्पित दृष्टि नहीं होती, सत्य दृष्टि होती है। तो अर्जुन! ब्रह्म ही एक सत्य है। **'आब्रह्मतृणपर्यन्तौ माया कल्पितं जगत'** ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त जितना भी जगत है वो माया से कल्पित है इसी वास्ते मिथ्या है **'सत्यमेकं परमब्रह्म विदित्वेयं सुखी भव'** सत्य एक परमब्रह्म परमात्मा ही है जो हमारा तुम्हारा स्वरूप है, ऐसे अपने स्वरूप को सच्चिदानन्द ब्रह्म जानकर सुखी भव, सुखी हो जाओ। ये कार्य-कारण भाव में कारण ही सत्य है कार्य मिथ्या है। कारण में कार्य कल्पित है, कारण से उत्पन्न होता है कारण में रहता है पुनः कारण में लीन हो जाता है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्ब्रह्म।

जिससे जगत उत्पन्न होता है जिसमें रहता है व जिसमें लीन हो जाता है अर्जुन! वह ब्रह्म है, वो सच्चिदानंद ब्रह्म हमारा तुम्हारा स्वरूप है। तो सज्जनों ये कार्य-कारणरूप दृष्टि से ब्रह्म का स्वरूप बताया गया। अब अध्यास और अधिष्ठान दृष्टि से बताते हैं — भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! ब्रह्म निर्विकार है उसमें विकार है नहीं इसलिये मन बुद्धि माया और नामरूप जगत ये अध्यास रूप है जैसे रज्जु में सर्प अध्यास है और रज्जु अधिष्ठान है। इसमें कार्य-कारण भाव नहीं बनता, एक अधिष्ठान मात्र ही सत्य वस्तु है और अध्यास भ्रमरूप है माने तीनों काल में है ही नहीं, रज्जु ही तीनों काल में है। रज्जु के अज्ञान से रज्जु को ही अज्ञानी सर्परूप देखता है क्योंकि रज्जु के सिवाय भ्रम स्थल में सर्प नाम की कोई चीज़ है ही नहीं रज्जु ही रज्जु है, तो वो अज्ञान ही सर्प का रूप धारण कर लिया है और जब रज्जु का ज्ञान होता है तो ज्ञान से अज्ञान नष्ट हो जाता है। सर्प तो अज्ञान का ही परिणाम था तो सर्प भी नष्ट हो गया। तीनों काल में रज्जु ही है ऐसा ज्ञान होता है। जब रज्जु में सर्प दीखता था तब भी रज्जु में सर्प नहीं था किन्तु रज्जु ही थी, ऐसे ही —

आत्माज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञानान्न भासते
रज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद्भासते न हि।।

इसी प्रकार से हे अर्जुन! आत्मा के अज्ञान से, आत्मा को सच्चिदानंद ब्रह्म न जानने से ये जगत

भासित होता है, ये अज्ञान का ही परिणाम है नहीं तो तीनों काल में आत्मा ही आत्मा है। जब आत्मा का ज्ञान होता है तो आत्मा ही आत्मा भासता है दूसरी चीज़ नहीं है जैसे रज्जु के अज्ञान से सर्प भासता है और जब रज्जु का ज्ञान हुआ तो सर्प नहीं है। इसके माने तीनों काल में सर्प नहीं है, रज्जु ही सत्य वस्तु सदा है मिथ्या कभी नहीं है। ये अध्यास और अधिष्ठान रूप से आत्मा और जगत का विचार-विवेक है। जगत सर्प के समान है और आत्मा रज्जु के समान है। दोनों रीति से कार्य-कारण भाव से भी कारण से भिन्न कार्य कुछ नहीं है, एक कारण ही सत्य वस्तु है कार्य मिथ्या है, अध्यास-अधिष्ठान भाव से भी एक अधिष्ठान ही सत्य है अध्यास कल्पित है माने एकत्व ही सत्य है, द्वैत है ही नहीं। **सतोवाऽसतोवापि न किंचित्वस्तु जायते,** अर्जुन! सत् हो अथवा असत् हो दोनों की उत्पत्ति नहीं होती है, सत् तो सदा है उसकी उत्पत्ति क्या होगी? और असत् तीनों काल में है ही नहीं तो उसकी उत्पत्ति क्या होगी? रज्जु सदा है उसकी उत्पत्ति क्या होगी? और सर्प कभी नहीं है तीनों काल में उसकी भी उत्पत्ति क्या होगी? इसलिये भगवान कहते हैं—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।। BG - 02.16 **।।**

अर्जुन! सत् का कभी अभाव नहीं है वो तो सदा है और असत् का तीनों काल में भाव नहीं है माने असत् वस्तु तीनों काल में है ही नहीं। ये सत्-असत् का निर्णय भगवान ने किया, सत् सदा है असत् कभी नहीं है। कैसे रज्जु में सर्प की भाँति, स्वप्न द्रष्टा में स्वप्न की भाँति, पुरुष में छाया की भाँति ये दृश्यमान जगत तीनों काल में नहीं है, रज्जु ही सत्य है, पुरुष ही सत्य है, स्वप्न द्रष्टा ही सत्य है स्वप्न मिथ्या है। इस प्रकार से भगवान जो सत् है वही चिद् और आनंद है, सच्चिदानंद को ही ब्रह्म कहते हैं, हे अर्जुन! सोई हमारा तुम्हारा स्वरूप है क्योंकि अपना अभाव कभी किसी ने अनुभव नहीं किया, अपनी ज्ञान दृष्टि का भी अभाव कभी अनुभव नहीं किया।

न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतऽविनाशित्वात्।

द्रष्टा की दृष्टि का कभी अभाव नहीं होता है क्योंकि अविनाशी है, तो हमारा तुम्हारा स्वरूप सदा सच्चिदानंद ब्रह्म ही है दूसरी वस्तु का सर्वथा अभाव है। अर्जुन! ये विवेक-विचार से ही मालूम पड़ता है और जब विचार न करो तो ये संसार सर्प ही सत्य मालूम पड़ता है। **अविचार कृतो बन्धः**, अविचार का किया हुआ ही ये बन्धन है जन्म-मरण का और संसार का। **अतोविचारान्निवर्तते**, इसीलिये विचार से ही ये निवृत्त होता है। अतः ब्रह्म क्या है? जीव क्या है? ईश्वर क्या है? माया क्या है? इसका सदा विचार करना चाहिये, विचार से ही असत् असत् मालूम पड़ता है और सत् सत् मालूम पड़ता है और बिना विचारे तो असत् सत् मालूम पड़ता है और जो सत् चीज़ है लगता है वो है ही नहीं, वो असत् है इसलिये **जीव ईश जगत ब्रह्म सर्वदैः विचारेय**।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 22 - Voice 23

२९

ओ३म् श्री परमात्मने नमः

ओ३म् नाम भगवान के नाम का है, ओ३म् नाम है और भगवान नामी हैं। नाम का प्रयोजन नामी को बताना है तो भगवान का नाम भगवान को बताता है। स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी के जो नाम हैं वो स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी को बताते हैं, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी ये नाम हैं तो ये भी अपने नामी आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी को बताते हैं। जितने भी संसार के नाम हैं जिसका नाम है उस व्यक्ति को बताने के लिये है। भगवान का नाम भगवान को बताता है। भगवान के दो रूप हैं — निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार। जो राम कृष्ण विष्णु शिव शक्ति सूर्य गणेश कच्छ मच्छ वामन वराह नृसिंह आदि जितने भी रूप हैं ये भगवान के अवतार ये शरीर हैं रूप हैं, विश्व-विराट भी भगवान का ही रूप है, ये सब भगवान के सगुण-साकार रूप हैं। सगुण-साकार रूप भगवान अपनी माया से धारण करते हैं, ये व्यवहारिक हैं और निर्गुण-निराकार पारमार्थिक है।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।। BG - 04.06 **।।**

हे अर्जुन! वास्तविक जो मेरा परमार्थ स्वरूप है निर्गुण-निराकार वो अज है माने अजन्मा है, अजन्मा होने से अविनाशी है, सच्चिदानंद स्वरूप है वो मेरा परमार्थ रूप निर्गुण-निराकार है और जीव का भी परमार्थ रूप निर्गुण-निराकार है उसमें भेद नहीं है। जीव और ईश्वर का जो निर्गुण-निराकार है वो एक ही है उसमें भेद नहीं है, सगुण-साकार रूप में केवल भेद है। जो सगुण-साकार रूप है भगवान का तो ईश्वर तो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है अपने सगुण-साकार रूप से और जीव अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान है, सगुण-साकार रूप में यही भेद है। ईश्वर सर्वज्ञ होने से अपने निर्गुण-निराकार स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म को जानता है, माया को भी जानता है, माया में पड़े उस ब्रह्म के पड़े आभास को जानता है, चराचर जगत को जानता है, सब भूत प्राणियों को जानता है, उत्पत्ति पालन संहार करता है इसलिये ईश्वर नित्य मुक्त है पर जीव ईश्वर के निर्गुण-निराकार स्वरूप को नहीं जानता है, सगुण-साकार रूप को जानता है क्योंकि वो नेत्रों का विषय होता है राम कृष्ण आदि के रूप में अवतार लेकर के, ये सगुण-साकार रूप भगवान का है। जीव निर्गुण-निराकार स्वरूप को नहीं जानता है, हॉ! ईश्वर के बताने से निर्गुण-निराकार स्वरूप को भी जान सकता है जो जीव और ईश्वर का एक रूप है। जीव का सगुण-साकार रूप ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण के सहित है, तो अपने भी सगुण-साकार रूप को जीव जानता है और ईश्वर के भी सगुण-साकार रूप को जानता है परन्तु न अपने निर्गुण-निराकार स्वरूप को जानता है ब्रह्मरूप को और न ईश्वर के निर्गुण-निराकार स्वरूप ब्रह्मरूप को जानता है जो जीव ईश्वर का एक रूप है, उस निर्गुण-निराकार स्वरूप में तो भेद ही नहीं है, वो एक अद्वितीय है, **एकमेवाद्वयंब्रह्म नेह नानास्ति किंचन**। तो अपने निर्गुण निराकार स्वरूप को न जान करके जीव इस सगुण-साकार स्वरूप को ही अपना सच्चा रूप मान लेता है। स्त्री का रूप हो चाहे पुरुष का रूप हो अपने को

ये स्त्री पुरुष ही मान लेता है क्योंकि ये ही सगुण-साकार है, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण ही मान लेता है। ये ईश्वर की माया से उत्पन्न होता है पुनः नाश होता है क्योंकि सगुण-साकार सदा नहीं रहता। तो भगवान कहते हैं कि मेरा और जीव का निर्गुण-निराकार स्वरूप एक है, वह अजन्मा ही है और अविनाशी भी है। मैं ही ईश्वर रूप होता हूँ और अपनी माया को वश में करके सगुण-साकार रूप अपनी इच्छा से धारण कर लेता हूँ, **'सम्भवामि आत्म मायया'** अपनी माया से प्रकट होता हूँ। सचमुच में तो निर्गुण-निराकार स्वरूप तो प्रकट हो नहीं सकता, जो माया से प्रकट होगा वो सत्य नहीं होगा वो व्यवहारिक होगा। वास्तव में तो मैं अपने निर्गुण-निराकार स्वरूप से ज्यों का त्यों हूँ निर्विकार हूँ, जन्म लेना तो विकार है न! परन्तु झूठा रूप एक बना लेना अपनी इच्छा शक्ति से माया से, ये सगुण-साकार है और विश्वरूप भी मैं धारण कर लेता हूँ इसलिये सारा विश्व भी मेरा सगुण-साकार रूप है। परन्तु जीव न ईश्वर के निर्गुण-निराकार स्वरूप ब्रह्म को जानता है और न अपने निर्गुण-निराकार स्वरूप ब्रह्म को जानता है, केवल सगुण-साकार रूप को ही ये जानता है। तो जीव अहंता ममता करके ये माया के बन्धन में पड़ जाता है क्योंकि जो अहं भाव है अहं तत्त्व है, अहं तत्त्व का शुद्ध स्वरूप तो ब्रह्म ही है निर्गुण-निराकार परन्तु व्यवहारिक जगत में अहं का प्रयोग शरीरों के लिये भी होता है—मैं जाता हूँ, मैं खाता हूँ, मैं बोलता हूँ और मैं सुनता हूँ। ये तो व्यवहार में ही होगा खाना-पीना आना-जाना, ये सब इन्द्रियों में होगा, कहना-सुनना ये सब सगुण-साकार में इन्द्रियों में ही होगा। भगवान कहते हैं ये सब मेरी माया से प्रकट होता है सगुण-साकार रूप इसलिये ये व्यवहारिक है सदा नहीं रहता है, बनता बिगड़ता रहता है। तो ये ओंकार जो है भगवान के दोनों रूपों को बताता है। अकार-उकार-मकार ओंकार की ये तीन मात्राएं हैं, इन तीन मात्राओं से तीन शरीर बन जाते हैं। 'ओम्' ये एक अक्षर है फिर ये तीन रूप में प्रकट होता है— अकार-उकार-मकार, तीनों मात्रा अलग अलग हो जाती हैं। अकार स्थूलशरीर रूप धर लेता है, उकार सूक्ष्मशरीर बन जाता है और मकार कारणशरीर बन जाता है। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये तीन अवस्थायें बन जाती हैं अकार-उकार-मकार। अकार ये जाग्रत का जगत बन जाता है, उकार स्वप्न के नामरूप बन जाता है, ये आकार धारण कर रहा है न और मकार अपने में सबको लय कर लेता है—सुषुप्ति, ये मकार है। जाग्रत का जगत अकार है, स्वप्न का जगत उकार है। अकार, उकार, मकार ये ओंकार के सगुण-साकार रूप हैं, ओंकार भगवान का नाम है। ओंकार का निर्गुण-निराकार स्वरूप क्या है? वो अमात्र है, मात्रा रहित है। तो ओंकार भगवान के निर्गुण-निराकार स्वरूप को कैसे बताता है? सगुण-साकार को तो बता दिया ओंकार ने। मैं ही माया हूँ, मैं ही प्रकृति हूँ, मैंने ही ये विश्वरूप धारण किया। निर्गुण-निराकार स्वरूप को कैसे बताता है — कि सगुण-साकार जिसको नहीं जानता और जो सगुण-साकार को जानता है वह निर्गुण-निराकार है भगवान का स्वरूप। तो जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को जानता है और जो स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों शरीरों को जानता है वो भगवान का निर्गुण-निराकार स्वरूप है, ईश्वर का भी और जीव का भी। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को जीव भी जानता है ईश्वर भी जानता है। व्यष्टि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को जीव जानता है और समष्टि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को ईश्वर जानता है। वो अखण्ड ज्ञान रूप जो निर्गुण-निराकार स्वरूप है वो जीव ईश्वर का एक है, उसमें भेद नहीं है।

जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचं यत्प्रकाशते,
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति का द्रष्टा साक्षी प्रकाशक ब्रह्म है माने निर्गुण-निराकार स्वरूप ईश्वर का और जीव का भी, वह ब्रह्म मैं हूँ ऐसा जो जानता है तुरन्त वो जन्म-मृत्यु के बन्धन से छूट जाता है,

दु:खों से छूट जाता है, अज्ञानता से मुक्त हो जाता है। वो द्रष्टा साक्षी जो रूप है स्वभाव से मुक्त है। सगुण-साकार रूप प्रणव माया है, ये रोज़ बनते बिगड़ते हैं। इसमें सब प्रकार का व्यवहार होता है। तो सज्जनों! ये जो 'मैं' शब्द है—मैं आता हूँ, जाता हूँ, खाता हूँ, पीता हूँ तो सगुण-साकार शरीर में भी प्रयोग होता है इसका जैसे मैं स्त्री हूँ मैं पुरुष हूँ सब लोग कहते हैं न ये। तो 'मैं' का प्रयोग व्यवहार में भी होता है पर 'मैं' पारमार्थिक है, ये दोनों अहं को जानना चाहिये।

अहं ब्रह्मेति विज्ञानात् कल्पकोटि शतार्जितम्,
संचितंविलयम्यान्ति प्रबोधाः स्वप्नकर्मवत्।।

जो कोई अपने निर्गुण-निराकार स्वरूप को ईश्वरकृपा गुरुकृपा से जान लेता है वो सम्पूर्ण बन्धन से मुक्त होकर के सारे अनंत जन्मों के अच्छे-बुरे कर्म, शुभाशुभ कर्मों को भस्म कर डालता है, तुरन्त जन्म-मरण से छूट जाता है, सारा बन्धन छूट गया। तो सगुण-साकार में भी मैं का व्यवहार करता हुआ अपने निर्गुण-निराकार स्वरूप को नहीं भूलता, उसको दोनों का ज्ञान है। व्यवहार में मैं का प्रयोग करता है तो देह इन्द्रिय मन बुद्धि में—स्त्री मैं हूँ पुरुष मैं हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ क्षत्रिय हूँ वैश्य हूँ शूद्र हूँ— व्यवहार में इस शरीर को मैं बताता है और परमार्थ स्वरूप को जानता रहता है कि मेरा जो निर्गुण-निराकार स्वरूप है वो पारमार्थिक है, वो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री पुरुष सगुण-साकार को देखने वाला है, जानने वाला है, वो बिल्कुल इससे भिन्न है। ईश्वर जीव का एक ही स्वरूप है, जो ईश्वर है सोई जीव है तो ईश्वर जीव का शुद्ध स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म ही है और ये सारा सगुण-साकार रूप व्यवहारिक है, ये माया रचित है। भगवान कहते हैं मैं ही माया से अनेक रूप धरता हूँ, मैं ही माया से राम-कृष्ण शिव-शक्ति सूर्य-गणेश कच्छ-मच्छ वामन-वराह रूप धारण करता हूँ और विश्व-विराट का रूप भी धारण करता हूँ, ये उत्पत्ति नाशवान है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्म।

जिससे जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है और जिसमें लय हो जाता है वह निर्गुण-निराकार स्वरूप है। जैसे सगुण-साकार अग्नि निर्गुण-निराकार स्वरूप से उत्पन्न होती है, निर्गुण-निराकार अग्नि दिखाई नहीं पड़ती उसमें कोई व्यवहार नहीं है, वो अव्यवहार है, एक है, व्यापक है। उसी निर्गुण-निराकार अग्नि से सगुण-साकार अग्नि उत्पन्न होती है ईंधन में, दीपक में, सूर्य में प्रकट होती है ये सगुण-साकार है और उसी निर्गुण-निराकार के आश्रित रहती है ये सगुण-साकार प्रकट अग्नि, और फिर निर्गुण-निराकार में समा जाती है। निर्गुण-निराकार अग्नि सदा एकरस रहती है। ये अग्नि का उदाहरण है, अग्नि के उदाहरण के द्वारा अपने आप को जानो कि मैं ही निर्गुण-निराकार हूँ और मैं ही सगुण-साकार हूँ। मेरा निर्गुण-निराकार स्वरूप अव्यवहार्य है, द्रष्टा साक्षी है। सगुण-साकार रूप में मैं स्त्री-पुरुष मनुष्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हूँ, ये व्यवहारिक है परन्तु ये माया रचित है। निद्रा को माया जानो क्योंकि निद्रा से ही जाग्रत और स्वप्न के शरीर बनते हैं और पुन: निद्रा में लय हो जाते हैं जो ओंकार में मकार का रूप है। मकार से जाग्रत स्वप्न निकलते हैं माने अकार उकार और फिर उसी में लीन हो जाते हैं। निद्रा से ही जाग्रत स्वप्न जगत की उत्पत्ति होती है और निद्रा में ही लय होता है। निद्रा के आगे जो तुरीय तत्त्व वो हमारा निर्गुण-निराकार स्वरूप है। निद्रा माया है, ये कारण शरीर है और जाग्रत स्वप्न कार्य हैं, ये निद्रारूप माया का चमत्कार

है, निद्रा माया मकाररूप है, ये मकार का चमत्कार है, मकार माया है। जाग्रत स्वप्न मकार का चमत्कार है। हमारा तुम्हारा स्वरूप जो निर्गुण-निराकार है वो तो तीनों से परे है, ओंकार से परे है, द्रष्टा-साक्षी मात्र है, व्यापक है इन सब में—जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति में, अकार-उकार-मकार में और अलग भी है आकाश के समान जैसे आकाश सबमें व्यापक है और सबसे अलग भी है, बाहर भी है। तो निर्गुण-निराकार हमारा तुम्हारा स्वरूप जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति में व्यापक भी है और इनसे बाहर भी है। सज्जनों! ये ओंकार एक अक्षर का भगवान का नाम है परन्तु भगवान के दोनों स्वरूपों को बता रहा है क्योंकि नाम का प्रयोजन ही है कि जिसका नाम होवे उसको संदेह रहित बता देवे, कोई संशय न रह जाय। तो ये ओंकार को प्रणव भी कहते हैं, प्रकृति कहते हैं, माया कहते हैं ये ही सब सगुण-साकार रूप धारण करता है, निर्गुण-निराकार स्वरूप तो एक जैसा ही रहता है उसमें कोई विकार नहीं होता है। इस ओंकार को ही **श्री** कहते हैं। श्री नाम लक्ष्मी का भी है, श्री नाम सीता का भी है। ये **परमात्मने नमः** जो कहा गया है ये निर्गुण-निराकार स्वरूप को कहा गया है जो सबसे परे माने जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति से, सगुण-साकार से परे है। निर्गुण-निराकार **पर** है और **आत्मने** हमारा तुम्हारा आत्मा ही है माने हमारा आपका स्वरूप ही है, तीनों से परे और तीनों के भीतर भी। तो इस ओंकार करके, प्रणव करके, माया करके ये हमारे झूठे रूप है सगुण-साकार, निर्गुण-निराकार स्वरूप परम सत्य रूप है। ये सगुण-साकार जो रूप है उस परमात्मा को नमस्कार करता है। नमस्कार करना यही है कि जिससे मैं उत्पन्न हुआ हूँ, जिसमें स्थित हूँ उसी में मेरा लय है ये मेरा नमस्कार है, क्योंकि ये तो निश्चित है कि अग्नि जब उत्पन्न भयी है तो निर्गुण-निराकार में समायेगी ही, क्योंकि सदा न जलती रहेगी। तो हमारे तुम्हारे ये सगुण-साकार शरीर सदा न जीवित रहेंगे, निर्गुण-निराकार में आखिर समायेंगे ही। तो राम कृष्ण आदि शरीर भी अपने निर्गुण-निराकार से प्रकट होते हैं और फिर उसी में समा जाते हैं और ये सारा विश्व-विराट भी इसलिये सत्य वस्तु अंत में शेष रह जाती है। परमात्मा को जो नमन किया तद्रूप हो गये। सज्जनों ये लीला क्षेत्र है भगवान का क्योंकि निर्गुण-निराकार में लीला नहीं होती, खेल नहीं होता। लीला के लिये तो बहुत बनना ही पड़ता है, एक में खेल नहीं होता है अनेक में ही खेल बनता है। सज्जनों ये खेल मात्र है लीला मात्र है सगुण-साकार रूप भला। इतना याद रखना ये ओंकार ने हमको भगवान के सभी दोनों रूपों को बता दिया है, इससे अधिक और कुछ है नहीं। सभी वेदों का मूल है ये ओंकार, सारे वेदों का विस्तार ओंकार ही है, ओंकार ने ही स्वर-व्यंजन रूप सभी वेद शास्त्र पुराण रामायण का रूप धारण किया है माने नाम जितने हैं और जितने रूप हैं ये सब ओंकार ने धारण किये हैं और फिर जहाँ से प्रकट हुआ है ओंकार उसी में समा जाता है। क्योंकि निर्गुण-निराकार से ये ओंकार प्रकट हुआ है फिर निर्गुण-निराकार में समा जाता है। ये ओंकार का अमात्र रूप बताया गया, मात्रा रहित ओंकार। सभी वेद शास्त्र पुराण रामायण का मूल माने बीज ओंकार है। संसार का बीज ओंकार है, संसार वृक्ष है परन्तु ये ओंकार रूप बीज संसारवृक्ष का बीज है, ये कहाँ से प्रकट हुआ है? कहा ये निर्गुण-निराकार से ही प्रकट हुआ है।

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा,
कण्ठं भित्वा विर्निंयातौ तस्मान्मांगलिकावुभौ

सृष्टि के आदि में जब कुछ भी नहीं था तो भगवान के कण्ठ को भेदन करके पहले ओंकार ही प्रकट हुआ, पहले तो ओंकार ब्रह्मरूप ही था इसलिये ओंकार को परा वाणी कहते हैं और जब भगवान की बोलने की इच्छा हुई तो भगवान से ये मन में आ गया तब इसका नाम पश्यन्ति पड़ गया और फिर कण्ठ में आ गया ये ओंकार तब इसका नाम मध्यमा पड़ गया। फिर मुख में आया और मुख से बाहर प्रकट हो गया, बिखर गया संसार के रूप में, मतलब अनेक नामरूप बन गया इसको **बैखरी** वाणी कहते हैं जो संसाररूप में ओंकार प्रकट है, जब कण्ठ में है तब **मध्यमा** कहते हैं, जब मन में है तब **पश्यन्ति** कहते हैं और जो ब्रह्मरूप ही है अभी प्रकट हुआ ही नहीं है उसे

परा वाणी कहते हैं। इस प्रकार से सज्जनों ये ओंकार प्रकट हुआ है बैखरी वाणी के रूप में और ये ब्रह्म को बताता है भगवान का नाम। ओंकार सारा संसार अपना रूप बताता है, सगुण-साकार रूप ये ही है भगवान का ।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 21 - Voice 24

३०

क्रम समुच्चय

* भ0गी0-अध्याय 5 *

सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी से अर्जुन ने पूछा हे भगवन्! आप कभी कर्मयोग की प्रशंसा करते हो कभी ज्ञानयोग की प्रशंसा करते हो —

सन्न्यासं कर्मणा कृष्ण पुनर्योगं च शंससि,
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।। BG - 05.01 **।।**

इन दोनों मे से मेरे लिये जो परम श्रेय हो, कल्याणकारक हो, मुझे वह एक बताओ। श्रीभगवानुवाच — भगवान बोले कि हे अर्जुन! कर्मयोग और सॉख्ययोग दोनों ही कल्याणकारक हैं और दोनों का अन्तिम जो फल है वो भी एक ही है, तो भी प्रथम इस सॉख्ययोग से, ज्ञानयोग से, कर्मों के संन्यास योग से कर्मयोग ही ज़्यादा श्रेष्ठ है क्योंकि जब तक निष्काम कर्मयोग से अन्त:करण की शुद्धि नहीं होगी तब तक सॉख्ययोग में प्रवेश नहीं होगा इसलिये दोनों ही श्रेष्ठ हैं। इसलिये हे अर्जुन! पहले अन्त:करण की शुद्धि के लिये निष्काम कर्म कर लेना चाहिये तब जाकर के ज्ञानयोग में प्रवेश होगा।

सन्न्यास: कर्मयोगश्च नि:श्रेयसकरावुभौ,
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।। BG - 05.02 **।।**

श्रीभगवान बोले — सन्न्यास माने कर्मों का त्याग और कर्मयोग ये दोनों नि:श्रेयस माने मोक्ष को देने वाले हैं। इन दोनों में से कर्मों के त्याग के पहले कर्मयोग ही श्रेष्ठ है क्योंकि कर्मयोग से अन्त:करण की शुद्धि होगी तभी कर्मों का संन्यास तो बाद में ही होगा, त्याग तो बाद में ही होगा पहले नहीं।

श्रेय: स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति,
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।। BG - 05.03 **।।**

अर्जुन! उसको नित्य संन्यासी ही जानो जो न तो किसी से द्वेष करता है और न ही किसी की कांक्षा माने इच्छा ही करता है और द्वन्द्व रहित है। द्वन्द्व कहते हैं दो के जोड़े को, जैसे सुख-दु:ख, मान-अपमान, शीत -उष्ण, भूख-प्यास ये जो साथ में ही एक साथ बोले जाते हैं इनका नाम द्वन्द्व है।

सुख हर्षहिं नहिं दु:ख बिलखाहीं,
दो सम धीर धरें मन माहीं।।

सुख-दु:ख उसको समान है, मान-अपमान समान है, दु:ख में व्याकुल नहीं होता और सुख में हर्षित नहीं होता है। **निर्द्वन्द्वौ हि महाबाहो सुखंबन्धात्प्रमुच्यते**, वह सुख पूर्वक ही जन्म-मृत्युरूपी बन्धन से छूट जाता है।

सॉख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः,
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।। BG - 05.04 **।।**

अर्जुन! सॉख्य माने ज्ञानयोग और योग से कर्मयोग, यहॉ कर्मयोग से निष्काम ही लेना सकाम कर्म नहीं लेना क्योंकि सकाम कर्म तो संसार की प्राप्ति के हेतु हैं उनसे जन्म-मरण से कोई नहीं छूटता है। स्त्री पुत्र धन राज्य स्वर्गादिक लोक, इनकी प्राप्ति के लिये जो कर्म करेगा तो उसको तो ये संसार ही मिलेगा, इससे सकाम कर्म से जन्म-मरण से मुक्ति नहीं मिलती है इसलिये गीता में जहॉ भी भगवान कहेंगे 'कर्मयोग से' वहॉ निष्काम कर्म ही लेना क्योंकि निष्काम कर्म से ही मन के अनंत जन्मों के पापरूपी मलदोष की निवृत्ति होती है, सकाम कर्मों से नहीं होती। सॉख्य और योग दोनों पृथक हैं माने अलग अलग हैं ऐसा बालक माने अज्ञानी लोग ऐसा कहा करते हैं और जो ज्ञानी हैं वे ऐसा नहीं कहते हैं, वो जानते हैं कि दोनों का फल एक ही है। सम्यक प्रकार से एक में जो स्थित हो जायेगा वो दोनों के फल को प्राप्त हो जायेगा परन्तु दोनों मे से एक किसमें स्थित होगा, कर्म में कि सॉख्य में? तो सज्जनों ये तो निश्चित पहले ही बता दिया है कि कर्मयोग के बिना अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होगी तो सॉख्ययोग में कैसे पहुॅचेगा? वो तो वेद की तृतीय कक्षा है सॉख्य। प्रथम कक्षा तो कर्म ही है, फिर दूसरी भक्ति है (यहॉ कर्म और भक्ति को एक ले लेना भला) जहॉ कर्मयोग, भक्तियोग व ज्ञानयोग तीन न बताये हों, केवल दो ही बताये गये हों वहॉ कर्मयोग के अन्तर्गत् भक्तियोग भी आ जाता है। तो कर्मयोग से पहले अन्तःकरण की शुद्धि, भक्तियोग से मन की निश्चलता माने विक्षेप दोष की निवृत्ति, चंचलता की निवृत्ति और फिर विवेक, वैराग्य, षट्क-सम्पत्ति, मुमुक्षुता ये चतुष्ट साधन हों तब जाकर के ज्ञानयोग में स्थित होगा और ये ज्ञानयोग अपने हाथ में है नहीं कर्ता के। कर्ता तो, जिज्ञासु तो कर्मयोग ही कर सकता है और भक्तियोग कर सकता है और विवेक, वैराग्य, षट्क-सम्पत्ति, मुमुक्षुता ये साधन सम्पत्ति इकट्ठा कर सकता है परन्तु ज्ञानयोग तो इसके हाथ में नहीं है। या तो साक्षात् भगवान ही राम कृष्ण आदि के रूप में मनुष्य अवतार धार के आवें उनके हाथ में है जैसे भगवान श्रीकृष्ण यहॉ अर्जुन को साक्षात् ज्ञान दे रहे हैं और या तो भगवान के जो भक्त हैं संत महात्मा लोग, भगवान के कृपा पात्र हैं उन गुरुओं के हाथ में है। तो ज्ञानयोग में जो स्थिति है वो तो तभी होगी जब पहले ये अपना पुरुषार्थ कर लेगा फिर तो ज्ञान गुरु के हाथ में है इसलिये पहले कर्मयोग में ही स्थिति होना चाहिये दोनों में से। तो दोनों में से जो एक में, जो कर्मयोग में स्थित होगा, दोनों का जो फल है उसको वह प्राप्त कर लेगा, मोक्ष प्राप्त कर लेगा क्रम से।

यत्सॉख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते,
एकं सॉख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।। BG - 05.05 **।।**

अर्जुन! दोनों का फल एक ही है, फल में एकता है। सॉख्ययोग से जो स्थान माने मोक्ष प्राप्त होगा क्योंकि सॉख्य नाम ज्ञान का है यहॉ तो ज्ञान तो केवल अज्ञान का ही नाशक है, दूसरा काम ज्ञान नहीं कर सकता है परन्तु ज्ञान के साधन बिना तो ज्ञान होगा ही नहीं। जैसे प्रकाश ही अंधकार का नाशक है, प्रकाश दूसरा कोई काम नहीं कर सकता है, प्रकाश में कर्म है ही नहीं। बिजली का प्रकाश हो रहा है, दीपक का प्रकाश हो रहा है, ये तो केवल अंधकार का नाशक है और कोई कर्म नहीं है। परन्तु इसके पहले ये प्रकाश होगा कैसे? तो इसके पहले प्रकाश के साधन जुटाना पड़ेगा। तार की फ़िटिंग, स्विच की फ़िटिंग, बल्ब आदि लाना लगाना सब ये पहले तैयारी करना पड़ेगा, परन्तु उतने साधन मात्र से तो अंधकार दूर नहीं होगा। ये सब काम करने के बाद में जब प्रकाश प्रकट होगा तो वो प्रकाश ही अंधकार को दूर कर सकता है इसलिये ज्ञान प्रकट करने के लिये निष्काम कर्म, भक्ति, विवेक, वैराग्य, षट्क-सम्पत्ति, मुमुक्षुता ये सब साधन हैं, तो ज्ञान तो फिर अज्ञान का ही नाश करेगा इसलिये ये क्रम हो गया, पहले ये अनिवार्य हैं, प्रकाश ज्ञान के साधन अनिवार्य हैं, ये सब ज्ञान के साधन हैं। जैसे गॉव में कोई दीपक जलाता है तो दीपक

पात्र लाता है और बाज़ार से तेल भी लाता है और रुई लाता है उसकी बत्ती बनाता है, माचिस भी लाता है, प्रकाश के साधन तो इकट्ठा करना पड़ेगा न! तो इनके लिये तो कर्म करना पड़ेगा न साधन इकट्ठा करने में। अन्धकार को हटाना है तो हाथ पॉव डुला करके बाज़ार से इन सब चीज़ों को लाना ये सब कर्म करना पड़ेगा तब प्रकाश होगा, वो प्रकाश ही अंधकार का नाश करेगा। प्रकाश के सिवाय पहले के जो कर्म हैं उन कर्मों से कोटि यत्न करो अॅधेरा दूर नहीं हो सकता। अॅधेरे को कोई टोकरी में भर भर के बाहर फेंकना चाहे ये कर्म है कर्म से तो जायेगा नहीं कितनी ही मेहनत करो और भक्ति से भी नहीं जायेगा कि हे अन्धकार देव! हम तुम्हारी पूजा करेंगे तुम चले जाओ तो भी नहीं जायेगा कितनी भी भक्ति करो, प्रार्थना करो उसका विरोधी तो केवल प्रकाश है दूसरा कोई नहीं हो सकता है और प्रकाश में कर्म नहीं होता है। इसलिये माचिस और फिर माचिस के बाद दूसरा कोई चेतन पुरुष चाहिये जो माचिस को खिंचा करके इसकी बत्ती में लगावे और यदि वो पुरुष नहीं होगा, नहीं लगाने वाला होगा तो भी प्रकाश नहीं होगा, थोड़े में प्रकाश अटका रहेगा, रुका रहेगा। जब वो प्रकाश होगा तो प्रकाश होते ही (प्रकाश को कुछ कर्म तो करना नहीं है और है भी नहीं प्रकाश में कोई कर्म) अपने आप अंधकार चला जायेगा। पर चला कहॉ जायेगा अंधकार, कहॉ भाग कर जायेगा? इसके माने हैं अंधकार प्रकाशरूप ही हो जायेगा, अंधकार भस्म हुआ, भस्म होगा तो प्रकाशरूप ही हो जायेगा। अब ये प्रकाश में कर्म कुछ नहीं है। अंधकार को हटा दिया, हटाने का प्रयास नहीं किया है प्रकाश ने, अपने आप ही खत्म हो गया, भस्म हो गया। अब प्रकाश में लोग कोई गीता पढ़ते हैं, कोई रामायण पढ़ते हैं, कोई भोजन बनाते हैं, सब काम करते हैं अपना अपना प्रकाश में, अॅधेरे में तो कुछ कर्म होता नहीं, कुछ दीखता ही नहीं है क्या पढ़े कैसे पढ़े अॅधेरे में? कैसे भोजन बनावे कुछ चीज़ नहीं दिखाई पड़ती। तो लोग कर्म करते हैं अपना अपना प्रकाश में। प्रकाश केवल अंधकार को ही हटाया है परन्तु प्रकाश अब कुछ और नहीं करता है, कोई कर्म नहीं है प्रकाश में, निष्क्रियं निष्कलं शान्तं। तो प्रकाश, दीपक कुछ नहीं करता है, दीपक के प्रकाश में और लोग अपना अपना काम करते हैं। ऐसे ही ज्ञान जो है एक प्रकाश है, ज्ञान अज्ञान को ही हटाता है, स्वयं ज्ञान प्रकाश में कुछ भी कर्म नहीं है। आत्मा के या परमात्मा के ज्ञान में अज्ञान ही मुख्य प्रतिबन्धक था, तो जब अज्ञान को हटा दिया तो अपना स्वरूप प्रकाशित हो गया। जैसे अॅधेरा जब होता है तो अपना हाथ भी नहीं दिखाई पड़ता, अपना शरीर नहीं दिखाई पड़ता, अपना पॉव नहीं दिखाई पड़ता अॅधेरे में, पर जब प्रकाश होता है तो अपना पूरा स्वरूप दिखाई पड़ता है, सब कुछ दिखाई पड़ता है। वैसे ही अज्ञान के हटते ही अपना स्वरूप सच्चिदानंदघन आत्मा दिखाई पड़ता है कि मैं सच्चिदानंद स्वरूप हूॅ और देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण भी दिखाई पड़ते हैं, सब कुछ दिखाई पड़ता है। इस प्रकार से कर्मयोग और ज्ञानयोग फल में एकत्व बताते हैं व्यवहार में नहीं, व्यवहार तो तीनों का अलग अलग है कर्म का, भक्ति का, ज्ञान का। कर्म भक्ति अपने अधीन है, ज्ञान अपने अधीन है नहीं करेगा कैसे? वो तो गुरु के अधीन है। **'यत्सॉख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते, एकं सॉख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति',** ऐसा जो देखता है वो ही यथार्थ दर्शी है, दोनों साथ साथ हो नहीं सकते क्योंकि कर्म-उपासना-ज्ञान ऐसा वेद का क्रम है, कक्षा क्रम है। जैसे रामायण का क्रम है पहले बालकाण्ड, फिर अयोध्याकाण्ड फिर... क्रम से हैं न सब काण्ड, जैसे गीता के अध्याय का क्रम है—पहला अध्याय, दूसरा अध्याय फिर तीसरा अध्याय, फिर चौथा अध्याय क्रम है न ये? तो पहले अध्याय में क्या है — अर्जुन विषादयोगोनाम, तो पहला अध्याय तो ये ही है, दूसरा अध्याय तो नहीं आयेगा पहले अध्याय की जगह में? दूसरा अध्याय तो सॉख्य माने ज्ञान है तो वो तो अर्जुन के हाथ में है नहीं, वो तो जगद्गुरु भगवानश्रीकृष्ण के हाथ में है दूसरा अध्याय ज्ञानयोग, तो दोनों साथ साथ तो हो नहीं सकते हैं। तो पहले होगा निष्काम कर्म, भक्ति भगवान की शरणगति फिर भगवान के द्वारा ही ज्ञान होगा तब अज्ञान की निवृत्ति होगी इसलिये हर चीज़ के क्रम होते हैं। दो योग साथ साथ नहीं चलते हैं कर्मयोग और ज्ञानयोग, हॉ कर्म और भक्ति तो चल सकते हैं क्योंकि भक्ति भी मानस कर्म है, सेवा पूजा देह इन्द्रिय मन बुद्धि से भगवान की करना या मूर्तियों की करना या गुरु की करना, ये कर्म है और मन से प्रेम करना व ध्यान चिन्तन, ये तो बन जायेगा परन्तु ज्ञान कर्म के साथ साथ नहीं हो सकता, इनमें

अंधकार और प्रकाश के समान विरोध है। ज्ञान होगा तो कर्म नहीं होगा, कर्म अज्ञानी में है ज्ञानी में नहीं है क्योंकि ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण अज्ञान का कार्य है, अज्ञान नाम प्रकृति का है, माया का है। तो प्रकृति से ही ये तीन गुण होते हैं, पॉच महाभूत होते हैं, पॉच महाभूतों से ये स्थूल शरीर होता है और इसके भीतर १९ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर होता है—५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ प्राण, मन बुद्धि चित्त अहंकार, इसी सूक्ष्म शरीर में कर्म होता है। इसी में मन होता है और इसी में भक्ति होगी, मन से ही भक्ति होती है तो वो भी कर्म है। ज्ञान तो प्रकृति, माया और देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण का प्रकाशक मात्र है। ज्ञान तो एक नेत्र है, नेत्र केवल प्रकाशक है, देखता ही है। जो जैसी चीज़ होगी उसको ऑखें देख सकती हैं अदला बदली नहीं कर सकतीं, नेत्र तो ज्ञान है, स्त्री को पुरुष को सबको देख लेगा, सब चीज़ों को देख लेगा परन्तु कोई चीज़ लाना हो या किसी को बुलाना हो ये तो ऑखें नहीं कर सकतीं, ये तो फिर कर्मेन्द्रियों का काम है। कहीं जाना हो तो पैरों का काम है कर्मेन्द्रिय है पैर, किसी को बुलाना हो तो ये वाणी कर्मेन्द्रिय का काम है, किसी को कुछ लेना-देना हो तो फिर ये हाथ कर्मेन्द्रिय है, ये तो ज्ञानेन्द्रिय है ज्ञानेन्द्रिय में कर्म नहीं है, कर्मेन्द्रियों में कर्म है। ज्ञान तो केवल प्रकाशक है, वो एक नेत्र है। इस प्रकार से इसको क्रम-समुच्चय कहते हैं, सम-समुच्चय नहीं होता है, दोनों साथ साथ नहीं चल सकते हैं। जब ज्ञान होगा तो प्रकृति से अलग हो जायेगा ये ज्ञान, ज्ञान अपना स्वरूप हो जायेगा। एक वृत्ति ज्ञान होता है, वृत्ति ज्ञान जो है वो केवल अज्ञान को हटाता है। समझ लो कर्मयोग दीपक पात्र है और भक्तियोग जो स्नेह है प्रेम है भगवान में वो तेल या घृत है और जो शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि है वो बाती है भला, इतना साधन दीपक का समझ लो। माचिस की जगह क्या है यहॉ ज्ञानयोग में? कहा वेदों के महावाक्य ही माचिस की जगह हैं परन्तु उस माचिस—'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' को वेदों से निकाल कर लाना और शिष्य की बुद्धि में स्पर्श कराना, ये गुरु का ही काम होगा। शिष्य तो वेदों से इन महावाक्यरूपी माचिस को निकाल नहीं सकेगा और उसका अर्थ बताकर उसका बुद्धि में स्पर्श नहीं करा सकेगा। इन साधनों से ज्ञान प्रकट होगा, जब ज्ञान प्रकट होगा तो ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों से प्रकृति से अपने को बिल्कुल अलगा लेगा कि मैं ज्ञान हूॅ इनका प्रकाशक हूॅ, इनमें मिलता नहीं। **कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हें**, जब अपने स्वरूप को जाना तो अकर्म जाना और जो वृत्तिरूपी ज्ञान है महावाक्यरूपी माचिस से 'तू ब्रह्म है' ऐसा जो बताया गुरु द्वारा, वो केवल अज्ञान को ही नष्ट किया है भस्म किया है भला! फिर स्वयं भी शान्त हो जाता है वृत्तिज्ञान, क्योंकि महावाक्यरूपी माचिस से प्रकट किया गया है न! अनंत अखण्ड तो नहीं है। जैसे दीपक में प्रकाश प्रकट किया गया है न! अॅधेरा हटाके कुछ समय पर वो भी बुझ जायेगा, वो नित्य प्रकाश तो नहीं है और से हमारा तुम्हारा जो ज्ञान है ये अनंत अखण्ड है, सामान्य ज्ञान इसको कहते हैं — **'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'** ये साक्षी है, स्वयं सिद्ध चेतन अनंत अखण्ड ज्ञान है, अज्ञान के हटते ही ये अखण्ड ज्ञान होता है और जो बुद्धि वृत्ति में प्रकट हुआ है महावाक्यों से वो अज्ञान कि 'मैं देह इन्द्रिय मन बुद्धि हूॅ' ये अज्ञान था, ये भ्रम था वह दूर हुआ। 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूॅ' ये अज्ञान था तो महावाक्य ने कहा 'तत्त्वमसि', गुरु ने कहा हे जीव! तेरा जो वास्तविक स्वरूप है वो सच्चिदानंद ब्रह्म ही है ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि नहीं है, ये तो प्रकृति का कार्य है, इन्हीं में सब कर्म हैं, तू अकर्म है, द्रष्टा-साक्षी मात्र है, अखण्ड ज्ञान है। तो इस प्रकार से जब ये ज्ञानी अपने को जानता है, ये फल है, ये मोक्ष है, अब इसमें जन्म-मरण का बन्धन नहीं है। वृत्तिज्ञान भी उत्पत्ति-नाशवान है जैसे प्रकट अग्नि और प्रकट बिजली, ये भी किसी उपाधि में प्रकट भयी है, ये उत्पत्ति-नाशवान है परन्तु व्यापक बिजली व्यापक अग्नि, वो उत्पत्ति-नाशवान नहीं हैं नित्य सत्य हैं।

धरा को प्रमाण य है तुलसी
जो फरा सो झरा और बरा सो बुताना।।

ये नियम है पर जो उत्पन्न ही नहीं हुआ है उसको बुझना क्या है? तो आत्मा या परमात्मा का स्वरूप तो—**न जायते म्रियते वा कदाचिन्** (BG-2.20), इसका तो जन्म ही नहीं हुआ है, प्रकट ही नहीं

हुआ है तो बुझना क्या है? तो हमारा तुम्हारा स्वरूप अज्ञान के नाश होते ही सच्चिदानंदघन अनंत अखण्ड ज्ञान प्रकाश शेष रह जाता है। ये फल है कर्मयोग, भक्तियोग और ये वृत्तिरूपी ज्ञानयोग, अब ये तीनों ही खत्म हो गये न! वृत्ति भी बुझ गयी ज्ञान कराके, अब उसका उपयोग नहीं है, प्रारब्ध पर्यन्त मन बुद्धि आदि रहेंगे फिर भी कोई ब्रह्माकारा वृत्ति हमेशा बनाके रखना चाहे तो अच्छा ही है क्योंकि मन की चंचलता नहीं होगी, आत्म चिन्तन होता रहेगा तो मन शान्त रहेगा परन्तु उसका अनिवार्य उपयोग अब नहीं है इस वृत्तिज्ञान का, वो तो एक बार ही उदय होकर के अज्ञान का नाश कर देती है फिर अज्ञान कभी आ नहीं सकता। 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता' ऐसा अज्ञान फिर कभी नहीं आयेगा एक बार जब ये हो जायेगा कि मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ, ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण ये सब अज्ञान और अज्ञान के कार्य हैं इसलिये अज्ञानरूप ही हैं और मैं ज्ञानरूप हूँ तो अज्ञानरूप मैं कभी हो नहीं सकता हमेशा अपने द्रष्टा स्वरूप में ही स्थिति रहेगी। अपने द्रष्टा स्वरूप को कभी नहीं भूलेगा, द्रष्टा ही ज्ञान है और पहले अज्ञान था कि मैं अपने आपको जानता ही नहीं हूँ इसका फल ये था कि मैं भ्रम से अपने को शरीर ही मान बैठा था या इन्द्रिय मन बुद्धि मान बैठा था, तो अच्छे बुरे कर्म मान बैठा था तो सारे कर्म अज्ञान में ही हैं, ज्ञान में कर्म नहीं हैं। अज्ञान को ही प्रकृति कहते हैं, माया कहते हैं, इसी से देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण होते हैं। ये कर्म विभाग अलग है और ज्ञान अलग है, दोनों मिलते नहीं कभी ज्ञान और कर्म, द्रष्टा और दृश्य मिल नहीं सकते। देह इन्द्रिय मन बुद्धि में कर्म हैं व इनके हम प्रकाशक ही रहेंगे, ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि के प्रकाशक द्रष्टा और इनमें जो कर्म होंगे 'क्रिया' उस क्रिया के भी प्रकाशक और इनका जो फल होगा सुख-दुःख उसके भी द्रष्टा अलग ही देखने वाले रहेंगे। हममें ये स्पर्श नहीं करेंगे कोई क्योंकि हमारा आत्मा आकाश के समान अत्यंत सूक्ष्म है, जैसे आकाश को कोई छू नहीं सकता है ऐसे ही ये दृश्य आत्मा को स्पर्श कर नहीं सकता है इसलिये देह इन्द्रिय मन बुद्धि के जो धर्म हैं, कर्म हैं और सुख-दुःख आदि फल है ये हमको नहीं स्पर्श करेगा, हम इसके द्रष्टा अलग ही रहेंगे घटद्रष्टावत्। जैसे घट का द्रष्टा घट से अलग ही रहेगा घट में नहीं मिलेगा कि घट में मिल जाय और घट ही बन जाय। वो अज्ञान दशा थी जो शरीर रूपी घट को हम देख रहे थे पहले जानते नहीं थे, पहले भी देखते थे अज्ञान दशा में शरीर को ये दृश्य ही था परन्तु इसे देखते हुए भी हम कहते थे कि हम स्त्री हैं पुरुष हैं, शरीर ही बने बैठे थे। अब सम्यक जान लिया कि नहीं, ये द्रष्टा कभी दृश्य शरीर आदि से नहीं मिलता। तो सज्जनों! ये फल है, सम्पूर्ण वेद का इतना ही फल है कि प्रतिबन्ध को ये निवृत्त कर देवे। तो मल-विक्षेप-आवरण इतना अज्ञान का स्वरूप है जो हमारे तुम्हारे हृदय में स्थित है, कर्म-उपासना-ज्ञान का इतना ही प्रयोजन है कि मल-विक्षेप-आवरण को ही ये हटाता है और नित्य प्राप्त परमात्मा को प्राप्त नहीं कराता है वो तो हमारा स्वरूप है। तो प्रतिबन्ध की निवृत्ति करना मात्र ही वेद का काम है और गुरु का काम है, बस उसके बाद इनका प्रयोजन नहीं रहता।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 52 - JUN 29

३१

संसार एक पीपल वृक्ष है

* भ0गी0 - अध्याय 15.1 *

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्,
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तु वेद स वेदवित्।। BG - 15.01 **।।**

अर्जुन! ये संसार एक अश्वत्थ वृक्ष है, अश्वत्थ नाम पीपल के वृक्ष का है तो ये संसार एक पीपल का वृक्ष है और इसकी जो मूल है, जड़ है वो ऊपर है। यहाँ ऊपर का मतलब ये है—संसार की उत्पत्ति जिससे होती है और जिसमें स्थिति होती है और जिसमें लय होता है वो भगवान है, वही सबसे ऊपर है, **अधः शाखं** और इसकी शाखा नीचे है। जो मूल से उत्पन्न होता है वो प्रथम शाखा होती है। जैसे भगवान से सबसे पहले पहले ब्रह्मा उत्पन्न हुआ तो वही उसकी फिर शाखा हुई, फिर ब्रह्मा से देव दानव मानव पशु पक्षी ये सब संसार उत्पन्न हुआ वो उपशाखाएं भयीं, तो इस संसार वृक्ष के सबसे ऊपर भगवान ही हैं उनसे ऊपर कोई नहीं है इसलिये **ऊर्ध्वमूल** कहा और अधः शाखा इसीलिये कहा क्योंकि उसके बाद ही ब्रह्मा आदि भये और इस ब्रह्मा से फिर सारा संसार भया।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै,
तम्हादेवं आत्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैः शरणमहं प्रपद्ये।।

तो इस प्रकार से ये संसार वृक्ष की जड़ जो मूल है वो भगवान को बताया गया है, गीता अध्याय १५ का ये पहला श्लोक है। दूसरा अर्थ ये होता है के किसी भी वृक्ष की जड़ नीचे ही हुआ करती है व्यवहार में देखा जाय तो, किसी वृक्ष की जड़ ऊपर तो होती नहीं, सबकी जड़ नीचे ही होती है ऊपर नहीं होती है तो ये असम्भव है न कि वृक्ष की जड़ ऊपर हो शाखा नीचे हो, वो तो देखने में आता नहीं है। इसलिये इसका अर्थ ये निकलता है कि जो वृक्ष की जड़ ऊपर बताई गई सो असम्भव है, मिथ्या है माने झूठी है तो संसार वृक्ष भी असम्भव है। एक भगवान ही सत्य है और संसार झूठा है क्योंकि संसार को एक वृक्ष बताया और जड़ ऊपर बताई, तो ऊपर तो भगवान ही हैं, वो ही सत्य हैं, ये संसार मिथ्या है तो **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'** श्रुति भगवती कहती है कि ब्रह्म ही सत्य है जगत मिथ्या है, **'जीवो ब्रह्मैव न परः'** और जो जीव है वो तो ब्रह्म ही का स्वरूप है ब्रह्म से भिन्न नहीं है। **'ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्'** का एक और अर्थ ये होता है — **'न स्व स्थितः** इति **अश्वत्थः',** संस्कृत में **'स्व'** कल आने वाले दिन को कहते हैं, **'अ'** का अर्थ निषेध होता है और **'थ'** का अर्थ होता है स्थिति माने जो कल तक न रहे उसको **अश्वत्थः** कहते हैं। तो ये संसार स्वप्नवत् है, जैसे स्वप्न दूसरे दिन नहीं रहता जागो तो वो तो तुरन्त खत्म होता है और देखने में स्वप्न सत्य जैसा ही लगता है और जागो तो मिथ्या लगता है। इसी प्रकार से ये जाग्रत का संसार देखने में सत्य लगता है और स्वप्न में ये जाग्रत का संसार भी नहीं रहता तो स्वप्न में ये भी मिथ्या हो गया।

जाग्रत माही स्वप्न नहीं जैसे,
स्वप्न माही जाग्रत नहीं तैसे।।

तो जाग्रत में स्वप्न नहीं इसलिये मिथ्या है और स्वप्न में जाग्रत भी नहीं है इसलिये स्वप्न में ये भी मिथ्या हो गया। सुषुप्ति में दोनों नहीं हैं, न जाग्रत है न स्वप्न है, गाढ़ निद्रा में सुषुप्ति में घोर

अज्ञान अंधकार है, तो दोनों एक साथ मिथ्या हो गये। समाधि में सुषुप्ति भी नहीं है तो सुषुप्ति भी मिथ्या हो गई पर जो भगवान हैं वो तीनों काल में हैं, जाग्रत में स्वप्न में सुषुप्ति में तीनों को देखते हैं।

जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचं यत्प्रकाशते,
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

जो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति को प्रकाशता है माने देखता है वो तुरीय तत्त्व, चौथा तत्त्व भगवान हैं और अर्जुन! वही हमारा तुम्हारा स्वरूप है—'तत्त्वमसि' अर्जुन! वही तू भी है क्योंकि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को तू भी देखता है तो चौथा हो गया कि नहीं हो गया, तो जीवात्मा का स्वरूप भी मैं ही हूँ। जाग्रत को देखता हूँ, स्वप्न को देखता हूँ, सुषुप्ति को देखता हूँ, मुझे कोई नहीं देखता है क्योंकि —

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति त्रयमेतन्मायामात्रम्

जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये तीनों माया मात्र हैं। माया नाम झूठी चीज़ का है जो दिखाई पड़े और होवे नहीं उसको माया कहते हैं जैसे स्वप्न दिखाई पड़ता है पर होता नहीं है इसलिये स्वप्न को माया कहते हैं, माया नाम झूठी चीज़ का है। छाया दिखाई तो पड़ती है पर सब कोई जानते हैं कि छाया झूठी होती है। एक बालक को छोड़ करके बाकी सयाने लोग सब जानते हैं कि छाया झूठी है, छोटे बालक को अभी अज्ञानता है वो नहीं जानता है, छोटा बालक छाया को भी सत्य मान लेता है। बाल लीला जब भगवान राम कर रहे हैं तो —

रूप रास नृप अजिर बिहारी,
नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी।।

ऑगन में खेल रहे हैं और चारों तरफ ऑगन में, खम्भों में, दीवारों में उत्तम जाति के शीशा जड़े हुए हैं, मणियॉ जड़ी हुई हैं उनमें राम के प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं। राम जानते हैं कि ये कितने सुन्दर लड़के हैं, बहुत सुन्दर हैं तो उनके साथ में खेलते हैं, नाचते हैं तो वो भी नाचने लगते हैं, बड़े खुश होते हैं। उनको ये ज्ञान नहीं है कि मेरी ही ये छाया है, वो सत्य मान लेते हैं। इसी प्रकार से भगवान कृष्ण भी जब बाल लीला कर रहे थे माने अज्ञान लीला, वो भी छाया को सत्य मान लिये। कृष्ण सबको प्यारे लगते थे, सभी गोपियॉ चाहती थीं कभी कन्हैया हमारे यहॉ भी माखन चोरी करने आवें तो उनकी इच्छा रखने के लिये कभी उनके यहॉ भी चोरी करने चले जाते थे। अपने घर में तो दूध दही मक्खन मलाई की कमी थी नहीं परन्तु उनकी इच्छा थी, भावना थी इसलिये उनके घर चले जाते थे। तो किसी सखी के यहॉ चोरी करने के लिये गये तो अब वो सखी कृष्ण को देख रही है छिपी हुई और कृष्ण जो हैं वही चोरी का नाटक कर रहे हैं, इधर उधर देखते जाते हैं कि कोई मुझको देखता तो नहीं? और वो मक्खन की तलाश में हैं कि मक्खन कहॉ रखा है? तो दिखाई पड़ा कि एक छींके में मक्खन की मटकी टॅगी हुई है, दूर है पाते नहीं हैं तो एक ओखल में चढ़ गये और उससे वो मक्खन की मटकी को पकड़ा और उससे उतारा परन्तु मक्खन की मटकी भारी थी वो हाथों से छूट गई, गिर गई, फूट गई, मक्खन बिखर गया फिर भी उसी ज़मीन से मक्खन उठाके दोनों हाथ में और मक्खन खाते हुए इधर उधर निहारते जाते हैं क्योंकि चोरी की लीला कर रहे हैं, कोई देखता तो नहीं है? इधर उधर निहारते और खाते चले आ रहे हैं तो उस कमरे में पहुँच गये जहॉ सखी का श्रृंगार होता था श्रृंगार घर था वो, उसमें दर्पण लगा हुआ था। वो दर्पण में अपने ही प्रतिबिम्ब को देखा, अपनी छाया को देखा तो सोचने लगे अरे देखो! ये सखी ने पहरेदार खड़ा कर रखा है। सज्जनों ये देखो! अपना मुख अपनी ऑखों से नहीं दिखाई पड़ता है। हम आप अपना मुख ज़िन्दगी बीत जाय कभी अपनी ऑखों से देख नहीं पाते हैं इसी प्रकार से कृष्ण भी अपना मुख तो देख न पाये कि कितने सुन्दर हैं अब प्रतिबिम्ब देखते हैं, अपने मुख को देखने के लिये क्या करते हैं शीशा लेते हैं तो क्या शीशा में हमारा सच्चा मुख दिखाई पड़ेगा? नहीं दिखाई पड़ेगा क्योंकि सच्चा मुख तो हमारी ग्रीवा

में है, हमारी ग्रीवा को छोड़कर शीशा में जा नहीं सकता है इसलिये सच्चे मुख को हम कहॉ देख पायेंगे? वो अपनी गर्दन को छोड़कर जायेगा ही नहीं और यदि जाता है तो शरीर अमंगल होकर के गिर जायेगा, मृतक हो जायेगा, मुर्दा हो जायेगा। तो ये निश्चय हुआ कि हमारा सच्चा मुख हमारे शरीर को छोड़कर जा नहीं सकता और दूसरी बात ये भी है कि शीशा भी ठोस होता है, उसमें तो सुई की नोक भी नहीं घुस सकती, पोलाई नहीं रहती तो सच्चा मुख उसमें आ भी नहीं सकता क्योंकि जगह नहीं है। तो किसी भी रीति से सच्चा मुख शीशा में नहीं जा सकता क्योंकि उसमें जगह नहीं है फिर भी हमारा मुख उसमें दिखाई पड़ता है सज्जनों! तो निश्चय ही छाया ही हो सकती है क्योंकि छाया के लिये तो जगह चाहिये नहीं, प्रतिबिम्ब के लिये तो जगह की ज़रूरत नहीं है वो तो शीशा में ऊपर ऊपर दिखाई पड़ेगा, शीशा में प्रवेश तो करेगा नहीं तो झूठा मुख हम अपना देख सकते हैं। इसी प्रकार से झूठा मुख श्रीकृष्ण ने भी शीशा में देखा और जाना कि सखी ने ये पहरेदार खड़ा कर रखा है। अब इसने तो देख लिया है तो ये सखी से अवश्य बता देगा तो इससे क्या करना चाहिये? दोस्ती करना चाहिये, अपना साथी बना लेना चाहिये, तो उससे बात करते हैं कि देख भइया! तू बहुत अच्छा है, चल खेलने चलेंगे और भी हमारे बहुत से साथी हैं तो सबके साथ तू भी चल हम भी खेलेंगे परन्तु वो सुनता ही नहीं है। जब नहीं सुनता तब कहते हैं देख! आज मैं पहले पहल चोरी करने आया हूँ अब से नहीं आउँगा भाई, अब तू सखी को मत बताना नहीं तो सखी मुझको पकड़ कर ले जायेगी मैया के पास में और मैया मुझको मारेगी इसलिये बताना नहीं और देख ये मक्खन मेरे पास है इसमें से तू भी खाले। अब उसको किसी प्रकार साथी बनाना है कि जिसमें वो बतावे नहीं, अब वो नहीं खाता तो अपने हाथ से उसके मुख में लगाते हैं। वो शीशा में लगायेंगे तो शीशा से गिर जायेगा, जब नहीं खाता शीशा से गिर जाता है तो सोचते हैं ये बता देगा सखी से और मानेगा नहीं। इतना मैंने अनुनय विनय किया तो भी मेरी बात ये सुनता नहीं है, तो अब तो कोई उपाय है नहीं भागना ही चाहिये यहॉ से तो दो चार उसको खरी खोटी बताये, बोले मैं भाग जाउँगा और मुझे तू पकड़ भी नहीं पायेगा और इस तरह से भाग चले सज्जनों! सखी देख रही है खेल तमाशा बाल लीला। बालकों को ज्ञान नहीं होता है, बालक माने अज्ञान 'अज्ञान-लीला'। इसी प्रकार से एक शेर की कथा है — एक शेर जंगल में रहता था और जंगल के पशुओं को खाता था मार मार के। अचानक कहीं भी पहुँच जाय जिसको पावे उसको मार के खा जाय। तो जंगल के जानवरों ने आपस में सब लोग मिलकर के विचार किया कि भाई ये अकस्मात् आ जाता है और हमको किसी को भी पकड़ कर खा जाता है तो ऐसा करो कि शेर के पास में सब लोग मिलकर चलें और कह दें कि रोज़ हम समय पर बारह बजे एक जानवर आ जाया करेगा तुम्हारे पास तो खा लिया करना तुमको जंगल में घूमना नहीं पड़ेगा। शेर ने स्वीकार कर लिया इनकी सबकी बात कहा ठीक है हमारा जब गुफ़ा में ही जब आ जायेगा शिकार तो हमको क्या करना है जंगल में जाके? इसप्रकार से रोज़ एक जानवर पहुँच जाता था समय पर बारह बजे, शेर खा लेता था, अपनी गुफ़ा में पड़ा रहता था, सोता रहता था। एक दिन एक सियार की बारी आई, सियार ने सोचा अब ये मुझको भी मार के खा ही जायेगा, कुछ उपाय रचूँ जो बच जाऊँ तो बच जाऊँ पर प्रयत्न तो करना चाहिये। वो बारह बजे के पश्चात् १ बजे पहुँचा तो शेर ने कहा क्यों रे सियार तू देर क्यों कर दिया एक घंटा? तो वो सियार क्या कहता था कि रास्ते में एक शेर और मिल गया मुझको, उसने कहा मैं तुझको खा जाऊँगा। मैंने उससे कहा कि हमारा राजा आप हैं, कहा मैं अपने राजा के पास हो आऊँ और फिर लौट के आऊँगा तब तू खा लेना पर वो मानता ही नहीं था, कहा खा जाउँगा खा जाउँगा। मैंने बहुत अनुनय विनय किया तब मुश्किल से माना, मुझको आने दिया आपके पास नहीं तो वो खा जाता। सिंह क्रोधित हो गया कहा कहॉ है वो जो तुझको रोक रहा था? दूसरा सिंह कहॉ से आया? कहा चलो मैं बता दूँ, अभी वो वहीं है। सिंह चल पड़ा सियार के साथ में, तो एक कुएं को दिखाया कहा इसी में वो रहता है, देखो इसमें अभी बैठा है नीचे। तो जो कुएं में झॉक कर सिंह ने देखा तो उसको शेर दिखाई पड़ा। उसको भी ये ज्ञान नहीं कि ये मेरी परछाई है, अज्ञान लीला है न! अज्ञानी को नहीं पता रहता है। क्रोधित होकर के और उसको मारने के लिये वो धम्म से कुएं में कूद पड़ा, फिर वो निकल नहीं पाया कुएं से। सभी जानवर सुखी हो गये। तो कहने

का अभिप्राय ये है सज्जनों! कि अज्ञानी जो होते हैं वो छाया को सत्य मान लेते हैं। तो सज्जनों! ये हमारे तुम्हारे जो शरीर हैं ये भी एक छाया रूप हैं। जिसको ज्ञान न हो उसी को तो छाया कहते हैं न! ज्ञानवान् तो पुरुष होता है न! तो ये छाया तो दिखाई पड़ती है न! इस शरीर को तो ज्ञान नहीं न है! हमको आपको ज्ञान है तो ज्ञानवान् होने से हम पुरुष हैं और इस शरीर को ज्ञान नहीं है ये छाया है, तो छाया तो कोई सत्य होती नहीं है सज्जनों! झूठी ही हुआ करती है, पुरुष ही सत्य होता है। पर अज्ञानी लोग छाया को शरीर को ही सत्य और सुखरूप मान बैठते हैं, सो वो सज्जनों धोखा खाते हैं, इस शरीर में अहंता ममता कर बैठते हैं जब कि शरीर हम नहीं हैं। शरीर में रहते हैं, शरीर के द्रष्टा साक्षी हैं, शरीर हमारी एक छाया है दृश्य है, हम द्रष्टा पुरुष हैं। इसप्रकार से इस संसार को भगवान ने माया का कार्य होने से मायारूप छायारूप बताया है। एक मात्र भगवान ही सत्य हैं, वही पूर्ण पुरुष हैं। सत्य-ज्ञान-आनंद से जो पूर्ण होवे उसको पुरुष कहते हैं। विद्या अविद्या रूप माया में भगवान का प्रतिबिम्ब पड़ता है वही जीव और ईश्वर कहलाते हैं, सो मिथ्या होते हैं।

माया भासेन जीवेषौ करोति इतिषु तत्त्वतः,
कल्पितःएवजीवेशौ ताभ्यां सर्वम् प्रकल्पितम्।।

ये माया भगवान के प्रतिबिम्ब को धारण करके जीव और ईश्वर की कल्पना कर देती है। माया स्वयं कल्पित है और जो भगवान के आभास को धारण करेगी, प्रतिबिम्ब को तो वो भी तो झूठा ही है, प्रतिबिम्ब कहो छाया कहो झूठा ही है, इनका नाम जीव और ईश्वर होता है। माया ने विद्या अविद्या का रूप धारण किया और भगवान के प्रतिबिम्ब को अपने में धारण किया माने छाया को धारण किया इसलिये **'कल्पितःएवजीवेशौ'**— जीव - ईश्वर दोनों ही कल्पित हैं, मिथ्या हैं, झूठे हैं। **'ताभ्यां सर्वम् प्रकल्पितम्'**—फिर जीव और ईश्वर ने और संसार की कल्पना कर दिया। **'ईक्षणादि प्रवेशान्तः सृष्टि ईषेन् कल्पितः'** — 'ईक्षण से लेकर प्रवेश पर्यन्त' इतनी सृष्टि ईश्वर ने कल्पना किया **'तद्इच्छत् एकोहं बहुस्याम्प्रजायेयम्'** ईश्वर ने इच्छा किया एक से मैं बहुत हो जाऊँ तो बहुत हो गया छाया के समान भला, **'प्राविशत् जीवरूपतः'** और जीव रूप से प्रवेश कर गया। तो ईक्षण से लेकर प्रवेश पर्यन्त, प्रतिबिम्बरूप से प्रवेश, इतनी सृष्टि तो ईश्वर ने कल्पना कर दिया और 'जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारो जीव कल्पितः' जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति और बन्ध और मोक्ष, देह में अहंता ममता करके ये बन्ध, और ज्ञान होय तो ईश्वर की कृपा, गुरु की कृपा से मोक्ष—इतना संसार जीव ने कल्पना कर दिया, ये सब कल्पित है। छाया प्रतिबिम्ब सब कल्पित माने सब झूठे होते हैं और कल्पित की निवृत्ति सत्य में ही हुआ करती है। छाया की निवृत्ति पुरुष में ही होती है। तो माया भी छाया है, विद्या अविद्या दोनों रूप छाया है उसमें पड़े प्रतिबिम्ब भी भगवान की छाया ही हैं, झूठे हैं, फिर ये भगवान में ही लय हो जाते हैं, सत्य भगवान ही रह जाता है। जैसे हमारा तुम्हारी छाया हमसे ही प्रकट होती है, वो जड़ है उसको ज्ञान तो है नहीं, हम ही उसको देखते हैं फिर वो हम ही में लय हो जाती है, सत्य एक पुरुष ही रह गया। ऐसे ही ये संसार माया और माया का कार्य होने से कल्पित है, छायारूप है और सत्-चित्-आनंदरूप परमात्मा ही एक सत्य है। **सत्यमेकं परब्रह्म विदितो अयं सुखी भव।।** अर्जुन! सत्य एक परमब्रह्म परमात्मा है उसको जानकर सुखी हो जाओ।। इति।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 12 - Voice 64

३२

आत्मा के चार पाद

* माण्डूक्य उपनिषद *

सर्वाधार सर्वाधिष्ठान श्रीरामचन्द्रजी से हनुमानजी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया हे भगवन्!

त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतो राम मुक्तये
अनायासेन येनाहं मुंचेयं भव बन्धनात्
कृपया वद मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्।।

हे भगवन्! आपके वास्तविक तत्त्व को मैं जानना चाहता हूँ जिसके जानने मात्र से अनायास ही जीव भवसागर से तर जाता है इसलिये कृपा करके आपका वास्तविक तत्त्व स्वरूप क्या है सो बतावें। तो भगवान राम बोले हे हनुमान! सावधान मन से श्रवण करो।

माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये।

एक माण्डूक्य उपनिषद है जो सभी उपनिषदों का सार रूप है जिसके जानने से जीव अपने परमब्रह्म परमात्म स्वरूप को जानकर सहज ही मुक्त हो जाता है। ये माण्डूक्य उपनिषद सबसे छोटी उपनिषद है, तो सभी उपनिषदों का सार है इसीलिये ये जीव के कल्याण के लिये पूर्ण है। तो सुनो सावधान मन से :—

* मंगलाचरण *

ओम् भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः,
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाविश्ववेदाः,
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।
ओम् शान्तिः! ओम् शान्तिः! ओम् शान्तिः!

* माण्डूक्य उपनिषद *

ओमित्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं
भूतंभवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव,
यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।। मा०उ० १।।

हे हनुमान! ये जितना भी जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति के रूप में और भूत-भविष्य-वर्तमान के रूप में प्रतीत हो रहा है वो सब ओंकार ही है, ओंकार से भिन्न कुछ नहीं है और जो त्रिकालातीत तत्त्व है, जो गुणातीत तत्त्व है, अवस्थातीत है और देहातीत है वो भी ओंकार ही है।

सर्वं हि एतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्।। मा०उ० २।।

फिर कहते हैं ये ओंकार और ब्रह्म की एकता है इसलिये **सर्वं हि एतद्ब्रह्म,** एतद् माने ये जो

जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति के रूप में प्रतीयमान हो रहा है निश्चय ही ये सब ब्रह्म है, ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है और हमारा तुम्हारा जो स्वरूप है 'आत्मा' सो ब्रह्म है—**अयमात्मा ब्रह्म**। और वह जो ब्रह्म है—**सोऽयमात्मा** वह हमारा तुम्हारा स्वरूप आत्मा ही है। तो आत्मा ब्रह्म है और ब्रह्म आत्मा है, आत्मा और ब्रह्म एक है और तीसरा कुछ नहीं है। **सोऽयमात्मा चतुष्पात्**—हे अर्जुन! वह ब्रह्म अथवा हमारा तुम्हारा आत्मा चार चरण वाला है, चार अंश वाला है, चार रूप वाला है, सो आत्मा के चारों स्वरूपों को सुनो।

<< वैश्वानर नाम का प्रथम पाद >>

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्तांग
एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः।। मा०उ० ३।।

हे हनुमान! ये जो जाग्रत अवस्था है, ये जो जाग्रत का संसार प्रतीयमान हो रहा है जाग्रत स्थान है जिसका और **बहिर्प्रज्ञा**, बाह्यप्रज्ञा माने बुद्धि है ज्ञान है, शरीर के बाहर जो कुछ प्रतीत होता है ये बाह्य ज्ञान है, सात लोक ही सात अंग हैं, **१९ मुख** हैं—पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ये १९ मुख हैं, **स्थूलभुक**—शब्दादि विषयों का स्थूल भोग है और इन स्थूल विषयों का भोक्ता है। **वैश्वानरः प्रथमः पादः**—वैश्वानर इसका नाम है, यही आत्मा का प्रथम चरण है। ये जाग्रत जगत जो इस समय दिखाई पड़ रहा है इसमें ७ लोक हैं, १९ मुख हैं और बाहर के विषयों का भोग हो रहा है—ये हमारे तुम्हारे आत्मा का एक पाद हो गया, एक रूप हो गया माने जाग्रत के रूप में हम ही हैं इस समय, इसके भोक्ता भी और भोग्य भी। १९ मुख भी हम ही हैं और १९ मुखों के द्वारा ये जो भोग हो रहा है ये भी हम ही हैं और इसके भोक्ता भी हम ही हैं। ये आत्मा का पहला चरण है। अब दूसरा चरण सुनो :—

<< तैजस नाम का द्वितीय पाद >>

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः
प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीय पादः।। मा०उ० ४।।

स्वप्न स्थान है दूसरे चरण का और अन्तःप्रज्ञ है, अप्तःकरण के भीतर सारा स्वप्न जगत दिखाई पड़ता है इसलिये अन्तःप्रज्ञ माने बुद्धि अपने भीतर ही स्वप्न के जगत को देखती है। **सप्तांग**—सात अंग और १९ मुख प्रथम पाद के समान ही हैं। **प्रविविक्तभुक**—स्वप्न का भोग भी सूक्ष्म है (जाग्रत का स्थूल भोग है स्वप्न का सूक्ष्म भोग है) तैजस नाम है, **द्वितीय पादः**—यही आत्मा का दूसरा चरण है, दूसरा रूप है माने स्वप्न में हमारा तुम्हारा स्वरूप तैजस कहलाता है, तैजस नाम वाला होता है, सूक्ष्म भोगों को भोगते हैं, वही इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार से स्वप्न का जगत भी, स्वप्न की इन्द्रिय भी और स्वप्न का भोग भी सब हम ही हैं—भोक्ता, भोग्य और भोग। अब तीसरा चरण सुनो आत्मा का :—

<< प्राज्ञ नाम का तृतीय पाद >>

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते, न कंचन स्वप्नं
पश्यति तत्सुषुप्तम् सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन
एवाऽनन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखःप्राज्ञतृतीयः पादः।। मा०उ० ५।।

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते, न कंचन स्वप्नं पश्यति—यहाँ सोया हुआ पुरुष न तो कुछ कामना करता है और न कोई स्वप्न देखता है **तत्सुषुप्तम्**—उसको सुषुप्त कहते हैं, वो सुषुप्तावस्था है, गाढ़ निद्रा को सुषुप्तावस्था कहते हैं। तो वो **सुषुप्तस्थान** है जिसका, **एकीभूतः प्रज्ञानघन**—वहाँ पर जाग्रत और स्वप्न का संसार एकरूप हो जाता है, सुषुप्ति में मिल जाता है एकरूप हो जाता है अलग अलग कुछ नहीं रहता, **प्रज्ञानघनः**—जाग्रत स्वप्न में जो विशेष विशेष ज्ञान थे स्त्री-पुरुष,

मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र ये जाग्रत-स्वप्न में बहुत थे इनका ज्ञान भी अलग अलग था पर सुषुप्ति में दृश्य भी बहुत नहीं है और ज्ञान भी बहुत नहीं हैं। **आनन्दमयो हि आनन्दभुक**—उस समय आनंद ही की प्रधानता है, आनंद ही प्रचुर है, सुषुप्ति अवस्था में आनंद बहुत है और वहॉ पर जो भोग है वो भी आनंद है इसलिये वो जो तीसरा चरण है वो आनंद का ही भोक्ता है। तो सुषुप्ति अवस्था और वहॉ का आनंद और आनंद का भोगने वाला **प्राज्ञ** नामक तीसरा चरण है माने सुषुप्ति में हमारा तुम्हारा नाम प्राज्ञ होता है और आनंद के हम तुम सब भोक्ता होते हैं। ये आत्मा के ही अपने ही चार स्वरूप निरूपण किये जा रहे हैं।

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः
सर्वस्य प्रभवाप्ययो हि भूतानाम्।। मा०उ० ६।।

अर्जुन! जो ये प्राज्ञ है तीसरा चरण आत्मा का यही सबका ईश्वर है। **एष सर्वज्ञ**—और यही सर्वज्ञ है,

एषोऽन्तरयामी—और ये ही सबके अन्दर प्रविष्ट होकर के प्रेरणा करता है इसलिये इसको अन्तर्यामी कहते हैं। **एष योनिः**—ये ही जाग्रत-स्वप्न के जगत का कारण है, **प्रभव—**माने इसी से जाग्रत-स्वप्न के संसार की उत्पत्ति होती है, **अप्यय**—माने लय भी इसी में होता है। **भूतानाम्**—जितने भी जाग्रत-स्वप्न के भूत प्राणी हैं इनकी उत्पत्ति और लय इसी प्राज्ञ में होता है। ये आत्मा का तीसरा चरण है। अब चौथा चरण सुनो :—

<< अमात्र नाम का चतुर्थ पाद >>

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।
अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं
प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।। मा०उ० ७।।

हे हनुमान! **नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं**—अब पहले के जो बताये हुए तीन चरण हैं, तीन पाद हैं उनको निषेध करके चौथा चरण बताते हैं। जहॉ न बहिर्प्रज्ञ है, न अन्तःप्रज्ञ है, न उभयताप्रज्ञ है और न प्रज्ञानघन है माने जहॉ विश्व नहीं है, तैजस नहीं है और प्राज्ञ नहीं भी है, **न प्रज्ञं नाप्रज्ञम**—न वहॉ ज्ञान है तीनों का और न अज्ञान ही है, चौथे चरण में ये हैं ही नहीं।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यं— हे हनुमान! वहॉ इन्द्रिय नहीं हैं और न इन्द्रियों का कोई विषय है, वो अदृश्य है। न ज्ञानेन्द्रियॉ हैं और न इनके विषय ही हैं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियों के विषय होते हैं और श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण—ये ज्ञानेन्द्रियॉ हैं) ये तो जाग्रत-स्वप्न में ही रहती हैं इन्द्रियॉ और इनके विषय। सुषुप्ति में भी नहीं रहती हैं इन्द्रियॉ और इनके विषय। ये तुरीय पद है, तुरीय चौथा है। तो न ज्ञानेन्द्रिय हैं, न कर्मेन्द्रिय हैं, न इनके विषय हैं और न ही प्राण हैं, न प्राणों की किसी प्रकार की क्रिया है कर्म है और न मन है, न बुद्धि है इसलिये वहॉ संकल्प-विकल्प और बुद्धि का आभासरूप ज्ञान भी नहीं है। तो देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण, इनके विषय और इनके देवता—वहॉ त्रिपुटी का अभाव है, कोई भी नहीं है। **एकात्मप्रत्ययसारं**—एक आत्मा ही ज्ञानस्वरूप है वहॉ पर, अपने होनेपने में, अपनी सिद्धि में आत्मा ही प्रमाण है क्योंकि आत्मा ही सबको देखता है। जब जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये तीन चरण थे तो इनको देखने वाला आत्मा ही था और जब ये नहीं हैं तो इनके अभाव को देखने वाला आत्मा है वहॉ पर, आत्मा का अभाव नहीं हुआ, ये चौथा अथवा तुरीय आत्मा है इसका अभाव नहीं हुआ। **प्रपंचोपशमं**— जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये प्रपंच वहॉ पर नहीं है, **शान्तं—** इसलिये चौथे आत्मा का शान्त स्वरूप है क्योंकि प्रपंच है नहीं। **शिवं**— अनंत कल्याण स्वरूप आनंद स्वरूप है, **अद्वैतं**— एक अद्वितीय है, वहॉ दूसरा कोई है नहीं। दूसरा तो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति में है, आत्मा जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को देखता है तो ये जाग्रत अवस्था आत्मा से दूसरा हुआ, स्वप्न से दूसरा हुआ,

सुषुप्ति से दूसरा हुआ। वहॉ दूसरा नहीं है इसलिये द्रष्टा-दृश्य भाव भी नहीं है, जब दृश्य होता है तभी द्रष्टा ये नाम होता है और जब दृश्य नहीं है तो फिर द्रष्टा किसको कहा जायेगा? वो तो दृश्य की अपेक्षा से चौथे आत्मा को द्रष्टा कहा जाता है, और चौथा भी तीन की अपेक्षा से कहा जाता है, तीन न हों तो चौथा किसको कहेंगे? जो तीन को गिनता है वो चौथा होता है और ये तीनों वहॉ नहीं हैं इसलिये चौथा उसका नाम भी तीन की अपेक्षा से हैं और ये तीनों दृश्य हैं, इन तीन दृश्य की अपेक्षा से उसे द्रष्टा कहते हैं। जैसे किसी पुरुष को पत्नी की अपेक्षा से पति कहते हैं, पुत्र की अपेक्षा से पिता नाम रख दिया जाता है पुरुष का, परन्तु जहॉ पत्नी और पुत्र न हों तो वहॉ उस पुरुष को क्या कहा जायेगा पति कि पिता? वो खाली पुरुष ही रहा, इसी प्रकार से दृश्य की अपेक्षा से द्रष्टा कहा जाता है, जब दृश्य ही नहीं है तो फिर द्रष्टा भी क्या कहो? एक अद्वितीय में द्रष्टा-दृश्य भाव कैसे बने? जब आप अकेला ही है तो किसको देखे, दूसरा है ही नहीं।

चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा—हे हनुमान! इसी को चौथा कहा जाता है, यही आत्मा का चौथा स्वरूप, तुरीय स्वरूप है, ये शुद्ध स्वरूप है और वो जो विश्व-तैजस-प्राज्ञ तीन नाम पड़े हैं कहा वो तो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति की अपेक्षा से तीन नाम पड़े थे। जाग्रत की अपेक्षा से आत्मा का नाम विश्व या वैश्वानर पड़ा था, स्वप्न की अपेक्षा से आत्मा का तैजस नाम पड़ा था, सुषुप्ति की अपेक्षा करके ही प्राज्ञ नाम पड़ा था। अब जब जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति नहीं हैं तो विश्व-तैजस-प्राज्ञ ये नाम भी नहीं हैं, मानो ये तीन पत्नियॉ थीं इन पत्नियों ने ही विश्व-तैजस-प्राज्ञ ये पतियों के नाम रखे और जब ये नहीं हैं तीनों अवस्थाएं रूपी पत्नियॉ तो विश्व-तैजस-प्राज्ञ ये नाम भी नहीं हैं। ये अनाम और अरूप तत्त्व है इसको तुरीय कहते हैं, इसको चौथा कहते हैं। **चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः**—मुमुक्षु के मोक्ष के लिये, परम कल्याण के लिये ये चौथा जो आत्मा का स्वरूप है ये ही जानने योग्य है, ये निरुपाधिक स्वरूप है, कोई उपाधियॉ नहीं हैं और ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये ओंकार के अकार-उकार-मकार के रूप थे। ओंकार को प्रणव भी कहते हैं, प्रकृति भी कहते हैं, माया भी कहते हैं। अकार से जाग्रत अवस्था जानना चाहिये, उकार से स्वप्नावस्था जानना चाहिये और मकार से सुषुप्ति अवस्था जानना चाहिये। ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये ओंकार के अकार-उकार-मकार के ही रूप हैं और ये ओंकार से परे है चौथा माने जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति से परे है। ओंकार को प्रणव भी कहते हैं, इतना प्रकृति का स्वरूप है और आगे चौथा पुरुष का स्वरूप है जो तीनों में रहता है, तीनों को प्रकाशता है और तीन नाम पड़े हैं। जब तीनों नहीं हैं तो आप अकेला है क्योंकि माया कभी रहती है कभी नहीं रहती। ये ओंकार भगवान से प्रकट हुआ है, भगवान को बताने के लिये प्रकट हुआ है और फिर बताकर फिर भगवान में लीन हो जाता है। ये ओंकार भगवान का उत्तम नाम भी है। ये ओंकार भगवान को अमात्र से बताता है। ओंकार ऐसा भगवान को बताता है, ब्रह्म को बताता है, भगवान राम का जो वास्तविक स्वरूप है ब्रह्म, वो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति से परे है। ये ओंकार कहता है कि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति मेरा स्वरूप है और मैं जिसको नहीं जानता हूॅ और जो मुझको जानता है **'तद्ब्रह्म'** वह ब्रह्म है, वो चौथा है, वहॉ मेरी पहुॅच नहीं है। तो जो मुझको जानता है पर जिसको मैं नहीं जानता हूॅ वह ब्रह्म है, **'तत्त्वमसि'** और हे जीवो! वही तुम्हारा भी स्वरूप है। तो सभी जीवों का, विश्व-तैजस-प्राज्ञ ये तीनों जीवों का वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म बताता है ये ओंकार और जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को अपना रूप बताता है। तो जो मुझसे परे है और जिसको मैं नहीं जानता हूॅ और जो मुझको जानता है वह ब्रह्म है—तत्त्वमसि, हे जीव! वही तुम्हारा स्वरूप है। इस प्रकार से भगवान राम ने जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति से, अकार-उकार-मकार से परे ब्रह्म का स्वरूप बताया सोई राम का वास्तविक स्वरूप है और हे हनुमान! वही सब तुम्हारा सब जीवों का स्वरूप है। इसलिये अपने को ब्रह्मरूप जानो और जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को ओंकार रूप जानो, माया रूप जानो।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

* माण्डूक्य उपनिषद् *

मंगलाचरण

ओम् भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः,
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाविश्ववेदाः,
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।
ओ३म् शान्तिः! ओम् शान्तिः! ओम् शान्तिः!

।। १।। ओमित्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतंभवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव, यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।

।। २।। सर्वं हि एतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्।

।। ३।। जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः।

।। ४।। स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीय पादः।

।। ५।। यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते, न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवाऽनन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखःप्राज्ञतृतीयः पादः।

।। ६।। एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिःसर्वस्य प्रभवाप्ययो हि भूतानाम्।

।। ७।। नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारंप्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।

।। ८।। सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकाराऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकार मकार इति।

।। ९।। जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद।

।। १०।। स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञान सन्ततिं समानश्च भवति नास्याऽब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद।

।। ११।। सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद।

।। १२।। अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद।

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः ! शान्तिः !

—०००—

३३

श्री राम जय राम जय जय राम

* महामंत्र की व्याख्या *

भगवान राम और सीता ये ही दोनों जगत के माता पिता हैं और चराचर जगत सीताराम की संतान है इसलिये सीताराम रूप ही है, सीताराम से भिन्न नहीं है इसीलिये लिखा है — 'सियाराम मय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पाणि'। चराचर जगत, जड़ चेतन जगत सब सीताराममय ही है, सीताराम से भिन्न नहीं है। दोनों हाथ जोड़कर सीताराम स्वरूप जगत को मैं अभिवादन करता हूँ, नमन करता हूँ, प्रणाम करता हूँ। तो इसलिये जो माता-पिता होता है वही सन्तान होता है जैसे ब्राह्मण की सन्तान सब ब्राह्मण ही होती है उनसे भिन्न नहीं होती है, क्षत्रिय की सन्तान क्षत्रिय होती है, गाय भैंस बकरी की सन्तान गाय भैंस बकरी होती है, सिंह की सन्तान सिंह ही होती है ऐसे ही सीताराम की सन्तान भी सीताराम का ही स्वरूप है उनसे भिन्न नहीं है। अब ये दोनों का स्वरूप जानने के लिये रामायण है। अपने माता-पिता को जीव भूल गया है, नहीं जानता है इसीलिये जीव ८४ लाख योनियों में भटकता है। यदि अपने माता-पिता सीताराम का सम्यक दर्शन कर ले, प्रत्यक्ष दर्शन करले तो इसका जन्म-मरण सदा के लिये छूट जाय। सीताराम के बताने के लिये ही रामायण लिखी गई है, और कोई दूसरा प्रयोजन नहीं है कि ये सब जीव सीताराम का स्वरूप जानेंगे सीताराम का स्वरूप ही हो जायेंगे, जन्म-मृत्यु से छूट जायेंगे। तो रामायण में सीता का स्वरूप और राम का स्वरूप, दोनों का स्वरूप अच्छी प्रकार से बताया गया है। रामायण का अर्थ होता है राम का अयन, अयन कहते हैं भवन को, रहने के स्थान को। तो रामायण जो है वो राम का अयन है, राम का दर्शन रामायण में हो सकता है सम्यक प्रकार से।

एक तो ये राम-अयन का अर्थ हुआ और दूसरा ये भी अर्थ होता है कि राम ही चराचर जगत का अयन है। सब जड़ चेतन जगत राम में उत्पन्न होता है, राम में रहता है और फिर राम में लीन हो जाता है इसलिये सब चराचर जगत का आधार-अधिष्ठान, अयन, स्थान राम ही है, दूसरा अर्थ ये होता है। क्योंकि सीता भी राम की शक्ति होने से राम से भिन्न नहीं है। सीता चराचर जगत की रचना करती है, सारा संसार सीता का परिवार है। तो सारा संसार सीता का परिवार सहित जब सीता राम में मिलती है तो रामरूप हो जाती है, तो फिर एक अकेला राम ही रह जाता है। **'श्री राम जय राम जय जय राम'** ये महा मंत्र है। जैसे **रामचरितमानस** रामायण है वैसे ही **अध्यात्म** रामायण है, **अद्‌भुत्** रामायण है, **बाल्मीकि** रामायण है, **हनुमन्नाटक** रामायण है और एक बहुत बड़ी **आनन्द** रामायण है। **'श्री राम जय राम जय जय राम'** ये मंत्र आनन्द रामायण के मनोहर काण्ड में आया है। जैसे तुलसीकृत में सुन्दरकाण्ड है वैसे आनन्द रामायण में मनोहरकाण्ड है, तो वहाँ पर ये मंत्र आया है। किस प्रकार से आया है?

श्री शब्द पूर्वम् जय शब्द मध्यम् जयद्वयेनाति पुनः प्रयुक्तं,
त्रिसप्तकृत्वा रघुनाथ नाम जपम् निहन्या द्विजकोटि हत्या।।

इस प्रकार से ये मंत्र आनन्द रामायण के मनोहरकाण्ड में आया हुआ है। इसका अर्थ क्या हुआ? **श्री शब्द पूर्वम्**—राम शब्द के पहले श्री शब्द जोड़ो तो श्री-राम बन जायेगा, **'जय शब्द मध्यम्'**—फिर राम के बीच में जय शब्द जोड़ दो तो श्री-राम जय-राम बन जायेगा, '

जयद्वयेनाति पुनः प्रयुक्तं'— फिर दो जय मध्य में जोड़ दो तो **'श्री राम जय राम जय जय'** और फिर **'राम'** अन्त में आ गया, तो दो जय मध्य में हो गये दो राम के। तो क्या बन जायेगा **'श्री राम जय राम जय जय राम'** मंत्र बन गया। ' **त्रिसप्तकृत्वा रघुनाथ नाम'** सप्त कहते हैं सात को तो तीन सप्त कितने हो जायेंगे – इक्कीस! तो इक्कीस बार इस मंत्र का जो जाप करे और अर्थ सहित माने इसके अर्थ को समझ करके ध्यान करे क्योंकि मंत्र जाप की विधि शास्त्र में ऐसी लिखी है—**'तद् जपत् तदर्थ भावनं'**। मंत्र जाप की शास्त्रीय विधि में कहते हैं जिस मंत्र का वाणी से जप करो, हाथ से माला फेरो राम नाम की, वाणी से उच्चारण करो भला तो मन से राम के अर्थ का ध्यान करो, राम के स्वरूप का ध्यान करो और बुद्धि से राम के स्वरूप का ज्ञान करो, उसके अर्थ की भावना करो तो मन बुद्धि भी जुड़ना चाहिये। जैसे हाथ और वाक्-इन्द्रिय वाणी जुड़ी हुई है, ये तो कर्मेन्द्रिय है इनको तो ज्ञान नहीं है, न हाथ को ज्ञान है और न वाणी को ही कुछ ज्ञान है, अब इसमें जब मन और बुद्धि जुड़ जायेंगे तब ठीक जाप बन सकेगा और नहीं तो टेप-रिकार्ड के समान ही रहेगा। टेप-रिकार्ड में आप राम राम राम राम भर दो वो बोलता रहेगा, जपता रहेगा रात दिन परन्तु उसको ज्ञान तो नहीं है न! जब ज्ञान नहीं है तो टेप-रिकार्ड को क्या फल मिलेगा? राम नाम जप का टेप-रिकार्ड को क्या फल मिलेगा? कुछ नहीं, सबको ये अनुभव सिद्ध है। कहते हैं यदि राम नाम ये शरीर रूपी टेप-रिकार्ड में और इस वाणी में भर दिया गया तो ये वाणी बोलती रहेगी, वाणी को ज्ञान नहीं है, वाक्-इन्द्रिय कर्मेन्द्रिय है और मन बुद्धि ये ज्ञानेन्द्रियॉ हैं इनमें ज्ञान है, ये राम के स्वरूप का ध्यान कर सकती हैं और बुद्धि से ज्ञान किया जा सकता है तो सच्चा जाप तो मन और बुद्धि से ही होगा और उसी का फल होगा, तुरन्त फल होता है।

नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं,
सुजन विचार करहु मन माहीं।।

एक बार राम का नाम लेने से भव-सागर सूख जाता है। **भवति इति भव**—भव कहते हैं जन्म को, भवति माने जन्म लेता है तो जो जन्मता है वो मरता है, ऐसा ये भव-सागर माने संसार है। तो राम नाम लेने से क्या होता है? भव-सागर ही सूख जाता है, जब सूख गया तो पार क्या करना है? पर कब सूखता है? **'सुजन विचार करहु मन माहीं'**—हे सुजन माने शुद्ध बुद्धि वाले लोगों मन और बुद्धि में राम नाम के अर्थ का विचार तो करो! और विचार नहीं करोगे तो टेप-रिकार्ड के समान ही होगा चाहे लाखों बार जप करो तो भी क्या होगा? टेप-रिकार्ड से करोड़ो जप कर डालो तो उसको क्या फल मिलेगा? तो सज्जनों जितने भी कर्म हैं वो जब शास्त्रीय विधि से किये जाते हैं तब फल दायक होते हैं।

तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्या कार्ये विवस्थितौ
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोतं कर्म कर्तुं इहार्हसि।
यः शास्त्र विधिमुसृज्य वर्तते कामकारतः
न तो सिद्धिमो अवाप्नोति न सुखं न परांगतिं।।

कहते हैं क्या कर्म कैसे करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये, शास्त्र ही प्रमाण है। और जो शास्त्र को छोड़ कर अपनी मनमानी जप करते हैं, तप करते हैं और कर्म करते हैं, **न तो सिद्धिमवाप्नोति**—उनको उन कर्मों का फल नहीं मिलता, सिद्धि नहीं मिलती और न सुख मिलता है, **श्रमेवहिकेवलं**—श्रम तो पूरा होता है उसका फल नहीं मिलता, सुख नहीं मिलता और **न परां गतिम्**—न परम गति ही मिलती है, ये गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है। इसलिये हर कर्म करने की क्या यज्ञ है, क्या दान है, क्या तप है, क्या मंत्र जाप है? सबकी विधि शास्त्र में लिखी है और वो ईश्वरीय विधि है, वेद शास्त्र ईश्वर का कहा हुआ है, ईश्वर की वाणी वेद है। तो मंत्रजाप की भी यही विधि है **'तद्जपः तदर्थ भावनं'**—जिस मंत्र का जाप करो उस मंत्र की मन में भावना करो, बुद्धि से उसका सम्यक ज्ञान करो तो एक बार कहने मात्र से संसार का डर

सूख जाता है माने भवसागर से पार ही खड़ा है। तो ये अर्थ जान लिया राम का, अर्थ में तो साक्षात् राम ही हैं न! अरे राम नाम का अर्थ क्या होगा? जैसे घट का अर्थ घड़ा होता है, मठ का अर्थ मकान होता है ऐसे ही राम का अर्थ तो राम साक्षात् परमात्मा ही होगा माने उनका ज्ञान हो जाना। जितने भी नाम हैं वो अपने अर्थ के प्रकाशक हैं, स्त्री कहने मात्र से स्त्री का ज्ञान हो जाता है, पुरुष कहने से पुरुष का ज्ञान होता है, गठू कहने से गठू का ज्ञान होता है, राम कहने से राम का ज्ञान होता है। इसीलिये राम राम कहे और राम का ज्ञान ही न हो तो राम बहरे तो नहीं हैं, वो तो सुनते हैं एक बार आवाज़ दोगे तो वो सामने ही हैं बिल्कुल, तुम्हारी ऑखों से ओझल नहीं हैं पर तुम यदि न पहचानो वो बात अलग है। राम राम चिल्लाते रहो, राम नाम लेते रहो सामने भगवान खड़े रहें और उनको न पहचानो! तो इसलिये उनकी पहचान करनी चाहिये। जितने नाम हैं वे सम्बोधन हैं, हर नाम नामी का बोध माने ज्ञान कराता है। नाम का कोई और प्रयोजन नहीं है। नाम का मतलब नामी का दर्शन करना, उनको बुलाना किसीको, बुलाया तो सामने है। अब जो लोग केवल वाणी से जपें और हाथ से माला फेरें और मन बुद्धि लगावें नहीं, कहो उनका कैसा फल होगा? कितने भाई बहन सत्संग में बैठते हैं, राम नाम की माला भी फेरते रहते हैं और मन और बुद्धि यदि राम नाम की माला में नहीं लगाओगे तो वो जाप पूरा न होगा, शास्त्र विधि न होगी और सत्संग में लगाओगे पर यदि सुनोगे नहीं मन बुद्धि लगाके तो क्या फल होगा?

जो बताया जा रहा है उसका अर्थ नहीं विचार करोगे, श्रवण के बाद मनन नहीं करोगे तो क्या फल होगा? वो तो सुने और जाते जाते भूल गया। तो बिना मन बुद्धि के न तो सुन सकते हो माने न उसका ज्ञान होगा और बिना मन बुद्धि लगाये राम नाम के अर्थ का ज्ञान न होगा। इसीलिये महात्मा लोग कहते हैं भाई जब सत्संग सुनो तो अच्छी प्रकार से सत्संग सुनो — कान को लगाओ, मन को लगाओ, वाणी को लगाओ और ऑखों को सामने रखो वक्ता के और मन बुद्धि को लगाके सुनो तो उसका लाभ तुरन्त होता है। कई लोग ऐसा समझ लेते हैं कि हमको माला जपने को मना करते हैं। अरे माला जपना तो भगवान की भक्ति है — **'मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा'**, कोई महात्मा मना करेगा महात्मा स्वयं ही जपते हैं वो मना कैसे करेंगे? भक्ति को कैसे मना करेंगे? अरे **'भक्ति बिना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते'**, भक्ति के बिना तो ब्रह्मज्ञान ही नहीं होगा क्योंकि भक्ति के पुत्र हैं ज्ञान और वैराग्य, तो जब माता न होगी तो पुत्र कहॉ से आयेगा बोलिये? इसलिये भक्ति ज्ञान वैराग्य की माता है, जननी है। भागवत् में पहले ही पहले भक्ति-ज्ञान-वैराग्य के महात्म्य की ये कथा आई है इसलिये सज्जनों महात्माओं के कहने का अभिप्राय समझना चाहिये, कई लोग बुरा मान लेते हैं कि महात्मा देखो माला जपने को मना करते हैं। वो तो शास्त्र विधि का विवेचन करते हैं मना नहीं करते हैं, अस्तु। अब देखो **'श्री राम जय राम जय जय राम'** सीताराम दोनों आ गये इसमें, तो दोनों का स्वरूप आप रामायण में आप समझिये, दोनों का दर्शन कीजिये। एक तो अर्थ हुआ कि रामायण जो ग्रन्थ है ये राम का अयन है माने जिसका दर्शन करना हो उसके घर जाना चाहिये न! उसके घर जाओगे और उसका नाम पुकारोगे तो वो मिल जायेगा आपको, ऐसे ही राम का दर्शन करना हो तो राम के घर चलना चाहिये माने रामायण सुनना चाहिये, रामायण पढ़ना चाहिये, राम का घर है इसमें रामजी मिल जायेंगे इसमें संदेह नहीं है अवश्य मिलेंगे, तो एक तो ये अर्थ हुआ न! और दूसरा अर्थ हुआ कि राम ही चराचर जगत का अयन माने आधार-अधिष्ठान हैं। चराचर जगत राम से उत्पन्न होता है, राम में रहता है और राम में ही लीन हो जाता है। इसलिये राम जगत के आधार-अधिष्ठान हैं ये दोनों स्वरूप रामायण से जाने जाते हैं। रामायण का प्रतिपाद्य विषय क्या है माने रामायण बताना क्या चाहती है? कहा राम तत्त्व को ही बताना चाहती है, इसीलिये रामायण लिखी गई है कि जीव राम को जानकर के संसार सागर से, भव सागर से पार हो जाय। अनंत जन्म बीत गये जन्मते-मरते और ये भव सागर से पार न हुआ। तो रामायण इसलिये लिखी गई है कि राम तत्त्व को जानकर के ये भव सागर से पार हो जायेगा, और कोई प्रयाजन नहीं है जीव की मुक्ति के लिये ही रामायण लिखी गई है। तो देखो **'श्री राम जय राम जय जय राम'** अब इसका हम अर्थ बताने जा रहे हैं, रामायण में ये लिखा हुआ है।

तो **श्री** पहले जोड़ी गई, **राम** मध्य में, फिर दो **जय** जोड़े गये तो **'श्री राम जय राम जय जय राम'** बन गया। तो **'श्री शब्द पूर्वम् जय शब्द मध्यम् जयद्वयेनाति पुनः प्रयुक्तं'** इक्कीस बार यदि इस मंत्र को जपे तो अनंतानंत जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है। भगवत् दर्शन में पाप बाधक होते हैं, ये मल दोष है। इसे इक्कीस बार जपने मात्र से अनंत जन्मों के पापों से जीव मुक्त हो जाता है—ये आनन्द रामायण प्रमाण है। अब **श्री** का स्वरूप, **राम** का स्वरूप? — कहा, ये जितना चराचर जगत है—हमारे देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण, ये सब सीता से उत्पन्न भये हैं और सीता का ये स्वरूप हैं अच्छी प्रकार से समझ लो। देह (स्थूल देह स्त्री पुरुषों का) और इन्द्रियॉं—जिनसे देखते-बोलते-सुनते हैं, चलते-फिरते हैं, ऑंख-कान-नाक आदि व हाथ- पैर आदि और मन और बुद्धि, ये सब सीता की रचना है। और इनका जो विषय है—शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध आदि ये भी सब सीता की रचना है इसलिये ये सब सीता का ही परिणाम है, सीता का ही रूप है। भगवान राम ने यही बताया है लक्ष्मण से **'गो गोचर जॅह लग मन जाहि, सो सब माया जानेउ भाई'**, हे भाई लक्ष्मण! जहॉं तक मन बुद्धि जाय और इन्द्रियॉं जॉंयें तहॉं तक ये सब माया ही जानना चाहिये, माया माने सीता का स्वरूप जानना चाहिये क्योंकि सीता ही जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करती है, पर करती कहॉं पर है? मुझ आधार-अधिष्ठान में, मेरे ऊपर ही ये सब लीला करती है। तो चराचर जगत का मैं ही तो अयन हूॅं, कहॉं करेगी रचना संसार की? जगह चाहिये न! तो वो जगह मैं ही हूॅं। इसलिये ये चराचर जगत सीता का स्वरूप है और जो देखने वाला है इस सीता का और सीता की रचना जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का, वो राम का स्वरूप है। अब ये दो हो गये, राम ये कहने से क्या सिद्ध हुआ —

जग पेखन तुम देखन हारे,
विधि हरि शंभु नचावन हारे।।

जो देखने वाला है वो राम है और जो दिखाई पड़ने वाली है कहा वो सीता है। कहो इसमें क्या कठिनता पड़ी रामायण से तुरन्त ये जाना गया कि राम देखने वाले को कहते हैं और दिखाई पड़ने वाली जितनी भी चीज़ें हैं इन्द्रियों से और मन बुद्धि आदि से, ये सब माया का स्वरूप हो गया। रामायण की एक दो चौपाई से भी तुरन्त राम का और सीता के स्वरूप का ज्ञान होता है। रामायण का प्रतिपाद्य विषय मुख्य तो राम ही है।

यहि मंह आदि मध्य अवसाना,
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।

रामायण के आदि में और अन्त में और मध्य में किसका प्रतिपादन किया गया है? कहा राम तत्त्व का क्योंकि राम को जानने से ही जीव मुक्त होगा, औरों के जानने से मुक्ति नहीं होगी। यद्यपि राम के भक्तों की भी कथायें हैं परन्तु वो राम के भक्त राम को जान करके रामरूप हो गये, मुक्त हो गये—इस प्रयोजन से भक्तों की कथायें हैं, नहीं तो मुख्य प्रयोजन रामायण का तो राम स्वरूप का निरूपण करना है। तो आदि में, अन्त में, मध्य में प्रभु राम ही प्रतिपाद्य विषय हैं, रामायण प्रतिपादक है माने कथन करने वाली राम का स्वरूप। राम प्रतिपाद्य हैं माने राम का स्वरूप रामायण बता रही है तो द्रष्टा राम और दृश्य सीता। कितना सरल है राम का दर्शन! तो इन दोनों में द्रष्टा मैं हूॅं ये सबको अनुभव है।

सो तै तोहि ताही नहिं भेदा,
वारि वीचि इव गावहिं वेदा।।

ये महावाक्य है। हे जीव! जो राम द्रष्टा है **'सो तै'** वही तू है, तू मिला के देख ले तेरे अनुभव में भी यही है कि मैं देखता हूॅं, वेद शास्त्र रामायण भी यही कहती है कि वही तू है जो राम है।

देखने वाला राम है तो हम सब देखते हैं और राम एक है देखने वाला, सबमें बैठकर अकेला राम ही देख रहा है बाकी तो सब दृश्य है, कहा वो सीता का स्वरूप है। ये दृश्य फिर? सीता

राम में मिल जाती है फिर राम ही राम रह जाता है। पहले सीताराम सीताराम और उसके बाद में जब सीता राम में मिली तो एक अद्वितीय राम अद्वैत्!

जड़ चेतन जग जीव जस सकल राममय जान
बंदउ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पाणि।।

जड़ चेतन जितना जीव और जगत है ये सब राम का रूप है क्योंकि सीता जड़-चेतन जगत को रचती है न! फिर सीता राम में मिल जाती है तो अकेला राम ही राम फिर रह गया तो इसलिये अन्तिम जाप तो राम राम राम राम का ही होता है और अर्थ सहित ही होता है मन में। और अर्थ सहित नहीं होगा तो याद रखना कि टेप रिकार्ड के समान ही होगा। अखण्ड रामायण हज़ार बार करो पर अर्थ का ज्ञान न हो तो? वेद शास्त्र गीता हज़ार बार रोज़ पाठ करो पर अर्थ न जानो तो? तो कहा व्यर्थ ही है, अर्थ ही सार है। संसार में अर्थ का अर्थ रुपया पैसा भी होता है और वेद शास्त्रों में? कहा वेद मंत्रों का अर्थ 'रामायण का अर्थ जानो' ये होता है, अर्थ का अर्थ माने उसका मतलब समझना। दोनों अपनी अपनी जगह पर श्रेष्ठ हैं :—

राम दाम दोनों बड़े दोनों गाढ़े काम,
दाम संभारत काम को राम देत आराम।।

दाम से संसार के शरीर सम्बन्धी काम बन जाते हैं, वो भी ज़रूरी है और वेद शास्त्र का अर्थ जानो तो राम मिलता है तो उसमें आराम मिलता है, परम सुख शान्ति मिलती है। इसलिये अपनी अपनी जगह व्यवहार में दाम की भी बड़ी महिमा है पर परमार्थ में तो राम की महिमा है। तो वेद शास्त्र का अर्थ जानो तो राम मिलेगा और ये दाम होगा तो तुम्हारे शरीर सम्बन्धी सब काम बनेंगे।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 26 - May 13

३४

अस्ति भाति प्रिय

* भाग - 1 *

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। BG - 0 2.28 **।।**

अर्जुन! जितने भी ये भूत प्राणी हैं 'आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी' ये पंचमहाभूत कहलाते हैं, और **'पंचमहाभूतेभ्यो सर्वभूतानि'** पंचमहाभूतों से फिर ये सभी भूत प्राणी उत्पन्न होते हैं—मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र, ये सभी भूत-प्राणी कहलाते हैं। सो जब ये उत्पन्न नहीं भये थे सृष्टि के आदि में ये कोई नहीं थे, **'व्यक्तमध्यानि भारत'** ये मध्य में व्यक्त भये हैं बीच में प्रकट भये हैं और '**अव्यक्तनिधनान्येव**' निधन के बाद में माने मृत्यु के बाद में फिर ये अव्यक्त हो जाते हैं फिर नहीं रहते। जैसे तरंगें अपनी उत्पत्ति के पहले जलरूप थीं, तरंगों के रूप में, फेन बुल बुलों के रूप में व्यक्त प्रकट नहीं थीं, केवल जलरूप थीं। मध्यमें वायु के निमित्त से ये तरंगें प्रकट भयीं, व्यक्त भयीं और जब तरंगों का नाश हो जाता है तो फिर अव्यक्त हो जाती हैं। वायु बन्द हो गई तो तरंगें फिर जलरूप हो जाती हैं, बीच में ही ये तरंगें प्रकट होती हैं वायु के निमित्त से। ऐसे ही भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! ये अनंत कोटि ब्रह्माण्ड और एक एक ब्रह्माण्ड में रहने वाले पिण्ड अपनी उत्पत्ति से पहले अव्यक्त थे प्रकट नहीं थे, मुझ सच्चिदानंदघन सर्वात्मा सर्वद्रष्टा साक्षी स्वरूप ही थे, मुझ आनंद सिन्धु स्वरूप ही थे और मायारूपी पवन के निमित्त से मुझ आनंद सिन्धु से बीच में ये प्रकट भये, मायारूपी पवन हो गई। फिर जब मायारूपी पवन शान्त हो जाती है तो ये फिर मुझमें मिल जाते हैं, आदि में अन्त में मैं ही रहता हूँ। उत्पत्ति के पहले मैं हूँ और संसार के लय होने के बाद में मैं रह जाता हूँ क्योंकि मेरी उत्पत्ति तो होती नहीं है इसलिये मध्य में ही ये प्रतीति मात्र है, इसलिये ये सत्य नहीं है। और मध्यमें भी यदि विचार करके देखो तो जल के सिवाय कुछ है नहीं केवल नाम रूप का प्राकट्य है। नाम और रूप सत्य नहीं हुआ करते, मिथ्या ही हुआ करते हैं।

मय्यखण्डसुखाम्बुधौ बहुधा विश्ववीचयः
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामारुतविभ्रमात्।।

अर्जुन! मुझ अनंत अखण्ड आनंद सिन्धु में मायारूपी पवन के निमित्त से अनंत कोटि ब्रह्माण्ड रूपी वीचियाँ माने लहरें **उत्पद्यन्ते,** उत्पन्न होती हैं पुनः **विलीयन्ते**, फिर विलीन हो जाती हैं फिर मैं आप अकेला ही शेष रह जाता हूँ। मध्य में भी विचार करके देखो तो आनंद सिन्धु से भिन्न ये आनंद सिन्धु की तरंगें ये 'नाम और रूप' सब तरंगें हैं। सारे संसार में क्या है? नाम और रूप बस दो ही चीज़ें हैं, तीसरी चीज़ तो संसार नाम की कोई है नहीं। सरस्वती रहस्योपनिषद में लिखा है —

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पंचकम्,
आद्यत्रयं ब्रह्म रूपं जगत रूपं ततोद्वयं।।

'अस्ति भाति प्रिय नाम और रूप' संसार में ये पाँच अंश हैं, इन पाँचों में आदि के ये तीन **'अस्ति भाति प्रियं'** ब्रह्म का स्वरूप है और **'जगत रूपं ततोद्वयं',** बचे दो 'नाम और रूप' पाँच

अंश हो गये—अस्ति भाति प्रिय नाम और रूप। *अस्ति-भाति-प्रिय* तो ये ब्रह्म का रूप हो गया, दो बचे *नाम और रूप,* बस ये ही जगत का रूप है। अब इन पॉच से भिन्न कोई छठा तो है नहीं, संपूर्ण ज्ञान इसी में आ जाता है। तो नाम-रूप तरंगें हो गईं, ये जगत तरंग हो गई और अस्ति-भाति-प्रिय ब्रह्म हो गया। अस्ति-भाति-प्रिय को ही सत्-चित्-आनंद कहते हैं, अस्ति-भाति-प्रिय सत्-चित्-आनंद का ही पर्याय वाचक है जैसे जल और पानी एक ही चीज़ के दो नाम हैं। ऐसे ही अस्ति-भाति-प्रिय और सत्-चित्-आनंद ये भगवान के ही नाम हैं। *अस्ति इति सत्* अस्ति **सत्** को ही कहते हैं, *भाति इति चित्* भाति नाम **चित्** का है, *प्रियते इति आनंद* **प्रिय** नाम आनंद का है—सत्-चित्-आनंद ये ब्रह्म का स्वरूप है, बाकी नाम-रूप ये सब तरंगें हैं। तरंगें माया रूपी पवन से उत्पन्न होती हैं, माया रूपी पवन शान्त हो जाता है तो फिर आनंद सिन्धु ही रह जाता है, आनंद सिन्धु कहने से सत् चित् भी ले लेना क्योंकि अस्ति-भाति-प्रिय माने सत्-चित्-आनंद सिन्धु है। सत् की छायारूप तरंगें ये स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों शरीर हैं और चित् के प्रतिबिम्बरूप जीव और ईश्वर हैं जो अविद्या विद्या में प्रतिबिम्बित होते हैं अथवा हमारी तुम्हारी बुद्धियों में जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा है वो जीव चित् की छाया चित् का प्रतिबिम्ब हो गया माने बुद्धियों में जितने ज्ञान हैं वो चित् के प्रतिबिम्ब हैं और आनंद का प्रतिबिम्ब जो विषय इन्द्रिय के सम्बन्ध से मन क्षणभर के लिये एकाग्र होता है उस एकाग्र मन में आनंद सिन्धु का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है उसको विषयानंद कहते हैं, वो प्रतीति मात्र होता है इसलिये प्रेयसुख भी कहा जाता है। अर्जुन ने श्रेयसुख की बात पूछी है, श्रेयसुख कहते हैं नित्यसुख को सो आत्मा है, आत्मानंद है। उस आत्मानंद का प्रतिबिम्ब क्षणभर के लिये विषय-इन्द्रिय के सम्बन्ध से मन एकाग्र हो गया उसमें प्रतिबिम्ब पड़ा इस विषयानंद को प्रेयसुख कहते हैं, तो ये भी प्रतिबिम्ब हो गया। तो ये शरीर सत् का प्रतिबिम्ब है, बुद्धि में जो ज्ञान प्रकट हुआ है वो चित् का प्रतिबिम्ब है और जो विषयानंद है वो आनंद का प्रतिबिम्ब है। तो अपनी उत्पत्ति के पहले तो काई प्रतिबिम्ब या छाया होती नहीं है पुरुष ही होता है, जीव पुरुष सत्य होता है। **पूर्णत्वात् पुरुषः** जो ब्रह्म है वो पुरुष है, वो सत्य ज्ञान आनंद से पूर्ण है, एक अद्वितीय है। अब ये जितनी भी छाया हैं — शरीर है, बुद्धि में ज्ञान है, विषयानंद है ये मिथ्या ही हैं, उत्पत्ति नाशवान हैं। विचार दृष्टि से देखो तो आदि अन्त मध्य में एक आनंद सिन्धु ही है जैसे तरंगों की उत्पत्ति के पहले विचार दृष्टि से देखो तो जल ही जल है, मध्य में ही वायु निमित्त से तरंगों का नाम और रूप दो ही तो हैं। नाम-रूप की कल्पना ये वायु के निमित्त से भयी है सो झूठी है सत्य नहीं है।

वाचारम्भणम् विकारोनामध्येयं जलमेव सत्यं।।

केवल वाणी का विकार है, कथन मात्र है। 'तरंग' ये नाम कहने वाले की वाणी में है और तरंगों का रूप देखने वालों की ऑखों में है और जहॉ ये दिखाई पड़ती हैं तरंगें वहॉ जल ही है, ऑखों से भ्रमरूप जल ही तरंग के रूप में दिखाई पड़ रहा है। तो तरंग कोई वस्तु नहीं है, यदि वस्तु हो तो जब कोई तरंग को पकड़ता है तो जल हाथ में आता है, यदि कोई सत् वस्तु तरंग होती तो वो हाथ में आना चाहिये परन्तु तरंग तो केवल नेत्रों का भ्रम ही है, धोखा ही है और तरंग ये नाम केवल वाणी का ही विकार है, कथन मात्र है पर है जल ही। तरंग पकड़ो, बुलबुले पकड़ो तो जल ही हाथ में आता है, भला झूठी चीज़ कहीं हाथ में आती है? सत्य वस्तु पकड़ में आती है। ऐसे ही सज्जनो! अस्ति-भाति-प्रिय रूप आनंद सिन्धु की ये सब तरंगें हैं, विचार दृष्टि से देखो तो आदि अन्त मध्य में एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही है दूसरा कोई नहीं है। तो जगत का स्वरूप भी तरंग रूप होने से सच्चिदानंद ब्रह्म से जुदा नहीं है क्योंकि मिथ्या कल्पना मात्र है न मायारूपी निमित्त से। कल्पित वस्तु सत्य से भिन्न नहीं हुआ करती, सत्य और कल्पित का **'कल्पित तादात्म्य'** सम्बन्ध हुआ करता है, जैसे तरंगें कल्पित हैं व जल सत्य है तो कल्पित तरंगों का जल के साथ में 'कल्पित तादात्म्य' सम्बन्ध है तो केवल तरंगों का भ्रम

ही है ऐसे ही ये जगत नाम-रूप भ्रम है और अस्ति-भाति-प्रिय सच्चिदानंद ब्रह्म सत्य है।

ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव न परः।।

ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है और जो जीव है वो तो ब्रह्म ही है, दूसरी कोई चीज़ नहीं है। तो सज्जनों! जितना भी दृश्य मात्र नाम-रूप है, नाम-रूप के सिवाय और संसार में क्या है? ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, शिव-शक्ति, सूर्य-गणेश, कच्छ-मच्छ, वामन-वराह, नृसिंह — ये ईश्वर के शरीरों के नाम-रूप हैं। स्त्री-पुरुष, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र — ये सब जीवों के शरीरों के माने नाम-रूप हैं। नाम-रूप सब तरंगें हैं, सच्चिदानंद सिन्धु भगवान हैं ब्रह्म हैं इसलिये सभी देवताओं का वास्तविक स्वरूप, ब्रह्मा-विष्णु-महेश का, इन्द्रादि देवताओं का, रावण आदि दैत्यों का, मनुष्यों का, पशु-पक्षियों का, वन-पर्वतों का, गंगा आदि नदियों का जो वास्तविक स्वरूप है वो सच्चिदानंद ब्रह्म ही है दूसरा कुछ नहीं है। छाया का सच्चा स्वरूप तो पुरुष ही हुआ करता है। ये छायारूप जगत या तरंगरूप जगत, पुरुषरूप या जलरूप आनंदसिन्धुरूप ही है, भिन्न नहीं है। इसलिये भगवान कहते हैं कि सत्य की पहचान करो और झूठे को सत्य मत मान बैठो। भगवान को पाना नहीं है, तरंगों को जल को पाना है क्या? जल से वियोग हुआ है क्या तरंगों को? क्या किसी काल में जल और तरंगों का अलगाव हुआ है कि तरंगें जल को पावें? और जो तरंग को जल पाने की इच्छा हो तो भ्रम ही जानना चाहिये, अज्ञानता ही जानना चाहिये। **'जल ही माहि तरंग एक रटै पियास पियास'** जल ही में एक तरंग कह रही है कि मुझे जल की प्यास है, किसी महापुरुष ने कहा कि हे तरंग! तू जल का दर्शन करना चाहती है, जल की तुझे प्यास है? बोली हां! बोले तू अपने भीतर देख, तेरे भीतर ही जल का दर्शन हो जायेगा बाहर कहॉ खोजती फिरती है। जब अपने भीतर देखा तो जल ही जल पाया, तरंग ये नाम न मिला। शीतलता, मधुरता, द्रवतारूप जल ही पूरी की पूरी तरंग जलरूप ही दिखाई पड़ी। फिर महापुरुष ने कहा कि कह तरंग तुझे जल का दर्शन हुआ? तो जवाब आता है — **नाहं तरंगः सलिलमहं,** मैं तरंग नहीं हूँ किन्तु जल हूँ सलिल हूँ माने जल ही हूँ क्योंकि मैंने अपने भीतर खोज के देखा अपना नाम और रूप तरंग तो खोजे नहीं मिला, जल ही जल मिला मुझको। क्या आदि में, क्या मध्य में, क्या अन्त में जल ही जल मिला इसलिये मेरा और जल का वियोग भ्रम ही था। कभी वियोग हुआ ही नहीं है क्योंकि जब मेरा जन्म हुआ तो जल साथ है, जल ही में तो तरंग का जन्म हुआ और मध्य में स्थिति जब है मेरा चलना फिरना है रहना है तो जल में ही रहती है, जल साथ है मेरे और जब मेरा लय है तो लय में भी जल साथ ही है। जल ने तो मेरा साथ कभी जन्म में, जीवन में और मृत्यु में एक सेकण्ड के लिये भी साथ छोड़ा ही नहीं और मैं पूरी की पूरी जल ही हूँ। ऐसे ही ये जीव और जगत रूपी तरंगें अपने आनंद सिन्धु से भिन्न नहीं हैं। जगत रूपी तरंगों की उत्पत्ति आनंद सिन्धु से भयी तो आनंद सिन्धु साथ में है, जन्म में साथ हैं सब जीव जगत के। रहती कहॉ हैं ये? उसी आनंद सिन्धु में रहती हैं तो आनंद सिन्धु साथ है फिर लय कहॉ होती है मृत्यु कहॉ होती है सब जीव जगत की? इसी आनंद सिन्धु में, तो मृत्यु में भी सच्चिदानंद सिन्धु साथ है। तो भगवान का वियोग इस जीव से हुआ ही कब है जो संयोग होवे, तो भगवान को पाने के लिये कौन सा योग करे जो भगवान मिलें? सज्जनों! यदि वियोग हो तो योग भी, योग नाम मिलने का है, अरे! जब मिला ही हुआ है, हर समय वही हो तुम तो कौन सा योग करे तो पावे? केवल भ्रम की निवृत्ति के लिये ही सज्जनों कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग है और कोई भगवान को, ब्रह्म को पाने के लिये नहीं है क्योंकि वियोग हुआ ही नहीं है, तो आदि अन्त मध्य में अर्जुन! मैं ही मैं हूँ। विचार दृष्टि से देखो तो ये जगतरूप भी मैं हूँ और अविचार दृष्टि से देखो तो ये संसार तरंग दीखती है और ये ही सत्य दीखती है पर विचार दृष्टि से देखो तो सच्चिदानंद सिन्धु से भिन्न नहीं है। **'सर्वं हि एतद् ब्रह्म'**, **'अहमैवेदम् सर्वं'**—अर्जुन! ये सब मैं ही मैं हूँ। केवल भ्रान्ति की निवृत्ति के लिये ये मेरा उपदेश है, मुझे पाने के लिये नहीं जैसे तरंग की भ्रान्ति को महापुरुष ने निवृत्त कर दिया ऐसे ही जीवों की भ्रान्ति को महापुरुष लोग

,संत-महात्मा गुरुलोग निवृत्त करते हैं। भक्त लोग कहते हैं कि भगवान को पाने के लिये हमारी ऑखें तरस रही हैं **'ऑखिंयॉ हरि दर्शन की प्यासी'**, भक्त लोग जानते हैं न! कि भगवान हमसे जुदा हैं, भक्ति से हमको वो मिलेंगे ऐसा कहते हैं। तब महापुरुष लोग उनको ऐसा उपदेश देते हैं जो भक्ति से व्याकुल हो रहे हैं भगवान को पाने के लिये, कि जिनको पाने के लिये तुम व्याकुल हो रहे हो उनको अपने भीतर ही देखो। अरे जो परमात्मा है सोई जीवात्मा है।

सो तै ताहि तोहि नहिं भेदा,
वारि वीचि इव गावहिं वेदा।।

वही तुम हो **'तत्त्वमसि'**, ये भगवान के वचनों का उपदेश देते हैं, महावाक्य है ये। **'सो तैं'** वही तू है, तुझमें और उसमें भेद ही कहॉ है जो उसको तुम पाना चाहते हो, **'वारि वीचि इव'** जैसे जल और तरंग का अभेद, **'गावहिं वेदा'** वेद ऐसा गान करते हैं माने तत्त्वमसि महावाक्य—जो ब्रह्म है सो तू है, जो तू है सो ब्रह्म है कभी वियोग नहीं हुआ।

प्राण प्राण के जीवन जी के,
स्वारथ रहित सखा सबही के।।

भगवान तो सभी जीवों के ऐसे सखा माने साथी हैं कि जन्म में और जीवन में और मृत्यु में कभी साथ छोड़ते ही नहीं हैं क्योंकि सभी जीव तरंग समान हैं और भगवान आनंद सिन्धु हैं इसलिये कभी वियोग होता ही नहीं है, ऐसे सखा हैं।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 59a - 31 May

३५

अस्ति भाति प्रिय

* भाग - 2 *

सर्वशक्तिमान सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान के ज्ञान से जीव सर्व दु:खों से और मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है अर्थात् उसे कभी किसी भी प्रकार का कोई भी दु:ख नहीं आता है, नित्य सुख-शान्ति को प्राप्त कर लेता है और मृत्यु नहीं आती है अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। इसलिये जीव को अपने परम कल्याण के लिये अर्थात् सब दु:खों और मृत्यु से भी छूटने के लिये भगवान का ज्ञान परमावश्यक है। भगवान के ज्ञान का साधन भगवान की वाणी वेद है और वेद का अर्थ बताने वाले गुरु हैं क्योंकि वेद अपने आप तो बोलता नहीं है स्वर-व्यंजन रूप है तो वेदों के मंत्र पढ़कर सुनाने वाले उनका अर्थ बताने वाले गुरु ही होते हैं इसलिये गुरु मुख्य साधन हैं, तो सज्जनों *सरस्वती उपनिषद* में ये लिखा है कि संसार में पॉच अंश हैं :—

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पंचकम्,
आद्यत्रयं ब्रह्म रूपं जगत रूपं ततोद्वयं।।

'अस्ति भाति प्रिय नाम और रूप' संसार में ये पॉच हो गये, इन पॉचों में आदि के जो तीन हैं वो ब्रह्म का स्वरूप है माने **अस्ति भाति प्रिय** और **जगत रूपं त्वतोद्वयं** बचे दो 'नाम और रूप' ये जगत का रूप है। 'अस्ति-भाति-प्रिय' तो ब्रह्म का रूप है और 'नाम' और 'रूप', ये जगत का स्वरूप है, ये पॉच अंश हैं केवल। अब इन्हीं पर विचार करो अधिक कुछ भी नहीं है संसार में। अस्ति-भाति-प्रिय का अर्थ होता है सत्-चित्-आनंद। **अस्ति** *इति सत्,* **भाति** *इति चित्,* **प्रियते** *इति आनंद* । अस्ति इति सत्—अस्ति को **सत्** कहते हैं अस्ति का अर्थ होता है **'है'**, अस्ति माने है, भूतकाल में है वर्तमान में है भविष्य में है माने सदा-सर्वदा है। सर्व देश में है, सर्वकाल में है, सर्ववस्तु में है, कण कण में है क्योंकि उसकी उत्पत्ति-नाश नहीं होती है। उत्पत्ति-नाश होगा तो उत्पत्ति के पहले न होगा और नाश के बाद फिर नहीं रहेगा तो उसको अस्ति नहीं कह सकते हैं फिर इसलिये सर्वदेश में, सर्वकाल में, सर्ववस्तु में सदा है, उसी को सत् कहा जाता है सज्जनों। भाति इति चित—भाति नाम चित् का है सज्जनों! भाति प्रकाश अर्थ में है और प्रकाश दो प्रकार का होता है एक दृश्य रूप और दूसरा द्रष्टा रूप प्रकाश होता है जैसे सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत, तारागण—संसार में ये पॉच प्रकाश प्रसिद्ध हैं और इन पॉचों का जो प्रकाशक है सबसे ऊपर वो **भाति** नाम से कहा जाता है, वो **चिद्** अनंत अखण्ड ज्ञानरूप से कहा जाता है वो **ज्ञानप्रकाश** है।

ये पॉचों प्रकाशों को वो प्रकाशता है, वो सूर्य को देखता है, चन्द्र को देखता है, तारागणों को देखता है और बिजली को देखता है और अग्नि को भी देखता है परन्तु ये प्रकाश उसको नहीं जानते हैं, वो इन सबको जानता है देखता है।

परम प्रकाश रूप भगवाना, नहिं तॅह पुनि विज्ञान विहाना।।

ऐसे परम प्रकाशरूप भगवान हैं सज्जनों! वहॉ विज्ञान का माने परम प्रकाश जो ज्ञान है उसका प्रात:काल नहीं होता है माने उदय नहीं होता है, जो उदय नहीं होता है वो अस्त भी नहीं होता है, एक समान प्रकाशमान रहता है सज्जनों! और जो बाकी पॉच प्रकाश हैं ये उदय-अस्त वाले हैं। सूर्य के प्रकाश का भी प्रात:काल उदय होता है और सायंकाल अस्त होता है, ऐसे ही चन्द्र

और तारागण भी हैं ये भी उदय-अस्त होते हैं। बिजली और अग्नि भी जलती है और बुझ भी जाती है परन्तु जो परम प्रकाशरूप भगवान हैं उनका उदय-अस्त नहीं होता है एक समान ही प्रकाशमान रहते हैं इसीलिये उनको भाति कहा गया है—परम प्रकाशरूप भगवान सब प्रकाशों से ऊपर, तो ये भाति का अर्थ हुआ सज्जनों! इसी को चिद् कहते हैं तो सत्-चित् का अर्थ अस्ति और भाति हुआ। प्रिय का अर्थ होता है आनंद सज्जनों! **प्रियते** *इति आनंद,* प्रिय नाम सज्जनों आनंद का है तो सत्-चित्-आनंद के ही दूसरे नाम हैं अस्ति-भाति-प्रिय और ये नित्य हैं, सत्य हैं। अस्ति भी, भाति भी और प्रिय माने आनंद भी, ये सदा रहते हैं, उदय-अस्त रहित हैं। और जो नाम और रूप हैं सज्जनों! ये जगत का रूप है सज्जनों! नाम और रूप इन दो चीज़ों को ही जगत कहते हैं, दो ही चीज़ें हैं जगत में। स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र — देखो ये नाम हैं और इनके रूप अलग अलग हैं और तीसरी चीज़ संसार में नहीं है सज्जनों! तो ये नाम-रूप को माया कहते हैं सज्जनों! ये नाम-रूप सदा नहीं रहते इनकी उत्पत्ति-प्रलय सदा होती रहती है। 'गच्छति इति जगत' ये जगत हमेशा चलता रहता है, स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी ये सब चलते रहते हैं सज्जनों! इन शरीरों के भीतर इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण हैं ये भी हमेशा चलते रहते हैं, स्थिर कोई नहीं है सज्जनों! उसी सच्चिदानंद ब्रह्म से ये उत्पन्न होता है ये जगत, उसी सच्चिदानंद ब्रह्म में रहता है जगत और फिर उसी में लीन हो जाता है, सत्-चित्-आनंद ब्रह्म ही अन्त में शेष रहते हैं। वेद कहता है —

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते,
येन जातानि जीवन्ति,
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्ब्रह्म।

जिससे जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है और फिर जिसमें लय हो जाता है उसको ब्रह्म कहते हैं सज्जनों! तो वो ब्रह्म सत्-चित्-आनंदरूप है अस्ति-भाति-प्रियरूप है और ये नाम-रूप जगत उसी ब्रह्म से उत्पन्न होता है, उसी ब्रह्म में सज्जनों रहता है और फिर उसी में लय हो जायेगा, फिर एक अद्वितीय ब्रह्म ही रह जायेगा सज्जनों! जगत नहीं रहेगा, ये नाम-रूप सदा नहीं रहते हैं। देखो अब इस पर विचार करो — 'आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी' सच्चिदानंद ब्रह्म से ये पहले उत्पन्न होते हैं। **तस्माद्वा एतस्मादात्मन् आकाशः संभूतः,** उस परम ब्रह्म परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ। **आकाशाद्वायुः,** फिर आकाश से वायु उत्पन्न हुआ। **वायोरग्निः,** वायु से अग्नि उत्पन्न हुआ। **अग्नेरापः** अग्नि से जल उत्पन्न हुआ। **अद्भ्यः पृथिवी**, जल से फिर पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न हुआ। **पृथिव्या ओषधयः**, पृथ्वी से औषधियाँ उत्पन्न हुईं—आम अमरूद अनार अंगूर ऑवला ये जितने वृक्ष हैं इनको औषधियाँ कहते हैं। **ओषधीभ्योऽन्नम्**, औषधियों से अन्न उत्पन्न हुआ—गेहूँ जौ चना ज्वार बाजरा ये सब अन्न है सज्जनों! **अन्नात्पुरुषः**, अन्न से ये सब प्राणी उत्पन्न हो गये—मनुष्य, पशु-पक्षी ये सब उत्पन्न हो गये, अब ये नाम और रूप सब बन गये, फिर इनके विपरीत क्रम से जिनकी उत्पत्ति होती है उनका नाश भी होता है और जिसकी उत्पत्ति नहीं हुई उसका नाश भी नहीं होता है। **अस्ति-भाति-प्रिय** परमात्मा की या हमारी तुम्हारी आत्मा की उत्पत्ति नहीं भई है इसलिये नाश भी नहीं होता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है अर्जुन! — **न जायते म्रियते वा कदाचित्** , ये जो जीवात्मा है सब शरीरों में, सबकी ऑखों से देखता है सबमें बैठा है ये जीवात्मा है, **'न जायते'** इसका जन्म नहीं होता है इसीलिये **'न म्रियते'** मृत्यु नहीं होती है क्योंकि मृत्यु का कारण तो सज्जनों जन्म ही होता है, जन्म होगा तभी मृत्यु होगी और जिसका जन्म ही नहीं होगा उसकी मृत्यु कैसे होगी। मृत्यु भी, काल भी यदि मारेगा तो उसको मारेगा जिसका जन्म हुआ है और जिसका जन्म ही नहीं हुआ है उसको मृत्यु भी क्या मारेगा? तो अर्जुन! हमारी तुम्हारी आत्मा का जन्म नहीं होता है इसलिये मृत्यु भी नहीं होती है। आत्मा परमात्मा एक है भिन्न नहीं है, बाकी सब उत्पन्न हुए हैं तो ये तो लय हो जायेंगे, तो ये जितने

नाम और रूप हैं इनका नाश हो जायेगा। अब नाम-रूप का लय देखो – माटी से बना ये घट है भला, दो अक्षर का इसका नाम है 'घ' और 'ट', गोल रूप है व पानी भरने के काम में आता है घड़ा, इसमें अस्ति-भाति-प्रिय ये ब्रह्म है ये समाया हुआ है। 'घट है' इसका नाम अस्ति है, 'घट भासित हो रहा है' माने दिखाई पड़ रहा है इसका नाम भाति है, 'घट प्रिय है' क्योंकि जल भरने के काम आता है इसलिये प्रिय भी समाया हुआ है तो अस्ति-भाति-प्रिय ये ब्रह्म का स्वरूप है सज्जनों! और घट में समाया हुआ है व्यापक है घट में। अब काल आने पर ये घट नष्ट हो जायेगा, समय में फूट जायेगा कभी घड़ा तो घट का नाम-रूप चला गया न! **गच्छति इति जगत** नाम-रूप को जगत कहते हैं, ये जगत 'गच्छति' माने चला जायेगा, चलता रहता है ये स्थिर नहीं है और अस्ति-भाति तो स्थिर है तो घट कहाँ चला जायेगा? अपने कारण में लय हो जायेगा, माटी से बना है घड़ा तो माटी में लय हो जायेगा तो घट का नाम-रूप गया। अस्ति-भाति-प्रिय तो ब्रह्म का स्वरूप है वो तो जायेगा नहीं कहीं। अब वो अस्ति-भाति-प्रिय पृथ्वी में व्यापक है * पृथ्वी है, पृथ्वी भासती है और पृथ्वी प्रिय है क्योंकि सबको रहने की जगह देती है, तो सज्जनों ये अस्ति-भाति-प्रिय अब पृथ्वी में समाया है। जब महाप्रलय आयेगी तो ये पृथ्वी भी न रहेगी माने पृथ्वी का नाम और रूप नहीं रहेगा इसी को जगत कहते हैं सज्जनों! महाप्रलय में ये जल में लय हो जायेगी तो पृथ्वी का नाम-रूप गया, चल है न! चला जा रहा है परन्तु अस्ति-भाति-प्रिय अब जल में समाया है, व्यापक है। ***जलमस्ति** जल है, **जलं भाति** जल भासित हो रहा है दिखाई पड़ रहा है, **जलं प्रियः** जल प्रिय है क्योंकि प्यास मिटाता है जल इसलिये प्रिय लगता है तो ये अस्ति-भाति-प्रिय जल का नहीं है सज्जनों! ये ब्रह्म का है, आत्मा का है सज्जनों! फिर जल भी अग्नि से उत्पन्न हुआ है, समय आने पर जल भी अपने कारण अग्नि में समा जायेगा तो जल का नाम-रूप चला जायेगा पर अस्ति-भाति-प्रिय तो ब्रह्म का स्वरूप है वो तो सदा एक समान प्रकाशमान रहेगा। अग्नि में समाया है अस्ति-भाति-प्रिय ब्रह्म, वही हमारा तुम्हारा आत्मा है। * 'अग्नि है' 'अग्नि भासती है' 'अग्नि प्रिय है' क्योंकि शीत-ठण्डी दूर करती है, भोजन बनाने के काम आती है इसलिये अग्नि प्यारी भी लगती है, तो सज्जनों ये अस्ति-भाति-प्रिय अग्नि का स्वरूप नहीं है ये तो ब्रह्म का स्वरूप है, आत्मा का स्वरूप है सज्जनों! अग्नि तत्त्व भी वायु तत्त्व से उत्पन्न हुआ है इसलिये समय आने पर वायु में मिल जायेगा तो अग्नि का नाम-रूप गया परन्तु अस्ति-भाति-प्रिय तो ब्रह्म है वो तो सदा रहेगा। अब वो वायु में समाया हुआ है। * 'वायु है' 'वायु भासता है' और 'वायु प्रिय है' कयोंकि पसीना सुखाता है वायु, प्राण देता है स्वॉस आता-जाता है ये प्राण है ये जीवन देता है इसलिये वायु प्यारा लगता है सज्जनों! परन्तु ये जो प्रियता है वो वायु की नहीं है ये अस्ति-भाति-प्रिय 'आत्मा' की है। अब वायु भी समय आने पर अपने कारण आकाश में समा जायेगा तो वायु का नाम-रूप गया सज्जनों! * 'आकाश है' 'आकाश भासता है' और 'आकाश प्रिय है' तो ये अस्ति-भाति-प्रियता जो है ये तो ब्रह्म की है आकाश की नहीं है, आकाश में व्यापक है अस्ति-भाति-प्रिय, आकाश से भी अति सूक्ष्म है। तो आकाश जो है प्रिय है क्योंकि सबको रहने के लिये जगह देता है **'अवकाशं ददाति इति आकाशः'** जो सबको रहने की जगत देता है उसको आकाश कहते हैं सज्जनों! इसलिये सबको प्रिय लगता है, तो ये अस्ति-भाति-प्रियरूपता जो है ये आकाश की नहीं है वो ब्रह्म की है। आकाश फिर आत्मा में समा जायेगा क्योंकि इसकी उत्पत्ति हुई है न आत्मा से और आत्मा परमात्मा है और परमात्मा आत्मा है, आत्मा-परमात्मा की एकरूपता है सज्जनों! अब आकाश समा गया तो अस्ति-भाति-प्रिय हमारा तुम्हारा आत्मा ब्रह्म ही रह गया शेष सज्जनों! क्योंकि आत्मा की परमात्मा की उत्पत्ति तो लिखी नहीं है वेद में इसलिये सत्-चित्-आनंद स्वरूप हमारा तुम्हारा आत्मा अन्त में शेष रह गया। और ये नाम-रूप जगत जैसे उत्पन्न हुआ था आत्मा से और विपरीत क्रम से

उसी में समा गया, **सत्-चित्-आनंद** स्वरूप हमारा आत्मा रह गया सज्जनों! उत्पत्ति नहीं हुई हमारी तुम्हारी आत्मा की इसलिये **सत्**, अखण्ड ज्ञान स्वरूप है इसलिये **चिद्** और अनंत आनंद का सिन्धु है इसलिये **आनंद** है प्रिय है। अस्ति-भाति-प्रिय कहो या सत्-चित्-आनंद कहो एक ही बात है। तो आदि में हमारा आत्मा सत्-चित्आनंद स्वरूप ब्रह्म था और अन्त में भी आत्मा ही रह गया, मध्य में ये जगत उत्पन्न हुआ आकाश-वायु-अग्नि-जल -पृथ्वी के क्रम से और विपरीत क्रम से उसी आत्मा में लीन हो गया। हमारा तुम्हारा सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा शेष रह गया।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 10 - Voice 21

३६

स्थितप्रज्ञ के लक्षण

सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी से अर्जुन ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना किया हे भगवन!

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ़चेताः।
यच्छेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे,
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। BG - 02.07 ।।

अज्ञानता के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है और धर्म को भी सम्यक प्रकार से नहीं जानता हूँ, मेरा परम कल्याण किस प्रकार से होगा उस उपाय को भी नहीं जानता हूँ इसलिये मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणें में अर्पण है मेरे परम कल्याण का उपाय आप बतावें। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो :—

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।। BG - 02.49 ।।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते,
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। BG - 02.50 ।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः,
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।। BG - 02.51 ।।

अर्जुन! निष्काम कर्म से सकाम कर्म अत्यन्त ही तुच्छ है इसलिये तू निष्काम कर्म कर, निष्काम कर्म करने से मन निर्मल होता है और मुझमें परम भक्ति होती है। मुझमें परम भक्ति होने से मन की चंचलता दूर हो जाती है और फिर मेरे द्वारा उसको सम्यक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। फिर वो बुद्धिमान मनुष्य कर्म से उत्पन्न होने वाले फलों को त्याग करके जन्म-मरण रूपी बन्धन से विशेषरूप से मुक्त हो करके जो जन्म-मरणरूपी आमय माने रोग है उस संसार रोग से मुक्त हो करके अनामय पद को प्राप्त हो जाता है। भक्ति के बाद ज्ञानयोग है, ज्ञानयोग से अज्ञान नष्ट हो जाता है और अज्ञान का कार्य नष्ट हो जाता है तब अनामय पद मिलता है। जहाँ जन्म-मृत्यु रूप संसार बन्धन नहीं है उस पद को अनामय पद कहते हैं। आमय कहते हैं एक रोग को और जन्म-मरण एक रोग है सो संसार में है, ये संसार बन्धन से वो सदा के लिये मुक्त हो जाता है, उस अनामय पद को प्राप्त करके वो पतित नहीं होता, उस अनामय पद से वो च्युत नहीं होता

माने सदा के लिये वो संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है फिर उसका बारम्बार जन्म-मरण नहीं होता।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति,
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।। BG - 02.52 **।।**

अर्जुन! ये मोहरूपी दलदल को जब तेरी बुद्धि पार कर जायेगी तब तू सुने हुए से और आगे जो सुनने योग्य है उस सबसे वैराग्यवान हो जायेगा।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला,
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।। BG - 02.53 **।।**

अर्जुन! विविध प्रकार की श्रुतियों के सुनने से जो तेरी बुद्धि संशय युक्त विचलित हो गयी है जब एक निश्चय पर पहुँच जायेगी और समाधि नाम यहाँ (**'धि'** माने **बुद्धि**) जिसमें बुद्धि समाहित हो जाये, स्थित हो जाये ऐसे अपने आत्म तत्त्व में ही जब तेरी बुद्धि स्थित हो जायेगी माने अचल हो जायेगी, स्थिर हो जायेगी हे अर्जुन! तब तू जान लेना कि मैं योग को प्राप्त हो गया हूँ, ये साँख्य योग है माने ये ज्ञानयोग है, जन्म-मृत्यु से रहित अनामय पद को मैं प्राप्त हुआ हूँ। शुद्ध सच्चिदानंदघन ब्रह्म आत्मा में बुद्धि की स्थिरता समाधि योग है।

अर्जुन उवाच —

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव,
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।। BG - 02.54 **।।**

हे भगवन! जिसकी बुद्धि अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म में स्थित हो गयी है उसका क्या लक्षण है? यहाँ भाषा का अर्थ लक्षण है, जिसकी बुद्धि अपने आत्म स्वरूप में निश्चल हो गयी उसका क्या लक्षण है प्रभु? वो मुझको बताओ, मैं कैसे जानू कि ये आत्मा में स्थिर बुद्धि वाला है, स्थितप्रज्ञ है। प्रभु! स्थित बुद्धि पुरुष कैसे बैठता है और कैसे चलता है, कैसे वचन बोलता है, कैसे भाषण करता है? ये मैं जानना चाहता हूँ।

श्रीभगवानुवाच —

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्,
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। BG - 02.55 **।।**

हे अर्जुन! जब ये स्थितप्रज्ञ मन में आने वाली सभी कामनाओं को त्याग देता है, प्रकृष्टरूप से विशेषरूप से संपूर्णता से त्याग देता है और अपनी आत्मा से आत्मा में ही स्थिर होता है माने अपनी मन बुद्धि को अपने सत्-चित्-आनंद रूप आत्मा में ही स्थिर कर लेता है अर्जुन तब तुम जान लो कि उसकी बुद्धि स्थिर हो गयी है, वह स्थित प्रज्ञ है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः,
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।। BG - 02.56 **।।**

हे अर्जुन! दुःख में वो अत्यन्त व्याकुल नहीं होता है और सुख भोगों की उसकी कोई स्पृहा नहीं होती है माने इच्छा नहीं होती है, कामना नहीं होती है और जिसकी किसी में आसक्ति नहीं है और भय नहीं है व किसी के प्रति क्रोध नहीं है, रजोगुणी तमोगुणी ये सब वृत्तियाँ शान्त हो गयी हैं, अर्जुन! तब तुम जानो कि उसकी बुद्धि स्थिर हो गयी है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्,
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठता।। BG - 02.57 **।।**

अर्जुन! सुख-दु:ख में और सुख-दु:ख के साधनों में, विषयों में जिसकी आसक्ति नहीं है, जो हर्ष-शोक रहित हो गया है, कहीं शुभ कहीं अशुभ ये तो प्राप्त होते रहते हैं परन्तु शुभ-अशुभ में वो स्नेह रहित है। सुख और सुख के साधन प्राप्त होने पर वह उनका अभिनंदन नहीं करता है, उनकी प्रशंसा नहीं करता है और दु:ख व दु:ख के साधनों के प्राप्त होने पर कोई द्वेष नहीं करता है, अर्जुन! उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है ऐसा जानना चाहिये।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽगांनीव सर्वश:,
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। BG - 02.58 **।।**

अर्जुन! जैसे कछुआ भय स्थान देख करके अपने सारे अंगों को समेट लेता है, अपने कमठ के भीतर कर लेता है। कछुए की पीठ और नीचे का भाग बहुत कड़ा है उसके भीतर कछुआ रहता है, इन्द्रिय मन बुद्धि सब उसके भीतर हैं, जब कोई भय दिखाई पड़ा तो वो सारे अंगों को अपने भीतर समेट लेता है और निर्भय हो जाता है। इसी प्रकार से जो ज्ञानी महापुरुष है वो अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के अर्थों से समेट लेता है, स्थिर कर लेता है। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण—ये इन्द्रियाँ हैं और इनके अर्थ क्या हैं? शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध—ये जो पाँच विषय हैं ये इन्द्रियों के अर्थ हैं। तो शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन पंच विषयों से इन्द्रियों को रोक लिया, आत्म चिन्तन में लग गया तो भय का स्थान खत्म हो गया। भयका स्थान तो बाहर है, जब कानों से कोई भयंकर शब्द सुनेगा, त्वचा से भयंकर स्पर्श होगा, नेत्रों से कोई भयंकर रूप देखेगा तभी कोई भय होगा और जब देखेगा नहीं तो भय क्या होगा? इसलिये इसने अपनी इन्द्रियों का संयम कर लिया है, अपनी आत्मा में ही लगा लिया है क्योंकि इन्द्रियों को समेट कर और फिर मन को भी संयम कर लिया है क्योंकि मन जाता है तो इन्द्रियों के द्वारा जाता है। जब इन्द्रिय रूपी द्वार बन्द किये तो मन भी बाहर नहीं जायेगा। मन के ऊपर बुद्धि है, तो बुद्धि के द्वारा मन का भी संयम कर लिया है फिर अपनी बुद्धि को अपने आत्म चिन्तन में लगा लिया है, मन को भी आत्म चिन्तन में लगा दिया है। इस प्रकार से हे अर्जुन! जो अपने मन को, बुद्धि को, इन्द्रियों को बाहर से समेट कर भीतर आत्म चिन्तन में लगाता है क्योंकि आत्मा भीतर है और ये विषयरूप संसार बाहर है। भीतर बाहर का परिच्छेद इस शरीर से होता है। शरीर के बाहर 'शब्द स्पर्श रूप रस गंध' ये पंच विषयरूप संसार है और शरीर के भीतर इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों के भीतर मन है, मन के भीतर बुद्धि है फिर बुद्धि के भीतर अपनी आत्मा है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य: परं मन: ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धे: परतस्तु स:।। BG - 03.42 **।।**

अर्जुन! इस प्रकार से हमारा तुम्हारा जो आत्म तत्त्व है वो अत्यन्त अन्तरतम् है — सबसे बाहर संसार माने इस शरीर के बाहर, बाहर भीतर की सीमा इस शरीर से ही है, जब हम आँख कान नाक खोलते हैं तब बाहर का संसार है और जब बन्द कर लिया तो बाहर का संसार नहीं है। जैसे कोई घर में बैठा हुआ पुरुष जो दरवाज़ा खोलकर बाहर देखे तो बाहर का संसार दिखाई पड़ेगा और यदि दरवाज़ा बन्द कर देवे तो बाहर का संसार नहीं दिखाई पड़ेगा फिर घर के भीतर देखेगा। इसी प्रकार से शरीर रूपी भवन की ये इन्द्रियाँ दरवाज़ा हैं, इन्द्रिय द्वार हैं।

इन्द्री द्वार झरोखा नाना, तँह तँह सुर बैठे करि थाना।
आवत देखहिं विषय बयारी, ते हठि देहिं कपाट उघारी।।
इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सुहाई, विषय भोग पर प्रीति सदाई।
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी, तेहि बिधि दीप को बार बहोरी।।

हे अर्जुन! इसप्रकार से इन्द्रियरूपी द्वारों को बन्द कर लेने से फिर बाहर का कोई विषय नहीं रहता है। तो इन्द्रियाँ भीतर हैं इस शरीर के और इन्द्रियों के भीतर मन है। मन का क्या स्वरूप है? —

'संकल्प विकल्प आत्मको मनः', संकल्प-विकल्प, इच्छा, काम ये मन का स्वरूप है क्योंकि नेत्रादि इन्द्रियों का विषय तो मन है नहीं, स्थूल तो है नहीं मन सूक्ष्म है इसलिये अपने ज्ञान नेत्रों से ही मन का स्वरूप जाना जा सकता है। नाना प्रकार की जो इच्छाएं करता है, संकल्प करता है, विकल्प करता है इसी को मन का स्वरूप जानना चाहिये और मन के भी भीतर बुद्धि है, बुद्धि का क्या स्वरूप है? **'निश्चयात्मिका बुद्धि'** जो निश्चय करती है कि ये कार्य करना चाहिये और ये नहीं करना चाहिये ऐसा जो निर्णय देती है वो बुद्धि का स्वरूप है, तो निश्चयात्मिक बुद्धि होती है ये इस प्रकार से जानना चाहिये और बुद्धि के ऊपर अर्जुन! हमारा तुम्हारा चेतन आत्मा है। वो अनंत अखण्ड एक ज्योति है ज्ञान ज्योति, चैतन्य ज्योति जो उदय-अस्त रहित है सदा जगमगाती रहती है वो आत्मा का स्वरूप है। वही एक ज्ञान ज्योति है जो बुद्धि को भी देखता है, मन को भी देखता है, इन्द्रियों को भी देखता है, शरीर को भी देखता है और इन्द्रियों के द्वारा शरीर के बाहर को भी देखता है। जैसे दीपक घर के भीतर प्रकाशता है तो घर में रहने वाले जितने लोग हैं उनको भी प्रकाशता है, घर में रखी हुई वस्तुओं को भी प्रकाशता है और दरवाज़े यदि खुले होवें तो दरवाज़ों के बाहर भी प्रकाश जाता है, तो दरवाज़े के बाहर सामने यदि कोई चीज़ रखी है तो वो उनको भी प्रकाशेगा, दीपक स्वयं प्रकाश है और बाकी सब पर-प्रकाश हैं। घर, घर में रखी हुई वस्तुएं और घर के बाहर रखी हुई वस्तुएं वो पर-प्रकाश हैं माने दीपक के द्वारा प्रकाशित होती हैं ऐसे अर्जुन! ये शरीररूपी घर और बुद्धि और इन्द्रियॉं और मन ये शरीर के घर के भीतर हैं और इन्द्रियरूपी द्वारों के बाहर ये शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध पंच विषयरूप संसार है। तो अर्जुन! ये जो चेतन आत्मा हमारा तुम्हारा है यही एक अनंत अखण्ड ज्ञान दीपक है। ये ज्ञानात्मा ही बुद्धि को प्रकाशता है, ये शरीर को प्रकाशता है, शरीर के भीतर बुद्धि को प्रकाशता है, मन को भी प्रकाशता है माने देखता है जानता है और इन्द्रियों को भी देखता है और फिर इन्द्रियरूपी द्वारों से बाहर जा करके ये सारे शब्दादि विषयों को भी देखता है और कोई दूसरा द्रष्टा है नहीं। जैसे ये घर और घर में रखे हुए पदार्थ सब जड़ है उनको ज्ञान नहीं है वैसे ही अर्जुन! ये शरीररूपी घर और इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणादि ये सब जड़ पदार्थ हैं इनको ज्ञान नहीं है और बाहर का संसार भी जड़ है, दृश्य है इन्हें ज्ञान नहीं है। यही चैतन्यरूपी ज्योतिरूप ये जो ज्ञान दीपक है यही आत्मा है अर्जुन! माने हमारा तुम्हारा स्वरूप यही चैतन्य आत्मा है—न तो बुद्धि है, न मन है, न इन्द्रियॉं हैं, न शरीर है और न शरीर के बाहर के कोई पदार्थ हैं क्योंकि इनको सबको देखता है। तो जैसे दीपक सबसे अलग होता है वैसे ही ये ज्ञानरूपी आत्मा इन सबसे अलग है, सबको प्रकाशता है। इस प्रकार से अर्जुन! अपनी आत्मा में जिसकी बुद्धि स्थिर हो गयी है उसे ही स्थितप्रज्ञ समझना चाहिये।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 04 - 25.07.06

३७

अहंब्रह्मास्मि

सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी से अर्जुन ने पूछा हे भगवन्:—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ़चेताः।
यच्छेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे,
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। BG - 02.07 **।।**

जो श्रेय सुख है नित्य सुख है जहॉ कभी दु:ख आता ही नहीं है, हमेशा सुख बना ही रहता है वह तत्त्व मुझको बताओ, मैं आपका शिष्य हूॅ आपकी शरण में हूॅ और जहॉ कभी मृत्यु नहीं आती, अमर ही रहता है उसकी मृत्यु होती नहीं वहॉ मृत्यु जाती ही नहीं कभी ऐसा तत्त्व बताओ और वो ज्ञान बताओ जहॉ ज्ञान कभी जाता ही न हो, अॅधेरा होता ही न हो (अज्ञान अॅधेरा है) ऐसा अंधकार कभी आता ही न हो। जैसे सूर्य के सामने कभी अॅधेरा नहीं आता है, ऐसा ज्ञान बताओ जो सूर्य के समान हो प्रकाशमान। रात्रि में अॅधरा होता है पर सूर्य में अॅधेरा कभी आता ही नहीं है, सूर्य में रात्रि है ही नहीं, अॅधेरा होता ही नहीं। क्योंकि ये अज्ञान में फिर दु:ख होता है और मुझे अज्ञान है इसीलिये मुझे दु:ख भी है और मृत्यु का भय भी है ये मैं अनुभव कर रहा हूॅ, वो तत्त्व मुझे नहीं मालूम। **'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं'** मुझ जीव का ज्ञान अज्ञान से बिल्कुल ढका हुआ है। भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो। जो तेरी इच्छा है, जो तू चाहता है ऐसा तो मैं ही हूॅ— **'सच्चिदानंद रूपोहं, अहंब्रह्मास्मि'**, अर्जुन! मैं ब्रह्म हूॅ— **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'** ये मेरा स्वरूप है, अनंत सत्य हूॅ जहॉ मृत्यु नहीं आती, अनंत अखण्ड ज्ञान हूॅ जहॉ अंधकार रूपी रात्रि कभी आती ही नहीं है, अनंत आनंद हूॅ जहॉ दु:ख कभी आता ही नहीं है। मैंने अपने स्वरूप में कभी मृत्यु, अज्ञानता और दु:ख देखा ही नहीं, अर्जुन! तत्त्वमसि, जो मेरा स्वरूप है वही तेरा भी स्वरूप है—अब तू विचार कर अपने स्वरूप का। अपने सच्चिदानंद स्वरूप का तू विचार कर क्योंकि जो मैं हूॅ सो तू है और जो तू है सो मैं हूॅ। तेरे शरीर में भी मैं हूॅ सच्चिदानंद रूप से और मेरे शरीर में भी मैं हूॅ सच्चिदानंद रूप से, माने हर शरीर में मैं ही सच्चिदानंद रूप से हूॅ। जितने भी शरीर हैं ये सब असत् जड़ दु:खरूप हैं इसका नाम माया है जो मुझसे विपरीत है इसका नाम संसार है। दु:ख को बन्धन कहते हैं, ये दु:खरूप है - **'दु:खालयमशाश्वतम्'** ये दु:ख का समुद्र ही है और मृत्यु का भी समुद्र है, माया ऐसी है सब देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण ये सब माया राज्य के हैं इनमें जन्म मरण होता है, इनमें दु:ख होता है। ये कभी रहते हैं और कभी नहीं रहते। जाग्रत के जितने देह इन्द्रिय मन बुद्धि हैं माने स्थूल और सूक्ष्म शरीर हैं वो स्वप्न में नहीं रहते और स्वप्न के देह इन्द्रिय मन बुद्धि जब निद्रा आती है सुषुप्ति में घोर अज्ञान अंधकार छा जाता है, उस अज्ञान अंधकार में बिल्कुल लीन हो जाते हैं इसी वास्ते ये असत् हैं और मैं जाग्रत में, स्वप्न में, सुषुप्ति में बराबर रहता हूॅ, मेरा अभाव होता नहीं कभी तू अनुभव करके देख अर्जुन! इसलिये तू मेरा स्वरूप है, ये मैं ही हूॅ तुम्हारे भीतर, सब शरीरों के भीतर मैं ही हूॅ, तू अलग से कहॉ

से आया? मैं एक अद्वितीय हूँ माया निर्मित जितने भी शरीर हैं और माया में भी – तो माया में बैठकर मैं माया को देखूँगा। माया निर्मित ये जाग्रत स्वप्न के जितने भी शरीर हैं सबमें बैठकर इन सबको भी देखूँगा, ये नहीं होंगे तो इनके अभाव को देखूँगा। देख अर्जुन! तू अनुभव कर अपने सत्-चित्-आनंद रूप का। तू दिन में है, तू दिन को देखता है, तू 'है' इसलिये **सत्** है – 'है' को सत् कहते हैं। तू देखता है इसलिये **चिद्** रूप है ज्ञानरूप है और दिन देखता नहीं है पर तू दिन को देखता है इसलिये वो दिन जड़रूप है, अज्ञान रूप है और दिन हमेशा रहेगा नहीं, रात्रि में नहीं रहेगा इसलिये असत् रूप भी है और मैं देखने वाला दिन में हूँ और दिन को देखता हूँ, मैं रात में मैं हूँ और रात को देखता हूँ, हमारा तुम्हारा आत्मा का अभाव कोई भी अनुभव नहीं कर रहा है, सन्देह रहित ये सबको ज्ञान है बिना पढ़ाए लिखाए कि मैं रात में हूँ इसलिये मैं सत् हूँ, रात को देखता हूँ इसलिये चिद् हूँ। दिन नहीं रहा इसलिये वो असत् है, रात में दिन न रहा तो असत् हो गया पर मैं तो सदा सत् ही रहा मेरा अभाव तो हुआ ही नहीं कभी। ये दिन रात के बीच में तीन अवस्था बीत जाती हैं उनको माया कहते हैं। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये तीन अवस्थायें २४ घंटे में चक्कर लगा जाती हैं इसका नाम माया है, माया चंचल है 'संतो आवे जाय सो माया' ये आती जाती है और मैं अचल हूँ, माने मैं तो हमेशा से हूँ और ये बीच में आ गई, निद्रा आ गई तो उसको देख लिया मैंने, निद्रा टूटी और स्वप्न आया आधी निद्रा में तो स्वप्न को भी मैंने देख लिया। स्वप्न भी गया जाग्रत आ गया तो जाग्रत को भी देख लिया, तो मैं तो हमेशा मौजूद ही हूँ न पहले ही से। मेरे में ही इनका आदि हुआ थोड़ी देर रहे और मेरे में ही स्थित हो गये, मैं तो आधार-अधिष्ठान हूँ न। हे अर्जुन! मैं तो आधार-अधिष्ठान हूँ इनका सबका, मैं तो हमेशा से हूँ ही मेरे आश्रित ये ही बीच में आये उदय हुए मेरे में - माया का उदय हुआ, माया का विस्तार हुआ फिर माया का अस्त हुआ। देख अर्जुन! हमारा तुम्हारा उदय-अस्त कहाँ हुआ? तो जो उदय-अस्त रहित सूर्य है उसमें अज्ञान अँधेरा कहाँ आयेगा? उसमें अज्ञान कहाँ आयेगा? जैसे ये लौकिक सूर्य तो उदय-अस्त होता है मैं देखता हूँ तो जब तक ये उदय रहेगा तब तक रात्रि न आयेगी पर मैं तो उदय-अस्त रहित ज्ञान का सूर्य हूँ, तो मुझमें कभी अज्ञान नहीं आयेगा - **'रवि सन्मुख तम कबहुँ कि जानि'** क्या सूर्य के सामने कभी अज्ञान जा सकता है? रात्रि जा सकती है? एक कथा है वेदान्त में रात्रि का अंधकार एक बार भगवान के दरबार में गया और सूर्य की शिकायत किया कि भगवन् संसार में आपने सूर्य को बनाया हे और आपने रात को भी बनाया है, संसार के अन्तर्गत् हैं ये सब दिन रात और संसार आपसे बनता है, ईश्वर से बनता है और पुनः मिटता है। उस सुषुप्ति के स्वामी को, अभिमानी को माने सुषुप्ति में जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको ईश्वर कहते हैं क्योंकि निद्रा में चेतन का प्रतिबिम्ब होना चाहिये तब ईश्वर उसका नाम पड़ता है तब ईश्वर से सृष्टि होती है तो दिन रात सबकी सृष्टि ईश्वर से हुई है तो बराबर संसार में रहने का अधिकार है, आपकी सृष्टि है पर ये सूर्य मुझको रहने नहीं देता संसार में, ये शिकायत है। तो आप उसको समझादो कि भाई रात को भी रहने दो। भगवान ने कहा तो ठीक है रहो तुम्हारे मुक़दमें का फैसला वो भी आ जाये, सूर्य भी आ जाये तब सामने सामने कर दिया जाय, अरे भई और कैसे फैसला हो? दोनों सामने होने चाहिये वो क्या कहता है उसकी बात भी तो सुनी जाय। ये तो तूने अपनी बात केवल कही है कि वो मुझको रहने नहीं देता है मुझसे दुश्मनी रखता है, खेदे खेदे फिरता है मैं रहने ही नहीं पाता हूँ दुनिया में। तो उधर सूर्य जब आने लगा तो रात्रि का अंधकार भागने लगा, चलने लगा। क्यों भाई तू क्यों जा रहा है आने दो सामने उसको भी तो आमने-सामने फ़ैसला हम कर देंगे। ये ही तो बात है, वो आता है तो मैं रह सकती नहीं इसलिये अब मैं तो जाती हूँ रात्रि ने कहा आप समझा दीजियेगा, अच्छा! कहा जा तू, मैं समझाऊँगा। जब सूर्य आया तो भगवान ने कहा कि तुम्हारी शिकायत आयी है, सूर्य बोला क्या शिकायत है, किसने शिकायत किया है? भगवान ने कहा रात्रि आयी थी घोर अंधकार रात्रि में होता है, अंधकार नाम रात्रि का ही है, रात्रि कह लो चाहे अंधकार कह लो एक

ही बात है। वो अंधकार कह रहा था, वो रात्रि कह रही थी कि सूर्य हमको रहने नहीं देता, पता नहीं क्या दुश्मनी हमसे मानता है? तुम बताओ भाई तुम्हारा क्या कहना है, तुम्हारी उससे क्या दुश्मनी है? भई अपनी बात तुम ही बताओ, क्यों तुम उसको रहने नहीं देते संसार में? कोई दुश्मनी से ही ऐसा हो सकता है, वो दुश्मनी क्या है? सूर्य ने कहा जिसका नाम आप ले रहे हो 'रात्रि, अंधकार' आज तक मैंने अपने जीवन में कभी उसको देखा ही नहीं, जिसको देखा ही नहीं उसमें दुश्मनी क्या? राग-द्वेष तो जिसको देखो उससे होता है, मेरा क्या द्वेष मैंने देखा ही नहीं। कहने का अभिप्राय इसका ऐसा स्पष्ट हुआ इस कथा के माध्यम से कि जहाँ अनंत अखण्ड ज्ञान है वहाँ अज्ञान कभी जाता ही नहीं। अर्जुन ने इसी ज्ञान को पूछा, भगवान ने कहा वही हमारा तुम्हारा स्वरूप है जहाँ कभी अज्ञान है ही नहीं, तो ऐसा स्वरूप है। तुमने ऐसा चाहा था तो मैं ही ऐसा सच्चिदानंदघन ब्रह्म हूँ मेरा उदय-अस्त होता नहीं है एकरस रहता हूँ परन्तु वो सूर्य जो है उसको ज्ञान नहीं है और मैं ज्ञान सूर्य हूँ इसलिये जो सामने आयेगा उसको देखूँगा ही। सुषुप्ति आयेगी वो अज्ञान अंधकार उसको भी देखूँगा, स्वप्न आयेगा जाग्रत आयेगा उसको भी देखूँगा, ज्ञानरूपी मैं सूर्य हूँ इसलिये ज़रूर उसका प्रकाशक बनूँगा।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचं यत्प्रकाशते,
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति का प्रकाशक है देखने वाला है साक्षी है द्रष्टा है चेतन है वो ब्रह्म है, वो मेरा स्वरूप है—**'तत्त्वमसि'**, सो ही तेरा स्वरूप है, हम तुम तो एक ही हैं क्योंकि शरीर भेद से ही मैं और तू कहा जाता है, कोई और तो मैं और तू का भेद हो नहीं सकता! दूसरे शरीर वाला भी अपने को मैं ही कहता है, एक शरीर के 'मैं' को दूसरे से अगर बोलना है तो उसे 'तू' कहना पड़ेगा, तो मैंने ही अपने मैं का तू नाम रख दिया शरीर की दृष्टि से, तू ये काम करले और मैं ये काम कर लेता हूँ। उससे जो पूछो तो वो भी अपने को मैं ही कहता है। तो तू नाम किसने रखा? इधर भी मैं हूँ और उधर भी मैं हूँ तो तू नाम किसने रखा? मैंने ही तू नाम रखा है। और मैं नाम किसने रखा, कहा ये तो अनादि अनंत है, मैं तो द्रष्टा-साक्षी अनादि-अनंत हूँ, मेरा नाम 'मैं' किसी ने रखा ही नहीं वो तो ब्रह्म है। बाकी सब नाम मैंने रखे और जिसके रखे हैं वो भी मैं ही हूँ। अरे! एक का नाम तू रख दिया, जिसका नाम तू रखा वो भी मैं ही हूँ और मैंने ही नाम रखा है। किसी का नाम यह रख दिया 'इदं', जिसको हम इदं कहते हैं वो भी अपने को मैं ही कह रहा है। यह इस काम को कर ले व्यवहार के लिये ऐसा नाम रख दिया, शरीर भेद से ये नाम रखे जा रहे हैं। और तीसरे को वह कह दिया, वह उस काम को कर ले, जिसको हम 'वह' कह रहे हैं वो भी अपने को मैं कहता है, तो मैं ही अपने अनेक नाम रखता चला जा रहा हूँ। फिर मैंने ही 'आप' नाम रख लिया, आप इस काम को कर लीजिये। जिसका 'आप' नाम रखा है वो भी तो अपने को मैं ही कहता है। मैं तो स्वयं सिद्ध है और सारे नाम मैंने रखे और जिसके रखे वो भी मैं ही हूँ और मैं नाम किसी ने रखा नहीं क्योंकि हमेशा से मैं ही हूँ, सबको देखने वाला मैं ही हूँ और मैं एक अद्वितीय हूँ — **अहंब्रह्मास्मि**, अर्जुन! **'मैं'** ब्रह्म हूँ, **'तत्त्वमसि'**, और तू भी वही ब्रह्म है। तो शरीर दृष्टि से मैं 'तू' कह रहा हूँ लेकिन तू भी अपने को ब्रह्म ही कहता है द्रष्टा ही कहता है तो देखने वाला तू और मैं तो बराबर ही रहे खाली नाम ही रखा गया शरीर दृष्टि से, तो अनेक नाम ये शरीर दृष्टि से रखे गये। अभी इतने नामों से जब काम न चला तो और नामों को, और जितने रूप हैं व्यक्ति हैं उनके यज्ञदत्त देवदत्त आदि फिर अनेक नाम रखना शुरु किया क्योंकि हज़ारों व्यक्ति हैं। तो फिर हज़ारों नाम किसने रखे? मैंने रखे और जिनका मैं नाम रख रहा हूँ वो भी अपने को मैं ही कह रहे हैं, यज्ञदत्त जिसका नाम रखा वो भी तो अपने को मैं ही कहता है। मैं यज्ञदत्त हूँ, मैं देवदत्त हूँ, तो शरीर दृष्टि से ये अनेक नाम रखे गये हैं इसलिये ये सब कल्पित हैं और मेरा नाम **'मैं'** तो ये **ब्रह्म** है स्वरूप है इसलिये मेरा सच्चा स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म ही है और त्वं इदं तत् अस्मत् भवान् ये शरीरों की दृष्टि से नाम रखे जा रहे हैं, उन

शरीरों में भी मैं ही हूँ। मेरा नाम मैं माता-पिता या गुरु किसी ने नहीं रखा, माता-पिता ने तो शरीर के नाम रखे हैं, शरीर पैदा हुआ है और शरीर का नामकरण किया गया है। मैं तो पैदा भी नहीं हुआ, अरे! बालक पैदा हुआ वो शरीर पैदा हुआ और शरीर का ही नाम रखा गया है उसमें जो देखने वाला बैठा है वो तो ऑख खुली और देखने लगा वो तो पहले ही से है तो वो कहेगा कि मैं देखता हूँ। सबसे पहले कहेगा—मैं मम्मी को देख रहा हूँ, मम्मी ने तो तेरा नाम मैं नहीं रखा! 'मैं' तो स्वयं सिद्ध है, देखने वाला तो जन्मा ही नहीं, पहले ही से है वो और ये शरीर को मैं देख रहा हूँ अपने भी और सबके। मैं पिताजी को देख रहा हूँ, मैं भाई को बहन को देख रहा हूँ, शरीर अनेक हैं पर सब शरीर में देखने वाला मैं ही हूँ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।। BG - 13.02 ।।

अर्जुन! सभी शरीरों में जो क्षेत्रज्ञ है शरीरों को देखने वाला द्रष्टा साक्षी देही तत्त्व है वो तो मैं ही हूँ इसलिये मैं को पाना तो है नहीं अर्जुन, अपने आपको क्या पाना है? ब्रह्म मैं ही हूँ तो ब्रह्म की प्राप्ति तो करना नहीं है, वैसे ही सत्-चित्-आनंद की प्राप्ति तो करना नहीं है क्योंकि सच्चिदानंद ब्रह्म का स्वरूप ही है। ये सत् नाम अमृत का है अमरता का है तो अमरता प्राप्त तो नहीं करनी है। हमारा स्वभाव सिद्ध अमर ही है क्योंकि जन्मा तो है नहीं, जन्म-मरण तो सब शरीरों के होते हैं और जो देखने वाला है उसका तो जन्म-मरण हुआ नहीं, वो पहले ही से मौजूद है और शरीर मर गया तब भी वो मौजूद है, वो शरीर के अभाव को देखता है। जाग्रत स्वप्न में शरीर पैदा होते हैं, जाग्रत स्वप्न को हम देखते हैं और सुषुप्ति में मृत्यु को प्राप्त होते हैं रोज़ — इनकी मृत्यु को भी देखते हैं, हम कहॉ जन्मे कहॉ मरे? शरीरों के जन्म-मरण रोज़ होते हैं स्वप्न में और जाग्रत में और सुषुप्ति में लय हो जाते हैं, मृत्यु हो जाती है पर हमारा किस समय जन्म और मरण हुआ? क्या देह के साथ में जब जाग्रत-स्वप्न के देह पैदा भये तो क्या तब हमारा जन्म हुआ? मैं तो पहले से ही हूँ क्योंकि जन्म तो निद्रा से इनका निकला, निद्रा में तो मैं पहले ही से बैठा हूँ देख रहा हूँ। निद्रा-स्वप्न-जाग्रत ये ही मुझमें आते जाते हैं मैं तो हमेशा से पहले से हूँ ही आकाश के समान, ये माया ही मुझमें आती जाती रहती है बादलों की भॉति जैसे आकाश में बादल आते जाते रहते हैं, आकाश तो पहले से मौजूद ही है उसका कहॉ आना-जाना है? बादल आ जाते हैं वर्षा ऋतु में पर आकाश पहले ही से है उसको कहॉ आना-जाना है? 'बादलों का आना' ये ही जन्म है, अब बरसात भी कर दी इन बादलों ने, अपना कर्म किया। वे आये तो उन्होंने ये काम किया - वर्षा का काम किया और काम करके अपना चले गये, उनका यही खेल है, खेल-कूद करके फिर चले गये। कहीं से भी आये हों कहीं भी चले गये हों आकाश को क्या ज़रूरत है और क्या पता है? आकाश का न कुछ बना न बिगड़ा। आकाश तो ये नहीं हैं तब भी है, आ गये वर्षा कर गये तब भी है और आकाश से कोई सम्बन्ध भी कुछ हुआ नहीं। आकाश की न कुछ हानि है, न कोई लाभ है पर आकाश अपने में आने-जाने वालों को देख नहीं सकता क्योंकि वो जड़ है। आकाश का दृष्टान्त 'व्यापकता और सूक्ष्मता' इतना अंश लेकर दिया जाता है आत्मा के साथ, ब्रह्म के साथ और हमारा तुम्हारा जो आत्मा है वो आकाश के समान सूक्ष्म है, सादृश्यता में ये दृष्टान्त दिया जाता है। आकाश इसीलिये असंग है सूक्ष्म होने से, किसी को छूता नहीं पर मैं जड़ आकाश नहीं हूँ मैं तो चेतनरूप, ज्ञानरूप आकाश हूँ इसलिये मैं देखता भी हूँ और आकाश बादलों को देखता नहीं क्योंकि उसको ज्ञान नहीं है और मैं देखता हूँ बादलों को। ये निद्रा जो है ये बादल है, मैं पहले से हूँ चेतनरूप आकाश, ज्ञानरूप आकाश हमेशा से हूँ। बादल आ गया कहीं से भी आ गया माने निद्रा आ गई, इसी को अज्ञान कहते हैं, इसी को माया कहते हैं 'कहते हैं कि माया आ गई' पर इसको तो ज्ञान नहीं है और मैं ज्ञान स्वरूप हूँ देख लिया मैंने ये मायारूपी मेघ

को, निद्रा को मैंने देख लिया क्योंकि आकाश के समान सूक्ष्म भी हूँ पर ज्ञानरूपी आकाश हूँ भाई इसलिये देखना तो मेरा स्वभाव ही है और आकाश का स्वभाव? कोई भी आवे जावे आकाश को पता नहीं है। सूक्ष्म है तो छूता नहीं है किसी को, उसका कुछ बनता बिगड़ता नहीं है पर उसको ज्ञान भी नहीं है। मैं आकाश के समान सूक्ष्म हूँ पर ज्ञानवान भी हूँ इसलिये मुझमें देखना बनता है। तो मुझ चिदाकाश में जो माया आयेगी, बादल आयेंगे, वर्षा होगी तो मैं ज़रूर देखूँगा पर सूक्ष्म होने से मेरे से सम्बन्ध नहीं होगा उनका, मेरा कोई हानि-लाभ नहीं होगा क्योंकि सम्बन्ध न होने से क्या हानि-लाभ होगा? जैसे आकाश का बादलों के आने से, वर्षा के आने से कोई सम्बन्ध तो होता नहीं है। बादल आये, भी वर्षा भी की और चले भी गये पर आकाश का कोई हानि-लाभ नहीं हुआ क्योंकि सम्बन्ध न हुआ ऐसे ही मुझ चिदाकाश में अपने आप निद्रा आ गई ये ही मायारूपी मेघ है, हमारी तुम्हारी दृश्य है ये मेघ। ज्ञान आकाश से सूक्ष्म है इसलिये देखना भी बनता है। अपने आकाश स्वरूप में जो निद्रारूपी माया आई उसको हम देखे भी और फिर ये जाग्रत और स्वप्न का जो जगत है वहाँ एकरूप में है निद्रा में, ये माया है ये एकरूप में है। जैसे मेघ एकरूप में हैं पर बरसात, उसकी बूँदें अनेक रूप में होती हैं, कोई बड़ी कोई छोटी, कितनी बूँदें हैं उनको कौन गिन सकता है? एक को तो मैंने देखा परन्तु ये जो जाग्रत-स्वप्न का जो संसार है ये एक एक बूँद कोई छोटी कोई बड़ी बूँदें हैं, कोई बड़े शरीर हैं, कोई छोटे शरीर हैं, कोई बिल्कुल मक्खी मच्छर जैसे हैं, कोई हाथी घोड़े जैसे हैं, कोई पर्वत जैसे शरीर हैं, ये सब बरसात है। ये वर्षा भी हो रही है हमारे तुम्हारे चिदाकाश में तो क्या हमारा तुम्हारा सम्बन्ध हुआ इनसे? जाग्रत-स्वप्न रोज़ आते हैं और चले जाते हैं, इनमें सुख-दुःख भी आते हैं, काम-क्रोध आते हैं सब कुछ आते हैं चले जाते हैं हमारा किससे सम्बन्ध हुआ? जाग्रत-स्वप्न का संसार आया, स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी ये बने बहुत से और इनमें सबमें काम-क्रोध लोभ मोह भी है, तो ये बरसात में हैं माया में, हमसे क्या सम्बन्ध हुआ? फिर चले गये। ये सब स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर और उनके विषय — काम क्रोध लोभ मोह आदि और दया क्षमा शान्ति भक्ति आदि सभी माया राज्य में हैं, इसकी बरसात में हैं, स्थूल सूक्ष्म शरीर में हैं, अपना क्या सम्बन्ध हुआ? कुछ नहीं फिर ये चले गये, सुषुप्ति में लीन हो गये। मेरा स्वरूप तुरीय है सुषुप्ति के आगे, मैं अपने स्वरूप को देखा समाधि में तो वहाँ निद्रारूपी मेघ भी नहीं, प्रकृति माया भी नहीं, **'माया गुण गोपार'**—वो मेरा स्वरूप है तो वहाँ ये भी नहीं। अब ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति रूपी माया, सुषुप्ति और उसकी बरसात ये अपने आप आती है और अपने आप चली जाती है और मेरा कोई सम्बन्ध होता नहीं, ज्ञानरूप होने के कारण इसको देख ज़रूर लेता हूँ पर देखने का भी अभिमान नहीं है क्योंकि स्वयं प्रकाश हूँ। जैसे सूर्य प्रकाशता है पर 'मैं सबको प्रकाशित कर रहा हूँ' उसे ये अभिमान भी नहीं है क्योंकि उसका स्वभाव है प्रकाश, उसी प्रकार मेरा स्वभाव है ज्ञान, कोई चीज़ आई तो प्रकाशित कर दिया, ज्ञान-चेतन प्रकाश हूँ चेतन सूर्य हूँ तो मेरे प्रकाश में ये सब आये और चले गये। अर्जुन! हमारा तुम्हारा स्वरूप तो एक अद्वितीय ब्रह्म ही है और सभी जीवों का स्वरूप मेरा ही स्वरूप है, मैं ही सबमें बैठकर देख रहा हूँ तो स्वभाव से ही सत्-चित्-आनंद रूप हैं। तुम्हारी इच्छा का जो विषय है वो तुम स्वयं ही हो, जो तुम चाहते हो वैसे तुम ही हो स्वयं और जो नहीं चाहते हो वो तुम नहीं हो। तो ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि — इनमें है ये दुःखरूपता और मृत्युरूपता, अज्ञानरूपता, समझो कि तुम इन्हें नहीं चाहते तो ये तुम में हैं नहीं। जो तुम नहीं चाहते वो तुममें हैं ही नहीं तीनों काल में, मृत्यु नहीं चाहते — वो तुममें है ही नहीं, ये दृश्य माया में है तुममें तो नहीं है! दूसरे के जन्म-मरण से अपना क्या बनता-बिगड़ता है, अपने को क्या? अपने में तो दुःख नहीं है दूसरे में दुःख है, वो दृश्य है। मन दुःखी है, वो ही विषय पाकर सुखी होता है। तो दूसरे के सुख.दुःख से हमें क्या? हम तो सुखरूप हैं ही फिर दूसरे से कोई सम्बन्ध भी नहीं है। सब आये और चले गये, ये सब आते हैं और जाते हैं। अर्जुन! हमारा तुम्हारा स्वरूप तुरीय है, चौथा है, अपने चौथे स्वरूप में तुम स्थित होओ। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये जो तीन हैं ये तो हमारे

चौथे स्वरूप में रोज़ आते जाते हैं, चिदाकाश वही है, अपना कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है और ये हमारा तुम्हारा स्वरूप नहीं हो सकता ये जो तुम नहीं चाहते हो वही इसमें हैं सब बातें, असत्-जड़-दु:खरूप ये ही है फिर इससे अपना सम्बन्ध है नहीं इसलिये बनी रहे दु:खरूप, आती जाती रहे अपना कुछ हानि-लाभ नहीं है। तो अर्जुन —

मायामेघो जगन्नीरं बर्षत्वेष यथा तथा
चिदाकाशस्य नो हानि: न वा लाभ इति स्थिति:।।

माया मेघ है माने निद्रारूपी माया मेघ है और ये जाग्रत-स्वप्नरूपी जगत ये पानी है बरसात है। ये मायारूपी मेघ जाग्रत-स्वप्न की कैसी भी बरसात करे, हमारे तुम्हारे चेतन ज्ञान स्वरूप आत्मा की कोई न हानि है न कोई लाभ है क्योंकि सम्बन्ध कुछ हुआ ही नहीं। तो अपना सत्-चित्-आनंद सिन्धु स्वरूप ज्यों का त्यों अपने स्वरूप में स्थित है आकाश के समान फिर हमको दु:ख देने वाला कौन होगा? जब छुएगा नहीं दु:ख तो हमको कैसे दु:खी करेगा? आग हमको नहीं छुएगी तो कैसे जलायेगी? अब अज्ञानतावश हम ही छुएं आग को तो हम ही जलें, तो फिर उस दु:ख से जलने से छूटने के लिये दूसरा क्या उपाय है? भई तुम्हीं पकड़े हो तुम्हीं छोड़ दो, तुम छूटे हुए हो। इस माया को जब तुम दु:खी होते हो तुम्हीं ने माया को पकड़ा अज्ञानतावश अब दु:ख पा रहे हो। शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि से ऐसा पकड़ा कि वही बन बैठे, अब तुम दु:ख पा रहे हो तो तुम्हीं छोड़ कर सुखी हो जाओ। तुमको कौन छुड़ावे, दूसरा कोई पकड़ता तो ज़रूर छुड़ा देते, दूसरा कोई साथी छुड़ा देता, मॉ-बाप छुड़ा देते पर जब तुम्हीं पकड़ कर जलते हो तो तुम्हीं छोड़कर सुखी हो जाओ ये तुम्हारे ही आधीन है, बन्ध और मोक्ष, सुख और दु:ख तुम्हारे ही आधीन है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्परमश्नुते,
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्मात् विमुच्यते।।

चाहे संसार को पकड़ो चाहे छोड़ दो संसार को दूसरा इसमें कोई निमित्त नहीं है, तुम नित्य मुक्त हो न तुममें छोड़ना है न पकड़ना है, छोड़ने पकड़ने का भी एक भ्रम ही है क्योंकि चेतन किसी को पकड़ सकता नहीं चेतन में कर्म नहीं है चेतन खाली द्रष्टा मात्र है। ये भ्रम ही है कि मैं माया को पकड़ कर दु:खी हो रहा हूँ, न माया पकड़ सकती है वो जड़ है, न चेतन पकड़ सकता है क्योंकि अकर्म है तो भ्रम ही रहा छोड़ने पकड़ने का, तो भ्रम ही त्यागना है। भ्रम ही हुआ है जीव को कि मैंने माया को पकड़ा है अथवा माया ने मुझको पकड़ लिया है, बिल्कुल भ्रम हुआ है। भगवान भ्रम दूर कर देते हैं कि न चेतन पकड़ सकता है जड़ को क्योंकि चेतन में कर्म नहीं है और न जड़ पकड़ सकता है चेतन को क्योंकि स्वयं जड़ में भी कर्म नहीं है। ये पकड़ने का भ्रम है और पकड़ना भी ऐसा कि जिसको पकड़े वही बन बैठे, देह इन्द्रिय मन बुद्धि को पकड़ा तो देह इन्द्रिय मन बुद्धि ही बन बैठा। तो तूने पकड़ा है भ्रम से तो तू ही छोड़ दे, तेरे में पकड़ना छोड़ना है नहीं ये भ्रम ही था और न संग होता है जड़-चेतन का, चेतन असंग ही है। संग-भ्रम हुआ है तो भगवान भ्रम मिटा देते हैं कि दोनों का संग नहीं हो सकता, माया पुरुष का संग नहीं होता—**'असंगो हि अयं पुरुष:'** ये चेतन ज्ञान पुरुष असंग है, संग भ्रान्ति है खाली कि मेरा शरीर से संग हो गया और मैं शरीर ही बन गया, स्त्री-पुरुष ही बन गया—ये भ्रम है। न तो स्त्री-पुरुष से संग होता है और न हम स्त्री-पुरुष बन ही सकते हैं माने यदि संग हो भी जाय, भीतर उसके साथ में हो भी जाय तो भी स्त्री-पुरुष नहीं बन सकते, संग

रह कर भी असंग ही रहेंगे क्योंकि इतने सूक्ष्म हैं, ज्ञान हैं कि जहॉ जायेंगे जिसका संग होगा उसको भी देखेंगे ही, उस दृश्य से अलग ही रहेंगे। सबके संग रहकर भी असंग ही रहेंगे कौन बन्धन करेगा? ये भ्रान्ति है कि जिसका संग किया वो ही बन बैठा। ये भ्रान्ति को भगवान खाली मिटाते हैं, भ्रान्ति मिटी तो अपना स्वरूप तो फिर ज्यों का त्यों सच्चिदानंदघन ब्रह्म है और फिर माया भी कहॉ है? मेरे स्वरूप में कहॉ जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति रूपी माया है? ये भी उसी में लीन हो गयी। मैं आप अद्वितीय अकेला हूॅ — **'एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन'** एक अद्वितीय ब्रह्म है दूसरा कोई है नहीं, भगवान ने कहा ये माया असत् है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।। BG - 2.16 **।।**

ये तीनों काल में है नहीं यूॅ ही दीखती है, मैं ही मैं हूॅ तीनों काल में।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 48 a - Sep 29

३८

भगवान राम से लक्ष्मण का निवेदन

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंद सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीरामचन्द्रजी से एक बार लक्ष्मणजी ने पूछा—

एक बार प्रभु सुख आसीना, लछिमन बचन कहे छलहीना।
सुर नर मुनि सचराचर साईं, मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं।।

मोहि समुझाइ कहहु सोई देवा, सब तजि करौं चरन रज सेवा।
कहहु ग्यान बिराग अरु माया, कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया।।

ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ।।

निश्छल निष्कपट भाव से लक्ष्मणजी ने भगवान राम से पूछा :—

प्रभु **ज्ञान** क्या है? **वैराग्य** क्या है और **माया** क्या है? और वो **भक्ति का स्वरूप** क्या है जिस भक्त के ऊपर आपकी परम दया होती है? और प्रभु **ईश्वर** का स्वरूप क्या है? **जीव** का स्वरूप क्या है? ये सब मुझको समझाकर कहो जिसमें मैं समझ सकूँ, जिससे आपके चरणों में प्रीति हो और शोक, मोह और भ्रम चला जाय। मोह से ही शोक होता है, भ्रम से मोह होता है और अज्ञान से भ्रम होता है तो ऐसा बताओ जिससे शोक मोह भ्रम और इनका कारण अज्ञान दूर हो जाय। तो भगवान राम बोले हे लक्ष्मण! सावधान मन से श्रवण करो :—

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई,
सुनहु तात मति मन चितलाई।।

हे तात्! मैं संक्षेप में, थोड़े में सबका उत्तर देता हूँ इसलिये मन, बुद्धि, चित्त सबको लगाकर एकाग्र होकर सुनो तब समझ में आयेगा। तब भगवान बोले :—

मैं अरु मोर तोर तैं माया,
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया।।

हे लक्ष्मण! ये शरीर मैं हूँ और शरीर के सम्बन्धी मेरे हैं, शरीर में अहं भाव — मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं क्षत्रिय ब्राह्मण, शूद्र हूँ ये देह में अभिमान है और तू शरीर है व तेरे माता-पिता भ्राता-भगिनी ये तेरे हैं। तो *'मैं अरु मोर तोर तैं माया'* लक्ष्मण इसको माया कहते हैं माने ये सबके शरीर माया से बने हैं इसलिये मायारूप ही हैं। *'जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया'* जिस माया ने संसार के सभी जीवों को अपने बन्धन में डाल रखा है, वश में कर रखा है जिससे

जीव बहुत दु:ख पाता है क्योंकि जब देहाभिमान होता है तो मृत्यु का भय उत्पन्न होता है। अपने को देह मानेगा तो कभी मरेगा, तो मरने से भय होता है। कोई भी जीव मरना नहीं चाहता है क्योंकि मरने में बहुत दु:ख होता है। **'जन्मत मरत दु:सह दु:ख होई'** जन्म लेने में और मरने में बहुत दु:ख होता है, कोई भी जीव दु:ख चाहता नहीं है तो देहाभिमान यदि करेगा तो मरने का दु:ख ज़रूर होगा। तो भगवान राम कहते हैं ये तो मोह है माया है, लक्ष्मण हमारा तुम्हारा स्वरूप स्त्री या पुरुष शरीर नहीं है, शरीर में रहने वाला चेतन आत्मा 'जीवात्मा' है। जीवात्मा स्त्री या पुरुष नहीं हुआ करता है, न ब्राहमण क्षत्रिय वैश्य शूद्र होता है।

न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीव: सर्वगतोऽव्यय:

जीवात्मा न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है किन्तु सबमें है, सबको देखता है और सबसे अलग है। स्त्री पुरुष ब्राहमण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये शरीर के धर्म हैं जीवात्मा के नहीं हैं। जीवात्मा में कोई जाति-पॉति नहीं है वो तो सब शरीरों में एक जैसा ही है—द्रष्टा-साक्षी! शरीर में अभिमान करने से और शरीर के सम्बन्धियों में ममता करने से, तो *'मैं अरु मोर तोर तैं माया, जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया'*— ये मोह है।

मोह सकल व्याधिन कर मूला,
ताते उपजत है बहु शूला।।

लक्ष्मण! सब दु:खों का मूल मोह है जिससे बहुत प्रकार का दु:ख उत्पन्न होता है। तो भगवान ये पहले **माया का ही स्वरूप** बताते हैं:—

गो गोचर जहॅ लगि मन जाई,
सो सब माया जानेहु भाई।।

हे भाई लक्ष्मण! जहॉ तक **गो** माने इन्द्रियॉ, **गोचर** माने विषय — श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा घ्राण, ये गो हैं माने इन्द्रियॉ हैं और गोचर कहते हैं इन्द्रियों के विषयों को। इन्द्रिय रूपी गउओं का चारा है — शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध, तो सारा संसार चारा रूप है और 'श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा घ्राण' ये पॉच इन्द्रियॉ गउएं हैं, ये ही चारा चरती रहती हैं। ये मन और इन्द्रियॉ जहॉ तक जायें वो सारा संसार माया का परिवार है, ये हमारा तुम्हारा स्वरूप नहीं है हमारा तुम्हारा स्वरूप तो माया को देखने वाला है। द्रष्टा बिल्कुल अलग हुआ करता है माया से मिलता नहीं कभी।

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ,
बिद्या अपर अबिद्या दोऊ।।

हे भाई लक्ष्मण! अब तुम माया का भेद सुनो। वो माया दो रूप धारण करती है एक विद्या और दूसरी अविद्या, इसप्रकार विद्या-अविद्या माया के दो रूप हो गये। ये दोनों बहन हैं, माया के ही दो रूप हैं तथा ईश्वर और जीव को ये ब्याही गई हैं।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा,
जा बस जीव परा भवकूपा।।
एक रचइ जग गुन बस जाकें,
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।।

एक जो अविद्यारूप माया है वो **जीव** को ब्याही है वो बड़ी दुष्ट है 'अतिशय दु:खरूपा', जीव को अपने वश में करके बहुत दु:ख देती है। इस अविद्यारूपी माया के वश में होकर के जीव भव-कूप में पड़ गया है। **भवति इति भव,** इस संसार में जन्म और मरण ये भव-कूप है। भव-कूप से निकलना बड़ा कठिन है। इस अविद्यारूपी माया ने इस जीव को भव-कूप में डाल दिया है, ये जन्मता-मरता है ८४ लाख योनियों में, निकल नहीं पाता है, ऐसी दुष्ट है ये और दूसरी

जो विद्यारूप माया है वो जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करती है परन्तु स्वतंत्र नहीं है, प्रभु प्रेरित है। विद्यारूप माया का पति **ईश्वर** है, ईश्वर प्रेरणा करता है सत्ता-स्फूर्ति देता है तब वो जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करती है। ईश्वर प्रेरणा न देवे, सत्ता-स्फूर्ति न देवे तो विद्यारूपी माया भी कुछ नहीं कर सकती है। तो ये सारा संसार विद्यारूपी माया का परिवार है, आख़िर ये भी माया ही है — ये विद्या-अविद्या रूपी माया का स्वरूप भगवान ने बताया।
अब वो जीव कैसे निकलेगा? अविद्यारूपी माया से कैसे छूट सकेगा? कहते हैं कि जब ईश्वर की वो भक्ति करता है तो ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है, विद्यारूपी माया के ऊपर ईश्वर का अधिकार रहता है, वो अपनी स्त्री के वश में नहीं होता है बल्कि स्त्री को अपने वश में रखता है। ईश्वर की जब भक्ति करता है जीव तब ये विद्यारूपी माया की कृपा से भवकूप से निकल जाता है। तो सज्जनों ये माया का स्वरूप भगवान राम ने बताया।

अब **ज्ञान का स्वरूप** बताते हैं :—

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं,
देखत ब्रह्म समान सब माहीं।।

ज्ञान क्या है? जहाँ मान नहीं है माने देहाभिमान नहीं है, मैं देह हूँ, स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हूँ ये सब मान है अभिमान है यानि देह के नाप में अपने को बाँध लेना जबकि ये जीव अमान है माने किसी नाप में नहीं आता है। तो *'देखत ब्रह्म समान सब माहीं'* देह में अभिमान नहीं है व सभी देहों के भीतर जीवात्मा के रूप में परमब्रह्म परमात्मा का दर्शन करता है — ये ज्ञान है। अपने को शरीर नहीं जानता, अपने शरीर सहित सभी शरीरों में **द्रष्टा रूप में** ब्रह्म का दर्शन करता है, सबमें बैठकर के सबकी आँखों से ब्रह्म ही देख रहा है। हमारे शरीर में भी और सबके शरीर में भी वही देखने वाला है — वो ब्रह्म है, वो सच्चिदानंद स्वरूप है। अपने सहित सब शरीरों में एक ब्रह्म का दर्शन करता है, ये ज्ञान का स्वरूप है।

अब **वैराग्य का स्वरूप** बताते हैं :—

कहिअ तात सो परम बिरागी,
तृण सम सिद्धि तीनि गुण त्यागी।।

हे तात्! सिद्धियों को तृण के समान समझता है, तीन गुणों का त्यागी है। सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीन गुणों से सारा संसार बना है। सारे संसार का त्यागी, वैराग्यवान — सारे संसार से वैराग्य है, भगवान के चरणों में अनुराग है संसार से वैराग्य है वो परम वैराग्यवान है और जो सिद्धियाँ हैं उनको तृण के समान तुच्छ समझता है। जैसे मनुष्य रास्ता चलता हुआ पैरों के नीचे कोई घास-फूस तृण आ जाये तो उनको उठाकर जेब में नहीं रखता है, घास-फूस तिनके को तुच्छ समझता है उनका कोई आदर नहीं है ऐसे ही तृण के समान वो सिद्धियों को समझता है क्योंकि सिद्धियाँ जीव को फँसाने वाली हैं, मोह ममता में डालने वाली हैं, मैं सिद्ध हूँ ये अभिमान कराने वाली हैं। आठ प्रकार की सिद्धियाँ शास्त्र में बताई हैं वे अष्टसिद्धियाँ हैं :— **अणिमा** माने छोटा से छोटा रूप धर लेना, हनुमानजी को ये आठों सिद्धियाँ प्राप्त थीं। लंका में जब प्रवेश किया था हनुमानजी ने तो —

मसक समान रूप कपि धरी,
लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरि।।

मच्छर के जितना छोटा रूप धर लिया, ये अणिमा सिद्धि है और बड़े से बड़ा रूप धर लेना **महिमा** है। जब लंका को जलाया था न! तो हनुमानजी ने बहुत विशाल रूप धारण कर लिया

था और क्षण में सारी लंका को जला दिया।

उलटि पलटि लंका सब जारी,
कूदि परा पुनि सिंधु मझारी।।

लघिमा — बिल्कुल हल्का हो जाना और **गरिमा** — गरु हो जाना, गरु माने वज़नदार हो जाना जैसे पर्वत वज़नदार है कोई उठा ही न सके और लघिमा माने हल्का हो जाय तो बिल्कुल हल्का हो जाय कि बच्चा भी उठा ले। **प्राप्ति** — जिस चीज़ की इच्छा करे वो तुरन्त उसके पास में आ जाय, प्राप्त हो जाय और जिसको प्राप्त करना चाहे उसको प्राप्त कर ले। **प्राकाम्य** — सभी कामनाएं पूरी कर लेवे। **ईशत्व** — ईश्वरपना और **वशित्व** — जिसको चाहे अपने वश में कर लेवे, देव दानव मानव किसी को भी अपने वश में कर लेवे।

अणिमा	महिमा	लघिमा	गरिमा	प्राप्ति	प्राकाम्य	ईशत्व	वशित्व
अति सूक्ष्म	अति विशाल	अति हल्का	अति भारी	इच्छानुसार प्राप्ति	इच्छानुसार कामनापूर्ति	प्रभुत्व	वशीकरण

परन्तु भगवान कहते हैं 'ये सब राम भजन के बाधक', ये सिद्धियॉ बाधा डालती हैं भक्ति में, अभिमान पैदा करती हैं कि मैं बहुत बड़ा सिद्ध हूॅ जो चाहूॅ वो कर सकता हूॅ। जो भक्त लोग हैं ज्ञानी महात्मा मुनि लोग हैं वो भी सब ये ही बताते हैं कि भगवान की भक्ति में ये सब बाधक हैं। तो भगवान कहते हैं कि इसलिये वैराग्यवान जो पुरुष है वो इन सिद्धियों को तृण के समान तुच्छ समझता है, इनका आदर नहीं करता है — 'कहिअ तात सो परम बिरागी, तृण सम सिद्धि तीनि गुण त्यागी'।

अब **भक्ति का स्वरूप** बताते हैं :—

प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती,
निज निज कर्म निरत श्रुति रीती।।
संत चरन पंकज अति प्रेमा,
मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा।।

संतों के, विप्रों के चरणों में प्रेम होना एवं

मन गुन गावत पुलक सरीरा
गदगद गिरा नयन बह नीरा।।

निज गुण गाते समय कंठ गद्गद् हो जाता है, नेत्रों से प्रेम के अश्रु बहने लगते हैं, शरीर पुलकित हो जाता है, प्रसन्न हो जाता है, रोमांच हो जाते हैं और ठीक ठीक वाणी नहीं निकल पाती है, नेत्रों से अश्रु बहने लगते हैं।

काम आदि मद दंभ न जाकें,
तात निरंतर बस मैं ताके।।

काम क्राध लोभ मोह मद मत्सर जिसमें बिल्कुल कुछ नहीं हैं — ये भक्ति और भक्त का लक्षण है। हे भाई लक्ष्मण! ऐसे भक्त के मैं वश में हो जाता हूॅ। वो जब जहॉ बुलाता है मैं वहीं प्रकट हो जाता हूॅ। उस भक्त की रक्षा मैं स्वयं करता रहता हूॅ, हर समय उसकी मैं रक्षा करता हूॅ क्योंकि उसका और कोई नहीं है मेरे सिवा दूसरे को जानता ही नहीं है।

जननी जनक बन्धु सुत दारा, तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।
सब कै ममता ताग बटोरी, मम पद मनहि बॉध बरि डोरी।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं, हरष सोक भय नहिं मन माहीं।।
अस सज्जन मम उर बस कैसें, लोभी हृदय बसइ धनु जैसे।।

जननी जनक बन्धु सुत दारा तन धन भवन सुहृत परिवार, इन सब जगह से ममता हटाकर अपने मन को मेरे चरणों में लगा दिया है, न हर्ष है न शोक है न कोई भय है। हे लक्ष्मण! जैसे लोभी को धन प्यारा होता है ऐसा ही मुझको मेरा भक्त प्यारा लगता है, भक्तों के मैं सदा वश में रहता हूॅ। तो सज्जनों! लक्ष्मण के माध्यम से जीव मात्र को भगवान ने माया क्या है? ज्ञान क्या है? भक्ति क्या है? वैराग्य क्या है? ये सब बताया। भगवान राम तो ईश्वर के अवतार हैं सज्जनों! वे जो कुछ भी बताते हैं वो सर्वश्रेष्ठ है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 07 - 09.05.07

३९

क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ दो ही पदार्थ हैं

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।। BG - 13.01 **।।**

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।। BG - 13.02 **।।**

हे अर्जुन! दो चीज़ हैं, एक क्षेत्र है दूसरा क्षेत्रज्ञ है सो क्षेत्र क्या है? क्षेत्रज्ञ क्या है? अर्जुन! जो कोई भी देखने में आता है वो सब क्षेत्र है जैसे हमारा तुम्हारा देह देखने में आता है सो इस देह को क्षेत्र कहते हैं, देह को शरीर कहते हैं। ये शरीर को क्षेत्र कहते हैं क्योंकि ये दृश्य है इसको ज्ञान नहीं है और जो ज्ञानवान है वो क्षेत्रज्ञ है। इस देह में रहने वाला, देह को देखने वाला चेतन आत्मा
क्षेत्रज्ञ है। दो चीज़ हो गईं — **देह** और देह के भीतर बैठकर देखने वाला **देही**, उसको देही कहते हैं जो देह के भीतर रहता है तो देही तो क्षेत्रज्ञ है और देह क्षेत्र है और तीसरा कोई संसार में नहीं है देह और देही को छोड़ कर। चाहे ब्रह्मा-विष्णु-महेश देवता हों, चाहे दैत्य हों, चाहे मनुष्य हों, चाहे पशु-पक्षी हों कोई भी हो सबके देह हैं और देह के भीतर बैठकर देखने वाला देही है, तीसरा तो कोई संसार में है नहीं। तो अर्जुन! देही तो ज्ञानवान है चैतन्य है और देह को कुछ ज्ञान नहीं है इसीलिये देह को क्षेत्र कहते हैं। देह कहने से तीन देह जानना अर्जुन! स्थूल, सूक्ष्म, कारण ये तीन देहों के नाम है। जो नेत्रों से दिखाई पड़ रहा है ये तो **स्थूल देह** है जिसमें स्त्री-पुरुष का भेद है, मनुष्य पशु-पक्षी का भेद है माने ये आकार बने हुए हैं। इस स्थूल शरीर के भीतर एक **सूक्ष्म देह** है वो ऑखों से दिखाई नहीं पड़ता परन्तु हम क्षेत्रज्ञ होने से उसे देखते हैं, आत्मा क्षेत्रज्ञ है इसलिये उसको भी जानता है अपनी ज्ञान दृष्टि से। उसमें १९ तत्त्व हैं — पॉच ज्ञानेन्द्रिय, पॉच कर्मेन्द्रिय, पॉच प्राण, मन बुद्धि चित्त अहंकार। ये १९ तत्त्वों का स्थूल शरीर के भीतर दूसरा देह है। पॉच ज्ञानेन्द्रिय ये हैं — श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा घ्राण, पॉच कर्मेन्द्रिय ये हैं — वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ, पॉच प्राण के ये नाम हैं — प्राण अपान व्यान समान उदान, चतुष्ट्य अन्तःकरण के ये नाम हैं — मन बुद्धि चित्त अहंकार, ये १९ तत्त्वों के समूह का नाम सूक्ष्म शरीर हैं। ये सूक्ष्म शरीर ऑखों से नहीं दिखाई पड़ता परन्तु हम ज्ञान स्वरूप हैं इसलिये १९ तत्त्वों को जान लिया अपनी ज्ञान दृष्टि से, ऑखों की कोई ज़रूरत नहीं। ऑखों से तो केवल रूपवान जिनके आकार बने हैं ये स्थूल शरीर दिखाई पड़ते हैं पर ऑखों से भी मैं ही देखता हूँ और बिना ऑख के भी मैं ही देखता हूँ क्योंकि ऑख तो देखती नहीं। मेरी ऑख है मैं तो ऑख नहीं हूँ जैसे मेरा चश्मा है चश्मा तो देखता नहीं, अरे उस चश्में से मैं देखता हूँ वो चश्मा भी उपनेत्र है वैसे ही नेत्र भी देखने का साधन है। तो मेरी ऑख है मैं ऑख नहीं हूँ, मेरा चश्मा है मैं स्वयं चश्मा नहीं हूँ तो मेरी ऑख से मैं देखता हूँ, मैं ऑख से जुदा हूँ ऑख जुदा है क्योंकि मैं और मेरी का भेद होता है न! ये नियम है कि मैं अलग होता हूँ व मेरी वस्तु अलग होती है जैसे मेरी दुकान, मेरा मकान, मेरा भाई मेरी बहन,

मेरी पत्नी, मेरा पुत्र ये सब मेरे मेरे हैं न! मैं अलग हुआ और ये मेरे लोग अलग भये। ऐसे मेरे तो बहुत हैं कितने मेरे हैं? ये मेरा मित्र है, ये मेरा शत्रु है तो कितने ही मित्र हैं मेरे और कितने ही शत्रु भी, कितने भाई-बहन पर वो मेरे हैं मैं नहीं हूँ। ऐसे ये स्थूल देह मेरा है, ऑख मेरी, कान मेरे, नाक मेरी, जिह्वा मेरी, हाथ-पॉव मेरे पर मैं हाथ-पॉव नहीं हूँ। सब लोग कहते भी हैं कि ये मेरा हाथ है पर मैं हाथ नहीं हूँ, मेरे पैर हैं पर मैं पैर नहीं हूँ। ऐसा तो कोई नहीं कहता कि मैं ऑख हूँ, मैं कान हूँ, मैं नाक हूँ, मेरे ही सब हैं पर मेरे से मैं अलग ही होता हूँ। इनसे मिल नहीं सकता क्योंकि ये दृश्य हैं और मैं इनको देखने वाला हूँ। दृश्य को ज्ञान नहीं है और मैं द्रष्टा ज्ञानरूप हूँ। इन सब को क्षेत्र कहते हैं जो देखने में आते हैं इनको ज्ञान नहीं है जैसे मेरा खेत। तो मेरा खेत को मैं जानता हूँ पर खेत को तो कुछ ज्ञान नहीं है। वैसे ही खेत के समान ये सब क्षेत्र हैं जो मेरा मेरा कहे जाते हैं, इन सब का सब खेत के समान ज़मीन को खेत कहते हैं, क्षेत्र कहते हैं। पृथ्वी क्षेत्र है, पृथ्वी में उत्पन्न होने वाले ये सब शरीर क्षेत्र हैं। पृथ्वी से, माटी से ये स्थूलशरीर उत्पन्न होते हैं, इस पृथ्वी में रहते हैं और फिर माटी में मिल जाते हैं, ये माटीरूप हैं। ये माटी के आकार हैं ये माटी के ढेले, माटी के ढेले में माया ने ये आकार सब बना दिये हैं ऑख कान नाक ये माया की महिमा है जैसे कारीगर माटी की मूर्ति बना दे। कारीगर तो औज़ार लेकर माटी की मूर्ति बनाता है पर माया को कोई औज़ार नहीं लेना पड़ता माटी से ये सब अनेक आकार के शरीर बना दिये, माटी में ही ये रहते हैं और फिर सब माटी में मिल जायेंगे, फिर एक माटी रह जायेगी। इनको कुछ ज्ञान नहीं है, हमारा तुम्हारा स्वरूप ज्ञान है। तो अर्जुन! आत्मा जो हमारा तुम्हारा स्वरूप है ये किसान के समान है, मैं भगवान किसान के समान हूँ और बाकी सब खेत है, सब क्षेत्र है। तो दो चीज़ हो गई, मैं सबमें रहता हूँ सबको जानता हूँ पर सब मुझको नहीं जानते। तो स्थूल शरीर समझ गये जो ऑखों से देख रहे हैं ये रूप, सूक्ष्म शरीर आप समझ गये वो भी हमारा तुम्हारा शरीर है। अपने खेतों को जान लो, अपने शरीरों को समझ लो। तीसरा अज्ञान रूप कारण शरीर है 'अपने आत्म स्वरूप क्षेत्रज्ञ को, आत्मा को न जानना' इस अज्ञान को ही कारण शरीर कहते हैं। कारण क्यों कहते हैं? क्योंकि इस अज्ञान से ही स्थूल व सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होते हैं इसलिये इसको कारण शरीर कहते हैं। माटी से शरीर उत्पन्न होते हैं जैसे गेहूँ जौ चना आम अमरूद उत्पन्न होते हैं पृथ्वी से, रहते कहॉ हैं? पृथ्वी में और लीन कहॉ होते हैं? पृथ्वी में। ऐसे ही अज्ञान से ये स्थूल-सूक्ष्म शरीर पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं गेहूँ जौ चना के वृक्षों के समान, पृथ्वी में रहते हैं चलते फिरते हैं और नष्ट होकर के फिर माटी में मिल जाते हैं। अब जब मृत्यु हुई तब या तो जल में प्रवाह कर दिये या अग्नि में भस्म कर दिये अथवा पृथ्वी में गाढ़ दिये तो माटी ही तो हो न! माटी से भिन्न तो नहीं। इस प्रकार से अर्जुन अज्ञान भी हमारा तुम्हारा दृश्य है।

आत्माज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञानान्न भासते,
रज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद्भासते न हि।।

अर्जुन! अपने आत्म स्वरूप द्रष्टा साक्षी चैतन्य क्षेत्रज्ञ के न जानने से माने इसके अज्ञान से जगत प्रकट होता है इसलिये अज्ञान जनित होने से अज्ञान कोई सामग्री नहीं लेता इस संसार को बनाने में, अज्ञान से अपने आप ये संसार बन जाता है। '*आत्माज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञानान्न भासते*' आत्मा के अज्ञान से जगत भासित होता है और जब आत्मा का ज्ञान होता है तो जगत नहीं भासता है, कैसे? तो दृष्टान्त देते हैं '*रज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद्भासते न हि*' जैसे रज्जु के अज्ञान से रज्जु में सॉप दिखाई पड़ने लगता है, है रज्जु पर वो सॉप रूप भासती है। अब जब रज्जु का ज्ञान होता है तब रज्जु ही भासती है सॉप नहीं भासता। अर्जुन! ऐसे आत्मा के अज्ञान से ये संसार सर्प भासित होता है इसलिये संसार सर्प के निवारण करने की जो दवा है वो ज्ञानरूपी औषधि हो सकती है क्योंकि संसार अज्ञान से उत्पन्न हुआ है, अपने स्वरूप के अज्ञान से इसलिये अपने स्वरूप के ज्ञान से ही ये संसार सर्प का नाश होगा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अज्ञान सर्प दंशटस्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना,

किं वेदैश्च शास्त्रैश्च किं मन्त्रैः किं औषधैः।।

अर्जुन! अज्ञानरूपी सर्प ने जिसको डसा है उसकी औषधि क्या है? कहा **ब्रह्मज्ञान**, ब्रह्म के अज्ञान से ये सर्प हुआ है तो ब्रह्म ज्ञान से इसकी निवृत्ति हो जायेगी। ये संसार सर्प लोगों को दुःख दे रहा है, संसार सर्प का काटा हुआ ये जन्म-मरण को पाता है। कितने जन्म-मरण हो गये इस जीव को? इसे संसार सर्प ने डसा है, इसकी दवा क्या है? कहा ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान ही इसकी दवा है। आत्मा ब्रह्म है और ब्रह्म आत्मा है, **'अयं आत्मा ब्रह्म'** अर्जुन हमारा तुम्हारा आत्मा ब्रह्म है क्योंकि क्षेत्रज्ञ है, **'सो अयं आत्मा'** इसलिये आत्मज्ञान – ब्रह्मज्ञान बिना इस संसार सर्प की निवृत्ति नहीं होती है। अब ये संसार सर्प सबको दुःख दे रहा है, सब संसार सर्प के काटे हुए दुःखी हो रहे हैं, बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होते हैं—एक ही दवा है ब्रह्मज्ञान। ब्रह्मज्ञान बिना हज़ारों दवा करो तो उन दवाइयों से इस संसार सर्प की निवृत्ति नहीं होगी। **'किं वेदैश्च शास्त्रैः'**—अन्य वेद शास्त्रों से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? **'किं मन्त्रैः किं औषधैः'**—और मंत्रों से व और औषधियों से क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? कोई वेद शास्त्र और कोई मंत्र औषधियॉ काम नहीं करेंगी। अज्ञान की निवृत्ति के लिये तो ज्ञान ही औषधि है दूसरी नहीं। तो अर्जुन! मैं तुझे ज्ञान दे रहा हूँ ये ही सर्वोत्तम ज्ञान है, ये ही ब्रह्मज्ञान है, आत्मज्ञान है, ये ही औषधि है तो मेरे वचनों को सावधान होकर के श्रवण कर और मनन कर और निदिध्यासन कर जिससे ज्ञान पक्का हो जाय फिर संसार सर्प मर जायेगा, संसार सर्प का नाश हो जायेगा, फिर कभी उत्पत्ति

की सम्भावना भी नहीं होगी, क्यों? संसार सर्प का मूल माता पिता तो अज्ञान ही है न! जब कारण का ही नाश हो जायेगा फिर कार्य कहॉ से उत्पन्न होगा? **'कारणाभावात्कार्याभावः'** अर्जुन! कारण के अभाव से, कारण के नाश से कार्य का स्वतः ही नाश हो जाता है। कार्य के नाश के लिये कुछ अलग से उपाय नहीं करना पड़ता जैसे अज्ञान का नाश हुआ, रस्सी को हमने न जाना अज्ञान-अंधकार के कारण तो जब उस अंधकार का नाश हुआ और रज्जु का ज्ञान हुआ तो सर्प का तो स्वतः ही नाश हो जायेगा इसलिये अंधकार का नाश करने की ज़रूरत है सर्प का नहीं, अँधेरा हटा तो रज्जु दिखाई पड़ी सर्प अपने आप ग़ायब/खत्म हो गया। ऐसे ही ब्रह्मज्ञान की ज़रूरत है, ब्रह्मज्ञान होते ही अज्ञान का नाश हो जायेगा। मैं ब्रह्म को नहीं जानता ये अज्ञान है। भगवान के वचन से मैंने ब्रह्म को जाना, अपनी आत्मा को जाना कि मैं सत्-चित्-आनंद स्वरूप हूँ, मैं क्षेत्रज्ञ हूँ बाकी तो सब क्षेत्र है इस क्षेत्र का द्रष्टा-साक्षी तो मैं स्वयं हूँ, मुझको ही ब्रह्म कहते हैं दृश्य तो सब माया है अविद्या है अज्ञान है, माया कहो अविद्या कहो अज्ञान कहो एक ही बात है। तो हे अर्जुन! अब दूसरे श्लोक में भी यही कहते हैं भगवान :—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।। BG - 13.02 ।।

अर्जुन! संपूर्ण ज्ञान इतना ही है, सब वेद शास्त्र पुराण रामायण महाभारत का सार रूप ज्ञान भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं इतना ही है, कितना? *क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान*—**'क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम'** ये मुझ सर्वज्ञ ईश्वर का मत है। तो जितने भी क्षेत्र हैं—'स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र' सबके तीनों शरीर माने जीव के स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों देह और ईश्वर के विराट-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत देह – समष्टि देह ईश्वर के हैं और व्यष्टि देह जीव के हैं। ये व्यष्टि-समष्टि सभी शरीर क्षेत्र हैं और सभी व्यष्टि-समष्टि शरीरों के भीतर बैठकर व्यापक मैं ब्रह्म चेतन हूँ, मैं ही देखने वाला एक मात्र क्षेत्रज्ञ हूँ, दूसरा क्षेत्रज्ञ नहीं है, दो ब्रह्म नहीं हैं। क्षेत्र तो अनेक हैं माया का कार्य हैं, आत्मा के अज्ञान से ये हुआ है, आत्मा को न जानना ही माया है, इस अज्ञान को ही माया कहते हैं अज्ञान जनित है ये संसार जो ये ज्ञान से नष्ट हो जाता है। तो हे अर्जुन! **'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु'** जितने भी क्षेत्र हैं समष्टि-व्यष्टि, क्या ब्रह्मा-विष्णु-महेश के शरीर में, क्या देवता-दैत्यों के शरीरों में, क्या मनुष्य और पशु-पक्षियों के शरीरों में जो बैठ के देखने वाला तत्त्व है वो व्यापक ब्रह्म मैं ही हूँ। इसलिये हे अर्जुन! तू

अपने आप को तो मेरा स्वरूप जान, सभी जीव मेरा स्वरूप हैं क्योंकि सब क्षेत्रज्ञ हैं। जीव कोई शरीर नहीं है, सब शरीरों में है परन्तु स्वयं शरीर नहीं है, शरीर को देखता है शरीर से अलग है इस प्रकार से अर्जुन! ये दो चीज़ हो गईं **'क्षेत्र'** और **'क्षेत्रज्ञ'**। हे अर्जुन! मेरा निर्गुण-निराकार स्वरूप और सगुण-साकार स्वरूप इसी में है माने क्षेत्रज्ञरूप से अर्जुन! मैं निर्गुण-निराकार हूँ और क्षेत्र के सहित माने शरीरों के सहित मुझे ही सगुण-साकार कहते हैं। राम-कृष्ण शिव-शक्ति सूर्य-गणेश कच्छ-मच्छ वामन-वराह ये सब शरीर हैं और इनके भीतर मैं चेतन देखने वाला हूँ। तो शरीरों के सहित मुझे सगुण-साकार कहते हैं और शरीर में बैठकर जो देखने वाला है वो मेरा निर्गुण-निराकार स्वरूप है, इसी को अर्जुन! **वाच्यार्थ** और **लक्ष्यार्थ** भी कहते हैं। जितने शरीरों के नाम-रूप हैं सब शरीरों के भीतर बैठ के, नाम-रूपों के भीतर बैठ के नाम-रूपों को देखने वाला और नाम-रूपों के सहित ये मेरा वाच्यार्थ है और देखने वाला केवल चेतन तत्त्व लक्ष्यार्थ है। तो सब शरीरों में देखने वाला चेतन तत्त्व लक्ष्यार्थ है हमारा तुम्हारा सबका और शरीर के सहित जो हमारा नाम होता है माने स्त्री पुरुष यज्ञदत्त देवदत्त जो हमारे *नाम* हैं और ये *शरीररूप* हैं, इन नाम-रूपों के सहित हमारा तुम्हारा वाच्यार्थ होता है, सभी जीवों का ये वाच्यार्थ है और नाम-रूपों को हटा के (नाम-रूपों को जो हम देखते हैं क्योंकि शरीरों के नाम-रूप हैं) *द्रष्टारूप* हमारा लक्ष्यार्थ है। तो द्रष्टारूप तो ब्रह्म है वो लक्ष्यार्थ है हमारा और शरीरों के सहित ये वाच्यार्थ है। वाच्यार्थ में सब व्यवहार है, ये सगुण-साकार है क्योंकि हमारे देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण में ही सब व्यवहार होता है पर हम निर्गुण-निराकार देखने वाले चेतन तत्त्व इसमें न होंगे न! तो केवल जड़ शरीरों में व्यवहार न होगा। हम चेतन के रहने से ही सब व्यवहार होता है ये जड़ शरीरों में। देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण अपना अपना काम कर रहे हैं न! तो हमारे बैठे रहने से कर रहे हैं, हम चेतन ही इनके प्रेरक हैं देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के। हमारे बिना, जैसे जीव न रहे तो भी ये देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण कुछ नहीं काम करते, फिर मुर्दा के मुर्दा हैं। तो सारा संसार मुर्दा है यदि जीव न होवे शरीर में तो और जीव के रहने से ये सब शरीर देह इन्द्रियाँ मन बुद्धि प्राण सब अपना अपना काम करते हैं क्योंकि प्रेरक चेतन ही है इसलिये सारा व्यवहार जड़-चेतन मिलकर ही हो रहा है, केवल जड़ में नहीं है और केवल चेतन में भी नहीं है क्योंकि चेतन तो केवल द्रष्टा-साक्षी मात्र है, उसमें चेतन में कर्म नहीं हैं, चेतन जीव खाली बैठा है तभी शरीर में इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण अपने अपने काम कर रहे हैं इनमें हलचल हो रही है। इस प्रकार से हे अर्जुन! तू समझ, अपने आप को क्षेत्रज्ञ जान और अपने देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों को क्षेत्र जान। देह इन्द्रिय मन बुद्धि के सहित ये अपने आप हमारा-तुम्हारा, ईश्वर का और जीव का ये सगुण-साकार रूप है, सगुण-साकार में सब व्यवहार हो रहा है — पिता-पुत्र का, पति-पत्नी का, गुरु-शिष्य का, ये सब व्यवहार तो हम शरीरों के सहित ही हो रहा है केवल चेतन में तो कोई व्यवहार नहीं है शरीर बिना, तो तीनों शरीरों के सहित ये सब व्यवहार होता है। तो सगुण-साकार में व्यवहार है और निर्गुण-निराकार अव्यवहार्य है उसमें कोई व्यवहार नहीं है पर जो सत् है, चिद् है और आनंदरूप है वो निर्गुण-निराकार ही है। इसलिये क्षेत्रज्ञ का भाष्यकार दो अर्थ करते हैं :—

एक अर्थ — 'क्षेत्र + ज्ञ = क्षेत्रज्ञ', क्षेत्रज्ञ में दो पद हो गये, एक तो **क्षेत्र** हो गया और दूसरा **ज्ञ** है। तो **ज्ञ** का अर्थ **ज्ञान** होता है और **क्षेत्र** का अर्थ **अज्ञान** होता है जड़ होता है, तो अर्थ क्या निकला? **क्षेत्रज्ञ = क्षेत्र** माने *क्षेत्रं* और **ज्ञ** माने *जानाति, = क्षेत्रं जानाति इति क्षेत्रज्ञः,* जो क्षेत्र को जानता है वो क्षेत्रज्ञ है। अपने अपने शरीरों को हम ही तुम सब जान रहे हैं, तीनों शरीरों को और बाहर के शरीरों को हम ही जान रहे हैं इसलिये हम क्षेत्रज्ञ हो गये न! और बाकी हमारे देह और सबके देह क्षेत्र हो गये न! तो एक अर्थ तो ये हुआ।

दूसरा अर्थ — कहा क्षेत्र क्षेत्रज्ञ दोनों को मिला के कहते हैं, कैसे? **क्षेत्रन्च ज्ञश्च अहं**, अर्जुन! क्षेत्र भी मैं ही हूँ, क्षेत्रज्ञ भी मैं ही हूँ, **क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि**—अर्जुन! क्षेत्र भी मुझी को जानो और क्षेत्रज्ञ भी मुझको ही जानो माने अपनी माया से मैं ही क्षेत्ररूप भी हूँ और क्षेत्रज्ञरूप भी मैं ही हूँ, दृश्यरूप से मैं क्षेत्र हूँ और द्रष्टारूप से क्षेत्रज्ञ हूँ तो ये माया करके ये सर्व व्यष्टि-समष्टि जितने भी शरीर हैं मेरी माया से ये सब बनते हैं। जैसे पुरुष और छाया, तो पुरुष भी मैं ही हूँ और छाया भी मैं ही हूँ, छाया क्षेत्र है और पुरुष ज्ञानरूप है क्षेत्रज्ञ है, अपनी छाया को पुरुष देखता है पर पुरुष भी मैं ही हूँ और छाया भी मैं ही हूँ। यद्यपि छाया झूठी है और पुरुष सत्य है ऐसे ही ये मेरी मायाकृत् चराचर जगत झूठा है और मैं सत्य हूँ तो मिथ्या भी मैं ही हूँ झूठी छाया रूप, सत्य भी मैं ही हूँ। ऐसे ही अर्जुन! ये चराचर जगतरूप भी मैं ही हूँ और इसको देखने वाला भी मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न कुछ है नहीं, तो सत् भी मैं ही हूँ और असत् भी मैं ही हूँ। ये माया छाया मुझसे उत्पन्न होती है, मुझमें रहती है, मुझमें ही लीन होती है ऐसे ही ये चराचर जगत 'क्षेत्र' मुझसे उत्पन्न होता है, मुझमें रहता है, मुझमें ही लीन होता है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते,
येन जातानि जीवन्ति,
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्ब्रह्म।

अर्जुन! जिससे ये चराचर जगत 'क्षेत्र' उत्पन्न होता है और जिसमें रहता है पुनः फिर लीन हो जाता है वह ब्रह्म है, तो एक ब्रह्म रह गया न! माया से उत्पत्ति स्थिति प्रलय सब हो गई जगत की। तो आदि में ब्रह्म है, अन्त में ब्रह्म है और मध्य में माया से जगत होता है जैसे आदि में पुरुष है, अन्त में पुरुष है, मध्य में छाया प्रकट हुई फिर वो छाया पुरुष में मिल गई। ऐसे ही ये चराचर जगत माया का स्वरूप है छायारूप है दृश्यरूप है, मुझसे ये सब उत्पन्न होता है, मुझमें रहता है पुनः मुझमें लीन हो जाता है तो सत्य वस्तु रह जाती है, सत्य मैं ही हूँ, मैं ही ज्ञानरूप हूँ, मैं ही आनंदरूप हूँ। अर्जुन! संपूर्ण ज्ञान इतना ही है इससे अधिक कुछ है नहीं जो जाना जाय, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ से, द्रष्टा-दृश्य से भिन्न कुछ नहीं है। जड़-चेतन इसी को कहते हैं, इसी को सीताराम कहते हैं। ये चराचर जगत सब सीता का स्वरूप है और देखने वाला राम का स्वरूप है, फिर सीता राम में मिल जाती है और फिर राम ही रह जाता है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 05 - 17.08.06

४०

स्कन्दोपनिषद

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान शंकर से शंकर के पुत्र षडानन् ने पूछा हे पिता मेरे परम कल्याण का उपाय बताओ। शंकर बोले हे षडानन्! सावधान मन से सुन —

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः,
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत्।।

ये स्कन्दोपनिषद है, ये वेदों की शिरोभाग उपनिषदें हैं सब। शंकर बोले हे षडानन्! ये देह देवालय है, सभी वेदों में देह को देवालय कहा गया है। ये देह तो देवालय हो गया और इसमें जो जीव है वो शिव है माने मेरा स्वरूप है। देह मन्दिर है और इसमें जो देव है देखने वाला वो जीव वो मैं ही हूँ, वह जीव जो हर मन्दिर में है वो शुद्ध शिव का ही स्वरूप है और शिव की मृत्यु नहीं होती, जीव भी मृत्युंजय है '**न जायते म्रियते वा कदाचित्**' जीव जन्मता मरता नहीं वो मैं ही हूँ इसलिये मेरा पूजन यही है—' **त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत्** ' कि ये अज्ञानरूपी निर्माल्य का त्याग कर कि ***'मैं देह हूँ'*** क्योंकि देह अज्ञानरूप है, मन्दिररूप है, शिवालय है, देवालय है, इसको ज्ञान कुछ नहीं है जैसे मन्दिर को कुछ ज्ञात नहीं है, पंचभूतों से बना है 'पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश' इनको तो कुछ ज्ञान नहीं है, इसमें जो जीव है वो शिव है तो ***'मैं देह हूँ'*** इस अज्ञान का त्याग कर, '**सोऽहं भावेन पूजयेत्**' वह शिव ही मैं हूँ इस भाव से मेरा पूजन कर, तू नित्य मुक्त है नित्य तेरा कल्याण है, तेरा जन्म नहीं मरण नहीं 'मृत्युंजय' है, तुझमें अज्ञानता नहीं अनंत अखण्ड ज्ञान है, तुझमें दुःख का लेश भी नहीं है अनंत सुख सिन्धु है स्वभाव से ही, करना कुछ नहीं। जो भी दुःख है अपने को देह मानने से है और देव देह नहीं हो सकता, देवालय हो नहीं सकता क्योंकि देव तो चेतन है ज्ञानरूप है द्रष्टा है और ये जो देह देवालय है इसको कुछ ज्ञान नहीं है इसलिये देव देवालय तो हो नहीं सकता। ४ खानि ८४ लाख योनियों में जितने भी देह हैं शरीर हैं वो सब देवालय हैं सब मन्दिर हैं और अर्जुन! हर मन्दिर में मैं ही जीवरूप से, देवरूप से विराजमान हुआ हूँ अपने आप ही। मन्दिर पीछे बने हैं मैं पहले से हूँ और ये मन्दिर तेरी (षडानन् की) माता बुद्धि ने बनाये हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय एक मन ये छः मुख इसको षडानन् कहते हैं, बुद्धि माता है क्योंकि बुद्धि से ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन की उत्पत्ति होती है इसलिये बुद्धि तेरी माता है और मैं शिव पिता हूँ परन्तु मुझ शिव का (मैं सदा योगी हूँ असंग हूँ) तेरी माता बुद्धि से कभी संग होता नहीं, असंग ही रहता हूँ। केवल मेरी दृष्टि मात्र से तेरी माता ये चराचर जगतरूपी मन्दिर को बना देती है। चार खानि चौरासी लाख योनियाँ हैं, सभी देवता दैत्य मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र जड़-चेतन सब मन्दिर हैं और सब में मैं स्वयं ही देव विराजमान हूँ।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा,
कर्माध्यक्षा सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।

हे षडानन्! सभी देहों में एक ही देव है वो मैं ही हूँ दो देव नहीं हैं, **'देवत्मात् देवः'** जो देखता है, प्रकाशता है, ज्ञानस्वरूप है, चैतन्य ज्योति है वो ही देव है—सो मैं हूँ और मैं आप अकेला हूँ। सब देहों में जीवरूप से मैं ही देव बैठा हूँ और जितने भी देह हैं छोटे बड़े शरीर ये मन्दिर के, देवालय के आकार मात्र हैं, कोई छोटे कोई बड़े, सब मन्दिर हैं। हर मन्दिर में मैं विराजमान हूँ, आकाश के समान असंग हूँ। असंग होने से किसी का संग होता नहीं — न तेरी माता बुद्धि का संग होता है, न इन्द्रियों और मन का संग होता है और न सारे संसार के मन्दिरों का संग होता है। रहता सब में हूँ पर संग किसी का होता नहीं जैसे आकाश सबमें रहता है, आकाश से कोई जगह खाली नहीं है, सर्वत्र व्यापक है पर सबसे असंग है आकाश, किसी को स्पर्श करता नहीं, किसी को छूता नहीं। आकाश वायु में व्यापक है और वायु आकाश में रहता है चलता-फिरता है, अग्नि में आकाश व्यापक है अग्नि भी आकाश में रहता है, जल के भीतर भी आकाश है और संपूर्ण संसार का जल आकाश में ही रहता है, पृथ्वी में भी आकाश व्यापक है और पृथ्वी आकाश में ही रहती है बस आकाश में ये सब मंडरा रहे हैं, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड व पृथ्वी आकाश में हैं ये सब। आकाश में ऐसे उड़ रहे हैं जैसे परमाणु, धूलि के कण उड़ें ऐसे निराधार। आकर्षण-विकर्षणरूप इनमें शक्ति है तो एक ब्रह्माण्ड दूसरे ब्रह्माण्ड से लड़ता नहीं है, नहीं तो लड़ के फूट जायें सब नष्ट हो जायें। सब अपनी अपनी कक्षा में घूमते रहते हैं इसलिये आपस में टकराते नहीं। आकाश के समान मैं व्यापक शिव हूँ, सबमें रहता हूँ, मुझमें अग्नि वायु आकाश जल पृथ्वी सब संसार मुझमें रहता है और मैं भी सबमें व्यापक हूँ तो भी असंग हूँ किसी से संग होता नहीं है। हे षडानन्! ये सभी इन्द्रियाँ और मन बुद्धि ये सब मुझ शिव की पूजा करती हैं, इस मन्दिर के अन्दर इन्द्रियाँ हैं मन है बुद्धि है प्राण हैं, ये सब पुजारी लोग हैं। कोई नैवेद्य लगाते हैं, कोई आरती करते हैं, कोई चन्दन लगाते हैं, कोई फूल माला पहनाते हैं, सब मेरी पूजा कर रहे हैं। क्या व्यष्टि क्या समष्टि सभी संसार भर की इन्द्रियाँ मन बुद्धि मेरी पूजा कर रहे हैं। ये जो श्रोत्र इन्द्रिय है ये शब्दों से मेरी स्तुति पूजा करती है, त्वचा इन्द्रिय स्पर्श से मेरा पूजन करती है, नेत्र नये नये रूपों से मेरी पूजा करते हैं, रसना खट्टे मीठे रस से मेरी पूजा करती है, नासिका गन्ध से मेरी पूजा करती है और वाणी स्तुति करके मेरी पूजा करती है इस प्रकार ये सब पूजा करते हैं मेरी। हे षडानन्! ये सब पूजा करते हैं और आप ही प्रसाद पाते हैं, मैं तो इनकी पूजा से ही प्रसन्न हूँ क्योंकि मैं खाता-पीता नहीं। नासिका ही गन्ध सूँघती है, रसना ही रस का स्वाद लेती है, मन ही प्रसन्न होता है, ज़्यादा से ज़्यादा तेरी माता बुद्धि तक रस पहुँच गया पर मुझ शिव तक कहाँ पहुँचेगा? मुझ शिव की सब सेवा करते हैं।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः,
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।। BG – 05.15 **।।**

अर्जुन! न मैं किसी का पुण्य लेता हूँ और न पाप लेता हूँ, सभी जीव अज्ञान से मोहित हो रहे हैं तो हे अर्जुन! इस प्रकार से सूर्य चन्द्रमा ये सब मुझको दीपक दिखा रहे हैं, तारागण छोटे छोटे दीपक हैं ये सब आरती कर रहे हैं। सारा विश्व-विराट, क्या व्यष्टि क्या समष्टि, सभी इन्द्रियरूपी देवता मेरी पूजा कर रहे हैं। इस प्रकार से शरीर रूपी मन्दिर में आत्मा तो देव है, हमारे तुम्हारे सब शरीरों के भीतर आत्मा माने 'मैं', मैं ही शिव हूँ।

आत्मा तुं गिरिजा मतिः सहचरा प्राणाः शरीरं गृहं,
पूजाति विषयोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थितिः।।
संचारः पदयो प्रदक्षण विधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो,
यत्यद्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भोतवाराधनं।।

इस शरीर रूपी मन्दिर में आत्मा शिव है, बुद्धि पार्वती है, इन्द्रियाँ पुजारी हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध आदि विषय सब भोग है और निद्रा समाधि की स्थिति है, वाणी से जो कुछ भी बोला जाता है ये मुझ शंकर की सब स्तुति है और **'यत्यद्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भोतवाराधनं'** जो

जो भी कर्म होते हैं सब शंकरजी की पूजा हो रही है, चाहे ज्ञानेन्द्रियों से चाहे कर्मेन्द्रियों से मुझ चेतन देव की सब पूजा कर रहे हैं। मुझे भोग लगाकर फिर आप ही प्रसाद पाते हैं और आप ही प्रसन्न होते हैं। मेरी पूजा करके और प्रसाद पाकर खुद ही खुश होते हैं। मैं तो इनके भाव का ही ग्राहक हूँ, भाव के भूखे हैं भगवान!

भाव का भूखा हूँ मैं और भाव ही एक सार है,
भाव से मुझको भजे जो भव से बेड़ा पार है।।
भाव बिन सूनी पुकारें मैं कभी सुनता नहीं,
भावयुत एक टेर भी करती मुझे लाचार है।।
भाव बिन सब कुछ दे डाले तो भी मैं लेता नहीं,
भाव से एक फूल दे तो भी मुझे स्वीकार है।।
अन्न धन और वस्त्र भूषण कुछ न मुझको चाहिये,
आप हो जाये मेरा बस यह उचित सत्कार है।।
जो मुझी में भाव रख कर लेते हैं मेरी शरण,
उनके और मेरे हृदय का एक रहता तार है।।
भाव जिस नर में नहीं उसकी मुझे चिन्ता नहीं,
भाव वाले भक्त का भरपूर मुझ पर भार है।।
बाँध लेते भक्त मुझको भाव की ज़ंजीर में,
इसलिये होता मेरा इस भूमि में अवतार है।।

और भगवान को क्या चाहिये बस केवल भाव के भूखे हैं। हे षडानन्! मैं तो केवल भाव का ही भूखा हूँ इनका भाव ही ग्रहण करता हूँ बाकी ये ही भोग लगाते हैं ये ही प्रसाद पाते हैं और प्रसन्न होते हैं। इसलिये हे षडानन्! तू जीव है और मेरा स्वरूप शिव है, तू ये ही भजन कर **'सोऽहं भावेन पूजयेत्'** मेरी पूजा यही है, **'सो'** माने शिव **'अहं'** माने मैं—मैं शिव हूँ, **'चिदानंदरूपः शिवोहं शिवोहं'** सच्चिदानंदघन शिव मैं हूँ यही भजन कर।

अहर्निशं किं परिचिन्तनीयं - संसार मिथ्यात्व शिवात्म तत्त्वं।।

रात-दिन क्या भजन करना चाहिये? कहा ये संसार मिथ्या है क्योंकि बुद्धि पार्वती जो बनाती है संसार को तो कोई सामग्री नहीं लेती बस संकल्प किया बन गया संसार, इच्छा किया संसार बन गया इसलिये ये बिल्कुल ही झूठा है जैसे मनोराज्य, मन में जो कल्पना करो तो मन में वो ही दिखाई पड़ता है। जो मन में संकल्प करो इच्छा करो पड़े पड़े चिन्तन करो वो ही सब दिखाई पड़ने लगता है मन में, मन की कल्पना मात्र है। ये सारे मन्दिर ८४ लाख योनियों के, ये तेरी माता बुद्धि की कल्पना मात्र है इस वास्ते सत् नहीं परन्तु सभी झूठे मन्दिरों में शरीरों में सत् तो मैं देव विराजमान हूँ, मैं सत् ही हूँ और मन्दिर असत् हैं, मेरा नाश नहीं होता। सब मन्दिरों में समानरूप से विराजमान रहता हूँ परन्तु मन्दिरों के नाश होने पर मेरा नाश नहीं होता और न मन्दिरों के बनने से मैं बनता हूँ, मैं तो हमेशा एकरस हूँ। जैसे आकाश हमेशा से है, ये घट मठ आदि बनते हैं पुनः मिट जाते हैं। घट बन गया तो आकाश घट के भीतर हो गया और बाहर भी बना है, मठ बन गया तो मठ के भीतर भी ये पोलाई है आकाश इसी को कहते हैं, मठ के बाहर भी पोलाई अनंत गुना ज़्यादा है, आकाश भीतर बाहर भरपूर है। घट के नाश से आकाश का कुछ नाश नहीं, मठ के नाश से आकाश का कुछ नाश नहीं वो महाकाश रूप ही है, आकाश अखण्ड ही रहता है। घट-मठ आकाश को खण्ड खण्ड नहीं कर सकते, भीतर-बाहर घिर गया है इसलिये घटाकाश-मठाकाश कहने लगते हैं लोग। घट के भीतर के आकाश को घटाकाश और मठ के भीतर के आकाश को मठाकाश कहते हैं और जब ये नष्ट हो गये तो केवल आकाश कहा जाता है। इन उपाधियों से घटाकाश-मठाकाश नाम हैं जब घट-मठ नहीं हैं तो क्या कहो खाली आकाश कहना पड़ेगा। तो षडानन्! आकाश के समान हमारा तुम्हारा

स्वरूप है तो सब मन्दिरों के भीतर भी हैं और बाहर भी हैं। इन शरीरों के बनने बिगड़ने को बुद्धि तो बनाती है और पुनः मिटा देती है, जब सो जाती है तब संसार मिट जाता है मन्दिर ख़त्म हो जाते हैं और जब जागती है तो सब मन्दिर बनाके तैयार कर देती है एक मिनट में, खाली मेरी दृष्टि पड़ती है देखता हूँ मैं खाली, इतना ही सम्बन्ध है तेरी माता से मेरा, पार्वती से शंकर का क्या सम्बन्ध? खाली देख लेना। तो दृष्टि मात्र से बुद्धि में प्रेरणा होती है, हलचल होती है बुद्धि संसार का रूप धारण कर लेती है और छोटे बड़े सब शरीर बन जाते हैं, ऐसी ये सृष्टि है, दृष्टि मात्र से शंकर की ये सृष्टि है। हे षडानन्! तू कल्याण स्वरूप ही है, सच्चिदानंदघन शिव ही है, अपने आप को सच्चिदानंदघन शिवरूप जान और बाकी जितने समष्टि-व्यष्टि शरीर हैं ये सब देवालय हैं। स्थूल-सूक्ष्म-कारण इनको ***व्यष्टि*** देह कहते हैं। **स्थूल** माने ये जो शरीर दिखाई पड़ते हैं नेत्रों से स्त्री-पुरुषों के और **सूक्ष्मशरीर** इस स्थूलशरीर के भीतर है उसमें १७ अथवा १९ तत्त्व है — ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ प्राण, मन बुद्धि चित्त अहंकार, ये उन्नीस तत्त्व हो गये। स्थूलशरीर के भीतर सूक्ष्मशरीर है और सारे कर्म उसी में हैं। स्थूलशरीर एक मकान है और इसी के भीतर बैठकर सूक्ष्मशरीर सब कर्म करता हैं — ऑख देखती है, कान सुनते हैं, वाणी बोलती है, हाथ काम करते हैं, पैर चलते हैं, ये सब कर्म इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में हैं, प्राण-स्वॉस नासिका से आता जाता है ये सूक्ष्म शरीर है और तीसरा **कारणशरीर** है वो अज्ञान रूप है, निद्रा रूप है, घोर सुषुप्ति गाढ़निद्रारूप अज्ञान है उसको कारणशरीर कहते हैं। इस सुषुप्ति से ही जाग्रत-स्वप्न का संसार होता है पुनः सुषुप्ति में लीन हो जाता है इसलिये जाग्रत का स्थूलशरीर, स्वप्न का सूक्ष्मशरीर ये कार्य हो गया और सुषुप्ति कारण हो गया और जो शिव है वो इन तीनों से परे है, तीनों में है पर तीनों से परे है। ये व्यष्टि शरीररूपी मन्दिर है और ***समष्टि***? सारे संसार के जितने स्थूलशरीर हैं सब मिल करके उसका नाम **विराट** होता है, और जितने व्यष्टि सूक्ष्मशरीर हैं सब मिल करके उसका नाम **हिरण्यगर्भ** होता है माने समष्टि सूक्ष्मशरीरों का समूह और जितने निद्रारूप अज्ञानरूप व्यष्टि कारणशरीर हैं वो समष्टि अज्ञान मिल करके **अव्याकृत** नाम होता है, वो समष्टि कारणशरीर हो गया। तो व्यष्टि-समष्टि सभी शरीर ये सब मन्दिर हैं और सबमें **'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः'** सब मन्दिरों में देव एक है और गूढ़ है माने छिपा हुआ है, वो छिपा हुआ क्यों है? वो देखता है न देव सबको! वे दिखाई तो पड़ेगा नहीं, एक ही देव है वो देखता है, तो दिखाई पड़ने वाले सब मन्दिर ही मन्दिर होंगे उनको ज्ञान नहीं है, दृश्य को ज्ञान नहीं होता वो जड़ होते हैं अज्ञानरूप होते हैं और जो द्रष्टा है वो ज्ञानरूप है, दिखाई पड़ेगा तो वो भी अज्ञानरूप हो जायेगा। दूसरी बात — जो द्रष्टा यदि दृश्य बन जायेगा तो वो अज्ञानरूप हो गया तो देखेगा कौन? अज्ञानरूप इन देहों की सिद्धि कौन करेगा कि ये स्त्री-पुरुष का देह है क्योंकि ये तो देह हो गया, मन्दिर बन गया, मन्दिर को ज्ञान नहीं है तो ज्ञान के बिना अज्ञान की सिद्धि कौन करेगा? इसलिये वो दृश्य नहीं होता है **'अदृष्टो-द्रष्टा'** जो सर्व का द्रष्टा है, देव है, वो देव ही रहता है, द्रष्टा ही रहता है और स्वयं अदृष्ट ही रहता है, दिखाई नहीं पड़ता सबको देखता है और जो दृश्य है वो अज्ञानरूप है, शिवालयरूप है, मन्दिररूप है उसको भी ज्ञान नहीं है वो भी देख सकता नहीं इसलिये द्रष्टा के द्वारा ही दृश्य की सिद्धि होती है, ज्ञान के द्वारा ही अज्ञान की सिद्धि होती है। ज्ञान स्वयं सिद्ध है, देव स्वयं सिद्ध है और देवालय तो रोज़ बनते बिगड़ते हैं। बुद्धि होती है तो बना देती है संसार, सब शरीर और बुद्धि सो जाती है तो सब संसार, सब शरीर, सब मन्दिर बिगड़ गये अथवा बुद्धि मुझ शिव का चिन्तन करते करते, आत्मा का चिन्तन करते करते शिवरूप हो जाती है माने समाधि लग गई तो भी सब मन्दिर ख़त्म हैं, मैं शिव रह गया, बुद्धि मुझमें लीन हो गई, मेरा चिन्तन करते करते तेरी माता बुद्धि पार्वती मेरा रूप हो गई, शिवरूप हो गई, संसार ख़त्म हो गया, मैं शिव मृत्युंजय रह गया—**'मृत्युं जयति इति मृत्युंजयः'** जिसने मृत्यु को जीता है उसको मृत्युंजय कहते हैं। तो आत्मा मृत्युंजय है क्योंकि आत्मा को मृत्यु आती नहीं है वो स्वभाव से ही मृत्युंजय है कुछ तप आदि से नहीं। कितने असुर लोग राक्षस लोग तप करते हैं मुत्यु से छूटने के लिये कि मैं न मरूँ, रावण-हिरण्यकश्यपु आदि बहुत से

असुर राक्षस ऐसे हुए हैं जिन्होंने तपस्या किया है और जब भगवान ने दर्शन दिया, ब्रह्मा ने दर्शन दिया और कहा कि वर माँगो क्या चाहते हो? तो कहते हैं कि हम मरें नहीं, कोई हमको मार न सकै। इसके माने अपनी आत्मा को वो जानते नहीं हैं। देखो उसको असुर कह दिया, शरीर को अज्ञान है ज्ञान नहीं है न! तो अज्ञान का नाम असुर होता है तो जो अपने को शरीर मानता है वो असुर है, अज्ञानी है। असुर को कैसे ज्ञान हो? असुर लोग सोचते हैं कि हम अमर हो जायें माने शरीर बने बैठे हैं वो ही तो असुर है, भला ये शरीर अमर कैसे रहेगा? और जिनसे वरदान माँगते हैं वो बुद्धि (समष्टिबुद्धि ही ब्रह्मा है) भी तो उत्पत्ति-नाशवान है, उन्होंने दे दिया अच्छा तू अमर रहेगा पर नहीं जानता जिससे वरदान माँगता हूँ वो भी तो मरते जीते हैं। इसी में संतुष्ट हो गये परन्तु मारे ही गये अमर कोई न भये। अरे! रावण मारा गया, हिरण्याक्ष व० हिरण्यकश्यपु राक्षस सब मारे गये सब दैत्य मारे गये अमर कैसे हो सकते हैं? अरे! शरीर को अपना स्वरूप मानकर अमर होना चाहता है ये कैसे सम्भव हो सकता है? **'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'** जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु ध्रुव है, भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं उसकी मृत्यु अटल है माने टल नहीं सकती और जो देव है उसका तो जन्म नहीं हुआ है। जिसका जन्म ही नहीं हुआ है तो मृत्यु क्या होगी? हे षडानन्! आत्मा का जन्म नहीं होता है इसलिये मृत्युंजय है मृत्यु का क्या सवाल जब जन्म ही नहीं हुआ है? मृत्यु कहाँ से आयेगी? जिसका जन्म है उसकी मृत्यु है, शरीर का जन्म तो शरीर की मृत्यु वो भी तेरी बुद्धि के संकल्प मात्र से जन्म-मरण है, कोई सामग्री से ये शरीर बनाये नहीं जाते। बुद्धि तो संकल्प करती है बन जाते हैं, ऐसे ढँग के जन्म-मरण हैं परन्तु आत्मा का तो जन्म-मरण ऐसा भी नहीं होता है कि किसी के संकल्प ही से मैं पैदा हो जाऊँ, आत्मा स्वयं सिद्ध है सदा एकरस। षडानन् के बहाने शिव ने सभी जीवों को यही उपदेश कर दिया कि हे जीवों! तुम मेरा स्वरूप हो इसलिये मेरा ही ध्यान-चिन्तन करो, सच्चिदानंद मैं शिव हूँ ऐसा ही ध्यान-चिन्तन-भजन करो।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 05 - 02.08.06

४१

जीव का अज्ञान और त्रिकाण्डमय वेद

अशरण शरण अकारण करुण करुणा वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान के ज्ञान से जीव सर्व दु:खों से सदा के लिये मुक्त होकर परम सुख शान्ति को प्राप्त होता है, मृत्यु से छूटकर अमृतत्त्व को प्राप्त करता है व संपूर्ण अज्ञानता से छूटकर उसे अनंत अखण्ड ज्ञान प्राप्त होता है इसलिये जीव को अपनी पूर्णता के लिये भगवान का ज्ञान परम आवश्यक है। भगवान का ज्ञान भगवान की वाणी वेद से होता है और गुरु से होता है क्योंकि वेद अपने आप तो बोलता नहीं, गुरु ही उसको पढ़ के सुनाते हैं अर्थ समझाते हैं। इस प्रकार से वेद त्रिकाण्डमय है — **'कर्म-उपासना-ज्ञान त्रिकाण्डमयो वेदा'** ये तीन काण्ड रूप वेद है। **'मल-विक्षेप-आवरण'** ये अज्ञान के तीन भाग हैं, तीन भागों में विभक्त होकर के ये अज्ञान जीव के हृदय में बस गया है और हृदय में ही भगवान का दर्शन होता है, कहीं बाहर जाता नहीं है इसलिये हृदय से ये तीन दोष जब हटें तब ही भगवान का दर्शन हो सकता है। आत्म रूप में सबके अन्दर भगवान विराजमान हैं तो हमको अपनी आत्मा का दर्शन भगवान का दर्शन है परन्तु जैसे हमारा एक **'रूप'** है व दूसरा **'स्वरूप'** है। **रूप** तो ये है जो हमको दिखाई पड़ता है तुमको दिखाई पड़ता है ये सब रूप हैं हमारे तुम्हारे और दूसरा हमारा **स्वरूप** है वो अरूप है, वो ऑखों से दिखाई नहीं पड़ता है किन्तु रूपों को वो देखता है, वो स्वरूप है, वो निर्गुण-निराकार है और जो रूप है वो सगुण-साकार है, ये दिखाई पड़ते हैं। तो रूप का दर्शन करना हो तो कैसे हो? हम अपने शरीर का, मुख का दर्शन करना चाहते हैं, शरीर में सबसे सुन्दर मुख ही होता है, मुख ही मुख्य है, सुन्दरता की माप मुख से देखी जाती है पर अपनी ऑखों से अपना मुख नहीं दिखाई पड़ता है। कितना सुन्दर हमारा मुख है हमें अपनी ऑखों से तो दीखता नहीं, दूसरे लोग बताते हैं तुम्हारा मुख बहुत सुन्दर है दूसरे को दीखता है, हमको अपना मुख नहीं दीखता। यद्यपि मुख के समीप मेरी ऑखें हैं पर उन ऑखों से हम अपने मुख को नहीं देख पा रहे हैं ऐसा क्यों है? नेत्रों की ऐसी ही बनावट है कि अधिक नज़दीक का और अधिक दूर का नेत्र नहीं देख सकते, ऐसी ही शक्ति सामर्थ्य नेत्रों की बनाई गई है। तो मुख बहुत नज़दीक है इसलिये ऑखें नहीं देख पातीं और अनेक लोक हैं सो बहुत दूर हैं तो दूरी के कारण वो लोकों को नहीं देख पातीं ऑखें। तो कहा बहुत दूर भी न हो और बहुत नज़दीक भी न हो, बीच में हो नज़दीक हो कुछ दूर पर हो तो दिखाई पड़ जायेगा अपना मुख। तो अपने मुख को देखने के लिये लोग-बाग दर्पण लेते हैं, अपना मुख कुछ दूर दिखाई पड़ेगा, सामने दर्पण में दिखाई पड़ेगा, अपने मुख से कुछ दूर चला गया। परन्तु वो दर्पण तीन दोषों से रहित होना चाहिये। एक तो दर्पण मलिन न हो जिसमें हमें मुख देखना है मैला न हो साफ हो, दूसरा हिलता हुआ न हो चंचल न हो, तीसरा किसी पर्दे से ढका हुआ न हो आवृत न हो, ये तीन दोष दर्पण में न हों तो हम अपने मुख को देख सकते हैं। इन तीनों में एक भी दोष होगा माने यदि मैला दर्पण है तो ठीक से नहीं दिखाई पड़ेगा मैला ही दीखेगा, यदि चंचल है तो बिल्कुल ठीक नहीं दिखाई पड़ेगा और यदि ढका हुआ है तो बिल्कुल ही नहीं दीखेगा। मल भी न हो, चंचलता भी न हो और किसी वस्त्र से आवृत न हो ढका हुआ भी न

हो तब हम अपना मुख देख सकते हैं अन्यथा नहीं। ये तो अपने शरीर के मुख देखने की बात रही, तीनों दोष नहीं होना चाहिये दर्पण में। ये मुख तो बाहर है तो बाह्य मुख देखने के लिये बाह्य शीशा की ज़रूरत है, आत्मा अन्तर है भीतर है तो अन्तर-दर्पण की ज़रूरत है। बाहर वाले शीशे से भीतर का हमारा स्वरूप नहीं दिखाई पड़ेगा। बाहर के दर्पण में बाहर का रूप और भीतर के अन्त:करणरूपी दर्पण में अन्तरात्मा का दर्शन हो जायेगा। तो उसमें भी तीन दोष नहीं होने चाहिये। आत्म दर्शन के लिये अन्त:करणरूपी दर्पण मलिन नहीं होना चाहिये, चंचल नहीं होना चाहिये, आवृत नहीं होना चाहिये नहीं तो आत्मा का दर्शन नहीं हो सकेगा और यदि तीनों दोष नहीं होंगे तो आत्म दर्शन हो जायेगा जैसे बाह्य शीशा में मल-विक्षेप-आवरण न होने से अपना मुख दिखाई पड़ता है तैसे ही हमारा आत्मतत्त्व भी अन्त:करणरूपी दर्पण में दिखाई पड़ेगा। अब ये तीनों दोष मल-विक्षेप-आवरण अनादि काल से जीव के अन्त:करणरूपी दर्पण में लगे हुए हैं। ये मलिन भी है अनंत जन्मों के विषय भोगों से और अनेक पाप-पुण्य से ये मन मलिन हो रहा है, चंचल भी बहुत है विषयों के लिये क्षण क्षण में दौड़ता रहता है तृप्ति नहीं होती कभी इतना चंचल है अन्त:करण और अज्ञान से बिल्कुल अपना स्वरूप आच्छादित है ढका हुआ है। सुषुप्तिरूपी अज्ञान है, स्वप्नरूपी मन है अन्त:करण है और जाग्रतरूपी स्थूल शरीर है, ये मल के समान है, मन चंचल है विक्षेपरूप है और सुषुप्ति अवस्था आवरणरूप है घोर अज्ञान है। तो अब ये तीनों दोष नहीं होवें तो आत्म-दर्शन हो सकता है। तीनों मलों को दूर करने के लिये भगवान ने त्रिकाण्डरूप वेद बना दिया। कर्म-उपासना-ज्ञान से अन्त:करण का मल-विक्षेप-आवरण दोष दूर किया जा सकता है। जैसे बाह्य साधन से बाह्य शीशा साफ कर लेते हैं तैसे ही ये जो भगवान ने उपाय बताये हैं कर्म-उपासना-ज्ञान, इनके द्वारा मल दोष दूर किया जा सकता है, मल-विक्षेप-आवरण तीनों दोष दूर किये जा सकते हैं। तो प्रथम मलदोष की निवृत्ति के लिये निष्काम-कर्म भगवान ने बताया है उससे मलदोष दूर हो जाता है, फिर मन की एकाग्रता के लिये भगवान ने भक्ति बताई है उससे मन की चंचलता दूर हो जाती है। अब मल-विक्षेप दूर हो गया निष्काम-कर्म और भक्ति से तब फिर विवेक, वैराग्य, षट्क-सम्पत्ति, मुमुक्षुता ये चतुष्ट्य साधन आते हैं, इन चारों साधन से सम्पन्न होता है। फिर गुरु की शरण में जाता है और गुरु से आत्मा के सम्बन्ध में श्रवण करता है, श्रवण करके फिर मनन करता है फिर निदिध्यासन करता है।

श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदनन्तरम्,
निदिध्यासनमित्येतत्पूर्णबोधस्य लक्षणम्।।

पूर्ण बोध का यही लक्षण है 'श्रवण-मनन-निदिध्यासन'। श्रवण-मनन-निदिध्यासन से मल-विक्षेप-आवरण तीनों दोष दूर हो जाते हैं, ज्ञान पक्का हो जाता है। कर्म-उपासना-ज्ञान से तीनों दोष दूर होते हैं और श्रवण-मनन-निदिध्यासन से ज्ञान पक्का होता है अपने स्वरूप का। फिर जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीय → जाग्रत में मल, स्वप्न में विक्षेप और सुषुप्ति में आवरण/अज्ञान, जाग्रत में स्थूलशरीर, स्वप्न में सूक्ष्मशरीर और सुषुप्ति अज्ञानरूप कारणशरीर उसके बाद में **'तुरीय'** हमारा तुम्हारा स्वरूप है **'चौथा'** (ये मल-विक्षेप-आवरण थे) — इनको हटा करके फिर ये वेद हमारा तुम्हारा स्वरूप बताता है। मल-विक्षेप-आवरण तीनों दोष जब हट जाते हैं तो आत्म स्वरूप ही शेष रह जाता है समाधि में, **समाधि में** सुषुप्ति भी नहीं रहती माने **अज्ञान नहीं रहता है**, सत्-चित्-आनंद ही शेष रह गया, दु:ख का तो लेश भी नहीं है। योगी लोग अपने स्वरूप में स्थित होकर के शान्त हो जाते हैं, अनंत अखण्ड ज्ञानप्रकाश आनंद स्वरूप **'मैं'** ही शेष रहा। न जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है केवल मैं **सच्चिदानंद ब्रह्म** ही शेष रहा। सज्जनों! ये अपना जो स्वरूप है ये ही अनंत-धन है, ये ही ब्रह्म-धन है जिसको अविनाशी धन कहते हैं।

अनंतवत्त में वित्तम यन्मेनास्ति हि किंचन।।

ये धन अनंत है जिसका आदि अन्त है ही नहीं, आत्मधन को पाकर ही ये जीव धनी होता है और सुखी हो जाता है, ये अविनाशी धन है। आनंद अविनाशी है जिसका नाश नहीं होता और विषय सुख नाशवान् है, आत्मसुख अविनाशी है। विषयसुख तो सुषुप्ति में भी नहीं रहता पर मैं रहता हूँ अपने आत्मानंद का अनुभव करता हूँ सुषुप्ति में। सुषुप्ति में किसी को कोई चिन्ता फिक्र तो है नहीं, मन ही नहीं है चिन्ता फिक्र क्या हो? जब मन नहीं तो काम क्रोध लोभ मोह से जो दु:ख होते हैं मानसिक वो दु:ख भी नहीं और ये तन भी नहीं निद्रा में इसलिये रोग बीमारी का भी कोई दु:ख नहीं है। जाग्रत में तो शरीर है और मन बुद्धि भी है तो शारीरिक रोग बीमारी के भी दु:ख सताते हैं और मानसिक काम क्रोध लोभ मोह के भी दु:ख सताते हैं। देहिक दैविक भौतिक सब ताप ये जाग्रत में सताते है, ज़्यादा से ज़्यादा स्वप्न तक जाते हैं! सुषुप्ति में न तो संसार है जाग्रत स्वप्न का और न शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि है फिर दु:ख किसको हो? सुषुप्ति तो घोर अज्ञानरूपा है, वहाँ मैं हूँ या तो अज्ञान है। मैं सुख स्वरूप ही हूँ, अज्ञान दृश्य है केवल छाया अँधेरा रूप है और वहाँ सुखरूप मैं ही हूँ उस समय निद्रा में तो अपने आनंद का मैं अनुभव करता हूँ। कितना आनंद है अपने आत्मा में इस बात का अनुभव अकेले में होता है जब मैं अकेला रह जाऊँ और जब स्त्री पुत्र धन हैं विषय हैं तब आत्मानंद का अनुभव नहीं होता है। अनंत चिंतायें रहती हैं, काम क्रोध लोभ मोह सताते रहते हैं, शारीरिक रोग बीमारियाँ सताती रहती हैं जब तक जागते रहो, स्वप्न देखते रहो। निद्रा में आप अकेला रहता है, बहुत सुखी रहता है क्योंकि निद्रा जाग्रत-स्वप्न जगत की माता है, निद्रा से ही जाग्रत-स्वप्न का जगत उत्पन्न होता है पुन: निद्रा में लीन हो जाता है। वो अज्ञानरूप निद्रा रह गई या मैं रह गया और तो कोई संसार रहता नहीं है। निद्रा में सबको बराबर सुख होता है कमती ज़्यादा किसी को नहीं होता, चाहे देवता हो, चाहे दैत्य हो, चाहे मनुष्य हो, चाहे चोर बदमाश डाकू हो और चाहे पशु-पक्षी हो कोई सबको बराबर सुख है दु:ख नहीं है वहाँ पर। जाग्रत-स्वप्न में सबको दु:ख है, सुषुप्ति में कोई है नहीं तो दु:ख भी नहीं। एक कथा है कोई महात्मा गंगा सागर से चल के गंगोत्री आ रहे थे गंगा के किनारे किनारे, रास्ते में काशी नगरी पड़ी। सायंकाल को गंगा के किनारे काशी में एक वृक्ष के नीचे महात्मा ने विश्राम किया। प्रात:काल ४ बजे उठ करके शौच स्नान करके अपना गंगा के किनारे कगारे में बैठे हुए, धूप निकली हुई थी, धूप ले रहे थे। काशी का राजा भी भक्त था वो गंगा स्नान को गया, देखा कोई महात्मा बैठे भजन कर रहे हैं गंगा के किनारे कगारे में बैठे हैं। राजा ने भी स्नान किया और स्नान करके महात्मा के पास जाकर के दण्डवत् प्रणाम किया और पूछा हे स्वामिन्! आप कहाँ से आ रहे हो, कहाँ को जा रहे हो और रात कहाँ पर ठहरे रहे हो? तो महात्मा ने कहा हम गंगा सागर से आ रहे हैं और गंगोत्री को जा रहे हैं, पैदल गंगा के किनारे किनारे जा रहे हैं और रात में ये ऊपर कगार में जो वृक्ष है उसी के नीचे सोये रहे। तो माघ का महीना था, कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, हवा ठण्डी ठण्डी चल रही थी। राजा ने कहा महाराज! रात कैसी बीती इतनी ठण्डी में? महात्मा ने प्रसन्न हो करके कहा कि हे राजन! 'कुछ तेरी जैसी कुछ तुझसे अच्छी' ऐसा कहा। राजा सुन कर हैरान हुआ इनके पास कपड़े लत्ते भी ज़्यादा कुछ नहीं हैं, एक चद्दर एक लँगोटी, न बिछाने को न ज़्यादा ओढ़ने को, हवा इतनी चल रही है चारों तरफ से हवा की कोई रोक नहीं है मैदान पेड़ के नीचे। मैं तो महलों में रहा, बिछाने के लिये गद्दा, रज़ाई ओढ़ने के लिये, पलँग बिछाने को और चारों तरफ से हवा भी बन्द है मकान में, हवा की भी रोक है सब साधन हैं तो भी रात्रि को मुझे कुछ ठण्डी का अनुभव हुआ और ये महात्मा कहते हैं 'कुछ तेरी जैसी कुछ तुझसे भी अच्छी रात बीती है'। राजा ने कहा महाराज! कुछ समझ में नहीं आया? महात्मा ने कहा तू समझ ले — जब नींद आ गई हमको तुमको तब हमारी और तेरी रात बराबर की बीती गाढ़ निद्रा जब आ गई और मेरी तेरी ही नहीं संसार भर

के देवता दैत्य मनुष्य पशु-पक्षिओं की भी, जीव मात्र को निद्रा जब आ गई तब बराबर की बीती, बराबर सबको सुख रहा है दु:ख नहीं रहा, क्यों? कहा ये निद्रा जगत की माता है इसलिये सभी जीवों को बराबर सुख देती है विषमता नहीं करती है।

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै: नमस्तस्यै: नमस्तस्यै: नमो नम:।।

वो देवी है जगत की माता है इसलिये वो विषमता किससे करे जब सब अपने ही पुत्र हैं?

नींद जब तू कभी आती है, जी की बेचैनी जाती है।
राजा रंक न मन में धरती, सब पर कृपा बराबर करती।
कंकड़ फूल सेज बन जाते, जब तेरे डेरे डल जाते।।

नींद आ जाये तो (शरीर की रोग बीमारी का दु:ख, मानसिक काम क्रोध लोभ मोह का दु:ख, तो बेचैन रहता है जीव) इन दु:खों में रोगों में शान्ति आ जाती है सुखी हो जाता है। इस प्रकार से नींद जब आ जाती है राजन! तो राजा और रंक, ग़रीब-अमीर का ख़्याल नहीं करती, ये मन में नहीं धरती, सबको बराबर अपनी गोद में सुला लेती है। निद्रा माता की गोद में सब जीव सोये हैं, सुख रूपी दूध सबको पिलाती है, सब निद्रा में सुखी हैं दु:ख तो किसी को लेशमात्र भी नहीं है। अब तो राजन तुम्हारी समझ में आ गया होगा कि तुम्हारी जैसी रात कैसे बीती? निद्रा वाली सबकी रात बराबर की बीतती है। कहा फिर आपने कहा कुछ तुझसे भी अच्छी बीती, वो कौनसी रात मेरे से अच्छी बीती? बोले रात में जब जागरण रहा, निद्रा आ गई तो वो सबकी बराबर की रही और रात में जब तक तू जागता रहा अथवा मैं जागता रहा तो वो जागने वाली रात तेरे से मेरी अच्छी बीती, कैसे? कहा तू राजा है अपनी प्रजा का सुख दु:ख का चिन्तन, क्योंकि प्रजा का चिन्तन राजा को रहता है कि मेरी प्रजा दु:ख न पावे, प्रजा को पुत्र के समान जानता है। राजा राजनीति का जानकार होता है, प्रजा को अपने पुत्रों के समान जानता है तो प्रजा के सुख दु:ख में चिन्तित होता है, सुखी दु:खी होता है फिर अपनी पत्नी पुत्र परिवार की तरफ भी देखता है इसमें भी सुखी दु:खी होता है इस प्रकार से तू चिन्तारूपी चिता में जलता रहा जब तक जागता रहा, ये ही सब चिन्ता में पड़ा रहा जब तक तुझको नींद नहीं आयी ये ही चिन्ता में मगन रहा तो चिन्ता में तो दु:ख होता ही है। राजन्! चिन्ता चिता से बड़ी है, चिता छोटी है —

चिंता चिता द्वयोर्मध्ये चिंता याति गरीयसी,
चिता दहति निर्जीवं चिंता दहति सजीवितं।।

चिता और चिंता में क्या अन्तर है? कहा एक बिन्दी का अन्तर है, **'चि'** के ऊपर एक बिंदी रख दी गई तो **'चिंता'** बन गई तो चिंता बड़ी है और चिता छोटी है क्योंकि एक बिंदी कम है इसमें और चिंता में एक बिंदी ज़्यादा है वो बड़ी है और दोनों का काम भी छोटा बड़ा है। **चिता दहति निर्जीवं**—जो निर्जीव हो जाता है, मुर्दा हो जाता है, मर जाता है चिता उसको जलाती है ज़िंदे को नहीं जलाती और **चिंता दहति सजीवितं**—चिंता तो जीते जी प्राणी को जलाती रहती है, ये भयंकर है जो ज़िंदा ही जलाये दे रही है, चिंता की आग में रात-दिन जलता रहता है इसलिये तेरी रात जो है जागरण वाली दु:ख वाली रही सुखी नहीं रहा, निद्रा आ गई तब तो सुखी रहा। ऐसा नहीं कि गद्दा तकिया रज़ाई पलँग होवे तो सुख पावे और टूटी खाट होवे तो सुख न पावे और ज़मीन में लेटा हो तो उसको सुख न मिले ऐसा नहीं है, नींद आ जाने पर सबको समान सुख होता है। अब मेरी अच्छी रात कैसे बीती उसको भी समझ ले — सुख

स्वरूप ब्रह्म है मैं निद्रा के सुख को छोड़ करके समाधि सुख में स्थित होता हूँ जब तक जागता रहता हूँ।

ब्रह्म ध्यानाभ्यसनविघ्ना योग निद्रांगतस्य।।

ब्रह्म ध्यान का अभ्यास करता हूँ, योगनिद्रा में रहता हूँ, समाधि में रहता हूँ जब तक जागता रहा तो वो मेरी रात अत्यन्त सुखमय बीती जागरण वाली, सुषुप्ति वाली तो ज्ञानी अज्ञानी सबकी बराबर है भजन करे चाहे मत करे उसमें तो सबको बराबर सुख मिल ही जायेगा। तो जागरण वाली रात्रि! सुषुप्ति से आगे मैं अपने सच्चिदानंदघन स्वरूप ब्रह्म का ही स्मरण करता रहा उसी के ध्यान में मगन रहा, वो मेरी रात तेरे से अच्छी बीती अब समझ में आ गया होगा तुझे। राजा ने कहा महाराज! समझ में आ गया, उसी तत्त्व का उपदेश मुझे भी आप करो जिससे मैं भी उस तत्त्व को स्मरण कर, ध्यान कर, समाधि कर सुखी हो जाऊँ। तो महात्मा ने बताया कि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति के आगे तेरा ही स्वरूप है, मेरा स्वरूप है सो ही तेरा स्वरूप है भेद नहीं है। अरे भाई! निद्रा में तो तू सुखी था ही जाग्रत में ही चिंतित था तो जाग्रत अवस्था में तू तुरीय तत्त्व का ध्यान चिंतन कर। तो वो तो अज्ञानरूप निद्रा रहती है ये ज्ञान स्वरूप आत्मा है, ज्ञान में अज्ञान नहीं रहता आनंद ही आनंद रहता है। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति का जो प्रकाशक है वह ब्रह्म है — **'तत्त्वमसि'**, हे राजन! वही तेरा स्वरूप है, वही मेरा स्वरूप है। राजा भक्त तो था ही, शुद्ध बुद्धि थी, चंचलता रहित होकर के सुना तुरन्त ही स्वरूप में स्थिति हो गई। तो संतों के संग से क्षण मात्र में ज्ञान होता है पर भाव-भक्ति पहले से होनी चाहिये और भाव-भक्ति न हो तो किसको संत उपदेश करे? भाव-भक्ति होगी, संतों की शरण में जायेगा तो अवश्य संत अपने आत्म स्वरूप का उपदेश कर देंगे। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इन तीनों को हटा करके चौथा स्वरूप अपना है जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों को देख रहा है, तीनों का द्रष्टा है, तीनों से जुदा है। ये तीनों अवस्था माया मात्र हैं — **जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति त्रयमेतन्मायामात्रम्**, चौथा बहम है माया से परे ब्रह्म है वो हमारा तुम्हारा स्वरूप है। माया मिथ्या छाया के समान है, ब्रह्म अनंत सच्चिदानंद है वो अपना स्वरूप है। कभी द्रष्टा दृश्य से मिल सकता नहीं, माया से मिल सकता ही नहीं। इस प्रकार से अपने आप को माया से अलगा करके देखो तो नित्य मुक्त है फिर उसको कोई जन्म मरण का बन्धन कभी है ही नहीं।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 05 - 23.08.06

४२

भगवान का (स०सा०) रूप और (नि०नि०) स्वरूप निरूपण

अशरण शरण अकारण करुण करुणा वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा हे भगवन्!

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढ़चेताः,
यच्छेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यतेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। BG - 02.07 ।।

हे भगवन्! अज्ञानता के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है, धर्म को भी सम्यक प्रकार से नहीं जानता हूँ, मेरा परम कल्याण किस प्रकार से होगा उस उपाय को भी नहीं जानता हूँ इसलिये हे प्रभु! मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है आप मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! ऐसा तो मैं ही हूँ परम कल्याण स्वरूप, सच्चिदानंद स्वरूप। मेरे दो रूप हैं एक तो निर्गुण-निराकार और दूसरा सगुण-साकार, मेरे सम्पूर्ण रूप को जान लेने से जीव तुरन्त सर्व दुःखों से मुक्त होकर परम सुख-शान्ति को प्राप्त होता है तो अर्जुन! मेरे दोनों स्वरूप को तू समझ। राम कृष्ण विष्णु शिव-शक्ति सूर्य गणेश कच्छ मच्छ वामन वराह नृसिंह आदि अनेक जो मेरे अवतार होते हैं वो सब सगुण-साकार रूप मेरे ही हैं। मैं ही अपनी महामाया शक्ति से अनेक रूपों में अवतार लेता हूँ और ये सारा विश्व-विराट रूप भी मेरा ही है। मुझ कृष्ण के शरीर में सभी संसार के स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र देवता-दैत्य सिंह-व्याघ्र सर्प बिच्छू आदि सब मेरे शरीर में जुड़े हुए हैं, मुझसे बाहर ये कोई नहीं हैं और भगवान ने एकादश अध्याय में अर्जुन को अपना विश्व-विराट रूप दिखाया भी और अर्जुन ने देखा और देख करके भगवान की स्तुति किया। स्तुति करते हुए अर्जुन कहता है —

पश्यामि देवांस्तव देव देहे,
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थम्,
ऋषींश्चसर्वानुरगांश्च दिव्यान्।। BG - 11.15 ।।

हे कृष्ण! हे देव देव! तुम्हारे देह में सम्पूर्ण देवताओं को देख रहा हूँ और भूतों के जो विशेष विशेष समुदाय हैं जैसे मनुष्यों का समुदाय, पशुओं का समुदाय, पक्षियों का समुदाय, वृक्षों का समूह, पर्वतों का समूह, नदियों का समूह, अनेक समुद्रों का समूह, दैत्यों का समूह ये सब तुम्हारे शरीर में जुड़े हुए मैं देख रहा हूँ। सभी ऋषियों का समूह, सभी दिव्य दिव्य सर्पों का समूह, कमलासन पर बैठे हुए ब्रह्मा को भी देख रहा हूँ, शंकर को भी देख रहा हूँ। हे देव! तुम्हारे देह में मैं सारे विश्व-विराट को देख रहा हूँ। तो ये सब भगवान का *सगुण-साकार* **रूप**

है, भगवान के सिवाय दूसरा कोई है नहीं।

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय,
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। BG - 07.07 **।।**

हे अर्जुन! मैं ही इस चराचर जगत का कारण हूँ, मुझसे ही जगत उत्पन्न होता है, मुझमें ही रहता है पुनः मुझमें लीन हो जाता है — तो वो मेरा *निर्गुण-निराकार* **स्वरूप** है। तो सगुण-साकार रूप भी मैं ही हूँ और निर्गुण-निराकार स्वरूप भी मैं ही हूँ। सगुण-साकार रूप तो मैं अपनी महामाया शक्ति से धारण करता हूँ —

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।। BG - 04.06 **।।**

अर्जुन! वास्तव मे ंतो मैं अपने निर्गुण-निराकार स्वरूप से अजन्मा हूँ, सत्-चित्-आनंदरूप हूँ और अविनाशी ही हूँ और महामाया शक्ति को स्वीकार करके उसके द्वारा मैं सगुण-साकार रूप धारण कर लेता हूँ। तो माया करके मैं ही सगुण-साकार रूप धारण करता हूँ और वास्तव में निर्गुण-निराकार रहता हूँ। तो अर्जुन! निर्गुण-निराकार तो सभी जीवों का और जगत का एक ही स्वरूप है क्योंकि प्रथम तो ये सगुण-साकार रूप था ही नहीं जैसे अग्नि के दो रूप होते हैं — निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार। जो व्यापक अग्नि है एक अद्वितीय है वो निर्गुण-निराकार है क्योंकि नेत्रों से जो देखने में जो आवे उसे आकार कहते हैं, तो व्यापक अग्नि तो नेत्रों से देखने में आती नहीं है इसलिये निराकार है और अग्नि में जो उष्ण गुण है वो भी जब ईंधन में प्रकट होती है तभी होता है तो अग्नि के गुण और आकार प्रकट होते हैं।

एक दारुगत देखिए एकू,
पावक युग सम ब्रह्म विवेकू।।

जैसे निर्गुण-निराकार अग्नि काष्ठ में, कोयला में, पाषाण में सबमें व्यापक है, सर्वत्र व्यापक है और सगुण-साकार अग्नि प्रकट होती है, दीपक में प्रकट होती है तो घर का अंधकार दूर कर देती है, घर में रखी हुई वस्तुओं का ज्ञान होता है और ईंधन में प्रकट होती है तो भोजन बन जाता है, उष्ण गुण प्रकट होता है, सबका काम सगुण-साकार अग्नि से बनता है। निर्गुण-निराकार अग्नि से किसी का कुछ काम बनता नहीं क्योंकि निर्गुण-निराकार में गुण नहीं है इसलिये भोजन नहीं बन सकता, ठण्डी लगी हो तो ठण्डी दूर नहीं हो सकती। दीपक के रूप में प्रकट नहीं है आकार नहीं है इसलिये अँधेरा भी दूर नहीं होता है क्योंकि व्यापक अग्नि किसी की विरोधी नहीं है, अंधकार की विरोधी नहीं है। अग्नि माचिस में है, दीपक में है, ईंधन में है, सबमें अग्नि है पर अँधेरा भी बना रहता है व्यापक निर्गुण निराकार अग्नि भी बनी है और जब प्रकट होती है सगुण-साकार रूप में तब अंधकार का नाश करती है, सर्दी दूर करती है और उष्ण गुण से भोजन बन जाता है। तो सगुण-साकार अग्नि के तो अनंत रूप हैं, संसार भर के घर घर में दीपक जल रहे हैं चूल्हे जल रहे हैं ईंधन जल रहा है और वही अग्नि सूर्य में प्रकट होती है तो ब्रह्माण्ड का अंधकार दूर करती है। तो प्रकट अग्नि सगुण-साकार अग्नि के अनेक रूप हैं पर व्यापक अग्नि तो एक है। सगुण-साकार अग्नि से सबका काम बनता है और निर्गुण-निराकार से बनता नहीं है और जब सबका काम हो जाता है तब सगुण-साकार अग्नि अपने निर्गुण-निराकार स्वरूप में समा जाती है जो उसका व्यापक रूप है सब जगह उसी में समा गई, सबका

काम हो गया अब उसकी आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार से निर्गुण-निराकार भगवान कहते हैं मेरा स्वरूप सर्वत्र एक रस व्यापक है, सभी जीवों का और जगत का भी प्रथम उत्पत्ति के पहले ये सारा संसार मेरा ही रूप है, सब जीव-जगत मेरा ही रूप है, निर्गुण-निराकार रूप है, एक अद्वितीय है दूसरा कोई है ही नहीं, नित्य मुक्त है उसका जन्म मरण नहीं है। सगुण-साकार रूप में जब प्रकट होता है उसी को जन्म कहते हैं, जन्माष्टमी उसी की मनाते हैं जब सगुण-साकार रूप में मेरा रूप प्रकट होता है। राम के रूप में प्रकट होता हूँ तब रामनौमी जन्म का मनाया जाता है और इसके जन्म होने के पहले निर्गुण-निराकार रूप से सर्वत्र व्यापक हूँ। कोई ऐसे देश काल वस्तु नहीं है जो मुझ निर्गुण-निराकार ब्रह्म से खाली हो, सब जगह एक समान व्यापक हूँ और सभी जीव स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र उत्पत्ति के पहले मेरा ही रूप थे निर्गुण-निराकार और निधन के बाद जब लय हो जायेंगे तब फिर मेरा ही रूप होगा, बीच में ये लीला मात्र मैं सगुण-साकार हूँ इसी में लीला होती है — रासलीला, रामलीला मेरे सगुण-साकार रूप में होती है और निर्गुण-निराकार रूप में फिर एक हो जाता हूँ। तो सगुण-साकार रूप भगवान का लीला क्षेत्र है, लीला मात्र है, खेल मात्र है और निर्गुण-निराकार! उसमें कोई खेल नहीं, कोई लीला नहीं वो एक अद्वितीय है, आप अकेला ही है।

एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन

अर्जुन! मैं निर्गुण-निराकार रूप से एक अद्वितीय हूँ उसमें नानात्व कुछ नहीं है और सगुण-साकार रूप में कितना नानात्व है कि कोई गिन नहीं सकता। संसार में कितने स्त्री-पुरुष होंगे, मनुष्य होंगे, पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र होंगे? गिनती नहीं है सगुण-साकार रूप की।

उपजहिं जासु अंश ते नाना, विष्णु विरंचि शंभु भगवाना,
उपजहिं जासु अंश गुण खानि, अगणित उमा रमा ब्रह्माणी।।
अगणित रवि शशि शिव चतुरानन्

कितने ब्रह्मा विष्णु महेश, कितने उमा रमा ब्रह्माणी सूर्य चन्द्र प्रकट होते हैं प्रत्येक लोकों में।

गणना चेद रसामस्ति विश्वानाम् न कदाचन,
ब्रह्म विष्णु शिवादि नाम तथा संख्या न विद्यते।।

अर्जुन! जैसे धूलि के कण गिने नहीं जा सकते संसार में कितने रज कण होंगे पृथ्वी में जो धूल के कण उड़ते हैं और पृथ्वी में भी पड़े हैं, एक एक कण कोई गिनना चाहे संसार भर के, पृथ्वी के तो कोई गिन नहीं सकता है और कदाचित् चाहे पृथ्वी के रजकण धूलिकण गिन भी ले परन्तु मेरे सगुण-साकार अवतार के कितने रूप हैं संसार में, कितने ब्रह्मा विष्णु महेश हैं, कितने उमा रमा ब्रह्माणी हैं और कितने विश्व ब्रह्माण्ड हैं उनकी गिनती नहीं की जा सकती है इतने हैं, पर मेरी माया से एक क्षण में बन जाते हैं।

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।

अर्जुन! अनंत कोटि ब्रह्माण्ड मेरी माया से एक क्षण मात्र में उत्पन्न हो जाते है और क्षण मात्र में विलीन भी हो जाते हैं पर मेरा निर्गुण-निराकार स्वरूप ज्यों का त्यों रहता है। सगुण-साकार में सब प्रकार के कर्म भी हैं, सगुण-साकार रूप में मैं ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश बनता हूँ तो ब्रह्मा रूप से सृष्टि संसार की करता हूँ, विष्णु रूप से रक्षा करता हूँ और शंकर रूप धर के संहार भी

करता हूँ। इन्द्र रूप धर के वर्षा भी करता हूँ, यमराज का रूप धर के एक एक को मारता हूँ, किसी को पैदा करता हूँ किसी को मारता हूँ माने ब्राह्मण का रूप धर करके वेद पढ़ता-पढ़ाता हूँ, क्षत्रिय का रूप धर करके राज्य करता हूँ दुष्टों का दलन करता हूँ और गउू ब्राह्मण साधुओं की रक्षा करता हूँ, वैश्य का रूप धारण करके मैं ही विश्व का व्यापार करता हूँ जितने कृषि है गौ-रक्षा है वाणिज्य है ये सबका काम वैश्य बन कर मैं ही करता हूँ। मैं ही शूद्र बनकर सबकी सेवा करता हूँ माने मेरे सगुण-साकार रूप में ही सब कर्म हैं। सबको अपने अपने पाठ मैंने दे रखे हैं, सब कर्मो को — मैं ही स्त्री बन करके पत्नी बन करके पति की सेवा करता हूँ और मैं ही पति भी बना हूँ, पति बन करके मैं ही पत्नी की रक्षा भी करता हूँ तो ये जितने भी कर्म हैं ये मेरे लीला क्षेत्र में हैं और निर्गुण-निराकार तो एक अद्वितीय है उसमें तो कोई कर्म नहीं है, कोई खेल नहीं हैं वो तो अकर्म है, जितना भी कर्म है ये सगुण-साकार में ही है। तो अर्जुन! सगुण-साकार भी मैं ही हूँ और निर्गुण-निराकार भी मैं ही हूँ फिर अब मुझसे भिन्न अब कौन है? जितना भी दृश्य जगत है जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, स्थूल-सूक्ष्म-कारण, विश्व-तैजस-प्राज्ञ, द्रष्टा-दर्शन-दृश्य, ध्याता-ध्यान-ध्येय, प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय ये सबका सब मेरा ही सगुण-साकार रूप है। ईश्वर-जीव-जगत ये सब मेरा ही रूप है मुझसे भिन्न नहीं है।

वेदान्त सिद्धान्त निरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगत च।।
अखण्ड रूपः स्थितिरेव मोक्षः ब्रह्माद्वितीये श्रुतया प्रमाणं।।

भगवान कहते हैं मैं सच्चिदानंदघन ब्रह्म अद्वितीय हूँ — ईश्वररूप भी मैं ही हूँ, जीवरूप भी मैं ही हूँ और जगतरूप भी मैं ही हूँ तो मुझसे भिन्न तो कोई रहा नहीं।

हरिरेव जगत जग देव हरिर्हरितो जगतो नहिं भिन्न तनुः,
इति यस्य मति परमार्थ गति सनरो भव सागर मुक्तरतिः।।

अर्जुन! जगतरूप भी मैं ही हूँ, गोपरूप भी मैं ही हूं-गोपीरूप भी मैं ही हूँ, गउू रूप भी मैं ही हूँ-बछड़ारूप भी मैं ही हूँ, सिंह-व्याघ्र भी मैं ही हूँ, भूमिरूप भी लता-वृक्षरूप भी मैं ही हूँ, जमुना-गंगा आदि सब नदियाँ भी मैं ही हूँ, ये सब मेरा ही रूप है — अब अर्जुन को ये विश्व-विराट रूप दिखाया परन्तु अर्जुन! इतना ध्यान रखना चाहिये अपने आप को तू भी मेरा ही रूप जान, निर्गुण-निराकार रूप से हमारा तुम्हारा सबका एक स्वरूप है और सगुण-साकार रूप में अनेक हैं तो अपने अपने लीला क्षेत्र में अपने अपने कर्म करने के लिये — तू क्षत्रिय है तुझे चाहिये कि प्रजा का पालन कर राज्य कर, दुष्टों का दलन कर, साधु ब्राह्मण गउूओं की रक्षा कर और मेरा अवतार भी इसीलिये हुआ है।

गो ब्राह्मण द्विज संत हित लीन मनुज अवतार,
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुण गो पार।।

स्वयं तो माया से, गुणों से और इन्द्रियों से परे हैं परन्तु साधु ब्राह्मण गउओं की रक्षा करने के लिये मनुष्य अवतार धारण करके आते हैं अब जैसे अवतार की ज़रूरत होती है, कहीं कच्छ मच्छ भी बनते हैं, कहीं वाराह रूप भी धारण करते हैं तो भगवान के ये सब लीला क्षेत्र हैं। वो ही राम बनकर के सबकी रक्षा करते हैं, धर्म-कर्म का पालन करते हैं और वो ही रावण बनकर असुर बनते हैं। अब लीला क्षेत्र में देखिये भगवान से भिन्न कोई नहीं है, रावण कंस आदि असुर भी भगवान के रूप हैं, लीलाक्षेत्र में सबकी ज़रूरत पड़ती है। रामलीला खेली जायेगी तो राम होगा तो वहाँ रावण भी ज़रूरी है, बिना रावण के रामलीला नहीं बनेगी। सीता है तहाँ

सूर्पणखा भी होगी, कौशल्या है तो कैकेयी भी होगी माने एक धर्म रूप होगा तो एक अधर्म रूप होगा, एक सत्य का पालन करेगा तो दूसरा असत्य का पालन करेगा। राम धर्म का पालन करते हैं, धर्म के रूप हैं, धर्म की मूर्ति हैं और सत्य का पालन करते हैं सत्य की मूर्ति हैं और रावण? कहा वो अधर्म का पाठ लिया है उसने और असत्य बोलने का पाठ लिया है तो भाई! अब किसको अच्छा कहो और किसको बुरा कहो लीला में? यदि रावण न होगा तो लीला नहीं बनेगी, कौशल्या होती अकेली कैकेयी नहीं होती तो राम की लीला वहीं अयोध्या भर में रहती, न तो राम वन में जा पाते न राम रावण के साथ में जो युद्ध हुआ है (ये लीलाक्षेत्र है खेल है न!) ये खेल कहॉ हो पाता? कोई कहे कि कौशल्या अच्छी है और कैकेयी ख़राब है, अरे भाई! कैकेयी न होती तो कैसे वन में राम जाते? पिता तो जाने न देते, चले जाने से प्राण छोड़ दिये। कौशल्या अम्बा कभी जाने न देती राम को वन में, बताइये! तो आगे की लीला कैसे होती? — ये चित्रकूट जाने की लीला, पंचवटी जाने की लीला, सभी ऋषि-मुनियों का दर्शन देना और दर्शन लेना और उनकी रक्षा करना ये लीला कैसे होती? और फिर राम-रावण का युद्ध रूप जो मुख्य लीला है खेल है ये कैसे होता? किन्तु नहीं होता। तो सज्जनों! लीलाक्षेत्र में किसी को अच्छा किसी को बुरा सोचना ये ठीक नहीं है। किसी से राग-द्वेष नहीं करना चाहिये ये सब भगवान का लीलाक्षेत्र है क्योंकि अच्छे से तुम राग करोगे बुरे से द्वेष करोगे तो 'राग-द्वेष' ये महान पाप हैं। लीलाक्षेत्र में कौन अच्छा कौन बुरा? कहो कंस अच्छा कि कृष्ण अच्छे लीला में? यदि कंस न होता तो कृष्ण की लीला ये कंस लीला कैसे होती, तो सज्जनों! लीलाक्षेत्र में जहॉ कृष्ण हैं वहॉ कंस की भी ज़रूरत है, सबकी ज़रूरत है और भगवान ही सब बने हुए हैं। अपने श्रीमुख से स्वयं भगवान कहते हैं कि ये मेरा सगुण-साकार रूप है तो किससे हम द्वेष करेंगे बताइये?

उमा जे राम चरण रत विगत काम मद क्रोध,
निज प्रभुमय देखहिं जगत का संग करहिं विरोध।।

जिन्होंने काम क्रोध का त्याग किया है वो अपने प्रभु राम का रूप, कृष्ण का रूप ही देखते हैं। भगवान कहते हैं अर्जुन! **'अहमेव वेदं सर्वं'** निश्चय ही ये सब मेरा ही रूप है इसलिये किसी से राग-द्वेष नहीं करो, मेरा ही दर्शन सब में करो। सब शरीरों के भीतर चेतन रूप, से ज्ञान रूप से मैं ही विराजमान हूॅ, द्रष्टा रूप से मैं ही विराजमान हूॅ इसीलिये सभी भाई-बहन यही कहते हैं **'अहं पश्यामि - मैं देखता हूॅ'** तो देखने वाले तो भगवान कृष्ण ही हैं और माया से जो दिखाई पड़ रहे हैं ये भी कृष्ण ही हैं, तो लीला देखने वाले भी आप ही हैं और लीला रूप भी आप ही हैं दूसरा तो कोई है ही नहीं। एक दिन की बात है गोपियॉ दूध दही बेचने के वास्ते मथुरा आईं और जमुना पार करके आईं गॉव उनका जमुना पार था तो जाते समय कुछ अॅधेरा हो गया देर हो गई। जमुना तट पर आईं तो मल्लाहों को देख रहीं थीं कोई मल्लाह दिखाई नहीं पड़ रहा है, टेर रहीं कि अरे भाई! कोई मल्लाह है क्या? कोई नहीं था तो भगवान श्रीकृष्ण छोटी सी नैया लेकर के छोटे बालक का, मल्लाह का रूप धारण करके आ गये, कहा—कहो गोपियों क्या बात है? गोपियों ने कहा ये नैया किसकी है? तो कृष्ण कहते हैं कि —

नैया हमार, नैया भी हम हैं और हम ही खेवन हार।।

ये नैया हमारी है, नैया भी मैं ही हूॅ और नैया को खेने वाला भी मैं ही हूॅ, मेरे से भिन्न कोई नहीं है मतलब ये संसार (शरीर) रूपी नैया भी मैं ही हूॅ क्योंकि ये जड़ नैया है इसको कुछ ज्ञान नहीं है। खेने वाला केवट तो ज्ञानवान चाहिये न! ये जितने शरीर हैं (ये संसार) सब नैया है पर इनको खेने वाला इसी के भीतर बैठा हुआ चेतन तत्त्व है। जीवरूप से वो ही बैठे हैं इन

शरीरों को खे रहे हैं नहीं तो ये शरीर चल नहीं सकते। तो भगवान कृष्ण कहते हैं कि ये संसार रूप नैया भी मैं ही हूँ और चेतनरूप से खेने वाला भी मैं ही हूँ — तो नैया हमारी है, नैया भी हम ही हैं और खेने वाले भी हम ही हैं।

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय,
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। BG - 07.07 **।।**

अर्जुन मुझसे भिन्न कुछ है नहीं अतः सगुण-साकार रूप भी मैं ही हूँ और निर्गुण-निराकार रूप भी मैं ही हूँ पर निर्गुण-निराकार रूप से मुक्त हूँ और सगुण-साकार रूप से जन्म-मरण कुछ नहीं, माया से लीला के लिये मैं ही नानारूप धारण कर लेता हूँ। इसलिये निर्गुण-निराकार परम सत्य है और सगुण-साकार तो लीला के लिये माया से धारण करता हूँ इसलिये अपना ये सगुण-साकार रूप सत्य नहीं जानना चाहिये। तो अपने आप को जो कोई स्त्री हो तो, पुरुष हो तो, ब्राहमण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हो तो ये सगुण-साकार रूप में जो पाठ मिला है उसको करना चाहिये और ये निश्चय रखना चाहिये कि मेरा सच्चा स्वरूप तो निर्गुण-निराकार सच्चिदानंद ब्रह्म है, कृष्ण है, ये ही भगवान का उपदेश है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 36 – May 35 . mp3

४३

शब्द ब्रह्म और परम ब्रह्म

अशरण शरण अकारण करुण करुणा वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान के ज्ञान से जीव सर्व दु:खों से और मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है अर्थात् सदा सर्वदा के लिये दु:ख और मुत्यु से छुटकारा पा जाता है, उसको कभी किसी प्रकार का कोई दु:ख नहीं होता और मृत्यु नहीं आती है इसलिये सज्जनों मृत्यु की निवृत्ति के लिये और दु:खों की निवृत्ति के लिये जीव को भगवान का ज्ञान परम आवश्यक है।
भगवान के ज्ञान का साधन क्या है?

द्वैविद्ये वेद तव्येतु शब्द ब्रह्म परंचयत्
शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परम ब्रह्मादि गच्छति।।

दो ब्रह्म हैं दोनों को जानना चाहिये — शब्दब्रह्म और परमब्रह्म, शब्दब्रह्म नाम वेद का है और जिससे वेद उत्पन्न हुआ है वो परमब्रह्म है, तो परब्रह्म से ही ये वेद उत्पन्न होता है। परा, पश्यन्ति, मध्यमा, बैखरी ये भगवान की वाणी के ही नाम हैं। ओंकार के रूप में, ओंकार का विस्तार वेदों के रूप में ये भगवान की वाणी ही प्रकट भयी है। तो भगवान ही भगवान को जानते हैं सज्जनों! जीव तो अल्पज्ञ होने से जानता नहीं है हॉ! ईश्वर के बताने से जीव भी जान सकता है पर ईश्वर के बताये बिना नहीं जान सकता है।

सो जानेहि जेहिं देव जनाई,
जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई।।

वो ही भगवान को जानता है भगवान जिसको जना दें और भगवान को जानते ही वो भगवत् रूप हो जाता है, ऐसा क्यों कि भगवान को जानने से भगवत् रूप हो जाता है? ऐसा इसलिये है क्योंकि ये जीवात्मा पहले से ही भगवत् रूप है ब्रह्म रूप है केवल भूल गया है तो भगवान याद दिला देते हैं। यदि भगवान जीव से भिन्न होते तो भगवान को जानने से भगवान नहीं हो सकता था। जैसे जीव स्त्री-पुरुष देखता है, गंगा-यमुना आदि नदियॉ देखता है, पर्वत देखता है, गाय भैंस बकरी देखता है माने उनको जानता है तो उनको जानने से वही तो नहीं हो जाता है क्योंकि वो उसका स्वरूप ही नहीं है और जीव तो केवल अपने स्वरूप को भूल गया है ये तो ब्रह्मरूप पहले ही से था इसलिये भगवान ने केवल याद ही दिलाया है। और भगवान के कृपा पात्र ये संत महात्मा साधु-ब्राह्मण भी जीवों को जीवों का स्वरूप याद ही दिलाते हैं, याद ही कराते हैं।

संत अवन विचरैं यहि हेता,
जड़ जीवन को करैं सचेता।।

संतों का इस पृथ्वी में भ्रमण किसलिये होता है कहा जो सोये हुए जीव हैं उनको जगाने के लिये। सब जीव सोये हुए हैं, जो अपने आप को नहीं जानता है, ब्रह्म को नहीं जानता है वो आत्मा की तरफ़ से, ब्रह्म की तरफ़ से सोया ही हुआ है, न जानना ही सोना है और जानना ही जागना है इसलिये **'मोह निशा सब सोवन हारा'** मोह निद्रा में सब सो रहे हैं। मोह क्या है? 'देह में अहंता और देह के सम्बन्धियों में ममता' इसको मोह कहते हैं। मोह अज्ञान है क्योंकि जीव का स्वरूप स्त्री-पुरुष शरीर तो है नहीं, स्त्री-पुरुष के शरीर में रहता है तो रहने मात्र से स्त्री-पुरुष शरीर तो नहीं हो जायेगा। कोई अपने घरों में रहता है तो घर में रहने से घर तो न बन जायेगा! घर से तो अलग ही रहेगा न! इसी प्रकार से स्थूल-सूक्ष्म-कारण ये तीनों जीव के रहने के भवन ही हैं घर ही हैं। तो स्थूलशरीर सूक्ष्मशरीर कारणशरीर इन घरों में रहता है जीव, इसका अर्थ ये तो नहीं होगा कि ये घर ही बन जाय शरीर ही बन जाय। तो जीव अपनी आत्मा को कि मैं इन शरीरों में रहने वाला हूँ इसको गया है भूल और शरीरों को ही अपना स्वरूप मान बैठा है। भगवान ये ही याद दिलाते हैं कि तू देह नहीं तू देही आत्मा है, तू देह में रहता है देह को देखने वाला है।

न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः।।

तू स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है, नपुंसक नहीं है, मनुष्य नहीं है ये तो शरीर हैं भवन हैं।

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः,
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत्।।

भगवान शंकर से स्कन्द ने पूछा, स्कन्द नाम स्वामी कार्तिकेय का था उसी को षड्मुख कहते हैं उसी को कार्तिकेय कहते हैं उसी को स्कन्द कहते हैं — ये देवताओं का सेनानी था 'सेनापति', **'सेनानीनामहं स्कन्दः'** गीता में भगवान ने कहा कि सेनानियों में मैं देवताओं का सेनापति स्कन्द हूँ। तो अपने पिता शंकर से पूछा — हे पिता! मुझे उस तत्त्व का उपदेश करो जिससे मैं सर्व दुःखों से और मृत्यु से छूट जाऊँ। तो शंकरजी पुत्र की वाणी सुन कर बहुत प्रसन्न भये क्योंकि तुम्हारे मन में उस तत्त्व को जानने की जिज्ञासा हुई है, ये जिज्ञासा भी सज्जनों बड़ी दुर्लभ है कि ये आत्म तत्त्व को जानने की इच्छा होवे।

दुर्लभं त्रयमेवैः तत्देवानुग्रह हेतुकं,
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष संश्रयः।।

ये तीन चीज़ें दुर्लभ हैं—मनुष्य शरीर पाना, मोक्ष की इच्छा होना और उस ब्रह्म तत्त्व को बताने वाला महापुरुष का दर्शन होना ये तीनों चीज़ें दुर्लभ हैं। हे स्कन्द! हमें बहुत प्रसन्नता है जो तुमने वह तत्त्व पूछा है, सुनो—

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः,
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत्।।

देहो देवालयः प्रोक्तः — ये जितने देह हैं मेरा देह, तेरा देह, तेरी माता का देह और संसार में सब देह ही तो दिखाई पड़ रहे हैं देह के सिवा संसार में है ही क्या? देह का नाम है और देह के रूप हैं, स्त्री-पुरुष के आकार हैं और इनके नाम भी हैं, गाय भैंस बकरी के आकार हैं और उनके नाम हैं रूपों का ज्ञान कराने के लिये, तो सारा संसार देह से ही भरा है तीसरी चीज़ तो संसार में है ही नहीं। ये क्या हैं? ये देवालय हैं माने मन्दिर हैं, तेरी माता पार्वती ने ये सब देह बना दिये हैं, वो शक्ति है, जगत का उत्पत्ति-पालन-संहार का काम वो ही करती है। जगत माने शरीर, देह, देहों को पैदा करती है, इनका पालन करती है और फिर संहार भी कर देती है, ये खेल तेरी माता का है। ये मन्दिर तो उसने बना दिया है और मैं साक्षात् सच्चिदानंद ब्रह्म, मेरा ही नाम शिव है, तेरी माता के बनाये हुए सब देहों में में स्वयं ही विराजमान हूँ जीवात्मा

के रूप में। **स जीवः केवलः शिवः** — जो जीव है वो शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म शिव ही है। **त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं** — 'मैं देह हूँ' इस अज्ञानरूपी निर्माल्य का तू त्याग करदे, **सोऽहं भावेन पूजयेत्** — जो देह को देखने वाला शिव तत्त्व है, '**सोऽहं**' — वह मैं हूँ। स्कन्द तू देखता है न देह को! देह तो मन्दिर है, देह को तो ज्ञान नहीं होता है देव को ही ज्ञान होता है। **'देवत्नाथ देवः'** जो देखने वाला है, वो ही देव है, तो सब देहों में जो देव है वो एक ही है दो देव नहीं हैं।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा,
कर्माध्यक्षा सर्वभूतादिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुश्च।।

स्कन्द! सभी देहों में एक ही देव है उसी को शिव कहते हैं, उसी को राम कृष्ण विष्णु कहते हैं, उसी को देव कहते हैं, वो ही देखने वाला है क्योंकि चेतन है न! चेतन में ही देखना बनता है चेतन को ज्ञान कहते हैं, एक ब्रह्म ही सत्-चित्-आनंद स्वरूप है। तो हे स्कन्द! तू अपने आप को देव जान, ये शरीर रूपी मन्दिर का त्याग कर और वो देव तो साक्षात् मैं ही हूँ तो मैं ही सब में बैठकर के देख रहा हूँ। तो स्कन्द के माध्यम से सभी जीव मात्र को भगवान शंकर ने अपने आत्मतत्त्व का उपदेश दिया है ज्ञान कराया है, अपने आपको पहचानो तुम भूले हुए हो। तो भगवान शंकर याद दिलाते है केवल तुम्हारे स्वरूप को, शिव या ब्रह्म बनाते नहीं हैं, जैसे देह शिव नहीं है तो ये शिव नहीं बन सकता ये मन्दिर तो जड़ ही रहेगा और देव चेतन ही रहेगा, चेतन देव जड़ मन्दिर नहीं हो सकता और जड़ मन्दिर चेतन देव नहीं हो सकता तो शरीर जड़ है ये जड़ ही रहेगा और देव देखता है सो देखने वाला ही रहेगा, दोनों मिलते ही नहीं हैं जड़ चेतन। लोग कहते हैं —

जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई,
जदपि मृषा छूटत कठिनई।।

जड़ और चेतन में गॉठ पड़ गयी है मानो दोनों मिल गये हैं, तुलसीदासजी कहते हैं '**जदपि मृषा छूटत कठिनई**' ये झूठी है माने गॉठ पड़ी ही नहीं है ये भ्रम है लोगों को। तो जब पड़ी ही नहीं तो जब छोड़ना चाहे तो क्या छूटे? गॉठ होती तो छूट जाती, जड़ चेतन मिलते ही नहीं हैं गॉठ पड़ ही नहीं सकती, क्या है ये? कहा ये सब भ्रम है, अज्ञानता से ये भ्रम हुआ है —

जासु कृपा अस भ्रम मिट जाई,
गिरिजा सोई कृपालु रघुराई।।

जिसकी कृपा से ये भ्रम मिट जाय वो ही कृपालु भगवान राम का स्वरूप है। तो सज्जनों! शंकर भगवान ने बताया कि ये हमारा तुम्हारा स्वरूप शिव ही है, द्रष्टा साक्षी ही है और वो एक है सब में, सबमें व्यापक है, सबकी अपनी आत्मा है और कर्मों का आधार-अधिष्ठान है। देह इन्द्रिय मन बुद्धि में कर्म होते हैं इसका आधार-अधिष्ठान ब्रह्म ही है, साक्षी चेतन है केवल और निर्गुण है, केवल माने अकेला है। तो सज्जनों! ये अनेक शरीर ही हैं, शरीररूपी मन्दिरों के अन्दर हृदयरूपी सिंहासन पर विराजमान देव एक ही है इसलिये अपने को देव जानो और इन शरीरों को मन्दिर जानो —

नाहं मनुष्यो न च देव यक्षो, न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रः।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो, भिक्षुर्न चाहं निज बोध रूपः।।

ये मन्दिरों के नाम हैं और रूप हैं सज्जनों! हमारा तुम्हारा स्वरूप देव दानव मानव मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र ये सब देह हैं ये मैं नहीं हूँ, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र मैं नहीं, ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी मैं नहीं, तो? मैं तो बोधरूप ज्ञानरूप द्रष्टा-साक्षी मात्र ही हूँ।

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसौंदर्यजातयः,
स्थूलदेहगता एते स्थूलाद्भिन्नस्य मे नहि।।

ब्राह्मणपना कुल गोत्र जाति नाम रूप ये स्थूल शरीर में हैं और ये स्थूल शरीर के भीतर रहने वाला मैं चेतन आत्मा ये मैं इनसे भिन्न हूँ इसलिये ये मेरे धर्म नहीं हैं। उत्पन्न होना, दिखाई पड़ना, बढ़ना, घटना, क्षीण होना, विनाश होना ये भी स्थूल शरीर के ही धर्म हैं, ये षड्भाव विकार स्थूल शरीर में हैं — **'जायते अस्ति वर्धते विपरणमते अपक्षीयते विनश्यति इति षड्भाव विकाराः'**। मन्दिर ही बनते बिगड़ते हैं देव नहीं, देव तो ज्यों का त्यों प्रकाशक ही रहता है। तो सज्जनों आप लोग भी ये अनुभव करके देखो—सब लोग अपने अपने देह को देखते हो तो देह दृश्य है और हम तुम द्रष्टा हैं।

दृग्दृश्ये द्वौरूपे स्तः परस्पर विलक्षणौ,
दृग्ब्रह्म दृश्य मायेति सर्व वेदान्त निर्णयः।।

द्रष्टा ब्रह्म है और दृश्य माया है, पार्वती महामाया शक्ति है उसने देह बनाये हैं इसलिये सज्जनों! सबको अनुभव है कि मैं द्रष्टा हूँ 'अहं पश्यामि', सब एक स्वर से कहते हैं कि मैं देखता हूँ तो हमारा तुम्हारा स्वरूप द्रष्टा ही हुआ शरीर नहीं हुआ, शरीर मन्दिर हैं हम मन्दिर नहीं हो सकते। घर में रहने से हम घर नहीं हो सकते, घर से अलग ही रहते हैं। जन्म मरण कभी आत्मा का होता ही नहीं है देह के ही होते हैं इसलिये स्वभाव से ही भगवान शंकर ने हमारे स्वरूप आत्मा
का याद दिला दिया, स्मरण ही कराते हैं हम भूले हुए थे। संत महात्मा लोग भी याद ही दिलाते हैं जीव को ब्रह्म बनाते नहीं हैं और वो बन भी नहीं सकता। यदि जीव ब्रह्म न हो तो कोटि यत्न करने से भी ये बन नहीं सकता जैसे ये शरीर ब्रह्म नहीं है जड़ है, असत्-जड़-दुःख रूप है, सत्-चित्-आनंद ब्रह्म ये नहीं बन सकता कोटि यत्न करो चाहे। जड़ जड़ ही रहेगा चेतन चेतन ही रहेगा, 'सत्' सत् ही रहेगा और 'असत्' असत् ही रहेगा —

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः,
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। BG - 02.16 **।।**

'सत्' सत् ही रहता है और 'असत्' असत् ही रहता है। जो सदा रहता है वो सत् है और जो कभी नहीं रहता है खाली दिखाई पड़ता है वो असत् है जैसे स्वप्ना, दिखाई तो पड़ता है पर कभी है ही नहीं, जाग्रत में तो है ही नहीं स्वप्ना और स्वप्ने में भी नहीं है स्वप्ना, स्वप्ने में भी स्वप्न की कल्पना ही है, सत्य होता तो जाग्रत में भी रहता वो! नहीं है स्वप्ने में भी झूठा ही दिखाई पड़ रहा है, वो माया है भ्रम है ऐसे ही चराचर जगत स्वप्ना ही है —

कहउँ उमा मैं अनुभव अपना,
सत् हरि भजन जगत सब सपना।।

तो हम तो सपना के द्रष्टा हैं न भाई! स्वप्ना दृश्य है इसलिये हम दृश्य कभी नहीं हो सकते, अपने स्वभाव का कोई परित्याग नहीं कर सकता।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 28 - 31.mp3

४४

आत्मा सत्य व अप्रमेय है एवं ६ प्रमाण

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंद सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा हे भगवन्! मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण हैं तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।। BG - 02.18 **।।**

हे भारत! भरत वंश में जन्म लेने वाले अर्जुन! ज्ञान में प्रीति करने वाले अर्जुन! और निर्मल हृदय वाले अर्जुन! देही के ये देह आदि अन्त वाले हैं और देही नित्य सत्य है, अविनाशी है और अप्रमेय है। तो देही तो सब देहों में मैं स्वयं ही व्यापक हो करके सबकी ऑखों से मैं ही देख रहा हूँ, देही तो मै ही हूँ और जितने देह हैं वो मेरी माया से बनते हैं। मुझ ईश्वर के देह — राम कृष्ण शिव-शक्ति सूर्य गणेश कच्छ मच्छ वामन वाराह नृसिंह आदि जितने अवतार होते हैं वो सब मेरी इच्छा शक्ति से ही बनते हैं। मेरी इच्छा शक्ति मेरी माया है और जीवों के सब शरीर स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र ये भी मेरी माया से ही बनते हैं, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड मेरी माया से ही बनते हैं पुनः नष्ट हो जाते हैं। **'ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै'** इसलिये मैं तो अविनाशी हूँ, नित्य सत्य हूँ, आनंद स्वरूप हूँ पर मेरी माया से बने हुए मुझ ईश्वर के और जीव के शरीर सत्य नहीं हैं। जो वस्तु माया से बनती है वो सत्य नहीं हुआ करती—इन्द्रजालवत्। जैसे इन्द्रजाली पुरुष अपनी माया से आकाश में बाग़ बग़ीचे बना देता है क्षणमात्र में, आम अमरूद अनार अंगूर क्षणमात्र में फलने-फूलने लगते हैं। सो आकाश में बग़ीचा असम्भव है और फिर तुरन्त! तुरन्त बग़ीचा लगावे तुरन्त फल-फूल आ जाये ये सब असम्भव है पर माया से वो दिखा देता है। वो बाग़-बग़ीचे और उसके फल खाने-पीने के काम में नहीं आते जैसे सपने के बाग़-बग़ीचे, वो भी माया से बने हैं निद्रा रूपी माया है, निद्रा से सपना बन जाता है और निद्रा टूटी तो सपना ख़त्म हो जाता है इसलिये वो निद्रारूपी माया से सपने का संसार और बाग़-बग़ीचे बने हैं वो झूठे हैं सत्य नहीं हैं। सपने के बाग़-बग़ीचे उनके फल-फूल कोई खाने पीने के काम में नहीं आते।

सपने में एक बाग़ लगाया,
फूल फलों से खूब सजाया।
जब लेने को हाथ बढ़ाया,
तो जाग पड़ा कुछ भी नहिं पाया।।

आॅख खुल गई निद्रा टूट गई, न सपने का कोई बाग़-बग़ीचा है, न कोई फूल-फल है, न कोई लगाने वाला है बाग़-बग़ीचा बिल्कुल झूठा, ऐसे ही ये जाग्रत का जगत भी माया निर्मित है ये सत्य नहीं है। स्वप्न की सृष्टि जीव कर देता है अपनी निद्रा से तो सम्पूर्ण समष्टि जो निद्रा है भगवान कहते हैं वो मुझ ईश्वर की माया है, ईश्वर की निद्रा समष्टि निद्रा है।

निद्रा शक्तिः यथा जीवे अद्भुत् स्वप्न कारिणी,
माया शक्तिः तथा ब्रह्मन सर्गस्थित्यंतकारिणी।।

जब जीव की निद्रा शक्ति अद्भुत् स्वप्न रच देती है क्षणमात्र में तो ईश्वर की माया शक्ति सम्पूर्ण चराचर जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार कर देती है तो इसमें क्या आश्चर्य है? अर्जुन! तुम अपनी ही निद्रा शक्ति को देख लो अद्भुत् स्वप्न की रचना कर देती है जो असम्भव है। **'अघटन घटना पटीयसी माया'** असम्भव को सम्भव कर दिखावे उसका नाम माया है। कैसा अद्भुत् स्वप्ना है —

स्वप्ने वियत्गतिं पश्येत् स्वमूर्धा छेदनं तथा,
मुहूर्ते वत्सरौभं च मृत पुत्रादिकं तथा।।

स्वप्न में मनुष्य अपने को आकाश में उड़ता हुआ देखता है ये सब अद्भुत् काम है क्योंकि मनुष्य आकाश में उड़े तो आश्चर्य का काम है और पक्षी उड़े तो कोई आश्चर्य नहीं, क्यों? पक्षियों के तो पंख हैं उनका तो स्वाभाविक आकाश में उड़ना है कोई बनावटी नहीं पर मनुष्य आकाश में उड़े बिना पंख का तो निश्चय आश्चर्य का काम है। तो कभी कभी मनुष्य अपने को आकाश में उड़ता हुआ देखता है बड़ा खुश होता है कि देखो मैं आकाश में उड़ता हुआ जा रहा हूॅ, ये अद्भुत् और दूसरा **स्वमूर्धा छेदनं तथा** —

जिन स्वपने सिर काटे कोई,
बिन जागे दुःख दूर न होई।।

सपने में कोई अपना सिर काट रहा है और बड़ा दुःख हो रहा है, तड़फड़ा रहा है और अपने कटे हुए सिर को अपनी आॅखों से देख रहा है, ये भी सब अद्भुत् काम है क्योंकि जब सिर कट जायेगा तो अमंगल होकर शरीर गिर जायेगा फिर देखेगा कैसे? शरीर मुर्दा हो जायेगा पर अपना सिर कटा हुआ देखता है और बहुत व्याकुल होता है, अद्भुत् काम है और दुःख भी बहुत होता है, ये दूसरे आश्चर्य की बात है। तीसरा आश्चर्य क्या है? **मुहूर्ते वत्सरौभं च** — एक मुहूर्त में, क्षणमात्र में वर्षों का समूह देख लेता है, कोई हज़ार वर्ष की उम्र वाले दिखाई पड़ते हैं—पृथ्वी जल तेज वायु आकाश वन पर्वत नदी नाले नदियॉ, हज़ारों वर्ष की उम्र वाले और कोई कम उम्र वाले भी देखता है। मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष कुछ कम उम्र वाले और मक्खी मच्छर और भी कम उम्र वाले, कोई बालक है अभी का जन्मा है बिल्कुल कम उम्र, कोई २५ वर्ष का कोई ५० वर्ष का कोई १०० वर्ष की उम्र वाला भी दीखता है, ये सब अद्भुत् काम हैं। क्यों? स्वप्न का संसार तो निद्रा आते ही एक क्षण में बन जाता है उसमें पहले कौन हुआ? पीछे कौन हुआ? ज़्यादा उम्र कहॉ से आई? कम उम्र कहॉ से भई? ये एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, गऊ और बछड़ा एक साथ ही, पिता पुत्र एक साथ ही और जागो तो एक साथ ही नष्ट भी हो जाते हैं चाहे ज़्यादा उम्र वाला हो चाहे कम उम्र वाला हो निद्रा टूटते ही सब ख़त्म, बताइये किसकी ज़्यादा उम्र है किसकी कमती उम्र है? न किसी की ज़्यादा उम्र है न किसी की कमती उम्र है ये स्वप्न की, निद्रा की महिमा है वो किसी की ज़्यादा किसी की कम उम्र खाली दिखा देती है पर वो सब एक साथ ही होते हैं और निद्रा टूटते ही एक साथ ही नष्ट हो जाते हैं, ये तीसरा आश्चर्य है वर्षों का समूह का समूह देख लेता है और **मृत पुत्रादिकं तथा** — मरे हुए माता पिता पत्नी पुत्रों को देखता है और उनसे मिलता-जुलता है, हॅसता-खेलता है, उनके साथ खाता-पीता है, सब व्यवहार करता है भला मरे हुए कहॉ से आ जायेंगे? पर स्वप्न में सब

जने दिखाई पड़ते हैं, ये सब अद्भुत् काम हैं और ये जीव की निद्रा से हुआ है। तो भगवान कहते हैं अर्जुन! **'ईविशी महिमा दृष्टो'** इस प्रकार की महिमा **'निद्रा शक्तिर्यथा तथा'** जीव की निद्रा शक्ति की जब देखी गई है तो ईश्वर की माया, उसकी महिमा अद्भुत् हो तो इसमें क्या आश्चर्य है? सारा संसार ईश्वर अपनी समष्टि निद्रा से बना देता है, है नहीं और दिखा देता है। इन्द्रजालवत् — बग़ीचा है नहीं आकाश में पर इन्द्रजाली पुरुष ज़रा देर में सब बना देता है। कोई ऐसे योगियों की भी कथाएं आती हैं कि आकाश में बाग़-बग़ीचे लगा लेते हैं, नगरी बसा देते हैं। 'योगवाशिष्ट' महारामायण है उसमें ऐसे योगियों की बड़ी अद्भुत् कथाएं लिखी हैं पर योगमाया से बनाते हैं तो सत्य नहीं होतीं झूठी होती हैं। देवादिवत् — ऐसे ही देवताओं और दैत्यों की भी कथाएं आती हैं जो माया से बहुत रूप धर लेते हैं, एक दैत्य हज़ारों दैत्य पैदा कर देता है माया से हज़ारों की सेना तैयार, सब आश्चर्य का काम है। आप लोग कभी कभी शिवपुराण विष्णुपुराण महाभारत रामायण देखते होगे उसमें दिखाया जाता है एक ही राक्षस युद्ध के समय हज़ारों सेना तैयार कर देता है, प्रकट हो जाती है, समुद्र से निकल आती है और रावण आदि रामायण में देखा होगा युद्ध करते समय जब माया से युद्ध करता है तो हज़ारों रावण हज़ारों अंगद हनुमान सुग्रीव विभीषण बना देता है। तो रामादल वालों को भ्रम हो जाता है कौन असली हनुमान है कौन नकली? कौन असली रावण है कौन नकली रावण है? तो भ्रम हो जाता है। ये सब मायावी सेना रामादल पर अस्त्रों-शस्त्रों का प्रहार करने लगती है, भगवान देखते हैं कि हमारी सेना तो भागने लगी ये रावण की माया पहचानने नहीं देती अपना पराया? तब भगवान एक बाण मारते हैं और रावण की सारी माया कट गई क्योंकि ये रावण आदि की तो भगवान की यत्किंचित थोड़ी सी माया है पर भगवान तो सम्पूर्ण माया के पति हैं, 'मायापति' भगवान हैं —

श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी,
जो सृजति पालति संहरति रुख पाय कृपानिधान की।।

ये जानकीजी माया हैं, जिनको रावण चुरा करके ले गया अरे! वो तो छाया थीं, जितने भी रावण आदि दैत्य मनुष्य पशु-पक्षी हैं सीताजी क्षण में उत्पन्न करती हैं और पालन और संहार भी कर देती हैं भला उनको रावणादि हरण कर ले जायेंगे कभी? क्या शक्ति सामर्थ्य है? तो सम्पूर्ण माया के अधिपति तो सीतापति राम हैं वो क्षण मात्र में चराचर जगत की रचना कर दें तो कौन सा आश्चर्य है? इस प्रकार से भगवान की माया से ये सारा संसार बनता है इसलिये **'अन्तवन्त इमे देहा'** ये आदि अन्त वाले सबके देह हैं और आत्मा नित्य है, अविनाशी है और अप्रमेय है,

अप्रमेय माने प्रमाण का विषय नहीं है। नेत्र श्रोत्र आदि जो हमारी इन्द्रियॉ हैं (प्रमाण कहते हैं ज्ञान के साधन को, करण को, करण माने साधन) 'श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा घ्राण' ये पॉच ज्ञानेन्द्रियों से 'शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध' ये पंच विषयों का ज्ञान होता है इसलिये ये पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ शब्दादि विषयों के जानने में प्रमाण हैं इन इन्द्रियों के बिना शब्दादि विषय नहीं जाने जा सकते। तो ये इन्द्रिय के प्रमाण से माने इन्द्रिय के द्वारा, मन बुद्धि के द्वारा ये आत्मतत्त्व नहीं जाना जा सकता, ये शब्दादि विषय ही जाने जा सकते हैं—इसको **प्रत्यक्ष प्रमाण** कहते हैं। दूसरा **अनुमान प्रमाण** है, अनुमान प्रमाण उसको कहते हैं जैसे पर्वत में धूम देख करके वह्नि/अग्नि का अनुमान होता है, **'पर्वतो बह्निमान्'** ये पर्वत बह्नि वाला है माने इस पर्वत में आग लगी है, आग नहीं दिखाई पड़ रही है परन्तु धूमरूप लिंग को देखकर के, चिन्ह को देखकर के अग्नि का अनुमान प्रमाण हो जाता है क्योंकि **'यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र बह्निः'** जहॉ जहॉ धूम होता है वहॉ वहॉ बह्नि/अग्नि देखने में आती है इसलिये अग्नि का धूम चिन्ह है। अग्नि जब जलेगी तो धुऑ ज़रूर निकलेगा, अग्नि से ही धूम की उत्पत्ति होती है, अग्नि नहीं प्रकट होगी तो धुऑ नहीं प्रकट होगा। तो ये पक्का ज्ञान हो जाता है अग्नि को न देखने पर भी उसके कार्य उसके लिंग धूम को देखकर के अग्नि का अनुमान ज्ञान होता है, ये अनुमान प्रमाण

भी हो गया। अग्नि को प्रत्यक्ष न देखे पर धूम को देखा तो अग्नि अवश्य जल रही है इस पर्वत पर अनुमान से ये ज्ञान हो गया। *कार्य को देखकर कारण का प्रमाण ज्ञान होता है* जैसे गंगाजी में बाढ़ यहॉ पर आ जाय और वर्षा यहॉ पर न होवे तो ये बाढ़रूपी जल की वृद्धिरूपी लिंग से ये अनुमान ज्ञान होता है कि यहॉ पर तो वर्षा नहीं हमने देखी परन्तु पर्वत में वर्षा अवश्य हुई होगी, क्यों? यदि वर्षा न होती तो जल की वृद्धि नहीं होती यहॉ पर गंगाजी में, जल नहीं बढ़ता पर जल बढ़ रहा है और मटमैला आ रहा है, पर्वत में पानी बरसता है माटी कूड़ा सब बहकर गंगाजी में आ रहा है—ये भी अनुमान ज्ञान है, तो अनुमान से भी ज्ञान होता है झूठा नहीं है वो भी सत्य है। संसार के व्यवहार में ये प्रमाण काम देते हैं पर परमात्मा के सम्बन्ध में नहीं, परमात्मा का अनुमान ज्ञान नहीं हो सकता। **उपमान प्रमाण — गोसद् विषयो गवयः** एक गवय जंगली जानवर होता है जिसको नीलगाय भी कहते हैं वो गवय गउू जैसा होता है। तो किसी ने गवय न देखा होवे, नीलगाय न देखा होवे, किसी वनवासी पुरुष से सुना हो कि जो गॉव में गउू होती है उससे कुछ मिलती जुलती ये जंगली गउएं हुआ करती हैं जिनको नीलगाय कहते हैं, नीले रंग की होती हैं। तो उस गवय को देख करके उपमान प्रमाण से ये ज्ञान होता है (गउू की उपमा है न!) कि गउू जैसी होती है माने गउू तो नहीं है, गउू से एकदम तो नहीं मिलती पर कुछ मिलती जुलती है तो गवय का ज्ञान हो जाता है कि ये अवश्य गवय है—इसको उपमान प्रमाण कहते हैं तो ये भी संसार के ज्ञानों में प्रमाण माना जाता है। **अर्थापत्ति प्रमाण**—कोई कहता है मैं भोजन नहीं करता पर मोटा-ताज़ा है तो उसके शरीर को मोटा-ताज़ा देखकर के माने अर्थ को देखकर के ये आपत्ति होती है, ये ज्ञान होता है कि ये दिन में नहीं खाता है तो रात्रि में अवश्य भोजन करता होगा, क्यों? शरीर रूपी अर्थ को देखकर पता लगता है जो नहीं खायेगा तो शरीर सूख जायेगा, मोटा-ताज़ा नहीं रहेगा क्योंकि अन्न के बिना शरीर नहीं जी सकता और ये कहता है मैं खाता नहीं हूॅ तो जो नहीं खाता तो मोटा-ताज़ा भी नहीं हो सकता सूख जाना चाहिये—इसको अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं। तो दिन में न खाने वाला ये रात्रि भोजी है माने ये रात्रि में भोजन अवश्य करता है ऐसा ज्ञान होता है ये अर्थापत्ति प्रमाण है। **अनुपलब्धि प्रमाण**—घर में घट नहीं है अनुपलब्ध है, कोई व्यक्ति घर में नहीं है कहीं बाहर गया हुआ है देखने को न मिला—इसको अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं। घर में घट नहीं है ये अभाव का ज्ञान है, भाव माने 'है' अभाव माने 'नहीं है'। संसार के ज्ञानों में कोई चीज़ 'है' ये *भाव* का ज्ञान और 'नहीं है' ये *अभाव* का ज्ञान है तो अनुपलब्धि प्रमाण भी संसार के ज्ञानों में काम में आता है, और **शब्द प्रमाण**—जैसे हमने जर्मन जापान रूस कभी नहीं देखें हैं क्योंकि हम गये नहीं कभी तो जो लोग गये हैं विदेश में घूमें फिरे हैं उनके वचन प्रमाण मान लिये जाते हैं न देखने पर भी—इसको शब्द प्रमाण कहते हैं क्योंकि वो घूम के आये हैं देख के आये हैं विदेशों में। तो हमने भले ही नहीं देखा पर देखने वालों के वचन तो प्रमाणरूप हैं न भाई! अब ये ही है कि उनके वचन में विश्वास करना चाहिये वो घूम के आये हैं देख के आये हैं। इसी प्रकार से सज्जनों! शब्द प्रमाण से भी न देखी हुई वस्तु का भी ज्ञान होता है, इतने छः प्रमाण हैं ये। कहते हैं जो भगवान है उसको किसी ने देखा नहीं है और प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषय हो सकता नहीं है, तो देखी तो वो चीज़ जाती है जो नेत्रादि इन्द्रियों से देखी जायेगी पर नेत्रादि इन्द्रियों की तो पहुॅच नहीं है वहॉ।

मन समेत जेहिं जान न वानी
राम अतर्क बुद्धि मन वानी
मत हमार सुनो भवानी

इसलिये ये कोई भी प्रमाण ब्रह्मज्ञान में प्रमाण रूप ज्ञान के साधन नहीं बनते हैं। संसार के सम्बन्ध में तो ये सब प्रमाण ठीक हैं परन्तु जिससे संसार उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है, जिसमें लय होता है उसके जानने में क्योंकि संसार के अन्तर्गत् ही देह इन्द्रियॉ मन बुद्धि प्राण हैं और देह इन्द्रियॉ मन बुद्धि प्राण के बिना कोई भी प्रमाण ज्ञान कैसे होगा? क्योंकि इसी शरीर

में तो इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण हैं और वो इनसे सबसे परे हैं परमात्मा इसलिये आत्मा या परमात्मा को अप्रमेय कहा और उसका न आदि है, न अंत है, ऐसा सच्चिदानंद स्वरूप हमारा तुम्हारा आत्मा है अर्जुन! जो आत्मा है सो परमात्मा है, मैं ही सबकी आत्मा हूँ इसलिये मैं अप्रमेय हूँ। मैं सबको जानता हूँ, सारे प्रमाणों को मैं जानता हूँ और प्रमाणों के द्वारा उन वस्तुओं को भी मैं ही जानता हूँ। अरे! नेत्रादि इन्द्रियों को भी मैं जानता हूँ, मन बुद्धि को जानता हूँ और इन प्रमाणों के द्वारा जो वस्तु जानी जाती है उसका ज्ञाता भी मैं ही हूँ, जब इन प्रमाणों को भी मैं ही जानता हूँ तो मुझे कौन जाने? ये कोई भी प्रमाण मुझे जानने में समर्थ नहीं हैं इसलिये सज्जनों! आत्मा अप्रमेय है। मैं सबको जानता हूँ, हम आप देखो सबको जानते हैं इन्द्रियों को, मन बुद्धि को, प्राणों को और इनके द्वारा जो शब्दादि विषयों का ज्ञान होता है उन सबको हम जानते हैं पर ये हमको कोई नहीं जानते, ऐसा हमारा तुम्हारा आत्मतत्त्व नित्य सत्य है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 09 - Voice 71

४५

राम नाम की महिमा

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंद भगवान के ज्ञान से जीव सर्व दु:खों से सदा के लिये छूटकर नित्य सुख शान्ति को प्राप्त कर लेता है इसलिये अपने कल्याण के लिये जीव को भगवान का ज्ञान परम आवश्यक है। भगवान के अनेक नाम हैं — राम कृष्ण विष्णु शिव शक्ति सूर्य गणेश ये सब भगवान के नाम हैं। विष्णुसहस्त्रनाम में विष्णु भगवान के सहस्त्र माने हज़ार नाम बताये गये हैं, विष्णु तो एक है नाम हज़ार हैं तो सभी नामों से भगवान का ही ज्ञान होता है। सब नाम भगवान को ही बताने वाले हैं पर ये राम नाम अधिक श्रेष्ठ बताया गया है।

राम सकल नामम ते अधिका,
होई नाथ अघ खग गण बधिका।।

हे नाथ! हे राम! ये जो आपका राम नाम है ये सभी नामों से अधिक हो और अघ रूपी पक्षियों का नाश करने वाला बधिक बने, पाप रूपी पक्षियों का नाश करे इसलिये राम का नाम लेने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं, ये परम मंगलमय है। तुलसीदासजी ने लिखा है —

एकु छत्रु एकु मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन विराजत दोउ।।

'र' और **'म'** सब वर्णों के ऊपर विराजते हैं, एक छत्र (◌ं) का काम करता है और एक मुकुटमणि (◌ँ) का काम करता है। तो जो **रकार** है वो व्यंजनों के ऊपर उड़ जाता है तो छत्र का काम करता है और वो जो **मकार** है वो चन्द्र बिंदु बन करके मुकुटमणि का काम करता है जैसे मुकुट में मणि जड़ी हो। तो ये मकार सभी वर्णों के ऊपर विराजते हैं इसलिये सभी वर्णों में श्रेष्ठ हैं रकार और मकार। और पुराणों में लिखा है —

रकारोनल बीजम् स्यात् ये सर्वे वाडवादया:,
कृत्वा मनोमलं सर्वम् भस्म कर्म शुभाशुभम्।।

राम में जो रकार है ये अग्नि का बीज है जैसे अग्नि सभी काष्ठों को भस्म कर देता है इसी प्रकार से ये जो रकार है ये सम्पूर्ण पापों को भस्म कर देता है क्योंकि अग्नि का ये बीज है। जितने भी पाप हैं उनको सबको नाश करके मनुष्य को निर्मल बना देता है—**कृत्वा मनोमलं सर्वम् भस्म कर्म शुभाशुभम्**, और रकार में जो अकार है 'आ' की मात्रा लगी हुई है उसका अर्थ करते हैं—**'अकारो भानु बीजं स्यात्'** अकार भानु का बीज है सूर्य का बीज है, जैसे सूर्य के उदय होते ही रात्रि का अंधकार दूर हो जाता है, प्रकाश होते ही अंधकार का नाश होता है,

संसार की सब वस्तुओं का ज्ञान होने लगता है ऐसे ही —

अकारो भानु बीजं स्यात् सर्व वेद प्रकाशकः,
नाशयत्तेव सादीप्त्या या अविद्या हृदये तमः।।

हृदय में जो अज्ञान रूपी अंधकार है उस अज्ञान को नाश करने के लिये ये अकार सूर्य का काम करता है और जो मकार है, मकार का अर्थ करते हैं—**'मकारस्चन्द्र बीजं स्यात्'** मकार जो है वो चन्द्रमा का बीज है।

मकारस्चन्द्र बीजं स्यात् यत्पापं परिपूर्णम,
त्रैतापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति चेत्।।

मकार चन्द्रमा का बीज है जैसे चन्द्रमा दिन भर की गर्मी को (सूर्य के ताप से जो पृथ्वी तपायमान होती है गर्मी बढ़ जाती है) हरण करता है इसी प्रकार से जो मकार है वो हृदय का जो ताप है (देहिक दैविक भौतिक ताप) **त्रैतापं हरते नित्यं**—तीनों तापों को नित्यहरण करता है, **शीतलत्वं करोति चेत्**—तो मन शान्त शीतल हो जाता है क्योंकि 'देहिक दैविक भौतिक' इन तीनों तापों से मन तपायमान होता है। स्थूल देह में रोग बीमारी से जो ताप होता है माने दुःख होता है और काम क्रोध लोभ आदि से जो मानसिक ताप होता है माने मानसिक दुःख होता है ये दोनों शरीरों के जो दुःख हैं ये **दैहिक** ताप कहलाते हैं देह सम्बन्धी ताप कहलाते हैं और देवताओं के द्वारा, ग्रह-नक्षत्रों के द्वारा, अतिवृष्टि-अनावृष्टि के द्वारा, भूकम्प के द्वारा, विद्युतपात् के द्वारा जो यहाँ जीवों को दुःख मिलते हैं ताप आते हैं उनको **दैविक** ताप कहते हैं और सिंह व्याघ्र साँप बिच्छु से चोर बदमाश डाकुओं से जो दुःख आते हैं उनको **भौतिक** ताप कहते हैं जो दुःख भूत प्राणियों से आवें। कहते हैं ये जो मकार है ये तीनों तापों को हरण करता है—इस प्रकार से **'र', 'अ'** और **'म'** इन तीन वर्णों का अर्थ पुराणों में किया गया है। उपनिषदों में राम नाम की बहुत महिमा लिखी है, उपनिषदों में ऐसा लिखा है कि जितने भी भगवान के नाम हैं उनमें कोई **अवान्तर वाक्य** हैं और कोई **महा वाक्य** हैं। अवान्तर वाक्य तो भगवान के स्वरूप को बताते हैं और महा वाक्य जीवात्मा और परमात्मा का एकत्व बताते हैं। अवान्तर वाक्य भगवान का स्वरूप इस प्रकार से बताते हैं — **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म',** ब्रह्म का स्वरूप कैसा है? कहा अनंत सत्य है, अनंत ज्ञान है, अनंत आनंद है। जिसका न आदि हो न अंत हो उसको अनंत कहते हैं तो भगवान का जो सत् स्वरूप है वो आदि-अंत रहित है, उत्पत्ति-नाश रहित है इसलिये उसको अनंत कहते हैं। और भगवान का जो स्वरूप ज्ञान है, चैतन्य है वो भी आदि-अंत रहित है, उदय-अस्त रहित सूर्य है इसलिये ज्ञान भी भगवान का अनादि-अनंत है। वैसे ही भगवान का जो स्वरूपभूत आनंद है वो भी आदि-अंत रहित अनंत अखण्ड आनंद का सिंधु है जिस आनंद का न यह किनारा है न दूसरा किनारा है क्योंकि यह किनारा आदि हो जायेगा तो दूसरा किनारा अंत हो जायेगा। राम रूपी सिंधु का आदि अंत नहीं है, वो आर-पार रहित है इसलिये ब्रह्म अनादि अनंत है। उपनिषदों में राम शब्द का अर्थ ब्रह्म ही किया गया है —

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि,
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते।।

जो सत्-चित्-आनंद है और जो सभी जीवों का अपना स्वरूप आत्मा है उसमें योगी लोग रमन करते हैं। सच्चिदानंद सिंधु राम सबकी आत्मा है, ब्रह्म नाम से राम को कहा गया है।

जो आनंद सिंधु सुखरासी सीकर तें तिहुँ त्रैलोक सुपासी,
सो सुखधाम राम अस नामा अखिल लोक दायक विश्रामा।।
राम ब्रह्म परमारथ रूपा अविरत अकथ अनादि अनूपा,
राम सच्चिदानंद दिनेसा नहिं तँह मोह निसा लवलेसा।।
व्यापक ब्रह्म एक अविनाशी सत् चेतन घन आनंद राशी,
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी सकल जीव जग दीन दुखारी।।
ज्ञान अखण्ड एक सीतावर

ये राम का स्वरूप रामायण में निरूपण किया गया है तो वेदों में राम को ब्रह्मरूप बताया है। राम कहो चाहे ब्रह्म कहो ये नाम ही दो हैं तत्त्व दो नहीं हैं स्वरूप एक है। तो इसको तो अवान्तर वाक्य कहते हैं और जीव का अवान्तर वाक्य वेदों में ऐसा बताया है —

यः एष हृदि अन्तर्ज्योतिः पुरुषः।

हमारे तुम्हारे शरीर के भीतर जो हृदय है वहाँ पर एक अनंत अखण्ड ज्ञान ज्योति जगमगा रही है जो उदय-अस्त रहित है, वो जीव का स्वरूप है। भीतर प्रवेश करने का तरीका भगवान कृष्ण ने ऐसा बताया है — उस शरीर के बाहर तो संसार है क्योंकि नेत्रादि इन्द्रियाँ शरीर के भीतर हैं और नेत्रादि इन्द्रियों से जो देखा जाता है वो बाहर का संसार दिखाई पड़ता है, शरीर के भीतर नहीं दिखाई देता संसार इसलिये :—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः,
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।। BG - 03.42 ।।

हमारा तुम्हारा जीव का स्वरूप बताने के लिये अन्दर प्रवेश करना पड़ेगा अपने स्वरूप को जानने के लिये कि **'मैं क्या हूँ'**? तो कहा इस शरीर के बाहर तो संसार है और शरीर के भीतर **इन्द्रियाँ** हैं। अब इन्द्रियों के भीतर चलो, आँख कान नाक आदि इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के भीतर **मन** है जो संकल्प-विकल्प करता है, इच्छा-द्वेष जो करता है, सुख-दुःख भोगता है, ये संकल्प-विकल्प इच्छा-द्वेष मन का स्वरूप है। अब मन के भी भीतर चलो **'मनसस्तु परा बुद्धिः'** जो मन के भी परे है वो **बुद्धि** है मन के भीतर, बुद्धि का क्या स्वरूप है? **'निश्चयात्मिका बुद्धि'** अमुक काम करो अमुक काम मत करो, ये अच्छा है ये ख़राब है, ऐसा जो निर्णय करती है वो इस शरीर के भीतर सर्वश्रेष्ठ बुद्धि है। अब बुद्धि के भी भीतर चलो **'यो बुद्धेः परतस्तु सः'** जो बुद्धि से परे है वह हमारा तुम्हारा जीवों का स्वरूप है। अब इन सबसे परे अन्तरतम् हृदय के ऊपर —

चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तं हित मानसं मनः।।

ये मन के नाम जहाँ अमरकोष में बताये गये हैं—चित्त, चेत, स्वान्त, हृत, मानस, मन, ये सब मन के ही नाम हैं और हृदय। **'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा'** तुलसीदास जी लिखते हैं मैं अपने अन्तःकरण के स्वान्तःसुख, अपने आनंद के लिये श्रीरघुनाथजी की कथा करता हूँ और दूसरे लोग भी इससे आनंद लेलें तो ठीक है नहीं तो मेरा प्रयोजन रामायण लिखने का यही है कि मेरा आत्मा, मेरा मन आनंद मगन हो जाय। तो स्वान्त भी मन का नाम है, हृदय भी मन का नाम है, चित्त और चेत भी मन का नाम है तो ये सब मन के नाम हैं। तो हृदय के भी भीतर बैठा जो हृदय को देखता है, बुद्धि को देखता है, मन को देखता है और इन्द्रियों को देखता है, शरीर को देखता है और शरीर के बाहर संसार को भी देखता है — वो ज्ञान ज्योति, चैतन्य ज्योति अखण्ड है, हमेशा एकरस जगमगाती रहती है, वो भी उदय-अस्त रहित है कभी

बुझती नहीं है और कब से जल रही है? अनादि काल से ये जल रही है और हमेशा जलती रहती है शरीर रहे चाहे मत रहे। तो उसको तत् पद से बताया **'यो बुद्धेः परतस्तु सः'** *सः* माने *वह*, वह का अर्थ होता है जो दिखाई न पड़े किन्तु देखे तो हमारा तुम्हारा स्वरूप ज्ञान है ज्ञानज्योति है, हम दिखाई नहीं पड़ते किन्तु सबको देखते हैं। बुद्धि मन इन्द्रिय शरीर और शरीर के बाहर संसार ये दृश्य है इनको ज्ञान नहीं है तो ये हमको कैसे देख सकेंगे जिनको ज्ञान ही नहीं है? और हम ज्ञान स्वरूप हैं इसलिये दृश्य नहीं हो सकते क्योंकि सब दृश्य अज्ञानरूप हैं अब ज्ञानरूप केवल मैं ही हूँ दूसरा ज्ञानरूप है नहीं सो **'सत्यं ज्ञानं अनंतं'** ब्रह्म का स्वरूप भी यही बताया है—अखण्ड ज्योति, अखण्ड ज्ञान। तो कहते हैं ये ज्ञान-ज्ञान का एकत्व है, चेतन-चेतन का एकत्व है इसलिये जीव का स्वरूप **'तत्त्वमसि'** — **'अहं ब्रह्मास्मि'** ये महावाक्य बताता है। तो अवान्तरवाक्य और महावाक्य ये अलग अलग पहले बताया और फिर महावाक्य से एकत्व बताया, जीव और ब्रह्म का एकत्व बताया। ये राम नाम कैसा है? कहा ये अवान्तरवाक्य भी है माने ये ब्रह्म का स्वरूप भी बताता है और महावाक्य भी है माने जीव और ब्रह्म का एकत्व भी बताता है। तो राम रहस्योपनिषद में इस प्रकार से लिखा है ये महावाक्य —

आद्यो रातत् पदार्थः स्यात्, मकारस्त्वं पदार्थवान्,
त्वयो ऐक्यम् परंब्रह्म असीत्यर्थे ब्रह्म विदु विदुः।।

देखो! राम में जो **'र'** है वो '**तत् पदार्थः स्यात्**' और 'तत्-त्वं-असि' ये महावाक्य है। हे जीव! **तत्** माने वह जो ब्रह्म है—वह ब्रह्म तू है। ***'तत्-त्वं-असि'*** तीन पद हैं — **तत्** माने **ब्रह्म**, **त्वं** माने **जीव** और **असि** माने **है** । हे जीव! तू ब्रह्म है, जीव और ब्रह्म का एकत्व है एक स्वरूप है ये महावाक्य है। तो राम शब्द ये महावाक्य है — आदि का जो 'र' है वो तत्पद वाचक है माने ईश्वर वाचक है और जो **'म'** मकार है वो **त्वंपद** वाचक है माने जीव वाचक है और जो **'र'** में **'ा'** यानि **'आ'** की मात्रा लगी है वो **असि** पद् वाचक है माने एकत्व बताता है, परमब्रह्म बताता है जीव को, तो **'र'= ईश्वर** और **'म'= जीव** और **अकार** से **एकत्व,** इसीलिये सभी वाक्यों से ये राम नाम की महिमा अधिक बताई गई है। तुलसीदासजी महाराज कहते हैं 'राम' शब्द को गुरुओं से लो यद्यपि राम प्रसिद्ध है, राम राम कैसे भी कहो परन्तु कहते हैं ये गुरु परम्परा चली आती है, राम का नाम गुरुओं से लेते हैं, क्यों? इसलिये लेते हैं कि राम का अर्थ बताता है गुरु। अर्थ जानने से एक बार राम कहने मात्र से संसार सागर सूख जाता है —

नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं, ... पर कब?
सुजन विचार करहुँ मन माहीं।।

सुजन माने हे! शुद्ध बुद्धि वाले लोगों गुरु से राम का नाम लो और उसके अर्थ का विचार करो तो एक बार के उच्चारण करने और अर्थ विचार करने मात्र से संसार सागर सूख जाता है तो फिर पार क्या करना है पार ही खड़े हैं, है ही नहीं संसार सागर, राम का ज्ञान होते ही ये जीव राम रूप होता है। माया और तत्कार्य ये संसार मिथ्या प्रतीत होता है स्वप्नवत् प्रतीत होता है, यही संसार का सूखना है स्वप्नवत् जान लेना, तो स्वप्न के संसार से क्या बन्धन है? वो तो मिथ्या दिखाई पड़ता है स्वप्न। जैसे शंकरजी कहते हैं —

उमा कहूँ मैं अनुभव अपना,
सत् हरि भजन जगत सब सपना।।

जब जगत सपना ही है मिथ्या ही है तो सपने से क्या बन्धन है स्वप्न द्रष्टा को? जो स्वप्न

देखने वाला है उसको क्या बन्धन? वैसे ही जाग्रत-स्वप्न को भी देखने वाला है उसको क्या बन्धन? तो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों को जो प्रकाशता है वह राम है। राम तुरीय तत्त्व है, राम चौथा है तीनों से और जीव भी चौथा है, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों को जीव देखता है, तीनों से जुदा है मिलता नहीं है तीनों में। जैसे घट द्रष्टा घट से नहीं मिलता वैसे ही स्थूल-सूक्ष्म-कारण, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति — '**त्रयमेतत्माया मात्रं**' ये तीनों माया मात्र हैं, इन तीनों को देखने वाला इन तीनों से जुदा राम है, तो हमारा आपका स्वरूप भी राम है, राम से भिन्न नहीं है। इस प्रकार से सज्जनों राम नाम की महान् महिमा वेदों में आई, रामायणों में आई और एक एक अक्षर और स्वर-व्यंजन की महिमा वर्णन की गई है शास्त्रों में इसलिये कहते हैं तुलसीदासजी —

अल्प तो अवधि जीव, तामें बहुत सोच पोच,
करिबे को बहुत है, कहा कहा कीजिये। (कहा पुराण पढ़ो वेद पढ़ो शास्त्र पढ़ो)
पारणा पुराणन को वेदहु को अंत नाही,
वाणीं हैं अनेक चित्त कहॉ कहॉ दीजिये।
काव्य की कला अनंत छंद को प्रबन्ध बहुत,
राग हैं रसीले रस कौन कौन पीजिये।
सौ बातन की एक बात तुलसी बताये जात,
जन्म जो सुधारा चाहो राम नाम लीजिये।

ऐसी राम नाम की महिमा है। राम नाम लो पर अर्थ के सहित लो, **'तद्जपत तदर्थ भावनं'** — ये राम नाम जपने की विधि शास्त्र में है तो विधि से जपो तो फल होता है और बिना विधि जाने तो उसका फल होता नहीं है इसीलिये विधि को जानना चाहिये।

तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य विवस्थितौ,
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोत्तम् कर्म कर्तुं निहारसि।।
यः शास्त्र विधिं उत्सृज्य वर्तते काम कारतः,
न सो सिद्धिं अवाप्नोति न सुखं न परां गतिं।।

जो शास्त्र विधि को छोड़ कर अपने मनमानी जप करते हैं और तप करते हैं शास्त्र विधि से नहीं करते कहते हैं उनको न यहॉ सुख मिलता है और न परलोक में सुख मिलता है, किसी प्रकार की सिद्धि भी प्राप्त नहीं होती—'**न सो सिद्धिं अवाप्नोति न सुखं न परां गतिं**' न परम् गति ही मिलती है इसलिये शास्त्र की विधि से मंत्र जपो व जिस मंत्र को जपो पहले तो उसे गुरु से ले लो। कहा प्रसिद्ध ही है 'राम नाम' गुरु से क्या लेना? 'राम कृष्ण विष्णु' ये सब नाम भगवान के प्रसिद्ध हैं, तो कहा विशेषता हो जाती है क्योंकि गुरु अर्थ का ज्ञान कराते हैं और भगवान का ज्ञान होते ही तुरन्त उससे अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है। जैसे गोली है गोली अपने आप से तुम हाथ से मारो तो सिंह नहीं मर सकता है क्योंकि अपने हाथ से मारने में इतनी ताकत से वो गोली जाती नहीं है और उसी गोली को बन्दूक में भर के मारो तो बहुत ताकत से जाती है, सिंह मर जाता है इसी प्रकार से अपने आप जपा हुआ मंत्र फलदायक नहीं होता अन्यथा गुरुओं की परम्परा रामानुजाचार्य से लेकर के कब से ये परम्परा राम नाम लेने की चली आ रही है ये क्यों चलती? सब जानते ही हैं राम नाम सबसे श्रेष्ठ है इसलिये इस पर विचार करो इस प्रकार से जैसे उपनिषदों के द्वारा विचार किया जा रहा है — हमारा तुम्हारा स्वरूप सच्चिदानंदघन राम है शेष सब सपना है माया है, माया का अर्थ होता है कुछ नहीं जैसे छाया का अर्थ कुछ नहीं होता तैसे ही ये माया का अर्थ कुछ नहीं होता। जो छाया है उससे पुरुष को कोई बन्धन है? छाया कुछ पुरुष का बिगाड़ बना सकती है? तो ये जो माया है ये

छाया के समान केवल दृश्य है हमारी, कभी रहती है कभी नहीं रहती। ये संसार सूखा हुआ ही है इसको क्या पार करना? **'मिथ्यात्म निश्चय'** झूठा निश्चय ही ये संसार समुद्र का सूख जाना है, तुम्हारे को कोई बन्धन नहीं है, भगवान राम भी यही कहते हैं चराचर जगत माया है —

गो गोचर जहॅ लगि मन जाई,
सो सब माया जानेहु भाई।।

हे लक्ष्मण! जहॉ तक इन्द्रिय मन बुद्धि जावें और इन्द्रिय मन बुद्धि भी, ये सब माया का स्वरूप है और इसको जो देखता है वह जीव का स्वरूप है सो जीव मेरा स्वरूप है। यही ज्ञान है —

ज्ञान मान जहॅ एकउ नाहीं,
देखत ब्रह्म रूप सब माहीं।।

सबमें आत्म दर्शन, राम दर्शन करना चाहिये, सबमें बैठकर जो देखने वाला है वह राम है और ये सब शरीर माया है, शरीर सदा नहीं रहते देखने वाला सदा रहता है — **'विनश्यत्सु न विनश्यति'** शरीर का नाश होने पर भी इस आत्मा राम का नाश नहीं होता है ये अविनाशी है। सज्जनों! ऐसी राम नाम की महिमा है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

** रामरहस्योपनिषद **

सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये,

न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशय।।

जो लोग तत्त्वतः **'मैं राम ही हूॅ'** ऐसे सदा कहते हैं वे संसारी (अन्य लोगों जैसे) नहीं होते। वे लोग साक्षात् राम ही होते हैं।

—०००—

CD # 29 – Sep 40.mp3

४६

ज्ञान और गति

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा —

यच्छेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे,
शिष्यतेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। BG – 02.07 ।।

हे भगवन्! मुझे नित्य सुख शान्ति का उपाय बतावें मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ, मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! ऐसा तो परम कल्याण स्वरूप, सत्-चित्-आनंद स्वरूप मैं ही हूँ और मेरा स्वरूप ही सब शरीरों में जीवात्मा है इसलिये मुझ ईश्वर का और जीव का जो वास्तविक स्वरूप है वो सच्चिदानंदघन ब्रह्म ही है, ये शरीर नहीं है क्योंकि शरीर मुझ ईश्वर के भी माया से बनते हैं और जीवों के भी शरीर मेरी माया से ही बनते हैं पुनः मिट जाते हैं। इसलिये —

'न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः'

जीवात्मा स्त्री नहीं है और पुरुष नहीं है, न नपुंसक है, न कोई पशु-पक्षी है, न देवता न दैत्य है, ये तो सब शरीरों के ही नाम और रूप हैं। तो सब शरीर मेरी माया से बनते हैं, मैं स्वयं ही परमात्मा सब शरीरों में बैठकर देख रहा हूँ इसलिये मुझे ही जीवात्मा कहते हैं, इसलिये मैं स्वरूप से ही जीवात्मा के रूप में सत्-चित्-आनंद रूप हूँ, इसलिये अपने आपको मुझ परमात्मा का ही रूप जानना चाहिये शरीर या जाति नहीं जानना चाहिये, जाति भी शरीर नहीं है, जाति एवं वर्ण-आश्रम सब शरीर में ही हैं।

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसौन्दर्यजातयः,
स्थूलदेहगता एते स्थूलाद्भिन्नस्य मे नहि।।

अर्जुन! जो हमारा तुम्हारा स्वरूप जीवात्मा या परमात्मा है उसकी कोई जाति नहीं है गोत्र नहीं है।

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च—ब्रह्मणपना कुल और गोत्र और **नामसौन्दर्यजातयः**—नाम, रूप और जातियाँ

स्थूलदेहगता एते—ये सब स्थूलदेह में ही हैं, आत्मा तो स्थूलदेह से अलग है इसलिये आत्मा की कोई जाति वर्ण नहीं है। जन्म-मरण आदि भी स्थूलदेह का है, स्थूलदेह जन्मता है, उसमें — जायते, अस्ति, वर्धते, विपरणमते, अपक्षीयते और विनश्यति ये छः विकार हैं सो ये शरीर में ही सब विकार हैं जीवात्मा में नहीं हैं। जन्म लेना ये शरीर का ही धर्म है, दिखाई पड़ना—शरीर ही जन्मता है तो दिखाई पड़ता है और बढ़ना और फिर धीरे धीरे बदलते जाना पहले जैसे नहीं रहना, **अपक्षीयते**—फिर धीरे धीरे क्षीण होना वृद्धावस्था में और फिर क्षीण होते होते

विनश्यति—विनाश हो जाना, **स्थूलदेहगता एते**—अर्जुन! ये भी स्थूलदेह में ही हैं। इसलिये आत्मा देह नहीं है और जितने मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र देवता और दैत्य हैं ये सब स्थूल शरीर के ही नाम और रूप हैं इसलिये अपने आप को इन सबसे अलग जानना चाहिये।

नाहं मनुष्यो न च देव यक्षो, न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रः।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो, भिक्षुर्न चाहं निज बोध रूपः।।

जो मैं हूँ द्रष्टा हूँ सो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र नहीं हूँ, ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी नहीं हूँ, न देवता हूँ, न दैत्य हूँ, न यक्ष हूँ, न नर हूँ, न किन्नर हूँ ये सब शरीरों के ही नाम है, तो **निज बोध रूपः** — मैं द्रष्टा साक्षी मात्र हूँ, ये मेरा स्वरूप है। तो अहं का माने अपना वास्तविक स्वरूप द्रष्टा साक्षी आत्मा ही है शरीर नहीं है और जितने शरीर हैं ये सब मेरी माया हैं। मुझ ईश्वर के शरीर भी—राम कृष्ण विष्णु शिव-शक्ति सूर्य गणेश कच्छ-मच्छ वामन वराह नृसिंह आदि जितने भी अवतार हैं ये सब मेरी माया से ही होते हैं, ये सगुण-साकार शरीर हैं मेरे। ये मेरा सगुण-साकार रूप सब माया से ही होता है और सारा विश्व-विराट भी मेरी माया से बनता है इसलिये **'माया मात्रं इदं द्वैतं'** ये द्वैत दृश्य सब माया मात्र ही है और मैं ही एक सच्चिदानंद स्वरूप हूँ इसलिये अपना वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है। व्यवहारिक शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण — ये माया में सब व्यवहार है। निर्गुण-निराकार स्वरूप जो अपना आत्मा है उसमें कोई व्यवहार नहीं है, सगुण-साकार माया से बना है इसमें देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण हैं, इन्हीं में सब कर्म होते हैं इसलिये माया राज्य में, प्रकृति राज्य में ही सब कर्म हैं आत्मा में कोई कर्म नहीं हैं। अर्जुन! बस इतना ही जानना है, इतने ही जानने के लिये सब गीता है रामायण है भागवत् है उपनिषद है ब्रह्मसूत्र है बाकी नहीं जानना है क्योंकि जीव अपने स्वरूप को भूला हुआ है इसको जगाना है बताना है इसके स्वरूप को। अब ये जीव चाहे इसी जन्म में जाग जाये, अपने स्वरूप को जान जाय, चाहे दूसरे जन्म में जान जाय और चाहे बाल्यावस्था में ही जान जाय। बाल्यावस्था में न जान पावे तो युवावस्था में जान लेवे, युवावस्था में भी यदि नहीं जान पाया तो वृद्धावस्था में जान लेवे और वृद्धावस्था में नहीं जान पाया अन्तिम समय आ गया तो यदि अन्तिम समय तक भी ये जान लेगा तो ये ब्रह्म को प्राप्त हो जायेगा फिर इसका जन्म-मरण नहीं होगा, दुःख नहीं होगा और अन्तिम समय तक भी यदि नहीं जान पावे तो मेरा स्मरण करता हुआ ही यदि शरीर छोड़े तो भी मेरे सगुण-साकार स्वरूप को प्राप्त हो जायेगा और **अहंग्रह उपासना** — **'अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि'** ये अहंग्रह उपासना कहलाती है, यदि अहंग्रह उपासना करे तो इसी जन्म में ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है और इस जन्म में मान लो नहीं हुआ फिर ब्रह्मलोक में जा करके वहाँ हो जायेगा, इसकी **क्रम-मुक्ति** होगी और यदि इसी जन्म में जान लेगा तो **सद्य-मुक्ति** हो जायेगी। सद्य-मुक्ति माने तुरन्त क्योंकि आत्मा का जन्म-मरण का बंधन हुआ ही नहीं है वो नित्य मुक्त है, खाली जाानना मात्र है इसलिये इस जन्म में जान ले चाहे दूसरे जन्म में जान ले। इस जन्म में नहीं जान पाया और भगवान की भक्ति में लगा है तो उसका अकल्याण तो होगा नहीं, कल्याण अवश्य होगा, ब्रह्मलोक में जाकर के उसको ज्ञान हो जायेगा और मानलो योग करता है भगवान की भक्ति करता है परन्तु विषयों में उसका मन चला गया तो भगवान कहते हैं कि यदि विषयों में मन चला गया तो वो बेकार नहीं जायेगी उसकी भक्ति, उसकी उपासना, निष्काम कर्म व्यर्थ नहीं जायेगा, उसको उत्तम विषय मिलेंगे, उसको स्वर्गादिक लोकों की प्राप्ति होगी और मानलो विषय वासना नहीं है और भक्ति पूरी न भयी और शरीर छूट गया तो किन्हीं योगियों के घर में जन्म ले लेगा और फिर वो जो पहले अभ्यास किया था —

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः,
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।। BG - 06.44 **।।**

किसी योगियों के घरमें जन्म लेकर के और जो बुद्धि है न! ये जीव की हमेशा हमेशा से वही

रहती है बुद्धि नहीं बदलती है, दूसरे जन्म में बुद्धि तो वही है स्थूल शरीर बदला और जीवात्मा की बुद्धि वही रहा करती है इसीलिये बुद्धि में वो संस्कार रहते हैं तो वो स्मरण आते हैं। मरने के बाद जहॉ कहीं जन्म लेगा तो पूर्व जन्म का उसको स्मरण आयेगा क्योंकि पूर्व में बहुत अभ्यास किया है भगवान की भक्ति का, ध्यान-चिंतन का, तो वो स्मरण आता है फिर उसी भक्ति मार्ग में वो लग जाता है इसलिये देखने में आता है कई लोग लड़कपन से ही भगवान की भक्ति करने लगते हैं। गीता रामायण पढ़ने में उनकी बड़ी रुचि होती है प्रेम हो जाता है सब पूर्व का अभ्यास है। जैसे कोई आज पाठ याद किया और रात्रि आई तो सो गया, सो के जब जागता है तो पहले दिन का पाठ भूल नहीं जाता है वो फिर याद आता है तो फिर आगे पढ़ने लग जाता है, ऐसे ही मृत्यु क्या है? ये भी एक निद्रा की बड़ी बहन है, निद्रा आ गई माने मन बुद्धि वो लीन हो गये और फिर जागा तो बुद्धि तो वही है फिर स्मरण आ जाता है। तो जो कुछ भी अभ्यास करता है वो व्यर्थ नहीं होता है — ये बात भगवान ने अर्जुन को कही इसलिये यदि इसी जन्म में तुम अपने आप को सच्चिदानंद स्वरूप जान लो, जीवन में चाहे बाल्यकाल में, चाहे युवाकाल में, चाहे वृद्धावस्था में और चाहे अन्तिम क्षण में और नहीं जान पाओ तो कम से कम भगवान का स्मरण रहे, नहीं तो जिसका तुम स्मरण करते हुए शरीर छोड़ोगे न! स्त्री पुत्र मित्र कोई देवी-देवता उसी को प्राप्त हो जाओगे। ऐसा नियम भगवान ने बताया है —

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्,
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।। BG - 08.06 **।।**

अर्जुन! ये जिसका-जिसका स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है वो उसी-उसी को प्राप्त हो जाता है ये ऐसा नियम है इसलिये —

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च,
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।। BG - 08.07 **।।**

हे अर्जुन! जो मेरा स्मरण तू करेगा निरन्तर अन्त समय मैं ही याद आऊँगा तो तू मुझे ही प्राप्त होगा। एक पुरंजन नाम का राजा था, अपनी रानी में इतनी प्रीति करता था कि हमेशा उसको रानी ही याद आती रहती थी भूलता ही नहीं था कभी, मरते समय भी वो ही याद आयी। जीवन भर जिसमें प्रेम रहता है मरते समय वो ही याद आता है ऐसा नियम है। उसको अपनी स्त्री, रानी ही याद आयी और मर करके वो स्त्री बना। इसी प्रकार से एक महाराज भरत भये, भरत का एक हिरणी के बच्चे में प्रेम हो गया था। कोई हिरणी का झुंड जा रहा था किसी सिंह-व्याघ्र ने पीछा किया तो वो झुंड भगा और वहीं महाराज भरत तपस्या कर रहे थे जिनके नाम से ये भारतवर्ष है। तो एक नाला पड़ता था उसमें छलॉग लगाई हिरणी तो वो बच्चा इसी पार छूट गया और वहीं पर इनकी कुटी थी, पत्तों की झोंपड़ी घास-फूस की बनाये हुए रहते थे। हिरणी तो उस पार झुंड के साथ भाग गई और बच्चा यहीं रह गया। अब करुणावश दयावश महाराज भरत ने उस बच्चे को देखा तो उन्होंने दौड़ के सिंह से बचा के उसे उठाकर ले आये अपनी कुटी में, उसका वो पालन पोषण करने लगे। अब वो बच्चा महाराज भरत को ही अपना माता-पिता जानता था, अपनी माता को तो उसने देखा नहीं, बस उन्हीं को अपना माता-पिता जानता, उन्हीं की गोद में बैठ जाता, उन्हीं के शरीर में खुजलाने लगता, इधर-उधर से घूम के आता और फिर उन्हीं के शरीर में खुजलाता और कभी गोद में बैठ जाता। महाराज भरत भी उसे पुत्र के समान प्रेम करने लगे। अब देखो! कहॉ तो राज-पाठ छोड़ के भजन करने गये कि भगवान का ध्यान करेंगे, देखो प्रारब्ध की बात होती है, कुछ न कुछ ऐसा ही तीन जन्म का प्रारब्ध था उनका तो इसलिये समय जब निकट आया मरने का तो उधर वो बच्चा भी कहीं हिरणियों का झुंड दिखाई पड़ा और वो हिरणियों के झुंड के साथ भाग गया और इनका भी प्रारब्ध पूरा हो आया, अन्त समय इनको वो हिरणी का बच्चा याद आया तो मरने के बाद वो

हिरणी का बच्चा बने। देखो मन बुद्धि तो वही है, याद करने में क्या होता है उसका रूप सामने आ जाता है। अभी आप अपने देश को, गॉव को, नगर को, अपने माता-पिता पत्नी-पुत्र को बैठे बैठे यदि याद करोगे तो उनका चित्र तुम्हारे मन में आ जायेगा वही दिखाई पड़ेगा, ऐसे ही मरने के बाद में फिर वो वही को प्राप्त हो जाता है। तो वो हिरणी का बच्चा हो गये परन्तु पहले जन्म की उनको याद बनी रही। फिर उन्होंने सोचा देखो हिरणी के बच्चे के प्रेम का ये फल मिला मुझको दूसरा जन्म लेना पड़ा, अब मैं किसी से प्रेम नहीं करूॅगा, फिर वो किसी अपने माता-पिता से प्रेम न किया, भाई-बहनों से प्रेम न किया जो उसकी जाति के थे हिरण उनसे किसी से प्रेम नहीं किया और नदी में ही अपने शरीर को छोड़ दिया, कहा मैं किसी से प्रेम नहीं करूॅगा। वो हिरण का शरीर ही बदला न! मन बुद्धि तो वही रहे वो याद बनी रही, फिर तीसरे जन्म में एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिये और ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर के फिर माता-पिता से प्रेम नहीं करते थे, भाइयों से प्रेम नहीं करते थे, उनको याद बनी रही कि मैं प्रेम करूॅगा तो इन्हीं में मेरा मन लगा रहेगा इसलिये भगवान का स्मरण मुझे करना चाहिये तो भगवान के ध्यान चिन्तन में मगन रहने लगे और जड़वत् पिशाचवत् घूमन लगे। माता-पिता ने उसका नाम जड़भरत रखा, उसका यज्ञोपवीत् भी नहीं किया, उसका ब्याह भी नहीं किया क्योंकि वो जहॉ कहीं चला जाता वहॉ ही बैठा रहता, कहीं संत महात्मा आते तो वहॉ चला जाता और वहॉ ही सत्संग सुनता रहता। कभी रात को आवे, कभी दिन में आवे और कभी भूखा ही रह जाय, खाने को मिल जाय तो खाना खा लेवे। ऐसी स्थिति देखकर के मॉ-बाप ने उसका ब्याह नहीं किया कि जब ये अपने शरीर का ही पालन पोषण नहीं कर सकता है तो अपनी पत्नी का क्या करेगा? फिर एक बार महात्माओं ने उनके गॉव में चतुर्मास किया तो वहॉ रोज़ सत्संग में जाता रहा, सत्संग के बाद में वो महात्मा लोग जब चले गये तो ये भी चला गया उनके साथ, किसी से न बताया न कुछ? मॉ-बाप हैरान हैं ढूॅढते हैं, मॉ-बाप को तो सब लड़के प्यारे ही लगते हैं चाहे पागल ही क्यों न हों। बहुत ढूॅढा वो मिला नहीं, चला गया। बारह वर्ष तक वो संतों के संग हरिद्वार है, ऋषिकेश है, हिमालय है इन सब जगह घूमता रहा, सत्संग करता रहा। अब उसको ज्ञान हो गया, पूर्व जन्म का जो अभ्यास था वो काम में आया, उसको ज्ञान हो गया भगवान का। बारह वर्ष बीत गये तो उसको घर की याद आई तो फिर घर गया। माता-पिता बड़े प्रेम से मिले, बहुत दिन में ये पुत्र आया है, कहा पुत्र तू ऐसी क्या वस्तु पाया है जो तू इतना प्रसन्न रहता है? कहा मैंने अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म को जाना है इसलिये मैं प्रसन्न रहता हूॅ। पिता ने कहा पुत्र! वो मुझको भी बता, पिता को भी ब्रह्म का, ज्ञान का उपदेश दिया इसलिये जिसको ज्ञान हो जाता है वो गुरु ही बन जाता है। ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है, जन्म-मरण से छूट जाता है, पिता हो चाहे पुत्र हो, पति हो चाहे पत्नी हो। तो सज्जनों! ऐसी ही ज्ञान की महिमा है—**सद्यमुक्ति** हो जाती है और यदि नहीं भयी और फिर दूसरे जन्म में उसका प्रारब्ध ऐसा हुआ तो भगवान कहते हैं कि मेरा स्मरण करता हुआ अर्जुन! तू प्राण छोड़ेगा वो मुझे ही प्राप्त होगा इसमें संशय नहीं है, जब आम नियम यही है मेरा ध्यान चिन्तन करता हुआ जो कोई प्राण छोड़ेगा वो मुझे ही पायेगा इसमें संशय की क्या बात है? इसलिये **'मामनुस्मर'** हमेशा तू सर्वकाल में मेरा स्मरण कर और **'युध्य च'** युद्ध भी कर। अपने को देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों से अलग जान और देह इन्द्रिय मन बुद्धि से अपना धर्म पालन कर और अपने को द्रष्टा-साक्षी मेरा स्वरूप जानता रहे, निश्चय ही मुझे ही तू प्राप्त हो जायेगा इसमें सन्देह नहीं है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 28 - 27. mp3

४७

आत्मा अमृत है

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी से अर्जुन ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया हे भगवन्! मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें, मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ मेरे तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण हैं। भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः,
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। BG - 02.16 **।।**

दूसरे अध्याय का ये १६वॉ श्लोक है, सोलह आने पूर्ण है, संशय रहित है, सभी वेद शास्त्र पुराणों का सार है। एक ही श्लोक में भगवान ने सूत्र रूप में सब कुछ बता दिया। अर्जुन! एक सत है और दूसरा असत् है, सत् और असत् दोनों की व्याख्या कर दिया। जो सत् है वो सदा रहता है और जो असत् है वो कभी नहीं रहता है। जो भी दृश्य है वो सब असत् है और जो द्रष्टा है सो सत् है, यही निर्णय है। दृश्य असत् क्यों है? **माया कार्यत्वात्**, माया का कार्य होने से ये दृश्य जगत असत् है। जो जो माया का कार्य होता है वो असत् ही होता है, दृष्टान्त - इन्द्रजालवत्, जैसे इन्द्रजाली पुरुष माया से अनेक वस्तुएं क्षण मात्र में बना देता है, दिखा देता है तो इन्द्रजाली पुरुष के द्वारा माया रचित जो पदार्थ हैं वो झूठे ही होते हैं। ऐसे ही भगवान कहते हैं कि ये चराचर जगत मेरी माया से ही होता है, माया रचित होने से ये दृश्य जगत असत् है और जो द्रष्टा है वो ब्रह्म है सो सत् है। तो माया और ब्रह्म दो ही चीज़ हैं तीसरा तो कुछ है ही नहीं, कितना ही विद्वान हो और वर्षों तक विवेक विचार करे तो ये दो चीज़ों से तीसरी चीज़ नहीं मिलेगी, द्रष्टा और दृश्य दो ही चीज़ मिलेंगी। हे अर्जुन! इन दोनों में से हमारा स्वरूप क्या है ये सबको अनुभव सिद्ध है — सब कहते हैं **'मैं देखता हूँ',** इसमें किसी को संदेह नहीं है कि मैं देखता हूँ कि नहीं देखता हूँ किन्तु संशय रहित यही दृढ़ निश्चय है कि मैं देखता हूँ। हमारे जो देह हैं, इन्द्रिय हैं, मन बुद्धि प्राण हैं ये सब चराचर जगत है ये दृश्य है ये सबको अनुभव है। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इतना दृश्य है, इसी को माया कहते हैं — **जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति त्रयमेतत्माया मात्रम्,** जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों माया मात्र हैं और जो तीनों को देखता है वही ब्रह्म है — **दृग्ब्रह्म दृश्य मायेति सर्ववेदान्त निर्णयः,** द्रष्टा ब्रह्म है दृश्य माया है यही सब वेदान्तों का निर्णय है।

जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचं यत्प्रकाशते,
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को प्रकाशता है माने देखता है वह ब्रह्म है, **तद्ब्रह्माहमितिज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते** वह ब्रह्म ही मैं हूँ ऐसा जो जानता है वो तुरन्त ही सब बन्धनों से मुक्त है और वो ब्रह्म द्रष्टा है, मैं भी द्रष्टा हूँ। द्रष्टा और ब्रह्म दो नहीं हैं वो एक ही हैं, सब शरीरों में देखने

वाला ब्रह्म एक ही है इसीलिये सब कहते हैं 'मैं देखता हूँ', ये जो मैं का वास्तविक अर्थ है ये ब्रह्म है और मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण वैश्य शूद्र हूँ, मैं ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी हूँ, मैं पिता हूँ - मैं पुत्र हूँ, मैं पत्नी हूँ - मैं पति हूँ, मैं राजा हूँ - मैं प्रजा हूँ — ये जो 'मैं' हैं ये अनेक 'मैं' भगवान कहते हैं ये माया के रचे हुए शरीरों में हैं। ये सब व्यवहारिक है, माया में ही ये सब व्यवहार है, वास्तविक अर्थ सत्य 'मैं' का ब्रह्म ही है, व्यवहारिक 'मैं' तो अनेक हैं, कितनी जगह 'मैं' जुड़ा हुआ है? राज्य उपाधि से अपने को राजा कहने लगा, पत्नी उपाधि से अपने को पति कहने लगा, पुत्र उपाधि से अपने को पिता कहने लगा—ये उपाधि वाले अनेक नाम हैं पर ये शरीर में ही हैं, ये एक भी 'मैं' सत्य नहीं है जो अहंता-ममता से जुड़े हुए हैं — ये शरीर में अहं भाव है कि ये शरीर मैं हूँ फिर शरीर से सम्बन्ध रखने वाले ये मेरे हैं, जितने ये 'मैं' और 'मेरा' है अर्जुन! ये सब माया मात्र है, ये कोई भी सत्य नहीं है, सत्य 'मैं' तो इन सबका द्रष्टा-साक्षी ही है सो ब्रह्म है। तो मैं का असली अर्थ ब्रह्म है और व्यवहारिक अर्थ स्त्री-पुरुष ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी है क्योंकि इसमें व्यवहार सब चलता है। मैं यज्ञदत्त हूँ, मैं देवदत्त हूँ, शरीर के ये नाम हैं न! ये नाम न हों तो व्यवहार न चले, इन्हीं नामों से व्यवहार चलता है, नाम न हो तो क्या कहके किसको बुलाओ? बिना नाम के व्यवहार नहीं चलता तो ये सब शरीर में नाम होते हैं और ये रखे जाते हैं। जब कोई पैदा होता है तो उसका नाम रखा जाता है, माता पिता या गुरु लोग उसका नाम रखते हैं क्योंकि नाम रखे बिना व्यवहार नहीं होगा। तो ये जितने भी 'मैं' के नाम हैं कि मैं यज्ञदत्त हूँ, देवदत्त हूँ, मैं संन्यासी हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ, मैं पति हूँ, मैं पत्नि हूँ ये सब रखे हुए हैं, पहले से तो ये नहीं थे! पहले से तो मैं आप अकेला हूँ, सब लोग पहले से तो अकेले ही हैं बाद में ये सब नाम उपाधि भेद से कल्पित भये इसलिये मैं का सच्चा अर्थ ब्रह्म है और व्यवहारिक अर्थ स्त्री-पुरुष पति-पत्नी पिता-पुत्र गुरु-शिष्य ब्राह्मण आदि वर्ण राजा और प्रजा—ये व्यवहारिक नाम हैं तो दोनों नाम को जानो, ये व्यवहारिक नाम माया मात्र हैं ये सत्य नहीं हैं इनमें व्यवहार होने दो जो हो रहा है परन्तु अपने को द्रष्टा-साक्षी जानते रहो, ये 'मैं' का सच्चा अर्थ है। इसका न जन्म होता है न मरण होता है और जितना व्यवहार है ये माया के द्वारा हो रहा है, माया से सब शरीर बनते हैं, माया को ही प्रकृति कहते हैं —

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः,
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।। BG - 13.29 ।।

अर्जुन! जितने भी कर्म हैं वो सब प्रकृति के द्वारा ही होते हैं, देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण ये सब प्रकृति से बने हैं और इन्हीं में सब कर्म हुआ करते हैं इसलिये **'प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः'** निश्चय ही सारे कर्म प्रकृति के कार्य 'देह इन्द्रिय मन बुद्धि' में ही होते हैं और **'आत्मानमकर्तारं पश्यति'** — तो जो कोई सारे कर्म प्रकृति में देखता है और अपने आपको अकर्ता देखता है अर्जुन! वही ज्ञानी है। आत्मा में कर्म नहीं हैं प्रकृति में ही सब कर्म हैं क्योंकि शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण प्रकृति से बनते हैं इन्हीं में कर्मेन्द्रियादि हैं इन्हीं से कर्म होते हैं। तो आत्मा द्रष्टा-साक्षी मात्र है न तो किसी प्रकार का कर्म है आत्मा में और न आत्मा कोई स्त्री-पुरुष आदि शरीर है ये सब माया से किये हुए हैं। माया है क्या? जैसे पुरुष की छाया होती है बिल्कुल झूठी, पुरुष तो सत्य होता है अब अज्ञान-ज्ञान का लक्षण द्रष्टा-दृश्य का लक्षण इसी में घटा दो पुरुष में और छाया में, पुरुष तो ज्ञानवान् है, द्रष्टा है और छाया दृश्य है, अज्ञानरूप है, छाया को तो कुछ ज्ञान नहीं है इसी प्रकार से जो आत्मा है वो द्रष्टा है पुरुष है और जो देह इन्द्रिय मन बुद्धि हैं वो इसी आत्मा की, ब्रह्म की छाया मात्र हैं। झूठी होने से इसको माया कहते हैं, झूठी चीज़ का नाम माया है, न होकर दिखाई पड़े वो माया है जैसे इन्द्रजाली पुरुष के बनाये हुए पदार्थ होते नहीं हैं फिर भी वो दिखा देता है, उसको माया कहते हैं। जैसे स्वप्न जगत होता नहीं हैतो भी निद्रा के द्वारा दिखाई पड़ता है आर निद्रा टूट गई तो? स्वप्न कुछ नहीं, स्वप्न का संसार ख़त्म हो जाता है इससे जाना जाता है स्वप्न माया रचित है,

निद्रा को माया कहते हैं। निद्रा आती है तब स्वप्न होता है और निद्रा टूट जाती है तो स्वप्न नहीं रहता है पर हम देखने वाले तो सदा ही रहते हैं, स्वप्न रहे तो भी देखते हैं और स्वप्न न रहे तो स्वप्न के अभाव को देखते हैं। हमारा तुम्हारा द्रष्टा का तो अभाव कभी नहीं होता है तो निश्चय ही ये स्वप्न के समान छायारूप माया है हमारा तुम्हारा स्वरूप पुरुषरूप द्रष्टा है। पुरुष का अर्थ होता है **'पूर्णत्वात् पुरुषः'** जो पूर्ण है उसको पुरुष कहते हैं सो ब्रह्म ही पुरुष है —

प्रकृतेः परः पुरुषः सा काष्ठा सा परा गतिः।।

प्रकृति से परे पुरुष है, वही प्रकृति और प्रकृति के कार्य की काष्ठा है, काष्ठा नाम सीमा का है माने प्रकृति और प्रकृति का कार्य पुरुष से ही प्रकट होता है, पुरुष के अधिष्ठानपने में रहता है और पुरुष में फिर लीन हो जाता है इसको काष्ठा कहते हैं, सीमा कहते हैं और पुरुष असीम है उसकी सीमा नहीं है, प्रादुर्भाव-तिरोभाव उत्पत्ति-नाश पुरुष का नहीं होता, वो पूर्ण है, वो सत्य ये पूर्ण है। **सत्य** कहते हैं अविनाशी को, उत्पत्ति-नाश रहित को, सदा एक रस, **चित्** कहते हैं अनंत अखण्ड ज्ञान को, ऐसे ही **आनंद** आदि-अंत रहित आनंद सिंधु को — ऐसा ब्रह्म का स्वरूप है, यही हमारा तुम्हारा आत्मा का स्वरूप है **'सच्चिदानंदम् ब्रह्म'**, **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'** इसलिये हमारा तुम्हारा स्वरूप पुरुष है और जो देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण हैं ये हमारी छाया हैं, हम ही से ये प्रकट होती है छाया, हम ही में रहती है, पुनः हम ही में लीन हो जाती है और ज्ञान नहीं है छाया को, हम ही देखते हैं अपनी छाया को। तो अर्जुन! इस हमारे तुम्हारे अविनाशी आत्मा ब्रह्म को माया कैसे नाश कर सकती है? भला छाया भी कभी पुरुष का नाश कर सकती है जो झूठी है इसीलिये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये माया है, ये छाया है, ये हमको तुमको आत्मा को द्रष्टा को कैसे नाश कर सकती है —

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्,
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। BG - 02.17 ।।

अर्जुन! अविनाशी तुम उसको जानो जो सर्वद्रष्टा है सर्वसाक्षी है जो कभी दृश्य नहीं होता वही अविनाशी है और जो दृश्य है वो नाशवान् है। वो सर्वद्रष्टा सारे दृश्य के कण कण में व्यापक है, सभी देश में सभी काल में सभी वस्तुओं में व्यापक है, सब देश-काल-वस्तुओं को देखता है

पर उसको कोई नहीं देखता है **'अदृष्टो-द्रष्टा'**, द्रष्टा अदृश्य ही रहता है क्योंकि उसका कोई आकार नहीं है, वह ज्ञानस्वरूप है तो हमारा तुम्हारा द्रष्टा स्वरूप निराकार है और जितने ये आकार हैं ये माया के हैं। हर आकारों में द्रष्टा जीवात्मा मौजूद है और वो एक ही है, हर आकार में — चाहे वो स्त्री का, चाहे पुरुष का, चाहे पशु-पक्षी का, हर आकार में देखने वाला एक ही है। आकार सब माया के हैं और ये आत्मा निराकार है तो ये छाया के समान होने से पुरुष का नाश करने में समर्थ नहीं है। **विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति,** अर्जुन! इस अविनाशी आत्मा का विनाश करने में संसार में कोई भी समर्थ नहीं है, कौन विनाश करे? आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी ये पंच महाभूत भी दृश्य ही हैं, ये भी माया मात्र हैं, छाया मात्र हैं और **'पंचमहाभूतेभ्योः अखिलं जगत'** पंचमहाभूतों से संपूर्ण जगत बनता है सो सभी देवता, सभी दैत्य, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र और यमराज 'मृत्यु' भी, ये सब पंचभूतों से बनते हैं तो पंचभूत ही हमारा तुम्हारा नाश नहीं कर सकते हैं क्योंकि वो भी छाया के समान दृश्य हैं। हम आप आकाश को जानते हैं, वायु को जानते हैं, अग्नि तत्त्व को जानते हैं और जल को जानते हैं, पृथ्वी को जानते हैं और पृथ्वी के कार्य अस्त्र-शस्त्रों को जानते हैं—भाला-बर्छी तीर-तलवार, ये सब पृथ्वी के कार्य हैं माटी से सब बनते हैं, ये सब दृश्य हैं माया मात्र हैं छाया मात्र हैं, भला बताओ ये हमारी तुम्हारी आत्मा का नाश कैसे कर सकते हैं? क्या छाया कभी पुरुष को छू सकती है? और पुरुष भी क्या छाया को छू सकता है? हम छाया को पकड़ें तो क्या छाया पकड़ में आयेगी? अरे! कोई चीज़ होवे तो पकड़ में आवे झूठी

चीज़ क्या पकड़ में आवे? तो जितने दृश्य हैं वो सब छाया मात्र होने से पकड़ में नहीं आते क्योंकि झूठे हैं तो झूठी चीज़ तो झूठी ही रहेगी और द्रष्टा जो है सो सत्य है। हमारा तुम्हारा स्वरूप द्रष्टा है —

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः,
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। BG - 02.23 **।।**

आत्मा को वायु सुखा नहीं सकता क्योंकि दृश्य है छाया मात्र है, अग्नि जला नहीं सकता, जल गीला करके नाश नहीं कर सकता, पृथ्वी के कार्य अस्त्र-शस्त्र छेदन नहीं कर सकते काट नहीं सकते क्योंकि छाया मात्र हैं आत्मा द्रष्टा है। जैसे TV के शीशा में दिखाई पड़ने वाले अस्त्र-शस्त्र—अग्नि बाण चलते हैं अग्नि जलती है, वरुण बाण चलाते हैं तो जल की वर्षा हाने लगती है, भाला-बर्छी तीर-तलवार चलते हैं तो क्या TV का शीशा फूटता है? या जलता है? या जल से कभी गीला होता है? क्योंकि वो छाया चित्र हैं शीशा सत्य है छाया चित्र झूठे हैं ऐसे ही आत्मारूपी दर्पण में ये सारा संसार और पंचमहाभूत दिखाई पड़ते हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश, इन्द्रादि देवता, काल-यमराज-मृत्यु आदि ये सब आत्मारूपी दर्पण में दिखाई पड़ते हैं छाया चित्र के समान

तो आत्मारूपी दर्पण को ये छू सकते हैं क्या? क्या नाश करेंगे क्योंकि छायाचित्र हैं, यदि सच्चे होते तो कुछ नाश कर सकते पर सत्य हैं नहीं।

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम्,
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।।

सारा विश्व दर्पण में दिखाई पड़ने वाली नगरी के समान आत्मारूपी दर्पण में दीख रहा है तो भला छाया चित्रों से कभी सत्य पुरुष का नाश हो सकता है? कभी नहीं हो सकता इसलिये अर्जुन! हमारा तुम्हारा स्वभावसिद्ध स्वरूप सत्-चित्-आनंद ब्रह्म ही है और जितना दृश्य है, जितनी मानस कल्पनायें हैं (मन भी तो छाया है, अनेक प्रकार की ये मन कल्पना करता है) **'चराचरंभाति मनो विलासं'** ये सब मन का विलास मात्र है, मन जो कल्पना करता है वो ही बन बैठता है और मन हमारा दृश्य है और मन से बनाया हुआ संसार भी दृश्य है, ये मन भी हमको छूता नहीं इसलिये **'विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति'** इस अविनाशी आत्मा का विनाश करने में कोई समर्थ नहीं है। इसलिये अर्जुन! हमारा तुम्हारा स्वरूप तुमने कहा, तुमने ये पूछा कि अमरता की बात बताओ जिससे मृत्यु न आवे तो **आत्मा स्वभाव से ही अमृत है इसकी मृत्यु करने वाला कोई है नहीं और आत्मा अनंत अखण्ड ज्ञानस्वरूप है, और आत्मा आनंद स्वरूप है, दुःख का लेश भी नहीं है आत्मा में कभी, ये दुःखादि सब माया राज्य में हैं, मन में ही हैं आत्मा में नहीं हैं।**

जनम मरण हैं देह के सुख दुःख मन के जान,
भूख प्यास गुण प्राण के सॉख्य शास्त्र निर्वाण।।

भूख-प्यास प्राणों का धर्म है, सुख-दुःख मन का धर्म है और जन्म-मरण ये शरीरों का सो ये माया मात्र हैं, हम तुम इनके द्रष्टा हैं तो द्रष्टा ब्रह्म है। इस प्रकार से भगवान ने वास्तविक तत्त्व का उपदेश दिया इसलिये हमारा तुम्हारा स्वभावसिद्ध स्वरूप सत्-चित्-आनंद ब्रह्म है शेष सब दृश्य माया मात्र है, झूठा है, छाया मात्र है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 10 - Voice 07

४८

देही नित्य-अवध्य है

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी से अर्जुन ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया —

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः,
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यतेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। BG - 02.07 **।।**

हे भगवन्! अज्ञानता के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है, धर्म को भी ठीक ठीक से नहीं जानता हूँ, मेरा परम कल्याण किस प्रकार से होगा? मृत्यु की निवृत्ति अमृतत्त्व की प्राप्ति, आत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति सुख शान्ति की प्राप्ति किस प्रकार से होगी उस उपाय को भी नहीं जानता हूँ इसलिये आप ईश्वर की, सर्वज्ञ परमात्मा की मैं शरण में हूँ, आपका शिष्य हूँ मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण है, आप मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें। अब सम्पूर्ण गीता का मुख्य प्रश्न यही है और सभी जीवों का भी यही एक प्रश्न है क्योंकि सभी जीव दुःखों की निवृत्ति और सुख शान्ति की प्राप्ति चाहते हैं तो अर्जुन का प्रश्न तो सभी जीवों की तरफ़ से है और मृत्यु की निवृत्ति अमृतत्त्व की प्राप्ति चाहते हैं। कोई भी जीव मृत्यु पसन्द नहीं करता है मृत्यु नहीं चाहता, सब जीव अमरता ही चाहते हैं कि मैं कभी न मरूँ। तो ये सब जीवों का प्रश्न है सोई अर्जुन का प्रश्न है और अज्ञानता भी किसी जीव को पसन्द नहीं है क्योंकि ज्ञान के लिये ये विद्यालय में जाते हैं, विद्या नाम ज्ञान का है तो ज्ञान सीखने के लिये विद्यालय में जाते हैं अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं मेहनत करते हैं पढ़ते हैं। अज्ञानता के लिये तो कुछ नहीं करना पड़ता, अज्ञानता तो पहले से अपने आप ही है पर ज्ञान अपने आप नहीं होता है जैसे घर में कूड़ा तो अपने आप ही आ जाता है पर सफ़ाई अपने आप नहीं होती, ऐसे ही —

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।। BG - 05.15 **।।**

यह अज्ञान जीव को पहले से ही अपने आप भरा पड़ा है पर ज्ञान के लिये तो पुरुषार्थ करना पड़ता है। जिस विषय का ज्ञान प्राप्त करना हो उस विषय का अध्ययन अवश्य करना पड़ता है, बिना पढ़े उस विषय का ज्ञान नहीं होगा तो जैसे न्याय है, व्याकरण है, साहित्य है इनके ज्ञान के लिये ये विद्यायें पढ़ना पड़ता है ऐसे ही ब्रह्म ज्ञान के लिये ब्रह्म विद्या है, ब्रह्म ज्ञान के लिये ब्रह्म विद्या पढ़ना पड़ता है। ब्रह्म विद्या उपनिषद को कहते हैं, ब्रह्मसूत्र है गीता है ये ब्रह्म विद्या है इनसे ब्रह्म का ज्ञान होता है इसलिये जिस ज्ञान की इच्छा हो उस विद्या का अध्ययन तो आवश्यक होता है। तो ये गीता क्या है? वो ब्रह्म विद्या है इससे ब्रह्म का ज्ञान होता है, अपनी आत्मा का ज्ञान होता है। जीव अपनी आत्मा को नहीं जानता है, ब्रह्म को नहीं

जानता है इसीलिये अशान्ति है, आत्मा को न जान करके अपने आपको शरीर मान लेता है। **'अहं स्त्री' 'अहं पुमान्'—** मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हूँ ये ही माने बैठे रहता है परन्तु ये अपनी आत्मा का स्वरूप है नहीं। ये भ्रान्ति से अपने आपको शरीर मानता है, इसको **संग-भ्रान्ति** कहते हैं — शरीर के साथ में इस जीव का संग हो गया है। संग तो नहीं होता है, इस शरीर में रहता है और शरीर को देखता है फिर भी शरीर से अलग रहता है संग होता नहीं है इसको संग-भ्रान्ति कहते हैं, संग न होकर के भी अपने को शरीर मान लेना, इस विपरीत भावना का नाम भ्रान्ति है जैसे रस्सी को सॉप मान लेना भ्रान्ति है तैसे ही हमारा तुम्हारा स्वरूप तो ज्ञान है, जीव का स्वरूप तो ज्ञान है और देह तो अज्ञानरूप है देह को तो ज्ञान नहीं है तो ज्ञानरूप होते हुए हम अपने को अज्ञानरूप शरीर मान लेवें इसको विपरीत भावना कहते हैं, इसको भ्रान्ति कहते हैं, *'और का और'* जान लेना भ्रान्ति है। कदापि हम शरीर नहीं हो सकते क्योंकि शरीर अज्ञानरूप है, दृश्यरूप है और हम ज्ञानरूप हैं, द्रष्टारूप हैं तो दृश्यरूप अज्ञानरूप हम कैसे हो सकते हैं? किन्तु कभी नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार से सूक्ष्मशरीर इन्द्रिय मन बुद्धि भी हम नहीं हो सकते, उनके भी द्रष्टा हैं अलग हैं उनसे, हो नहीं सकते हैं परन्तु जीव इस बात को भूल गया है, इसको संग-भ्रान्ति हो गयी है इस देह के साथ बहुत जन्म से रहते रहते तो शरीर में विपरीत भावना हो गयी है।

बहुजन्म दृढ़ाभ्यासात् देहादिषुआत्मधीः क्षणात्,
पुनः पुनः उदेत्तेवं जगत सत्यत्त्वधीरपि।।

बहुत जन्मों के दृढ़ अभ्यास से कि मैं शरीर हूँ मैं शरीर हूँ, स्त्री-पुरुष हूँ, अनेक जन्मों का ऐसा अभ्यास है तो यही भावना अनेक जन्मों की है ये संग दोष है तो इससे अपने आप को ये शरीर मान बैठा है और शरीर है नहीं। क्योंकि मैं ज्ञानरूप हूँ और शरीर अज्ञानरूप है, मैं शरीर को देखता हूँ और शरीर दृश्यरूप है तो द्रष्टा दृश्य नहीं हो सकता कभी, ज्ञान अज्ञान नहीं हो सकता है तो ये विपरीत भावना है, इसको भ्रान्ति कहते हैं, इसी को अध्यास कहते हैं। अब भगवान इस अध्यास की, भ्रम की ही निवृत्ति करते हैं। हमारा तुम्हारा स्वरूप तो चेतन ही है, ज्ञानस्वरूप ही है ये ही भगवान बताते हैं, अर्जुन! सुनो सावधान मन से, सभी जीवों का ये प्रश्न है और सब जीवों के लिये भगवान का उत्तर है :—

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत,
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितु मर्हसि।। BG - 02.30 **।।**

अर्जुन! सभी देहों में जो देही है माने जीवात्मा है वो नित्य अवध्य है जो देह में रहता है, देह को देखता है, देह से जुदा है, कभी देह से नहीं मिलता है। जन्म-मरण देह के होते हैं जीव के नहीं होते जीव अजन्मा है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
चेतन अमर सहज सुख राशि।।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः,
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। BG - 15.07 **।।**

अर्जुन! ये जीव मेरा अंश है माने मेरा ही रूप है इसलिये ये सनातन है इसका जन्म-मरण नहीं होता, सदा से है और सदा रहेगा क्योंकि मेरा ही स्वरूप है और ये देह मेरी माया से बनते-मिटते रहते हैं, कभी बन जाते हैं कभी मिट जाते हैं इसलिये ये सब देह माया मात्र हैं।

स्थूलदेह-सूक्ष्मदेह -कारणदेह अथवा जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति ये तीनों अवस्थायें तीनों देहों की ही हैं अथवा पंचकोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय) इन सबसे आत्मा जुदा है, इन सबका द्रष्टा है इतनी ही माया है, माया को ज्ञान नहीं है। न जाग्रत को ज्ञान है, न स्वप्न को ज्ञान है, न सुषुप्ति को ज्ञान है और अर्जुन! हमारा तुम्हारा स्वरूप तो ज्ञानरूप है ये तीनों को देखता है, ये तीनों हमको नहीं देखते न अपने को जानते हैं इसलिये इन तीनों से हम जुदा ही हैं, इन तीनों से कभी सम्बन्ध होता ही नहीं, सुख-दुःख आदि इन्हीं में हैं दृश्य में और जन्म-मरण इन्हीं में है, असत्पना जड़पना दुःखरूपपना मिथ्यापना इन्हीं में है, आत्मा तो स्वभाव से ही सत्-चित्-आनंदरूप है। अपने स्वभाव का परित्याग कोई करता नहीं तो हमारा तुम्हारा जो स्वरूप है आत्मा का, चेतन का वो सत्-चित्-आनंद स्वरूप है इसलिये अपना स्वभाव नित्य सत्-चित्-आनंद स्वरूप ही है और इस दृश्य देहादि का स्वभाव असत् है जड़ है दुःखरूप है तो ये असत्-जड़-दुःखरूप ही रहेंगे और हमारा तुम्हारा स्वरूप सत्-चित्-आनंद ही रहेगा। अब इस सत्-चित्-आनंद आत्मा का विनाश करने वाला कोई नहीं है तो इसका नाश अज्ञान कैसे करेगा? अज्ञान तो स्वयं ही नाशवान् है, हमेशा नहीं रहता है। सुषुप्ति का अज्ञान सुषुप्तिकाल में ही रहता है और सुषुप्ति के बाद स्वप्न हो जाता है, स्वप्न के बाद जाग्रत हो जाता है तो ये देखो बदलते रहते हैं सदा नहीं रहते और हमारा तुम्हारा ज्ञानस्वरूप तो सदा ही रहता है कभी तो अभाव नहीं होता, न जाग्रत में न स्वप्न में न सुषुप्ति में, हमेशा मैं देखता ही रहता हूँ निर्निमेष दृष्टि से। ये ज्ञान अविनाशी है इसलिये अविनाशी आत्मा का नाश कभी देखने में नहीं आता। यदि मेरा अभाव हो, मेरा नाश हो तो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तो अज्ञानरूप हैं ये तो मुझको जान नहीं सकते, मैं ही एक ज्ञानरूप हूँ तो मैंने कभी अपना अभाव अनुभव नहीं किया है कि किसी काल में मैं नहीं हूँ, ऐसा कोई काल नहीं है जब मैं नहीं हूँ तो मेरा नाश कहाँ हुआ? जाग्रत में मैं हूँ जाग्रत को मैं देखता हूँ, स्वप्न में मैं हूँ और स्वप्न को मैं देखता हूँ, सुषुप्ति में मैं हूँ और सुषुप्ति को मैं देखता हूँ वैसे ही दिन में मैं हूँ और दिन को देखता हूँ, रात में मैं हूँ और रात को मैं देखता हूँ तो मेरा अभाव कहाँ हुआ? मेरा नाश तो कभी न हुआ उल्टा दिन का अभाव दिन का नाश रात में होता है और रात का नाश दिन में हो जाता है, जाग्रत का अभाव स्वप्न में हो जाता है, अभी स्वप्न जाग्रत में नहीं है, सुषुप्ति में दोनों का अभाव हो जाता है और जाग्रत में सुषुप्ति भी नहीं है तो तीनों अवस्थाओं का परस्पर में व्यतिरेक नामक अभाव होता रहता है पर मेरा तो कभी भी अभाव नहीं होता और न मेरे ज्ञान का अभाव होता है, अखण्ड ज्ञान है इसलिये अर्जुन! हमारा तुम्हारा सबका अनुभव सिद्ध सत्-चित्-आनंद स्वरूप है। स्वयं विचार करके कोई भी देख सकता है, आत्मज्ञान के लिये कोई बहुत विद्या पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, कोई योग साधन करने की आवश्यकता नहीं है, कोई तंत्र मंत्र की ज़रूरत नहीं है और न कोई योग की ज़रूरत है क्योंकि अपनी आत्मा का तो कभी वियोग हो नहीं सकता है, संयोग-वियोग दूसरी चीज़ों का हुआ करता है भला आत्मा का अपने आप से वियोग कैसे होगा? जो ब्रह्म है वो हमारी तुम्हारी आत्मा है इसलिये ब्रह्म का भी वियोग आत्मा से नहीं होता है क्योंकि वो आत्मा ही है इसलिये संयोग नहीं, कोई योग नहीं बनता क्योंकि कोई योग तो तब बने जब आत्मा का वियोग हो अपने से, अरे! जब मैं ही हूँ तो मेरा वियोग मुझसे कैसे होगा? किन्तु नहीं हो सकता है इसलिये किसी योग की भी आवश्यकता नहीं है, केवल जानना ही कर्तव्य है अपने आप को कि मैं सत्-चित्-आनंद स्वरूप ब्रह्म हूँ। जो ब्रह्म है सोइ आत्मा है, जो आत्मा है सोइ ब्रह्म है और बाकी दृश्य ये माया है, माया का अर्थ होता है मिथ्या प्रतीति, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इतनी ही माया है सो मेरी दृश्य है और ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति रोज़ ही आते जाते रहते हैं पर मेरा कभी संग नहीं होता क्योंकि माया दृश्य है मैं द्रष्टा हूँ जैसे घट द्रष्टा का घट से संग नहीं होता, मठ द्रष्टा मठ से जुदा रहता है, मठ अलग है मठ को देखने वाला चेतन आत्मा अलग है तैसे ही ये तीनों देहों का, तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा अलग है, तीनों देह घट के समान दृश्य हैं दोनों का कुछ मेल नहीं होता तो दृश्य के गुण धर्म

हमारी तुम्हारी आत्मा में कहाँ आवेगे? नहीं आ सकते हैं, कोई हमको भला कहे, बुरा कहे तो हमारी आत्मा तक पहुँचेंगे? कभी नहीं पहुँचेंगे, अरे ये आपस में देह इन्द्रिय मन बुद्धि तक ही रह जायेंगे, ये तो निद्रा में भी सुषुप्ति में भी नहीं पहुँचते हैं। मुझमें ग्रहण त्याग नहीं है, न मैं कुछ ग्रहण करता हूँ, न मैं कुछ त्याग करता हूँ, लेन-देन का व्यवहार मुझमें नहीं है ये तो दृश्य में ही है। किसी ने किसी को गाली दिया उसने सुनी अनसुनी कर दिया, किसी ने कहा महात्माजी वो अमुक आदमी तुमको गाली दे रहा था महात्मा ने कहा हम भिक्षुक लोग हैं भिक्षा माँग के गुजर करते हैं भिक्षा माँगने जाते हैं, किसी ने हमको भिक्षा दिया हमारे मन की भिक्षा हुई तो हमने ले ली और अनुकूल भिक्षा नहीं है उसको न लिया तो वो देने वाले के पास में रह जायेगी। वो अच्छी वाणी बोला हमने ले लिया, गाली आदि देता है दुर्वचन कहता है वो हमारे अनुकूल नहीं है हमने नहीं लिया तो उसी के पास रह गई वो। तो भई संसार देता है तुम्हारी इच्छा हो लेओ नहीं इच्छा हो तो मत लो भाई! कोई ज़बरदस्ती थोड़े है। अरे गाली वो दे रहा है न तुमको तुम्हारी स्वतंत्रता है लो चाहे मत लो। सज्जनों! आत्मा में लेन-देन का व्यवहार नहीं है, स्वभाव से ही आत्मा अलग है, दृश्य से अलग है। इस प्रकार से हे अर्जुन! आत्मा में इस दृश्य का कोई भी सम्बन्ध नहीं होता इसलिये दृश्य के गुण दोष आत्मा में कभी आते ही नहीं हैं, असंग है ऐसा जानना चाहिये। तो **'देही नित्यमवध्योऽयं'** अर्जुन! देही स्वभाव से ही नित्य अवध्य अजर अमर अविनाशी है मृत्यु नहीं है, देही स्वभाव से ही अनंत सुख सागर है, आनंद सिंधु है और स्वभाव से ही अनंत अखण्ड ज्ञानरूप है प्राप्ति नहीं करनी है, अमरता की प्राप्ति नहीं करनी, सुख की प्राप्ति नहीं करनी, ज्ञान की प्राप्ति नहीं करनी क्योंकि ये तो हमारा स्वभाव सिद्ध स्वरूप ठहरा और मृत्यु की निवृत्ति नहीं करनी, अज्ञान की निवृत्ति नहीं करनी, दु:ख की निवृत्ति नहीं करनी क्योंकि मुझमें तो ये हैं ही नहीं ये तो दृश्य में हैं और ये दृश्य मुझको छूता नहीं है तो निवृत्ति क्या करनी है ये तो निवृत्त ही है। तो असत्-जड़-दु:खरूपता, मृत्यु, अज्ञानता और दु:खरूपता ये मुझमें हैं नहीं नित्य निवृत्त हैं और सत्-चित्-आनंदरूपता — सत् माने अमरता, चित् माने ज्ञान और आनंद माने अनंत सुख ये मेरा स्वरूप है इसकी प्राप्ति नहीं करना है। तो अर्जुन! ज्ञान का फल यही है कि न नित्य निवृत्त असत्-जड़-दु:खरूपता की निवृत्ति करनी है और न नित्य प्राप्त आत्मा की प्राप्ति करनी है माने न कुछ प्राप्त करना है न कुछ छोड़ना है केवल जानना ही था इसलिये आत्मा का संयोग-वियोग किसी से होता ही नहीं है वो तो अखण्ड एक अद्वितीय है, दृश्य का संयोग कभी होता ही नहीं है आत्मा अलग ही रहता है, इस दृश्य को ही भ्रान्ति कहते हैं आत्मा अधिष्ठान है अत: **मैं देह नहीं हूँ**। 'मैं देह हूँ' ये भ्रान्ति थी, भगवान ने ये भ्रान्ति मिटा दिया क्योंकि देह दृश्य है, तू द्रष्टा है तू देह है नहीं इसलिये ये भ्रम को भगवान ने मिटाया और हमारे स्वरूप को बता दिया। तो **'देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत'** — सबके देहों में (कोई एक के ही देह में नहीं बल्कि सबके देह में चाहे स्त्री हो, पुरुष हो, मनुष्य हो, पशु हो पक्षी हो, देवता हो दैत्य हो या हिंदु-मुसलमान-ईसाई-पारसी हो) जो देही आत्मा है स्वभाव से ही सत्-चित्-आनंदरूप है इसलिये ये आत्मज्ञान का किसी से विरोध भी नहीं है, सबके सम्मत है क्योंकि सबकी आत्मा का स्वरूप भगवान बता रहे हैं, इसमें कोई दो मत नहीं हैं एक मत हैं। इसलिये सर्वसम्मत ये ज्ञान है अर्जुन! और जितने भी बहुमत हैं ये देह मन बुद्धि में हैं देहों में हैं अनेक मत क्योंकि ये अनेक हैं इनमें **'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्न'** मुंड मुंड की मति माने बुद्धि भिन्न भिन्न ही है, अनेक विचार हैं, अनेक आकृति हैं, अनेक प्रकार की प्रकृति/स्वभाव हैं, ये माया राज्य में हैं आत्मा में नहीं, आत्मा तो सबका एक है। **तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितु मर्हसि —** इसलिये किसी भी भूतप्राणी के लिये अर्जुन! हमको तुमको शोक नहीं करना चाहिये, ये भगवान ने बताया। ये दूसरे अध्याय का ३०वाँ श्लोक है, दूसरे अध्याय के ११वें श्लोक से भगवान ने इस ज्ञान का प्रतिपादन करना शुरु किया—देह-देही का विवेक, आत्मा-अनात्मा का विवेक-विचार माने अलग-अलग जानना।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत,
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितु मर्हसि।। BG - 02.30 **।।**

अब आगे देह का धर्म वर्णन करेंगे। देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के अपने जो धर्म हैं वो इनमें बने रहें इनसे अपना क्या हानि-लाभ होता है हम द्रष्टा का? और ये हमको सब छूते हैं नहीं इसलिये आगे ये कहेंगे —

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि,
धर्म्याद्धि युद्धाच्छेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।। BG - 02.31 **।।**

स्वधर्म का मतलब यहॉ देहधर्म से है, देहधर्म को भी देखते हुए अर्जुन! इस प्रकार से तुम कम्पायमान होने के योग्य नहीं हो और युद्ध से बढ़ करके कल्याणकारक क्षत्रिय के लिये दूसरा कोई धर्म है नहीं क्योंकि क्षत्रिय का जो युद्ध है वो प्रजा पालन के लिये है, प्रजा की रक्षा के लिये है, जो प्रजा को दु:ख देवें उन दुष्टों के दलन के लिये है क्योंकि दुष्टों के दलन के बिना प्रजा की रक्षा न होगी, प्रजा को जो सतावे उनको युद्ध में मारना ही कर्तव्य है, ये क्षत्रिय के लिये धर्म बताया गया है इसलिये देह दृष्टि से भी तुमको कम्पायमान होना उचित नहीं है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 35 - May 11

४९

अर्जुन ! अपने स्वरूप में जागो

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा हे भगवन्! अज्ञान के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है, धर्म को भी सम्यक प्रकार से नहीं जानता हूँ, मेरा परम कल्याण किस प्रकार से होगा उस उपाय को भी नहीं जानता हूँ, आप सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं आप जानते हैं आपके बताने से मैं भी जान सकता हूँ।

सो जानेहि जेहिं देव जनाई,
जानत तुमहिं तुमहिं होई जाई।।

इसलिये हे भगवान! आप ईश्वर की मैं शरण में हूँ, आपका शिष्य हूँ मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण हैं आप मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! ऐसा तो परम कल्याण स्वरूप मैं ही सच्चिदानंदघन ब्रह्म हूँ और जो मैं हूँ 'तत्त्वमसि', अर्जुन! वही तू भी है। मुझमें तुझमें भेद नहीं है, शेष सब मेरी माया है क्योंकि मैं ही परमात्मा हूँ और मैं ही जीवात्मा हूँ। सब शरीरों के भीतर मैं ही जीवात्मा कहा जाता हूँ और इन सब शरीरों के बाहर मुझे ही परमात्मा कहते हैं जैसे आकाश घट के भीतर रहे तो घटाकाश कहा जाता है और बाहर रहे तो महाकाश कहा जाता है पर आकाश अखण्ड है, खण्ड खण्ड तो होता नहीं है। इसी प्रकार से हे अर्जुन! घटरूप सब शरीरों के भीतर भी मैं ही हूँ, आकाश से भी अति सूक्ष्म हूँ तो मुझे ही जीवात्मा कहते हैं और ये शरीरों के बाहर होने से मुझे ही परमात्मा कहते हैं पर मैं अखण्ड हूँ, खण्ड खण्ड होता नहीं इसलिये जो महाकाश है वो ही घटाकाश है। ऐसे ही जो परमात्मा है वो ही सबकी आत्मा है इसलिये आत्मा परमात्मा में भेद नहीं है। जितने शरीर हैं ये मेरी माया से सब क्षणमात्र में बन जाते हैं, मैं इच्छा करता हूँ सब शरीर बन जाते हैं। मुझ ईश्वर के और जीवों के सब शरीर मेरी माया से बन जाते हैं। राम-कृष्ण-विष्णु शिव-शक्ति सूर्य -गणेश कच्छ-मच्छ वामन-वराह नृसिंह आदि जितने अवतार हैं ये मेरी इच्छा शक्ति से एक क्षण में बन जाते हैं — **'निज इच्छा निर्मित तनु माया गुण गोपार'**, मैं माया, माया के गुणों से, इन्द्रियों से परे हूँ पर मेरी इच्छा से शरीर एक सेकण्ड में बन जाता है और सारा विश्व ब्रह्माण्ड भी बन जाता है इसलिये अर्जुन! ये सारा संसार मुझसे ही उत्पन्न होता है, मुझमें ही रहता है और मुझमें ही लीन हो जाता है फिर आप अकेला सच्चिदानंदघन ब्रह्म मैं ही रह जाता हूँ, आत्मा या परमात्मा की न उत्पत्ति होती है न लय होता है, जगत की ही उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय आत्मारूपी अधिष्ठान में होती है, वो भी माया से होती है। जो जो चीज़ माया से होती है वो झूठी ही हुआ करती है सत्य नहीं होती है इसलिये हे अर्जुन! अपने स्वरूप में जागो, तुम्हारा स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है और ये संसार स्वप्नवत् मिथ्या है। जैसे पुरुष स्वप्न देखता है तो पुरुष ही स्वप्न का आधार-अधिष्ठान है, पुरुष में ही द्रष्टा में ही स्वप्न हुआ, द्रष्टा में ही रहा और जब जागा तो स्वप्न कहाँ गया? कहीं बाहर तो नहीं गया स्वप्न का जगत, आत्मा में ही लीन हो गया क्योंकि झूठा ही था फिर अपना स्वरूप रह गया, द्रष्टा रह

गया। सबको अनुभव है कि रोज़ ये स्वप्न मुझको आते हैं और जागने पर नहीं रहते तो कहीं जाते तो हैं नहीं, आत्मा में ही लीन हो जाते हैं इसलिये स्वप्न को माया कहते हैं, मिथ्या कहते हैं, अध्यास कहते हैं, भ्रम कहते हैं। अनेक बार उत्पन्न हो होकर के नाश होते रहते हैं आत्मा में ये स्वप्न, जैसे पुरुष से छाया होती है, पुरुष में ही रहती है और फिर पुरुष में लीन हो जाती है फिर सत्य पुरुष ही रह जाता है। ऐसे ही अर्जुन! ये मेरी माया है और माया से होने वाला सारा चराचर जगत है। पुरुष की छाया के समान, स्वप्न द्रष्टा में स्वप्न के समान ये जगत उत्पन्न होता है, मुझमें ही रहता है फिर मुझमें ही लीन हो जाता है फिर मैं सत्य अकेला रह जाता हूँ इसलिये हे अर्जुन! अपने स्वरूप में स्थित होकर के (अपनी जाग्रत अवस्था में जैसे स्वप्न नहीं रहता है अपने में लीन होता है ऐसे ही जाग्रत भी सपना ही है) जाग्रत जगत को भी अपने में लीन करके सच्चिदानंद रूप से तू अपने आप में स्थित हो जा, **'सब विश्व लय कर आप में बस आप में लवलीन है'**। इस प्रकार से अर्जुन! आत्मा ही सत्य वस्तु है, अपनी आत्मा में स्थित होना ही स्थितप्रज्ञ का लक्षण है, यही अपने स्वरूप में जागना है। मैं और मेरी वाणी वेद और मेरे कृपा पात्र संत महात्मा लोग ये सब सोये हुए लोगों को जगा रहे हैं। जो जीव अपनी आत्मा को नहीं जानता वो आत्मा की तरफ़ से सोया हुआ है, इन छायारूप शरीरों को अपना स्वरूप माने बैठे हैं इन्हीं को सत्य मानते हैं, भला जो अपने को शरीर मानेगा वो जन्म मरण से कैसे बचेगा? ये शरीर तो छाया के समान उत्पन्न होते हैं पुनः नाश होते हैं। अर्जुन! अपना स्वरूप तो शरीर नहीं शरीर का द्रष्टा साक्षी है। शरीर में ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रपना है, स्त्री-पुरुषपना है, जन्म-मरण है, **'कौमारं यौवनं जरा'**—कौमार अवस्था यौवन अवस्था जरा अवस्था है फिर मृत्यु है जन्म है ये तो सब स्थूल शरीर के ही धर्म देखने में आते हैं आत्मा के तो हैं नहीं।

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसौंदर्यजातयः,
स्थूलदेहगता एते स्थूलाद्भिन्नस्य मे नहि।।

नाम रूप जाति वर्ण आश्रम ये सब स्थूल शरीर के ही धर्म हैं, स्त्री-पुरुष के रूप ये सब शरीरों के ही रूप हैं आत्मा के तो कोई रूप हैं नहीं वो तो अरूप है निर्गुण-निराकार है इसलिये अर्जुन!

नाहं मनुष्यो न च देव यक्षो, न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रः,
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो, भिक्षुर्न चाहं निज बोध रूपः।।

अपना स्वरूप देव नर किन्नर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी ये कोई अपना स्वरूप नहीं है ये तो सब शरीर ही हैं। अर्जुन! ये छाया के समान अपनी आत्मा में कल्पित हैं इन्हें अपनी ही छाया जानो अर्जुन। तो अपनी छाया को हम ही देखते हैं, भला छाया हमारा सच्चा स्वरूप कैसे हो सकता है? छाया अपना स्वरूप दीखता है, शरीर जैसी ही दीखती है छाया भी परन्तु वो तो झूठी प्रतीति है न! सत्य तो नहीं है, सत्य तो पुरुष ही है, छाया तो सत्य नहीं है। जो अज्ञानी है वो छाया को सत्य मान सकता है जैसे बालक। बालक छाया को सत्य मान लेता है और छाया के साथ खेलता भी है, प्रेम भी करता है और कभी छाया से डर भी जाता है क्योंकि छाया को वो सत्य माने बैठा है जैसे भगवान राम अज्ञान लीला कर रहे हैं, बाललीला अज्ञान लीला है।

रूप राशि नृप अजिर बिहारी,
नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी।।

रूप राशि भगवान राजा दशरथ के ऑगन में खेल रहे हैं, चारों तरफ़ खम्भों में दीवारों में स्फटिक मणियॉ जड़ी हुई हैं, उत्तम उत्तम जाति के शीशे जड़े हुए हैं। उन दर्पणों में राम के प्रतिबिम्ब पड़ रहे हैं तो हज़ारों लड़के भी दिखाई पड़ रहे हैं, जिधर निहारते हैं उन शीशों में,

मणियों में राम के प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं। राम क्या जानते हैं ये कितने अच्छे लड़के हैं उनसे प्रेम करते हैं, उनके साथ खेलते हैं, नाचते हैं तो वो सब लड़के भी नाचते हैं माने छाया भी नाचती हैं। अरे पुरुष नाचेगा तो छाया तो अपने आप नाचने लगेंगी क्योंकि वो पुरुष के परवश हैं न छाया, स्वतंत्र तो कोई छाया होती नहीं है। पुरुष अँगुली उठायेगा तो छाया को तो उठाना ही पड़गा, पुरुष नाचेगा तो छाया को नाचना ही पड़ेगा क्योंकि वो पुरुष के परवश हैं। झूठी चीज़ सत्य के परवश हुआ करती है स्वतंत्र नहीं होती है, पुरुष स्वतंत्र होता है। इसी प्रकार से जो अज्ञानी जीव हें वो बालक के समान हैं वो भी शरीर रूपी छाया को अपना ही स्वरूप मान बैठते हैं, सत्य ही मान लेते हैं और जब सयाना होता है बालक तो अपनी छाया को छाया जानता है माने झूठी जानता है, सत्य नहीं जानता। ऐसे ही जब ईश्वरकृपा गुरुकृपा से जीव को ज्ञान होता है तो ये चराचर जगत को आत्मदेव की छाया ही जानता है, सत्य नहीं जानता है। तो हे अर्जुन! मैं ईश्वर, मेरी वाणी वेद और संत महात्मा जो मेरे कृपापात्र हैं वो सब जीव को जगा रहे हैं कि अपने सच्चिदानंद ब्रह्म स्वरूप को जानो, सारे संसार को स्वप्न के समान छाया के समान जानो! जागो!

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्य निबोधक।।

श्रुति भगवति कहती है कि अरे जीवों उठो! और जागो! **'प्राप्य वरान्य निबोधक'** जाओ संत महात्माओं के पास और अपने सच्चिदानंद स्वरूप को पहचानो, श्रुति भगवती जगाती है माता की भाँति ऐसे ही संत महात्मा जगाते हैं कि अरे जीवो! अपने स्वरूप को पहचानो, अपने स्वरूप को जानना ही जागना है और न जानना ही सोना है इसलिये तुम सो रहे हो अपने स्वरूप को पहचान नहीं रहे हो और शरीर रूपी छाया को अपना स्वरूप माने बैठे हो, तुम्हारा स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है, नारायण है —

नारायणोऽहं नरकान्तकोऽहं पुरान्तकोऽहं पुरुषोऽहमीशः,
अखण्ड बोधोऽहं शेष साक्षी निरीश्वरोऽहं निर्हन्च निर्ममः।।

मैं नारायण हूँ, सब भूत प्राणियों का साक्षी हूँ, अखण्ड हूँ, सच्चिदानंद स्वरूप हूँ, मेरे ऊपर कोई नहीं है सारा संसार तो मेरी छाया ही है इसलिये शरीर में अहंता और शरीर के सम्बन्धियों में ममता ये मेरा स्वरूप नहीं है, न मैं शरीर हूँ और न मेरे कोई सम्बन्धी हैं। एक तो मेरा शरीर भी छाया है, सब शरीर छाया हैं, मुझ आत्मा रूपी अधिष्ठान में पुरुष में ये सब छाया दिखाई पड़ रही हैं मुझको और मेरे ही आश्रित हैं।

अम्भोधिवत् पादविवर्जितोहं आकाशवत् कल्पविदूर्गोहं,
आदित्यवत् भास्यविलक्षणोंहं आजवन्यनित्यविनश्चलोहं।।

मैं आकाश के समान अनादि अनंत हूँ, सर्वत्र व्यापक हूँ, सबके भीतर हूँ पर सबसे असंग हूँ क्योंकि आकाश सबके भीतर रहता है पर सबसे असंग रहता है किसी को छूता नहीं। ऐसे ही मैं सबके भीतर भी हूँ और सबके बाहर भी हूँ पर फिर भी असंग हूँ, द्रष्टा-साक्षी रूप से सबके भीतर रहता हूँ छूता नहीं किसी को। आदित्य के समान सबका प्रकाशक हूँ माने द्रष्टा हूँ सूर्य के समान, अनादि अनंत सिन्धु के समान मैं अनादि अनंत आनंद का सिन्धु हूँ और पर्वत के समान अचल हूँ जैसे आकाश चलता नहीं है आकाश भी अचल है क्योंकि आकाश चले कहाँ? अरे सब जगह जहाँ जाओ वहीं आकाश है, ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ आकाश न होवे। चलना तो परिछिन्नता में बनता है कि एक देश में हो दूसरे देश में न हो तब चलना बनता है, आकाश तो सब जगह है ऐसे ही आत्मा सर्वत्र व्यापक है कहाँ चले? **'अचलोऽयं सनातनः'** ऐसा अर्जुन अपना स्वरूप है, अपने स्वरूप में ही अपने चित्त को, अपनी बुद्धि को स्थिर करो अर्जुन! ये ही अपने स्वरूप में जागना है और संसार को मिथ्या जानो ये ही संसार की तरफ़ से सोना है। ये अज्ञानी लोग तो संसार में जाग रहे हैं माने स्त्री पुत्र धन और अपने शरीर को सत्य आर सुखरूप मान रहे हैं ये ही संसारी लोगों का संसार में जागना है और

आत्मा की तरफ़ से सोये हुए हैं, आत्मा को नहीं जानते हैं इसलिये आत्मा की तरफ़ से सोये हैं और जो ज्ञानी लोग हैं वो आत्मा में जाग रहे हैं, संसार को मिथ्या स्वप्न देख रहे हैं इसलिये वो संसार से सोये हैं आत्मा में जागते हैं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी,
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।। BG - 02.69 **।।**

अर्जुन! संसारी पुरुषों के लिये जो आत्मा रात्रि के समान है न जानने के कारण उस आत्मा में, परमात्मा में ज्ञानीजन जाग रहे हैं और जिस स्वप्नवत् संसार को सत्बुद्धि सुखबुद्धि करके संसारी लोग जाग रहे हैं इस संसार की तरफ़ से ज्ञानीजन सोये हुए हैं माने मिथ्या जान रहे हैं, यही सोना है। इस प्रकार से अर्जुन —

यहि जग जानहि जागहिं जोगी,
परमारथी प्रपंच वियोगी।।

इस संसार रूपी मोहरूपी रात्रि में योगी लोग जाग रहे हैं और बाकी सब संसारी लोग सो रहे हैं।

मोह निशा सब सोवन हारा,
देखें स्वप्न अनेक प्रकारा।।

ये संसारी जीव मोह रूपी निद्रा में सो रहे हैं, नाना प्रकार का संसार सपना देख रहे हैं, **'संसार स्वप्नं तज मोह निद्रां'** ये संसार सपना है मोह निद्रा को त्याग करो अर्जुन!

आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं,
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे,
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।। BG - 02.70 **।।**

अर्जुन! जैसे नदियॉ समुद्र में जाकर अचल हो जाती हैं माने समुद्ररूप हो जाती हैं, समुद्र में मिल जाती हैं और समुद्र में नदियों के मिलने से कोई बाढ़ नहीं आती है वह अपने ज्यों के त्यों स्वरूप में स्थित रहता है, न घटता है न बढ़ता है, नदियॉ न जायें तो समुद्र घटता नहीं है और सारी नदियॉ समुद्र में गिर जायें तो बढ़ता भी नहीं है, **'अचल प्रतिष्ठं'** अचल उसकी प्रतिष्ठा है ऐसे ही अर्जुन! सच्चिदानंद सिन्धु अपनी आत्मा को जिसने जान लिया है, प्रत्यक्ष देख लिया है, सारी संसार की कामनायें उसमें समा जाती हैं क्योंकि संसार की कामना उसको कोई होती ही नहीं है, स्वप्नवत् संसार को देखता है जैसे स्वप्न से जागा हुआ पुरुष स्वप्न की स्त्री पुत्र धन की इच्छा नहीं करता है वो तो जागा हुआ है वो जानता है कि अरे ये तो झूठे ही थे, वो तो सब मुझमें ही समा गये इसलिये उनकी इच्छा नहीं करता है, सारी कामनायें उसकी ख़त्म हो जाती हैं। इसी प्रकार से ज्ञानी पुरुष आत्मानंद को आत्मा में जाग करके जान करके संसार को स्वप्नवत् देखता है इसलिये स्वप्न पदार्थों की इच्छा वो नहीं करता है, वो परम शान्ति को प्राप्त होता है अर्जुन! और संसार में सत्बुद्धि सुखबुद्धि करके जो संसार की कामनायें करता है वो शान्ति को नहीं प्राप्त होता है क्योंकि अशान्त ही होता रहता है। नाशवान् संसार जो एक चीज़ प्राप्त करता है वो ख़त्म हो जाती है, जो जो प्राप्त करता जाता है नाशवान् संसार में नाश होता चला जाता है, कोई रह ही नहीं पाता है तो उसकी कामनायें कहॉ शान्त होंगी? वो तो हमेशा अशान्त ही बना रहेगा, जो नहीं है उसके लाने में लगा रहेगा और जो है उसकी रक्षा करेगा पर रक्षा कर नहीं सकेगा फिर उसका नाश हो जायेगा, झूठी चीज़ कहॉ रहेगी? इसलिये अर्जुन! **'संसार स्वप्नं तज मोह निद्रां'** मोह निद्रा से जागो, संसार को स्वप्नवत् देखो।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः,
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।। BG - 02.71 ।।

अर्जुन! जो पुरुष आत्मतत्त्व को जान करके सम्पूर्ण कामनाओं को छोड़ देता है क्योंकि कामना उसकी पूरी हुई आत्मा को जानकर — अमरता की कामना पूरी हुई कि अपनी आत्मा को जाना कि अरे मैं सत्‌रूप अमररूप ही हूँ, मैं अनंत ज्ञानरूप हूँ तो ज्ञान की कामना ख़त्म हो गई, अमरता की जो इच्छा थी वो पूरी हो गई, मैं अनंत आनंद सिंधु हूँ इसलिये जो सुख की इच्छा थी जीवनभर, वो समाप्त हो गई — सुख से पूर्ण हुआ, अमरता से पूर्ण हुआ, ज्ञान से पूर्ण हो गया है भला पूर्ण को अब इच्छा कहाँ होगी? जो पाना था सो पा लिया जिसको जानना था उसको जान लिया, जिसको पाने के लिये कुछ करना था सो सब कुछ कर लिया अब कुछ करना शेष नहीं, जानना शेष नहीं, पाना शेष नहीं परम शान्ति है उसको अब। अशान्ति तो तभी तक थी जब तक इच्छा की पूर्ति नहीं भयी थी, कुछ पाना था कुछ जानना था तभी तक कुछ करना भी था। जब अनंत आनंद धन पा लिया, अमरता प्राप्त कर लिया, अनंत अखण्ड ज्ञान मिल गया अब तो ये पूर्ण हुआ है। न शरीर में अहंता है न शरीर के सम्बन्धियों में ममता है इनको तो जानता है ये अपना और दूसरे के सब शरीर सपना ही हैं, ये निद्रा से सपना उत्पन्न होता है, ये हमारी तुम्हारी निद्रा की महिमा है अर्जुन! निद्रा से सपना हो जाता है और निद्रा में लीन हो जाता है ये हम तुम देखते ही हैं रोज़।

निद्रा शक्तिर्यथा स्वप्ने अद्‌भुत्स्वप्न कारिणी,
ब्रह्मण्येषा स्थिता माया सर्गस्थित्यन्त कारिणी।।

अर्जुन! जैसे जीव की निद्राशक्ति अद्‌भुत् स्वप्न क्षणमात्र में उत्पन्न कर देती है ऐसे ही ब्रह्म की मायाशक्ति अनंतकोटि ब्रह्माण्डात्मक इस जगत को क्षणमात्र में उत्पन्न कर देती है ये माया की महिमा है। तो निद्राशक्ति जीव की अद्‌भुत् स्वप्न कैसा उत्पन्न करती है? कहा सुनो —

स्वप्ने वियत्गतिं पश्येत्स्वमूर्धा छेदनं तथा,
मुहूर्ते वत्सरओघं च मृत्पुत्रादिकं तथा।।

ये जीव की निद्राशक्ति से जो सपना उत्पन्न हुआ है उसमें कोई मनुष्य बना है कोई स्त्री बना कोई पुरुष बना कोई पिता-पुत्र बना ये सब बन गया भला, निद्रा ने ये सब बना दिया है और सपने में क्या देखता है ये जीव? **वियत्गतिं पश्येत्,** ऐसा देखता है कि मैं आकाश में उड़ रहा हूँ ये अद्‌भुत् काम है मनुष्य आकाश में नहीं उड़ता पक्षी उड़े तो कोई आश्चर्य नहीं पर मनुष्य उड़े तो आश्चर्य है ऐसा देखता है कितना विचित्र है? अरे जो मनुष्य नहीं उड़ सकता आकाश में वो अपने आपको सपने में उड़ता हुआ देखता है। **स्वमूर्धा छेदनं तथा,** यदि अपना सिर कट जाय तो कोई जीवित ही नहीं रहेगा पर स्वप्न में कभी ऐसा देखता है कि मेरा सिर कट गया है और मैं ही देख रहा हूँ अपने कटे हुए सिर को। **मुहूर्ते वत्सरओघं च,** एक क्षणमात्र में वर्षों का समूह देखता है, सपने में कितने ही वर्षों का समूह का समूह देखता है, कोई बालक देखता है कोई वृद्ध देखता है कोई युवा देखता है कोई बहुत उम्र वाले देखता है कोई थोड़ी उम्र वाले देखता है परन्तु अर्जुन! स्वप्न में तो सब एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, कोई ज़्यादा उम्र कोई कम उम्र वाला तो होता नहीं स्वप्न में तो सब एक साथ ही हो जाते हैं और क्षणमात्र में ये सब देख लेता है वर्षों का समूह का समूह। **मृत पुत्रादिकं तथा,** और अपने मरे हुए माता पिता भ्राता भगिनि पत्नी पुत्र परिवार को देखता है उनसे मिलता है बोलता-चालता है हँसता-खेलता है, मरे हुए लोगों को देखता है। तो देख अर्जुन! ये जीव की निद्रा की महिमा देख, निद्राशक्ति की क्या महिमा है।

ईदृशी महिमा द्रष्टो निद्राशक्तेर्यदा तदा,
मायाशक्ते अचिन्त्योयं महिमेतीतिमद्‌भुतं।।

अर्जुन! जब जीव की निद्राशक्ति की ऐसी अद्‌भुत् शक्ति है ऐसी महिमा है तो ईश्वर की जो

मायाशक्ति है उसकी शक्ति अचिन्त्य हुई इसमें तो कहना ही क्या है, **मायाशक्ते अचिन्त्योयं महिमेतीतिमद्भुतंम** इसमें क्या आश्चर्य है? ये माया की ऐसी ही महिमा है क्षणमात्र में अनंतकोटि ब्रह्माण्ड बना देती है।

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रतिवेद कहै।।

ये माया की ऐसी महिमा है अनंतकोटि ब्रह्माण्ड क्षणमात्र में बना देती है और ईश्वर के रोम रोम में अनंतकोटि ब्रह्माण्डदिखा देती है ।

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड,
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।।

ऐसी महिमा है माया की। अर्जुन! माया दिखाई तो पड़ती है पर होती नहीं, इसी का नाम माया है जैसे स्वप्न दिखाई तो पड़ता है पर होता नहीं है झूठा ही होता है, छाया दिखाई तो पड़ती है पर झूठी होती है। इसलिये स्वप्नवत् संसार को जान करके, इसकी प्राप्ति की इच्छा को छोड़ करके और देह में अहंता-ममता को त्याग करके जो अपने आत्म-स्वरूप में स्थित होता है **'स शान्तिमधिगच्छति'** अर्जुन! वो ही परम शान्ति को प्राप्त होता है। स्वप्नवत् संसार में जो सुखबुद्धि और सत्यबुद्धि करके इस संसार के पीछे भागता फिरता है वो तो अशान्त और दु:खी ही होता रहता है क्योंकि संसार तो रहता है नहीं, झूठी चीज़ कहॉ रहेगी?

एषा ब्राह्मी स्थिति: पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति,
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।। BG - 02.72 **।।**

अर्जुन! ये आत्म-स्वरूप में स्थिति 'ब्रह्म-स्वरूप में स्थिति' है, हे पार्थ! ये ब्राह्मी स्थिति कहलाती है इसमें सत्-चित्-आनंद से पूर्ण होता है, ब्रह्मरूप ही ये जीव होता है। यदि ये स्थिति अंत समय में भी आ जाय, **नैनां प्राप्य विमुह्यति**—फिर वो मोह को प्राप्त नहीं होता है माने संसार में सत्बुद्धि सुखबुद्धि नहीं करता है। **स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति**—अंत समय कुछ क्षण ही रह जायें उसके जीवन के तो भी यदि इस समय भी जान लेवे अपने आत्म-तत्त्व को तो ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है, वो जन्म-मरण से छूट जाता है। दिनभर का भूला हुआ यदि शाम को भी अपने घर आ जाय तो सुख-शान्ति से अपने घर में विश्राम करता है भूला हुआ वो नहीं कहलाता है और यदि शाम को भी नहीं आ पाया अपने घर में और रात हो गई तो भटक जायेगा इसलिये 'जीवनभर' क्या है? ये **दिन** है और 'मर गया' तो **रात्रि** है, तो जीते जी मरते समय तक भी माने सायंकाल तक भी (मृत्यु का समय ही सायंकाल है) यदि ये अपने आत्म तत्त्व को जानलेवे तो परम सुख-शान्ति को प्राप्त हो जाता है, जन्म-मरण से सदा के लिये मुक्त हो जाता है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 07 - 08 Nov 06

५०

जगत् भ्रम मात्र है

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया —

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः,
यच्छेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यतेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। BG - 02.07 ।।

हे भगवन्! अज्ञानता के कारण मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है, धर्म को भी सम्यक प्रकार से नहीं जानता हूँ, मेरा परम कल्याण, नित्य सुख-शान्ति की प्राप्ति, अत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति, मृत्यु की निवृत्ति अमृतत्व की प्राप्ति, अज्ञान की निवृत्ति और अनंत अखण्ड ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार से होगी उस उपाय को मैं नहीं जानता हूँ इसलिये मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ मुझे नित्य सुख-शान्ति का उपाय आप बतावें। तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो —

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत,
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।। BG - 02.30 ।।

अर्जुन! जितने भी देह हैं संसार में कुछ तो ईश्वर के देह हैं और कुछ जीव के देह हैं। राम कृष्ण शिव-शक्ति सूर्य गणेश कच्छ मच्छ वामन वराह नृसिंह आदि जो अवतार हुए हैं वो ईश्वर के देह हैं और स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत ये सब जीवों के देह हैं, इन सब देहों में जो रहता है, देहों को देखता है उसको देही कहते हैं। अर्जुन! ये जो देही तत्त्व है वो शुद्ध ब्रह्म तत्त्व है और वही आत्म तत्त्व है, वो नित्य है, अवध्य है, उसका जन्म या मरण नहीं होता है। तो क्या ईश्वर के देहों में और क्या जीव के देहों में जो देही तत्त्व है वो एक ब्रह्म ही है और वही मेरा वास्तविक स्वरूप है। जीव और ईश्वर का वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंदघन ब्रह्म है और जितने भी देह हैं जीव के 'स्थूल-सूक्ष्म-कारण' ये तीन देह और जीवों के सभी स्थूल-सूक्ष्म-कारण देहों का जो समुदायरूप समूह है वो मुझ ईश्वर के शरीर हैं 'विराट-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत्', ये समष्टि शरीर हैं। तो जीवों के जितने भी स्थूल शरीर हैं इन नेत्रों से दिखाई पड़ने वाले जीवों के सभी स्थूल शरीर मिला करके मुझ ईश्वर का एक शरीर होता है उसका नाम **विराट** होता है। मुझ कृष्ण के शरीर में सब संसार भर के जीवों के शरीर जुड़े हुए हैं, ग्यारहवें अध्याय में भगवान ने दिखाया भी और अर्जुन ने देखा है और देख करके फिर स्तुति भी किया है। इस प्रकार स्तुति किया है अर्जुन ने —

पश्यामि देवांस्तव देव देह,

सर्वास्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थम्,
ऋषींश्चसर्वानुरंगाश्च दिव्यान्।। BG - 11.15 ।।

हे देव देव! देवों के देव! हे कृष्ण! हे वासुदेव! हे केशव! तुम्हारे देह में मैं समस्त देवताओं को देख रहा हूँ। **पश्यामि देवांस्तव देव देहे,** हे देव! तुम्हारे देह में सब देवताओं को देख रहा हूँ और विशेष विशेष जो भूतों के समूह हैं जैसे मनुष्य का समुदाय, पशुओं का समुदाय, पक्षियों का समुदाय, ऋषियों का समूह, सर्पों का समूह, इन सबको मैं तुम्हारे देह में देख रहा हूँ, देवताओं और दैत्यों का समूह, सिंह व्याघ्रों का समूह, वृक्ष-पर्वतों का समूह माने सबको मैं तुम्हारे इस विश्व-विराट स्वरूप में देख रहा हूँ, एक ही शरीर में सब दिखाई पड़ रहे हैं, भगवान के अंग बना हुआ है सारा संसार। तो भगवान कहते हैं कि व्यष्टि जीवों के शरीर और समष्टि मुझ ईश्वर के शरीर ये तो स्थूल शरीरों का समुदाय है भगवान कृष्ण के शरीर में जो अर्जुन ने देखा ऐसे ही जीवों के जो सूक्ष्म शरीर हैं उन्नीस तत्तवों के, सभी जीवों के सूक्ष्म शरीर मिल करके ईश्वर का एक शरीर होता है उन सामूहिक सूक्ष्म शरीरों का नाम होता है **हिरण्यगर्भ** अथवा **सूत्रात्मा** अथवा **ब्रह्मा** यानि समष्टि जीवों के सूक्ष्म शरीर मिल करके ईश्वर का एक शरीर हो गया हिरण्यगर्भ। तीसरा जो जीवों का कारण शरीर है अज्ञानरूप, तो सभी जीवों के कारण शरीर मिल करके ईश्वर का एक शरीर होता है उसका नाम है **अव्याकृत्, प्रकृति** अथवा **महामाया शक्ति**। तो ईश्वर के समष्टि शरीरों में जीव के सब व्यष्टि शरीर आ गये। अर्जुन! जितने व्यष्टि समष्टि शरीर हैं उनमें मैं परमात्मा आप अकेला व्यापक हूँ, सब देहों में रहने से मुझे देही कहते हैं। मैं नित्य अवध्य हूँ, मेरा न जन्म होता है और न मरण होता है। सब स्थूल-सूक्ष्म-कारण **व्यष्टि** और विराट-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत् **समष्टि** ये सब के सब शरीर मुझ अधिष्ठान ब्रह्म में अध्यास रूप हैं। अधिष्ठान और अधिष्ठान का स्वरूप क्या है? कहा जैसे रज्जु में सर्प का अध्यास होता है माने भ्रम होता है ऐसे ही मुझ शुद्ध सच्चिदानंदघन परमब्रह्म परमात्मा में ये समष्टि व्यष्टि सब शरीर माया सहित अध्यस्थ हैं माने रज्जु में सर्प के समान भ्रमरूप हैं माने रज्जु में सर्प होता नहीं पर दिखाई पडता है इसीलिये रज्जु में दिखाई पड़ने वाला सर्प रज्जु का विर्वत है, परिणाम नहीं है किन्तु विवर्त है। परिणाम और विवर्त का क्या स्वरूप है? — कहा **'स्वस्वरूप अपरित्यागेन अन्यथा वर्तनम् विवर्तः'** जो अपने स्वरूप को न त्याग करके अन्य रूप में दिखाई पड़े उसका नाम विवर्त है जैसे रज्जु अपने स्वरूप को न त्याग करके रज्जु के अज्ञान से, अज्ञान की महिमा से रज्जु सर्प के रूप में दीख रही है तो रज्जु सर्परूप बनी नहीं है केवल अज्ञान के कारण अज्ञान का परिणाम है, रज्जु का जो अज्ञान है वो ही रज्जु को सर्प के रूप में दिखा रहा है क्योंकि रज्जु में कोई सर्प की उत्पत्ति तो भई नहीं, रज्जु तो ज्यों का त्यों अपने स्वरूप में स्थित है और सर्प दीख रहा है ये कहाँ से आया? कहा रज्जु का जो न जानना है, अज्ञान है वो अज्ञान का परिणाम माने विकार है, परिणाम नाम विकार का है — **'स्वस्वरूप परित्यागेन अन्यथा वर्तनम् परिणामः'** जो अपने स्वरूप को त्याग करके दूसरे रूप में दिखाई पड़े उसको परिणाम कहते हैं। तो अज्ञान अंधकार रूप है और वो अज्ञान ही सर्परूप दिखाई पड़ा, रज्जु तो कुछ बनी बिगड़ी है नहीं वो तो ज्यों की त्यों है, वो अज्ञान ने ही सर्प का रूप धारण कर लिया है, उत्पत्ति नहीं भयी है इसलिये वो रज्जु में जो सर्प है अज्ञान का परिणाम है और रज्जु का विर्वत है माने रज्जु में भ्रमरूप है, इसी को अध्यास कहते हैं। तो भगवान कहते हैं ये चराचर जो जगत है न! ये मुझमें अध्यासरूप है, विवर्तरूप है, भ्रमरूप है और ये माया का परिणाम है माने हमारा तुम्हारा स्वरूप जो सच्चिदानंद ब्रह्म है अर्जुन! उसको न जानने से वो अज्ञान ही इस संसार का रूप धारण कर लिया है और हमारा तुम्हारा आत्मा ज्यों का त्यों है, आत्मा कुछ बना नहीं, आत्मा निर्विकार है परिणामी नहीं है, आत्मा का परिणाम माने विकार नहीं होता है। आत्मा कुछ बदलता नहीं है, आत्मा ज्यों का त्यों अपने स्वरूप में स्थित है परन्तु अपनी आत्मा को न जानने से (वो न जानना अज्ञान है) वो अज्ञान ही हमारे तुम्हारे आत्म स्वरूप को जगत रूप में दिखा रहा है, वो अज्ञान ही जगत रूप

बन बैठा है और हम ही हैं हमसे कुछ पैदा नहीं हुआ इसलिये ये अज्ञान का, माया का परिणाम है, अज्ञान और माया एक ही चीज़ है जैसे निद्रा अज्ञानरूप है, उसी को माया कहते हैं। तो ये संसार अज्ञान का परिणाम है, निद्रा का परिणाम है जाग्रत और स्वप्न दोनों और हमारी तुम्हारी आत्मा में विवर्तरूप है माने भ्रमरूप है जैसे रस्सी में सर्प। तो रस्सी को ही सर्प के रूप में अज्ञान ने दिखाया है जैसे जब निद्रा आती है तो हमको तुमको चेतन आत्मा को ही स्वप्न के रूप में दिखा देती है, हम तुम तो द्रष्टा के द्रष्टा ही रहे और ये निद्रा ने हम ही को स्वप्न के रूप में दिखा दिया है, वो स्वप्न रस्सी में सॉप के समान झूठा है, ये निद्रा का परिणाम है स्वप्न और हमारी तुम्हारी आत्मा में भ्रमरूप है, स्वप्न कुछ नहीं है —

आत्माज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञानान्न भासते,
रज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद्भासते नहि।।

आत्माज्ञानाज्जगद्भाति, केवल अपनी आत्मा को सच्चिदानंद ब्रह्म न जानने से इस अज्ञान से ही ये आत्मा ही जगत के रूप में दिखाई पड़ने लग गया जैसे जाग्रत में जो हमारा तुम्हारा स्वरूप है निद्रा उसे ढॉक देती है। ये निद्रा क्या करती है इसमें दो शक्तियॉ हैं — आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति। **आवरण -शक्ति** आवरण करती है, अपने जाग्रत के स्वरूप को ढॉक देती है और **विक्षेप-शक्ति** से स्वप्न तैयार करती है, ये निद्रा की/अज्ञान की दो शक्तियॉ हैं। जैसे कोई जाग्रत में राजा है तो जब निद्रा आई तो उसके राजा स्वरूप को ढॉक दिया, एक काम तो ये किया आवरण का, इसको आवरण कहते हैं और दूसरा काम निद्रा ने क्या किया? कहा स्वप्न जगत दिखा दिया, वो निद्रा ही स्वप्न जगत बन गई तो निद्रा ने राजा का शरीर भिखारी का बना दिया, स्वप्न में वो अपने को भिखारी देख रहा है और जाग्रत में राजा था भला! ये विक्षेप करा दिया और 'कोई स्त्री, कोई पुत्र, कोई मित्र, कोई शत्रु' ये भी बना दिया माने तमाम स्वप्न का संसार सब रच दिया निद्रा ने, ये विक्षेप-शक्ति है। अब कोई शत्रु मान लो सिर काट रहा है वो ही स्वप्न के शरीर का, अब राजा को दु:ख हो रहा है, उस समय राजा तो है नहीं अपने को भिखारीरूप अनुभव कर रहा है क्योंकि राजा का स्वरूप तो निद्रा ने ढॉक रखा है, बिल्कुल भुला रखा है याद नहीं उसको कि मैं राजा हूॅ जाग्रत में। तो शत्रु सिर काट रहा है, वो भिखारी का शरीर भी झूठा ही बनाया है निद्रा ने, शत्रु का शरीर भी झूठा ही बनाया है, स्त्री पुत्र मित्रों के शरीर भी सब रूप झूठे बनाये हैं और उसकी जो तलवार है जिस तलवार से सिर काट रहा है वो तलवार भी झूठी है, सिर काटने से दु:ख का अनुभव हो रहा है उस समय और वो दु:ख भी झूठा है, सब झूठे झूठे हैं और ऐसा लगता है उस समय स्वप्न में कि ये बिल्कुल सत्य है, दु:ख हो रहा है, शत्रु प्रतीत हो रहा है। अब वो दु:ख कैसे दूर हो? क्या उपाय है? बिना जागे वो दु:ख कैसे दूर हो?

जिन सपने सिर काटे कोई ,
बिन जागे दु:ख दूर न होई।।

बिना जागे कोटि यत्न करे वो दु:ख दूर नहीं होता है और जागते ही दु:ख दूर होता है देर नहीं लगती है। न तो शत्रु रहा, न वो अपना शरीर रहा जिसका सिर काट रहा था, न स्त्री पुत्र मित्र रहे और न सारा संसार रहा स्वप्न का, कोई न रहा और दु:ख भी न रहा, एक मिनट में दु:ख दूर हो गया। इसी प्रकार से ये जाग्रत का जगत भी निद्रा रचित ही है, इसने क्या कर रखा है कि हमारे तुम्हारे जो सत्-चित्-आनंद स्वरूप राजारूप है उसको तो ढॉक रखा है और ये जाग्रत का अपना शरीर और स्त्री पुत्र मित्र शत्रु सब बना दिये हैं ये सब निद्रा जनित हैं, माया जनित हैं, निद्रा को ही अज्ञान/माया सब कहते हैं। अब ये संसार के दु:ख व संसार को हमने सच्चा जान लिया है और अहंता-ममता भी करा दिया है इसी निद्रा ने, एक शरीर में अहंता माने स्त्री

या पुरुष का शरीर मैं हूँ और दूसरे स्त्री पुत्र मित्रों के शरीर में ममता करा दिया है कि ये मेरे हैं, ये अहंता-ममता ये मोह करा दिया है, इसका नाम मोह है और अज्ञान से ये मोह उत्पन्न हुआ है। अपने स्वरूप का अज्ञान ही हुआ है उस अज्ञान ने ही इस मोह को उत्पन्न कर दिया है और अब यहाँ जाग्रत में भी दु:ख हो रहा है। अब ये दु:ख कैसे दूर हो? या तो घोर निद्रा आ जाय जहाँ पर न जाग्रत रहे न स्वप्न रहे — तो घोर निद्रा में ये संसार लय हो जाता है अपने शरीर सहित, न कोई शत्रु है न मित्र है आप देखने वाला मैं तो हमेशा ही रहता हूँ, तो घोर निद्रा में न स्त्री है न पुत्र है न मित्र है न शत्रु है न अपना शरीर है और न कोई दु:ख ही है। सुषुप्ति के आगे समाधि है तो समाधि में खाली मेरा स्वरूप होता है, वहाँ सुषुप्ति भी नहीं होती है तो वहाँ भी कोई नहीं। असली में सुषुप्ति के आगे जो हमारा तुम्हारा स्वरूप है उसको जानना जागना है तो —

जेहि जाने जग जाय हेराई,
जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई।।

जिसको जानने से माने अपने स्वरूप तुरीय को, चौथे को जानने से जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इन तीन की अपेक्षा से चौथा कहा जाता है उस अपने वास्तविक स्वरूप के जानने से कहा ये संसार खो जाता है, ये तो सुषुप्ति में ही खो जाता है समाधि तक तो पहुँचता नहीं। सुषुप्ति तक ही नहीं पहुँचता संसार शत्रु मित्र और कोई दु:ख, सुषुप्ति में किसी ने आज तक दु:ख का अनुभव नहीं किया, न तो कोई शारीरिक दु:ख होता है न मानसिक दु:ख होता है *(शरीर के दु:ख माने—रोग बीमारी के दु:ख और मानसिक दु:ख माने—काम क्रोध लोभ मोह आदि)* पर निद्रा में तो कोई नहीं होता, न तन होता है और न मन होता है इसलिये शरीर के और मन के कोई दु:ख ही नहीं रहते और समाधि में तो निद्रा भी नहीं रहती है तो वहाँ दु:ख कैसे पहुँचेंगे और कोई दु:ख कैसे पहुँचेगा?

तो अपनी शुद्ध चेतन आत्मा साक्षी तक कोई नहीं पहुँच पाता है, दु:ख देने का सवाल ही नहीं है। भगवान कहते हैं ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति और यहाँ के शत्रु-मित्र ये रज्जु में सर्प के समान अध्यस्थ हैं, ये अपनी आत्मा के विवर्त हैं, भ्रमरूप हैं अपनी आत्मा में, आत्मारूपी अधिष्ठान है। अधिष्ठान के बिना निराधार तो कोई प्रतीत न होंगे जैसे रज्जु बिना झूठे सर्प दण्ड माला आदि कोई प्रतीत नहीं हो सकते, झूठी चीज़ की प्रतीति के लिये कोई सत्य वस्तु चाहिये, सत्य ही आधार होता है, झूठे सर्प दण्ड माला का आधार सत्य रज्जु ही है। ऐसे ही झूठे जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति का आधार अर्जुन! हमारा तुम्हारा चेतन आत्मा ही है, हमारी तुम्हारी आत्मा के आश्रित ही ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों अवस्थायें दिखाई पड़ती हैं तो देखने वाला भी मैं ही हूँ और आधार अधिष्ठान भी मैं ही हूँ और ये सब अध्यासरूप है, भ्रमरूप अपनी आत्मा में दीखती है, है नहीं पर दिखाई पड़ती है ये माया की ऐसी ही महिमा है। तो हमारा तुम्हारा स्वरूप तो परिवर्तित हुआ नहीं जाग्रत-स्वप्न के रूप में क्योंकि विकारी नहीं है जैसे रज्जु सर्प आदि बनती नहीं है, निर्विकार है, खाली ये अज्ञान का ही परिणाम हुआ, निद्रारूप अज्ञान का ही परिणाम है जाग्रत-स्वप्न का संसार, परिणाम नाम विकार का है। तो हमारा तुम्हारा आत्मा जगत का विवर्तोपादान कारण है, परिणामी उपादान कारण नहीं है जैसे **दुग्धस्य दधि**, दूध का दही बन जाता है तो उस दही का दूध परिणामी उपादान कारण है माने दूध का परिणाम माने विकार दही है, क्या विकार हुआ? कहा दूध मीठा है और पतला है और दही खट्टा है और गाढ़ा हो गया है अब ये विकारी हो गया तो हमारा तुम्हारा आत्मा ऐसा नहीं है कि कोई विकारी बना दे इसलिये आत्मा तो विकारी बन नहीं सकता, कोई दूसरी चीज़ हो नहीं सकता है ज्यों का त्यों ही रहेगा जैसे रज्जु ज्यों की त्यों ही रहेगी वो कुछ बनेगी नहीं, बस उस अज्ञान का ही परिणाम हैं सर्प दण्ड माला आदि। उस रज्जु में कोई सर्प देखते हैं, कोई माला देखने हैं, कोई दण्ड देखते हैं मानस संस्कार के अनुसार। जिसके मन में दण्ड के संस्कार हैं वो रस्सी में दण्ड

ही देखता है, जिसके मन में माला के संस्कार हैं वो रज्जु को माला के रूप में देख रहा है और जिसके मन में सर्प के संस्कार हैं वो रज्जु को सर्परूप देख रहा है पर रज्जु न तो सर्प बनी, न दण्ड बनी और न माला बनी वो तो लोग रज्जु को ही अपने मन के संस्कार के अनुसार देख रहे हैं, ये मानस कल्पना है। जैसे जंगल में कोई लकड़ी का ठूँठ खड़ा हो, कोई पेड़ की डाली शाखाएँ गिर गई हों टूट गई हों, खाली उसकी शाखा पेड़ ही खड़ा हो और अब थोड़ा अंधकार हो जाय और कोई आवे तो वो उसमें अपने मानस संस्कार के अनुसार अनेक प्रकार की कल्पना कर लेते हैं। थोड़ा अंधकार हो गया तो ठूँठ तो दिखाई नहीं पड़ रहा है वो आवृत हो गया मतलब ढक गया *तो* अब बालक लोग उस ठूँठ में वही देखने लगे जो बालकों के मन में संस्कार हैं, तो बालकों के मन में कोई भूत प्रेत वेताल के संस्कार पड़े थे तो लड़के बोले देखो ये भूत खड़ा है, दूसरों ने कहा हॉ हॉ ये तो भूत है और भाग के आये घर में बताये कहा हमने आज भूत देखा है, जंगल में देखा तो भूत खड़ा था हम भाग आये नहीं तो हमको खा जाता। अब मातायें बच्चों को डराने के लिये ऐसा छोटे में कह दिया करती हैं कि उधर नहीं जाना अँधेरे में उधर भूत आ जायेगा जैसे कृष्ण भगवान को मैया यशोदा कहती थीं कन्हैया अँधेरे में उधर नहीं जाना उधर हउआ खड़ा रहता है वो खा जाता है लोगों को, झूठे ही मतलब जिसमें लड़का रो रहा है तो रोओ नहीं वो सुनेगा तो आ जायेगा पकड़ ले जायेगा, चुप हो जाता है लड़का डर के मारे। तो बालकों के मन में ऐसे भूत प्रेत वेताल के संस्कार रहते हैं वो ही मन की कल्पना कर लेते हैं कि भूत ऐसा होता है और अपनी छाया को भी लड़के कभी भूत समझ के डर जाते हैं, तो सज्जनों ये बालक की भूतों की कल्पना है। और कोई व्यापारी बाहर से आ रहे थे अपने गॉव में और रास्ते में वो जंगल पड़ा उसमें वो ठूँठ देखा थोड़ा अँधेरा हो गया था, यदि पूरा अँधेरा हो जाय तो ठूँठ भी न दिखाई पड़े, थोड़ा उजियाला थोड़ा अँधेरा माने पूरा ठूँठ भी नहीं दीखता है पर कुछ तो दीख रहा है कि कुछ है। तो व्यापारियों के पास धन है तो उनको चोर बदमाश का भय रहता है कि रास्ते में कोई लुटेरे डाकू न मिल जायें बदमाश लोग न मिल जायें। अब उसी लकड़ी के ठूँठ में वो चोर बदमाश की कल्पना कर लेते हैं कि हमारे पास धन है और ये बदमाश खड़ा है कहीं लूट न लेवे? तो वो भी उसको बचाकर दायें बॉयें से भाग करके गॉव में आते हैं लोगों से कहते हैं कि आज हम बच गये नहीं तो लुट जाते, बदमाश खड़ा था और वैसे ही कल्पना कर लेते हैं बदमाश की और उसके अस्त्र-शस्त्र की भी, ये धनियों के मन की मानस कल्पना है। जिसके पास धन होता है उसको डर लगा रहता है चोर बदमाशों का, कहीं आ न जाय चोर बदमाश और लूट लेवे। इसी प्रकार से कोई भगवान कृष्ण के भक्त आ रहे थे उन्होंने देखा उसी ठूँठ को तो देख करके प्रसन्न हो गये कि आज हमारी भक्ति सफल भयी, पूर्ण भयी, साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण खड़े हैं, मोर मुकुट बॉधें हैं बंशी बजा रहे हैं माने मन में जैसे भगवान कृष्ण बैठे थे वही रूप उन्होंने ठूँठ में देख लिया। जो मन में होता है वही बाहर दिखाई पड़ता है —

जाकी रही भावना जैसी,
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।।

तो भगवान कृष्ण की कल्पना कर दिया और कहा आज हमको भगवान कृष्ण का साक्षात् दर्शन हो गया, तो सज्जनों! ये मानस कल्पना है ऐसे ही रस्सी में नाना प्रकार की लोग कल्पना कर लेते हैं जिसके मन में जो होता है। ऐसे हमारे तुम्हारे आत्म स्वरूप में ये मनीराम नाना प्रकार की कल्पना कर लेता है **'चराचरं भाति मनो विलासं'**। अपने स्वरूप को तो जीव ठीक ठीक जान न पाया भला! जब न जान पाया '**आत्माज्ञानाज्जगद्भाति'** तो जगत भासने लगा। अनेक जन्मों से जीव के मन में संसार बसा हुआ है तो आत्मा में संसार की कल्पना कर लिया और अज्ञान के कारण आत्मा को जान न पाया। तो सज्जनों! ये संसार एक मानस कल्पना है दूसरा कुछ है नहीं, कैसे जाना जाय कि मानस कल्पना है? ऐसे जाना जाय कि जब मन रहता है तभी ये संसार रहता है और जब मन निद्रा में लीन हो जाता है या मूर्छा में अथवा समाधि में

मन नहीं रहता तब संसार भी नहीं रहता इससे अपने अनुभव में आ जाता है कि जब मन रहता है तभी संसार है मन नहीं रहता है तो संसार कहॉ है? इससे जाना जाता है कि निश्चय ही ये मानस कल्पना है, बुद्धि का ही ये विकास है, बुद्धि कहो, मन कहो, चित्त कहो, अहंकर कहो दूसरा कुछ नहीं है ये कल्पना मात्र संसार है परन्तु कल्पना के द्रष्टा तो हम ही हैं मन को भी हम ही देखते हैं, मानस कल्पना को भी हम ही देखते हैं, संसार को हम ही देखते हैं जो मन के द्वारा कल्पित किया गया है। हमारा द्रष्टा कोई नहीं है। इस प्रकार से सज्जनों! हमारी तुम्हारी आत्मा का ये संसार विवर्तरूप है, हमको आपको ही ये मनीराम नाना रूपों में दिखा रहे हैं अथवा निद्रा दिखा रही है और हम आप कुछ बने नहीं, अपने स्वरूप में ज्यों के त्यों निर्विकार हैं क्योंकि '**न जायते म्रियते वा कदाचित्**' आत्मा का जन्म मरण कोई विकार होता नहीं, तो निश्चित है कि ये मन ने, अन्तःकरण ने या निद्रारूप माया ने ये संसार की कल्पना किया है तो भी ये कल्पित संसार हमको स्पर्श करता नहीं छूता नहीं क्योंकि द्रष्टा अलग है और दृश्य अलग है। मिथ्या चीज़ ग़ायब हो जाती है — रस्सी का ज्ञान हुआ सर्प ग़ायब, आत्मा के ज्ञान होने से समाधि में संसार 'जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति' तीनों ग़ायब तो —

जेहि जाने जग जाय हेराई
जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई।।

अपने आत्म स्वरूप के जानने से ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्तिरूपी माया वो सत्य आत्मा में लीन हो जाती है जैसे रज्जु में जो सर्प दण्ड माला दीखा तो जब रज्जु का ज्ञान हुआ तो ये कहॉ चले गये? कहा रज्जुरूप ही हो गये, न कहीं से आये थे 'सर्प दण्ड माला' और न कहीं गये वो रज्जु को ही अज्ञान ने दिखाया था, खाली अज्ञान का ही नाश हुआ। प्रकाश करके देखा तो रज्जु का ज्ञान हुआ और रज्जु के ज्ञान से रज्जु सम्बन्धी अज्ञान चला गया तो वो पहले भी नहीं थे, वो भ्रमरूप थे खाली भ्रम की ही निवृत्ति हुई। तो ये वेद, शास्त्र, गीता, रामायण, भागवत् और गुरु लोग केवल अज्ञान और भ्रम की ही निवृत्ति करते हैं आत्मा तो ज्यों का त्यों सच्चिदानंद ब्रह्म है, अज्ञान ने ही अपनी आत्मा को नाना रूपों में दिखाया था और भगवान के दिये हुए इस ज्ञान से अज्ञान का ही नाश होता है और आत्मा ब्रह्म ज्यों का त्यों जैसे पहले था वैसे ही अब है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 12 - Voice 73

५१

आत्मा आश्चर्यरूप है

अशरण शरण अकारण करुण करुणा-वरुणालय, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी से अर्जुन ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया हे भगवन्! मेरे परम कल्याण का उपाय बताओ जिससे मुझे नित्य सुख शान्ति की प्राप्ति हो, आत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति हो, मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ तो भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो :—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत,
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। BG - 02.28 **।।**

अर्जुन! एक मात्र मैं ही सत्य हूँ, सृष्टि के आदि में सच्चिदानंदघन परमब्रह्म परमात्मा एक मैं ही था। ये संसार व्यक्त है, प्रकट है परन्तु सृष्टि के पहले ये अव्यक्त था कुछ नहीं था मैं आप अकेला था। **'व्यक्तमध्यानि भारत'** अर्जुन ये संसार केवल मध्य में व्यक्त हुआ है, **'अव्यक्तनिधनान्येव'** और निधन के पश्चात् ये फिर अव्यक्त हो जायेगा फिर मैं आप अकेला ही रह जाऊँगा, तो ये केवल बीच में व्यक्त हुआ है। तो जो चीज़ आदि अन्त में नहीं होती है वह मघ्य में नहीं होती है क्योंकि आदि में मैं हूँ और अन्त में मैं ही रहता हूँ इसलिये मध्य में भी मैं ही हूँ, ये नियम है —

आदावन्ते तेयन्नास्ति वर्तमानेति तत्तथा,
वेथैव सद्विशासन्तो अविदिताः यो लक्षिता।।

अर्जुन! **'आदावन्ते तेयन्नास्ति'** आदि में और अन्त में जो नहीं है **'वर्तमानेति तत्तथा'** वर्तमान में भी वो नहीं है ऐसा जानना चाहिये और जो आदि अन्त में है वो ही मध्य में है ये सत्य बात है क्योंकि सत्य सदा रहता है। ये जो कुछ प्रतीत हो रहा है जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति के रूप में निश्चय ही इसको माया जानना चाहिये, जो न होवे और फिर भी दिखाई पड़े उसको माया कहते हैं इसलिये निश्चय ही अर्जुन! ये माया है ये भ्रम है ये झूठी है, इसमें सत्बुद्धि सुखबुद्धि कभी नहीं करना, ये जीव को मोहित करने वाली है, जीव के अपने स्वरूप को भुलाने वाली है। तो जो मैं हूँ वो ही तू है क्योंकि जीवात्मा परमात्मा एक है इसलिये आदि-अन्त-मध्य में हमारा तुम्हारा स्वरूप 'ब्रह्म आत्मा' ही है और जो कुछ दिखाई पड़ता है वो न होकर भी दिखाई पड़ता है जैसे रस्सी में सॉप तीनों काल में नहीं है फिर भी दिखाई पड़ता है इसके माने ये भ्रम है झूठा है क्योंकि तीनों काल में रस्सी ही रस्सी है, सॉप तो कहीं है ही नहीं रस्सी में फिर भी मध्य में सॉप दिखाई पड़ा तो निश्चय ही झूठी चीज़ है भ्रम है अध्यास है, प्रकाश करके देखो तो रस्सी ही है। आदि में अन्त में मध्य में रस्सी ही है, जो आदि में है वो ही अन्त में है और वो ही मध्य में है, जो आदि-अन्त में नहीं है वो मध्य में कहॉ से आया? फिर भी दिखाई पड़े तो निश्चय ही माया है। इस प्रकार से हे अर्जुन! हमारा तुम्हारा ये आत्म तत्त्व है और जीव इस माया में भूला हुआ अपने आत्म तत्त्व को भूल गया है तो इस माया को ही सत्य मान लिया है, जो नहीं है उसको सत्य मान लिया है। हमारे तुम्हारे ये देह इन्द्रिय मन

बुद्धि प्राण ये सब माया है, आदि-अन्त में ये नहीं हैं मध्य में ही ये प्रकट हुए हैं। इस देह इन्द्रिय मन बुद्धि ने हमारे तुम्हारे वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंद आत्मा ब्रह्म को भुला रखा है और इन्हीं में अहंता-ममता हो गई है—ये शरीर मैं हूँ व शरीर के सम्बन्धी मेरे हैं, पूरी सत्यबुद्धि और सुखबुद्धि इसी में जीव की हो गयी है, ये जीव की अज्ञानता है जीव को ज्ञान नहीं है। मैं सर्वज्ञ ईश्वर हूँ मैं जानता हूँ इस बात को, मेरे बताने से तू भी जान, तू सच्चिदानंद ब्रह्म है, आदि में अन्त में मध्य में तू आप अकेला है।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनं
आश्चर्यवद्वदतितथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।। BG - 02.29 **।।**

अर्जुन! हमारा तुम्हारा आत्मा आश्चर्यरूप है क्यों? अनेक सहस्त्र मनुष्यों में कोई एक ही अपनी आत्मा को जान पाता है जिसने विवेक, वैराग्य, षट्क-सम्पत्ति, मुमुक्षुता 'चतुष्ट्य साधन' से सम्पन्न होकर गुरु की शरण लिया या मेरी शरण में आया है या मेरे कृपापात्र जो साधु महात्मा हैं गुरु हैं उनकी शरण में गया है वो ही इसको जान पाता है और जिसने विवेक, वैराग्य, षट्क-सम्पत्ति, मुमुक्षुता कुछ साधन नहीं किया और गुरु की शरण में भी नहीं गया है वो इस आत्मा को जान नहीं पाता तो ऐसे साधन सम्पन्न गुरु-शरणागत् तो कोई अनेक सहस्त्र मनुष्यों में कोई एक होते हैं।

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये,
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।। BG - 07.03 **।।**

अर्जुन! अब एक सहस्त्र मनुष्यों में कोई तो मुझ परमात्मा के पाने के लिये यत्न करता है और वो यत्न करने वालों में भी मेरी भक्ति, मेरे लिये तपस्या करने वालों में भी ऋद्धि-सिद्धि आकर घेरती हैं बुद्धि को लोभ दिखाती हैं तो बीच में ऋद्धि-सिद्धियों में वो पड़ जाता है, मुझ तक पहुँच ही नहीं पाता। मैं सिद्ध हूँ, आकाश में उड़ सकता हूँ, अनेक वस्तुओं को मैं क्षणमात्र में बना दूँ, आश्चर्य का काम दिखा दूँ ये ऐसी सिद्धियाँ आ जाती हैं — 'अणिमा महिमा लघिमा गरिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्व' ये आठ सिद्धियाँ हैं। तो जो साधन करने वाला है उस जिज्ञासु के सामने अपने आप अनेक सिद्धियाँ आती हैं तो वो सिद्धियों में फँस जाता है, आगे मेरी प्राप्ति का रास्ता रुक गया बीच ही में रुक गया। इसलिये अर्जुन! मेरे को पाने वाले तो कोई विरले हज़ारों में एक होते हैं।

नर सहस्त्र में सुनहु पुरारी, कोई एक होय धर्मव्रत धारी।
धर्मशील कोटिन मह कोई, विषय विमुख विराग रति होई।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति काई, सम्यक ज्ञान सुकृत कोई लाई।

ये रामायण में लिखा है। हज़ारों महात्माओं में एक धर्मात्मा होता है, धर्मात्माओं में भी धर्म जिसका स्वभाव बन गया हो और संन्यासी हो, विरक्त हो, विषयों से वैराग्य हो ऐसा कोई होता है और करोड़ो विरक्तों में कोई एक होता है जिसको भगवान का और अपनी आत्मा का सम्यक ज्ञान होता है, तो मतलब आत्म तत्त्व अत्यन्त दुर्लभ है ये कहने का मतलब है ये ही आश्चर्य रूपता है। ये आकाश गमन आदि जो सिद्धियाँ हैं ये भी सहज ही नहीं मिल जाती हैं और ये भी बहुत तपस्या करने से मिलती हैं, योग करने से मिलती हैं परन्तु जिसको एक भी सिद्धि मिल गई है आकाश में उड़ने की वो भी आश्चर्यरूप है क्योंकि हज़ारों मनुष्यों में करोड़ों में कोई एक ऐसा होता है। तो आश्चर्यरूप तो यही है उसका कि मनुष्य होकर आकाश में उड़ता है तो ये आश्चर्य का काम है और पक्षी उड़ते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं पर मनुष्य उड़े तो लोग आश्चर्य माने, हज़ारों आदमी उसका दर्शन करने आवें देखो! पक्षी उड़ते हैं तो कोई आश्चर्य कोई नहीं मानता इसी प्रकार से हे अर्जुन! ये आकाशगामी के समान, सिद्धि के समान चिदाकाश में जो उड़ता है मतलब अपने सच्चिदानंद स्वरूप को जिसका मन पक्षी की भाँति उड़

के पहुँच जाता है वो आश्चर्यरूप है, उसका दर्शन करने हज़ारों लोग आते हैं जिसको आत्मा का ज्ञान हुआ है, ब्रह्मरूपी आकाश में जिसका मनरूपी पक्षी उड़ रहा है। तो वो भी अनेक सहस्त्रों में एक होता है कोई। फिर वो अपनी आत्मा को देखता है तो जब ऑख खोलता है तो देखता है कि ये मेरी आत्मा का चमत्कार है, कैसा मेरा आत्मा आश्चर्यरूप है जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्तिरूपी प्रपंच आत्मा में दिखाई पड़ रहा है। ये स्वयंसिद्ध आत्मा में ये आत्मा की सिद्धि है कि अपने आप ही अपने आत्मा को जानने से देखता है कि ये जाग्रत-स्वप्न का संसार मेरे बिना बनाये हो रहा है, आत्मज्ञानी अपनी आत्मा की सिद्धि का ये चमत्कार देखता है। मेरे कुछ किये बिना मुझमें ये संसार भास रहा है, इतनी बड़ी सिद्धि आत्मा में है अपने आप ही बिना कुछ तपस्या किये क्योंकि मैं बनाता नहीं, आत्मा में कर्म नहीं हैं और मुझमें ही ये संसार दीखता है तो ये आत्मा की सिद्धि ही जानना चाहिये, तो अपनी आत्मा के चमत्कार को देखता है कि कैसा मेरा आत्मा आश्चर्यरूप है जिसमें ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्तिरूपी प्रपंच अपने आप भास रहा है, ये माया मुझको स्वयं सिद्ध है। सारा संसार मुझे मिला ही हुआ है, मुझे पाना क्या है? बाकी क्या रहा? सब जाग्रत का संसार, स्वप्न का संसार और सुषुप्ति निद्रा जहॉ शान्ति मिलती है सोने से, तो मुझको तो स्वयं प्राप्त है। इस प्रकार से अपने आत्मदेव का चमत्कार देखता है और अपनी आत्मा में ही क्योंकि और ठौर कहॉ है संसार को, कहॉ रहेगा? तो आत्मा में ही रहता है, आत्मा ही देखता है। ' **आश्चर्यवद्वदतितथैव चान्यः**'— तो अर्जुन! विवेक आदि चतुष्ट्य साधन सम्पन्न होकर के, गुरु की शरण में जाकर के जो आत्मा को जानता है वो तो आश्चर्यरूप है ही परन्तु आत्मतत्त्व को जानकर जो आत्मतत्तव का उपदेश करता है जिज्ञासुओं के लिये वो भी आश्चर्यरूप है क्योंकि जो अपनी आत्मा को जान लेता है उसको संसार स्वप्न के समान अपना चमत्कार दीखता है। सपना आत्मा का ही चमत्कार है और झूठा है, सत्य है नहीं तो वो किसके लिये क्या बोले? जब संसार स्वप्न ही दीखता है, मिथ्या ही दीखता है तो किसको क्या उपदेश देवे? इसलिये अपने स्वरूप में ही मगन रहता है, संसार को मिथ्या जानकर उसकी तरफ कुछ ध्यान नहीं देता। कोई कोई महापुरुष संसार को व्यवहारिक सत्ता वाला मान करके कि जाग्रत की व्यवहारिक सत्ता है कुछ काल रहती है और स्वप्न तो तुरन्त ही मिट जाता है, तुरन्त हुआ मिट गया, उसकी प्रातिभासिक सत्ता है। आत्मा की पारमार्थिक सत्ता है माने परमसत्य आत्मा है और थोड़ा सत्य ये जाग्रत का संसार है और स्वप्न का संसार तो बिल्कुल क्षणिक है, बिल्कुल थोड़ा है इसलिये उसकी प्रातिभासिक सत्ता है थोड़ी देर प्रतीति हुई स्वप्न की बस। जाग्रत का संसार कुछ काल रहता है ये व्यवहारिक है, आत्मा परमार्थिक है। तो व्यवहारिक सत्ता को स्वीकार करके कोई कोई ज्ञानी महापुरुष गुरुलोग जिज्ञासु जनों को उनके कल्याण के लिये कि इनको भी आत्मा का ज्ञान हो जाय, वो बोलते हैं उपदेश करते हैं इसलिये वो भी आश्चर्यरूप हैं। '**आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति**'— और 'आत्मा को जानने वाले और आत्मा को जानकर आत्मा का उपदेश करने वाले' इन दोनों से भिन्न वो भी आश्चर्यरूप है जो आत्मतत्त्व को श्रवण करता है क्योंकि आत्मा को जानने की इच्छा जल्दी किसी की नहीं होती है, संसार को ही सत्य माने हैं, सुखरूप माने हैं इसलिये संसार में ही फॅसे रहते हैं। तो जिसकी आत्मा को जानने की इच्छा हो, साधन सम्पन्न होकर गुरु की शरण में आवे और इस आत्मतत्तव को सुने अर्जुन! वो भी आश्चर्यरूप है माने अनेक सहस्त्रों में कोई एक है। '**श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्**'— अर्जुन! जो साधन सम्पन्न नहीं हैं वो सुन करके भी ये आत्मा को नहीं जान पाते हैं, सुनते हैं और भुला देते हैं क्योंकि साधन नहीं हैं — 'विवेक, वैराग्य, षट्क-सम्पत्ति, मुमुक्षुता' ये साधन हैं, 'यम, नियम, शम, दम, उपरति, तितीक्षा, श्रद्धा, समाधान' वो इनसे रहित हैं अर्जुन! तो वो इस आत्मा को सुन भी लें तो उनके कुछ खास पल्ले नहीं पड़ता है। सुनने में तो अच्छा लगता है परन्तु यहॉ से जाकर के भूल जाते हैं माने मन उनका संसार में ही सत्बुद्धि सुखबुद्धि से लगा रहता है, कोई प्रारब्धवश सुन भी लिया तो उनको कोई असर नहीं पड़ता है इसलिये हे अर्जुन! आत्मा को जानने के लिये तो चतुष्ट्य साधन सम्पन्न होकर श्रोत्रीय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास में ही जाना चाहिये तभी आत्मतत्त्व का ज्ञान

होता है तो संसार बंधन से सदा के लिये छूट जाता है मुक्त हो जाता है।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत,
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।। BG - 02.30 **।।**

अर्जुन! देह और देही ये दो ही तो चीज़ें हैं, देह तो सबके दिखाई पड़ रहे हैं और देह के भीतर बैठा हुआ देही देह को देखता है वो दिखाई नहीं पड़ता है बस ये दो चीज़ें हैं। इन दोनों में जो देही है वो **'नित्यं'** नित्य है, **'अवध्योऽयं'** और अवध्य है माने देही को मार नहीं सकता कोई क्योंकि नित्य है सत्य है अमृत है उसका जन्म-मरण होता ही नहीं, वो ही अर्जुन हमारा तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है—'देही आत्मा, देखने वाला' क्योंकि सबको अनुभव है कि मैं देखता हूँ और देह के भीतर हूँ, निर्गुण निराकार हूँ। देखने वाले ज्ञान का कोई आकार तो होता नहीं, आकार तो शरीर के होते हैं देह के होते हैं तो देह दिखाई पड़ता है इसलिये हे अर्जुन! देही नित्य और अवध्य है माने देही का जन्म और नाश कोई नहीं कर सकता और अर्जुन! स्वभाव से ही सबके देहों में, क्या मनुष्य क्या पशु-पक्षी सबके देहों में जो देखने वाला द्रष्टा आत्मा है वो तो अर्जुन! मैं ही हूँ इसलिये मैं तो एक अद्वितीय और अविनाशी हूँ, तो सारे देही मेरा स्वरूप होने से सच्चिदानंद ब्रह्म ही हैं सबके देहों में। **'तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि'—** और ये जितने देह हैं आदि और अन्त में हैं नहीं, मध्य में दिखाई पड़ते हैं तो ये रस्सी में सॉप के समान मिथ्या हैं, मिथ्या प्रतीति हैं तो देहों के लिये भी शोक नहीं करना है और जो देही आत्मा है वो तो अजर अमर अविनाशी ही है, उसके लिये भी शोक नहीं करना है तो तुम किसके लिये शोक करते हो? ऑखों से ऑसू बहाते हो, रुदन करते हो किसके लिये? देह के लिये कि देही के लिये। अरे देह तो मुझ ईश्वर के भी नहीं रहते, उत्पत्ति-नाशवान् माया से मेरा शरीर भी बनता है, सारा संसार माया से बनता है तो सत्य कैसे हो सकता है? सत्य तो मैं देखने वाला ही हूँ। इस प्रकार से ये सारा संसार माया मात्र मिथ्या है और हमारा तुम्हारा स्वरूप देही चेतन आत्मा नित्य सत्य है, ज्ञानरूप है, अखण्डरूप आनंदरूप है, कल्याणरूप ही है। तो ये सच्चिदानंदघन भगवान सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान का उपदेश है, सभी जीवों को मानना योग्य है क्योंकि कुछ न कुछ तो मानना ही पड़ेगा मन माने बिना रहेगा नहीं, चाहे अपने को देह मानो चाहे अपने को देही मानो। तो भगवान बताते हैं कि तुम्हारा स्वरूप देही है सच्चिदानंद ब्रह्म है, तो ये ही मानना उचित है इसके मानने से मुक्त हो और जो अपने को देह मानोगे अपने मन से तो जन्म-मरण का दु:ख छूटेगा नहीं, अब मर्ज़ी तुम्हारी है अर्जुन! चाहे अपने को तुम देह मानो और जन्म-मरण के दु:ख उठाओ और चाहे मेरे उपदेश से अपने को देही चेतन आत्मा जानो, सच्चिदानंद ब्रह्म जानो तो मुक्त ही हो जन्म-मरण है ही नहीं, **यथेच्छा तथा कुरु** तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो। भगवान तो सत् असत् बता दिये अब जीव की इच्छा है जैसी इच्छा है वैसा करो। गुरुलोग भी भगवान का उपदेश ये गीताज्ञान सुना ही देते हैं अब सुनने वालों की इच्छा है जो मर्ज़ी आवे वैसा करें, भगवान कहते हैं मेरा कोई आग्रह नहीं है तू जो इच्छा है सो माने, तुम्हारे मानने जानने से मुझे कोई हानि नहीं है मुझे कोई लाभ नहीं। तुम ही अपने को देही मानोगे तो लाभ है तो तुमको है और नहीं मानोगे मेरे वचन और देह अपने को मानोगे तो जन्म-मरण का दु:ख हानि तुमको ही है। तो हानि-लाभ तुम अपना विचारो मुझे क्या है? उपदेशक को क्या है? उसको क्या हानि-लाभ है? उपदेश सत्-असत् का कर दिया जिसको जो इच्छा हो सो मानो।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 61 – 1 Sep

५२

भाग – १

श्रीमद्भागवत

* प्रथम स्कन्ध / प्रथम अध्याय / प्रथम श्लोक *

(अधिकारी स्कन्ध)

सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सर्वाधार सर्वाधिष्ठान भगवान के ज्ञान से जीव सर्वदु:खों से और मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है अर्थात् कभी किसी प्रकार का कोई भी दु:ख उसको नहीं आता, नित्य सुख-शान्ति को प्राप्त कर लेता है, मृत्यु नहीं आती अमृतत्त्व को प्राप्त कर लेता है इसलिये जीव को अपने परम कल्याण के लिये अर्थात् सर्वदु:खों से और मृत्यु से भी छूटने के लिये भगवान का ज्ञान परम आवश्यक है। भगवान के ज्ञान के साधन भगवान की वाणी वेद शास्त्र रामायण गीता भागवत हैं परन्तु इन ग्रन्थों का अर्थ बताने वाले गुरु हैं, गुरु के बिना ज्ञान नहीं आता क्योंकि इनका अर्थ तो गुरु ही बताते हैं तभी ज्ञान होता है इसलिये गुरु की महिमा सबसे ज़्यादा श्रेष्ठ है। तो सज्जनों! सभी पुराणों में भागवत पुराण सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। भागवत में भगवान का तीन प्रकार का स्वरूप बताया गया है — सगुण निराकार, सगुण साकार और निर्गुण निराकार। ये भागवत के प्रारम्भ में ही, पहले श्लोक में ही बताया गया है। भागवत का पहला स्कन्ध, पहला अध्याय और पहले श्लोक में ही तीनों प्रकार का स्वरूप बताया गया है फिर सज्जनों इसी श्लोक का विस्तार, यही तीन स्वरूपों का विस्तार सारी भागवत में है, सार रूप में पहले ही बता दिया गया है और ब्रह्मसूत्र से ही भागवत का प्रारम्भ होता है। जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय किससे होती है? श्रुति कहती है :—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्म।

तो ब्रह्मसूत्र में एक ही सूत्र बता दिया **'जन्माद्यस्य यत:'**। **स्वल्पाक्षरत्त्वं बहवाअर्थबोधकत्त्वं सूत्रत्त्वं** — थोड़े अक्षर हों और बहुत अर्थ के बोधक हों उसको सूत्र कहते हैं सज्जनों!

स्वल्पाक्षरं असंदिग्धं सारवत् विश्वतोमुखं,
अस्तोऽहं अनवद्यं च सूत्रं सूत्र विदो विदु:।।

ये विस्तार से सूत्र का लक्षण है — **स्वल्पाक्षरं** - थोड़े अक्षर हों, **असंदिग्धं** - संदेह रहित हों, **सारवत्** - और सार रूप हों, **विश्वतोमुखं** - चारों तरफ़ जिनका मुख हो माने चारों तरफ़ लखते हों, **अस्तोऽहं** - व्यर्थ का कोई भी शब्द न हो, **अनवद्यं** - माने अनिंद्य हों, **च सूत्रं सूत्र विदो विदु:** - ये ६ लक्षण वाला सूत्र कहा जाता है। सज्जनों! इन सब लक्षणों से युक्त ये ब्रह्मसूत्र है, थोड़े अक्षरों में ब्रह्म का स्वरूप निरूपण करता है बस — **'जन्माद्यस्य यतो यत:'** ईश्वर का, ब्रह्म का क्या स्वरूप है कहा जिससे जगत के जन्मादि होते हैं, आदि पद से उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय तीनों का ग्रहण है सज्जनों! इसी सूत्र से श्रीमद्भागवत का प्रारम्भ होता है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्, (प्रथम चरण)
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः। (द्वितीय चरण)
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा, (तृतीय चरण)
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।। (चौथा चरण)

एक श्लोक में चार चरण होते हैं — पहले चरण में तो सगुण-निराकार भगवान का निरूपण है, दूसरे चरण में सगुण-साकार भगवान का निरूपण है और चौथे चरण में निर्गुण-निराकार भगवान का निरूपण है व तीसरे चरण में दृष्टान्त दिया है।

पहले चरण का अर्थ — ये सगुण निराकार है, सगुण-निराकार ईश्वर होता है, उसका इस प्रकार से अर्थ समझो सज्जनों! निर्गुण-निराकार सच्चिदानंद ब्रह्म में रज्जु में सर्प के समान, पुरुष में छाया के समान एक झूठी माया का प्रादुर्भाव होता है, रज्जु में सर्प झूठा है व पुरुष में छाया भी झूठी है उसका प्रादुर्भाव हुआ फिर वो माया ने दो रूप धरा — **'विद्या च अविद्या च स्वयमेव भवति'**, तीन गुण वाली है – सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण। *शुद्ध सत्वगुण* की प्रधानता से **विद्या** का रूप धारण किया, *मलिन सत्वगुण* की प्रधानता से अ**विद्या** का रूप धारण किया सज्जनों! फिर वो विद्या-अविद्यारूप माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ा। तो जो शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया है उसका नाम विद्या है सज्जनों! उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ा उसका नाम **ईश्वर** हुआ, वो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान हुआ, जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करने वाला हुआ और दूसरी मलिन सत्वगुण प्रधान अविद्या है ये माया का दूसरा रूप है इसमें भी ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ा, ये अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान **जीव** हुआ सज्जनों! अल्प माने थोड़ा ज्ञान और अल्पशक्तिमान, तो सज्जनों इस प्रकार से माया से ईश्वर और जीव बन गये सज्जनों! तीन तीन चीज़ें हैं — शुद्ध ब्रह्म जो पहले से है पुरुष के समान (पुरुष का अर्थ होता है 'पूर्णत्त्वात्पुरुषः' जो सत्य, ज्ञान और आनंद से पूर्ण हो उसको पुरुष कहते हैं) जो सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण है सज्जनों! तो जैसे पुरुष से छाया प्रकट होती है ऐसे ही उस पूर्ण पुरुष से माया प्रकट भयी है इसलिये पुरुष तो सत्य है और माया झूठी है क्योंकि सभी छाया झूठी होती हैं सज्जनों! हमारी तुम्हारी छाया भी झूठी हैं, हम पुरुष हैं और छाया झूठी है। पुरुष से छाया उत्पन्न होती है, पुरुष के आश्रित रहती है, घटती है बढ़ती है फिर पुरुष में लीन हो जाती है ये हमको आपको अनुभव सिद्ध है, ऐसी ढॅग की वो माया है सज्जनों! तो शुद्ध ब्रह्म पुरुष और शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया जिसका नाम विद्या है उसमें पड़ा ब्रह्म का प्रतिबिम्ब, इसका नाम सज्जनों! ईश्वर हुआ, ये ही जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करता है। शुद्ध ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम नहीं होता है, ये माया विशिष्ट जो ब्रह्म है इससे ही होता है। तीन चीज़ हो गयीं – शुद्ध ब्रह्म, विद्यारूप माया और उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब, जीव में भी तीन चीज़ हो गयीं – शुद्ध ब्रह्म, मलिन सत्वगुण प्रधान माया और उसमें पड़ा ब्रह्म का प्रतिबिम्ब, इनमें भी तीन चीज़ें हो गयीं, इस प्रकार से ब्रह्म, ईश्वर और जीव तीन हो गये। शुद्ध ब्रह्म तो निर्गुण-निराकार है, आधार-अधिष्ठान है, सत्य ज्ञान आनंद से पूर्ण पुरुष है। अब ये जो ईश्वर है सज्जनों! ये ही

उस शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया जिसका नाम विद्या है उसके द्वारा जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करता है और जो मलिन सत्वगुण प्रधान माया है उसका नाम अविद्या है, वो अल्पज्ञ है अल्पशक्तिमान है। ये जब ईश्वर की भक्ति करता है तो ईश्वर की कृपा से अपने शुद्ध स्वरूप को जानता है तब इसकी मुक्ति होती है सज्जनों! **'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्'** — इस प्रकार से पहले चरण में सगुण ब्रह्म का निरूपण हुआ है, सगुण है परन्तु निराकार है अभी कोई आकार नहीं है। तो इसी से जगत की उत्पत्ति होती है, इसी में स्थिति होती है और इसी में प्रलय होती है, ये सर्वज्ञ है सर्वशक्तिमान है। तो प्रथम चरण में सगुण-निराकार ब्रह्म का निरूपण हुआ सज्जनों!

दूसरे चरण का अर्थ — दूसरे चरण में सगुण-साकार ब्रह्म का निरूपण है सज्जनों! सबसे पहले पहले उस सगुण-निराकार ब्रह्म से ब्रह्मा की उत्पत्ति भयी। वेद मंत्र भी यही कहता है —

यो ब्रह्माणम् विदधाति पूर्वं योवैः वेदांश्च प्रहणोति तस्मैः,
तमहा देवं आत्म बुद्धिः प्रकाशं मुमुक्षुर्वैः शरणमहं प्रपद्ये।।

सृष्टि के आदि में जिसने ब्रह्माजी को उत्पन्न किया और फिर ब्रह्माजी को शोक-मोह से युक्त देखा तो सगुण-साकार रूप धारण करके वेद का उपदेश दिया। तो वेद का अर्थ होता है ज्ञान, ब्रह्म क्या है? माया क्या है? ईश्वर क्या है? जीव क्या है? जगत क्या है? वेद ये सब ज्ञान देता है, सम्यक ज्ञान दिया ब्रह्माजी को और वो शोक-मोह से मुक्त हो गये, उन्होंने अपने ब्रह्म स्वरूप को जान लिया, ईश्वर क्या है? जीव क्या है? जगत क्या है? ये सब बात को जान लिया। दूसरे चरण में जब ब्रह्मा को उत्पन्न किया तो ब्रह्माजी को शोक-मोह से युक्त देखा सज्जनों! तो सगुण-निराकार थे तो उससे तो उपदेश हो नहीं सकता था सज्जनों! बिना आकार के, माने 'देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण' ये सब नहीं होंगे तो उपदेश नहीं हो सकता सज्जनों! फिर भगवान ने चतुर्भुज विष्णु का रूप धारण किया, ये सगुण-साकार है जो ऑखों से देखा जा सके। ब्रह्माजी ने विष्णु भगवान का दर्शन किया, प्रणाम किया, स्तुति किया तब भगवान ने अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंदघन ब्रह्म स्वरूप का उपदेश किया और ईश्वर का स्वरूप भी बताया कि मैं ही माया से विशिष्ट होकर के ईश्वर बनता हूँ और मैंने ही तुमको उत्पन्न किया, अब ये सृष्टि उत्पत्ति का काम मैं तुमको सौंपता हूँ। मैंने तुमको उत्पन्न किया अब आगे की सृष्टि तुम उत्पन्न करो जैसे पिता पत्नी के द्वारा पुत्र को उत्पन्न करता है ऐसे ही मायारूपी पत्नी के द्वारा जगतपिता ईश्वर ने ब्रह्मारूपी पुत्र को उत्पन्न किया। तो जैसे पिता पुत्र को उत्पन्न करके फिर पुत्र को अपना काम सौंप देवे कि अब तुम विवाह करो और विवाह करके तुम भी संतान उत्पन्न करो और मैं अब जाऊँगा अपने कल्याण के लिये तपस्या करने, तो इसी प्रकार से परम्परा से सृष्टि फिर चलती रहेगी। पिता भगवान का भजन करेगा और पुत्र-उत्पत्ति का काम अब अपने पुत्र को सौंप देगा। पति-पत्नी का फिर ये वानप्रस्थ आश्रम होता है, एक पुत्र उत्पन्न कर दिया अब अपना काम पुत्रों को सौंप दिया और दोनों पति-पत्नी भगवान का भजन करने के लिये वन में अपना चले गये, ये शास्त्र की मर्यादा है — पहले ब्रह्मचर्य फिर गृहस्थ इसके बाद वानप्रस्थ फिर संन्यास, वेदों में ये चार आश्रम बताये गये हैं सज्जनों! इस प्रकार से ब्रह्माजी को ज्ञान का उपदेश करके, शोक रहित करके कहा कि अब तुम सृष्टि करो, जगत की उत्पत्ति का काम सौंप दिया। तो ये दूसरे चरण में भगवान विष्णु ने सगुण-साकार रूप धारण किया, सगुण तो पहले से थे ही विष्णु का चतुर्भुज आकार और धारण किया क्यों कि उपदेश आदि का सारा व्यवहार देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों से ही होगा। व्यवहार उपदेश आदि ये देह इन्द्रिय सगुण-साकार के बिना हो नहीं सकता। ये दूसरे चरण में भगवान के सगुण-साकार

का वर्णन है। पहले चरण में सगुण-निराकार, दूसरा में सगुण-साकार, चौथे चरण में निर्गुण-निराकार ब्रह्म का वर्णन किया गया है और तीसरे चरण में दृष्टान्त दिया गया है।

चौथे चरण का अर्थ — चौथे चरण में निर्गुण-निराकार ब्रह्म का वर्णन किया गया है

'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि'

व्यासजी कहते हैं हम परम सत्य का ध्यान करते हैं तो परम सत्य क्या है? बोले **सच्चिदानंद ब्रह्म** है वो ही परम सत्य है, ईश्वर और जीव से परे माने विद्या-अविद्या माया से जो परे है शुद्ध ब्रह्म वो परम सत्य है और जीव-ईश्वर क्रमशः अविद्या-विद्या उपाधि वाले हैं ये परम सत्य नहीं हैं।

तीसरे चरण का अर्थ — तीसरे चरण में परम सत्य को बताने के लिये वो दृष्टान्त देते हैं :—

'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा'

'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा' जैसे रज्जु में सर्प मिथ्या दिखाई पड़ता है, **तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो** — सूर्य की किरणों में बारह बजे दिन को बहुत ज़्यादा तेज़ आ जाता है, सूर्य की किरणें ज़्यादा तेजस्वी हो जाती हैं तो उससे क्या होता है मरुस्थल भूमि में प्यासे मृगों को झूठे जल की प्रतीति होने लगती है, जल नहीं है **ग्रीष्म भीष्म करातप्तौ**, ग्रीष्मऋतु माने जेठ-बैशाख में, मध्यान्ह काल में जब खूब तेज़ किरणें होती हैं सूर्य की, तेज़ धूप होती है तो मरुभूमि में प्यासे मृगों को झूठे जल की प्रतीति होने लगती है माने जल भरा है, हवा चलती है तो बालू में लहरें जैसी बन जाती हैं। तो सज्जनों वो प्यासे मृग पानी पीने के लिये जाते हैं परन्तु पानी तो है नहीं वहाँ, जब वो वहाँ पहुँचते हैं तो पानी नहीं मिलता। आगे पानी दिखाई पड़ता है बहुत दूर तक मरुस्थल भूमि है बालू पड़ी है, रेगिस्तान है तो फिर आगे दौड़ के जाते हैं परन्तु वो तो सूर्य की किरणों से मिथ्या जल प्रतीत हो रहा है, सच्चा पानी तो है नहीं वहाँ पर। इस प्रकार से मृगों की प्यास बढ़ती जाती है, ज्यों ज्यों दौड़ के जाते हैं आगे भटक-भटक के प्यास के मारे वो प्राण छोड़ देते हैं, मर जाते हैं सज्जनों! इसी प्रकार से ये जीवरूपी जो मृग है ये अल्पज्ञ-अल्पशक्तिमान है सज्जनों! और ब्रह्म आधार-अधिष्ठान है, उसमें ये संसार जो दिखाई पड़ रहा है ये झूठा ही दिखाई पड़ रहा है। स्त्री-पुत्र-धन ये झूठा दिखाई पड़ रहा है और जीव को सुख की प्यास है सज्जनों! जीवरूपी मृग है ये अल्पज्ञ है न! ईश्वर ही सर्वज्ञ है और ये संसार माया से बनाया है ये झूठा मृगतृष्णा के जल के समान है सज्जनों! तो प्यास के बुझाने के लिये ये दौड़ता है कि मेरी प्यास बुझ जायेगी, स्त्री के लिये पहले दौड़ता है और जब स्त्री मिल गई सुख की प्यास है परन्तु स्त्री से भी सुख की प्यास मिटी नहीं सज्जनों! तो आगे सुख दिखाई पड़ता है, पुत्र मिलेगा तो मैं सुखी हो जाऊँगा पुत्र से। पुत्र भी मिले गया परन्तु सुख नहीं मिला क्योंकि यहाँ तो झूठा सुख दिखाई पड़ रहा है न! प्रतिबिम्बरूप आभासरूप, ईश्वर की प्रकाशरूप किरणों से झूठा दिखाई पड़ता है सज्जनों! पुत्र में भी सुख न मिला। फिर सोचता है कि धन मिलेगा तब मेरी सुख की प्यास बुझ जायेगी, सुखी हो जाऊँगा, धन मिल गया फिर भी सुख की प्यास तो बुझी नहीं सज्जनों! फिर सोचता है मैं राजा हो जाऊँगा तो सुख की प्यास बुझेगी, अब राजा हो गया तो भी सुख की प्यास न बुझी जैसे मृग दौड़ता जाता है त्यों त्यों बढ़ती जाती थी, प्यास बढ़ते बढ़ते बढ़ते अंत में मर गया प्यास बुझी नहीं। ऐसे ही सज्जनों ये राज्य पा गया पर सुख की प्यास बुझी नहीं - **'रोग बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की'**, दुःखरूपी रोग बढ़ता ही गया। और दुःखी होता चला गया अकेला था तो कम दुःख था, पत्नी आ गई तो पत्नी का सुख-दुःख भी अपने ऊपर आ गया, पुत्र हो गया तो पुत्र का भी सुख-दुःख अपने ऊपर आ गया बोझा वो भी हो गया, धन हो गया तो धन

के कमाने का दु:ख उसकी रक्षा का दु:ख और चोर-बदमाश लूटकर ले गये तो उसका दु:ख सज्जनों! राज्य मिल गया तो छोटे परिवार (एक पत्नी-पुत्र) के पालने में उस समय कितना दु:ख था अब राज्यरूपी परिवार हो गया तो इसका सबका पालन पोषण करो। अब राज्य में कोई मरता है कोई जीता है, कोई धनी है कोई निर्धन है अब ये बोझा राज्य का पड़ गया। तो सुख की प्यास बुझाने के लिये ज्यों ज्यों ये आगे बढ़ता गया तो उतना ही ये दु:ख बढ़ता ही गया, प्यास बुझ नहीं पाई मर गया। तो इस प्रकार से मृगतृष्णा के जल में *जल के समान* और रज्जु में *सर्प के समान* (जैसे रज्जु में सर्प झूठा वैसे ही इस संसार में सुख झूठा - **यत्र त्रिसर्गोऽमृषा**) जिस परम परमात्मा में (जो सत्य वस्तु है) ये जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति व संसार की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय मृगतृष्णा के जल के समान और रज्जु में सर्प के समान मिथ्या/झूठी ही प्रतीत होती है, वो परम सत्य ब्रह्म है। तो व्यासजी कहते हैं **'सत्यं परं धीमही' -** माया और माया का कार्य जिसमें मिथ्या प्रतीत होता है रज्जु में सर्प के समान, मृगतृष्णा के जल के समान, उस परम सत्य का हम ध्यान करते हैं, वो सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म है। उसका ध्यान करते करते जो उसका ध्यान करता है तो वो वही हो जाता है। जो जिसका ध्यान करता है वो तदाकार हो जाता है, ध्यान करते करते ब्रह्मरूप ही हो जाता है। इस प्रकार से सज्जनों ये चौथे श्लोक में 'सगुण-साकार व सगुण-निराकार' ये भी सब मिथ्या हो जाते हैं (क्योंकि जीव-ईश्वर क्रमश: अविद्या-विद्या माया से ही बने हैं) तो परमसत्य जो ब्रह्म है वो ही हमारा आपका वास्तविक स्वरूप है। तो **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'** ब्रह्म सत्य है, ईश्वर-जीव-जगत ये मिथ्या हैं और परम सत्य जो ब्रह्म है वही हमारा आपका वास्तविक स्वरूप है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

CD # 61 – 2 Sep

५३

भाग – २

श्रीमद्भागवत

* प्रथम स्कन्ध / प्रथम अध्याय / प्रथम श्लोक *

(अधिकारी स्कन्ध)

भागवत पुराण सब पुराणों में श्रेष्ठ माना जाता है उसमें भगवान के तीन स्वरूप बताये जा रहे हैं। प्रथम स्कन्ध, प्रथम अध्याय और प्रथम श्लोक :—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्,
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा,
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ।। 01.01.01

इसमें भगवान के तीन रूप बताये गये हैं — पहले **सगुण-निराकार** रूप बताया गया है, फिर **सगुण-साकार** रूप बताया गया और फिर **निर्गुण-निराकार** रूप बताया गया। सृष्टि के आदि में सच्चिदानंद परमब्रह्म परमात्मा आप अकेले थे और कोई नहीं था सज्जनों! उनमें पुरुष की छाया के समान माया का प्रादुर्भाव हुआ और उस माया ने दो रूप धारण कर दिया **'विद्या च अविद्या च स्वयमेव भवति'**, एक विद्यारूप दूसरी अविद्यारूप। शुद्ध सत्वगुण की प्रधानता से विद्या का रूप धारण किया और मलिन सत्वगुण की प्रधानता से अविद्या का रूप धारण किया। इन विद्या और अविद्या दोनों में सच्चिदानंद ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ा तो जो विद्यारूप माया में प्रतिबिम्ब पड़ा उसका नाम ईश्वर हुआ और जो अविद्या में प्रतिबिम्ब पड़ा उसका नाम जीव हुआ, ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान हुआ और सृष्टि का कर्ता भया और जो जीव है वो अल्पज्ञ होने से ईश्वर की भक्ति करता है, ईश्वर की कृपा से वो भी अपने स्वरूप ब्रह्म को जानता है। शुद्ध सत्वगुण प्रधान विद्या, उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब और स्वयं ब्रह्म भी, तीन चीज़ मिल करके — 'ब्रह्म + विद्या + उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब' इसी का नाम ईश्वर है और जीव में भी इसी प्रकार से तीन चीज़ हैं — 'स्वयं ब्रह्म + अविद्यारूप माया + उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब, इसका नाम जीव हुआ सज्जनों! ये ईश्वर सगुण-निराकार ब्रह्म है (आकार नाम शरीरों का है) क्योंकि अभी कोई आकार नहीं है ईश्वर में। ईश्वर को सगुण-निराकार कहते हैं फिर इस ईश्वर से सृष्टि होती है, ये सर्वज्ञ है सर्वशक्तिमान है, संसार की उत्पत्ति करता है। सृष्टि के आदि में पहले ईश्वर ने ब्रह्माजी को उत्पन्न किया, ये ही पहला जीव है फिर ब्रह्माजी को शोक-मोह से युक्त देखा। तो ब्रह्माजी के शोक-मोह को दूर करने के लिये फिर भगवान ने सगुण-साकार रूप धारण कर लिया माने चतुर्भुज विष्णु को रूप धारण किया सज्जनों! और विष्णु का रूप धारण करके ब्रह्माजी को ज्ञान का, वेद का उपदेश दिया, वेद नाम ज्ञान का है तो ब्रह्माजी का शोक माने दुःख और मोह (अज्ञानता) दूर हो गई। इसी प्रकार से सगुण-साकार रूप बहुत हैं भगवान के, राम कृष्ण विष्णु शिव-शक्ति सूर्य गणेश कच्छ-मच्छ वामन वराह नृसिंह आदि

अनेक अवतार समय समय पर धारण किया है भगवान ने, ये भगवान के सगुण साकार रूप हैं और निर्गुण-निराकार शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म है जो सृष्टि के आदि में था जहॉ माया प्रकट नहीं भयी थी तब शुद्ध ब्रह्म ही था, वो भगवान का शुद्ध ब्रह्म रूप है और ईश्वररूप सगुण-निराकार है। राम कृष्ण विष्णु शिव-शक्ति सूर्य गणेश कच्छ-मच्छ वामन वराह नृसिंह आदि अवतार - ये सगुण-साकार हैं, इन्हीं सगुण-साकार रूपों से भगवान साधु- ब्राह्मण देवताओं की रक्षा करते हैं और जो साधु.ब्राह्मणों को दु:ख देने वाले हैं उन दुष्टों का दलन करते हैं सगुण-साकार का रूप धारण करके। यही बात गीता में भगवान ने कहा है, जो भागवात में है वही गीता में कहा है —

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। BG – 04.07

अर्जुन! जब जब धर्म की हानि होती है अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं अवतार ग्रहण करता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्,
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। BG – 04.08

साधुओं के परित्राणाय माने रक्षा करने के लिये और जो दुष्ट हैं साधु-ब्राह्मणों को दु:ख देते हैं उनके नाश करने के लिये विनाश करने के लिये, **संभवामि युगे युग** माने उत्पन्न होता हूँ पर अपनी माया से मैं अनेक रूप धरता हूँ। यही बात सज्जनों रामायण में भी कही गयी है, जो गीता में है भागवत में है वही रामायण में भी तुलसीदासजी ने लिखा है —

जब जब होय धर्म कै हानि बाढ़ैं असुर अधम अभिमानी,
तब तब धरि प्रभु विविध सरीरा, हरैं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

जब जब असुर अभिमानी बढ़ जाते है, धर्मो की हानि होती है तब तब भगवान विविध शरीर, जिस शरीर से उन दुष्टों का नाश हो वैसा शरीर धारण करते हैं। सगुण-साकाररूप भगवान समय समय पर धारण करते हैं धर्म की रक्षा के लिये, अधर्म और अधर्मी दुष्टों का विनाश करने के लिये। तो जो ब्रह्मरूप है वो निर्गुण-निराकार है, जो माया से युक्त हुए ईश्वररूप है वो सगुण-निराकार है और संसार को शिक्षा देने के लिये (जैसे ब्रह्मा को शिक्षा दिया वेद पढ़ाया) और दुष्टों के नाश करने के लिये भगवान जो रूप धारण करते हैं वो सगुण-साकार होता है। तीन रूप हो गये सज्जनों — सगुण-निराकार, सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार, तो जो ईश्वर रूप है वो सगुण-निराकार है, राम कृष्ण विष्णु आदि के जो रूप हैं वो सगुण-साकार हैं और शुद्ध सच्चिदानंदघन ब्रह्म जहॉ माया का प्रादुर्भाव हुआ नहीं है वो निर्गुण-निराकार है। ये तीन स्वरूपों का निरूपण भागवत में किया गया है और इन्हीं तीन स्वरूपों का विस्तार सम्पूर्ण भागवत में है सज्जनों! तो आदि में, मध्य में और अन्त में थोड़ा सा विषय भगवान का यही रूप बताते हैं। जब दुष्ट बढ़ गये और साधु-ब्राह्मण दु:ख पाने लगे तो साधु-ब्राह्मणों की रक्षा के लिये और दुष्टों के दलन के लिये भगवान ने राम रूप लिया त्रेता में और द्वापर में भगवान कृष्ण का रूप लिया सज्जनों! दुष्टों का दलन करने कं लिये, साधु-ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिये। तो जब भगवान गर्भ में आये तो भगवान की स्तुति करने के लिये ब्रह्मा और इन्द्रादिक देवता साथ में सब आये, ऋषि-मुनि आये, अब उनकी स्तुति करते हैं :—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्ययोनिं निहितं च सत्ये,
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना:।। 10.02.26

'सत्यव्रतं'— प्रभो! आपका जो व्रत है प्रतिज्ञा है वो परम सत्य है जो आपने कहा **'परित्राणाय**

साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे' तो ये जो आपका व्रत है प्रतिज्ञा है ये बिल्कुल सत्य है इसमें संदेह नहीं है। **'सत्यपरं'—** और ये परमसत्य हो आप माने ब्रह्मरूप भी तुम ही हो, वो परमसत्य ब्रह्म ही है जिसको पहले श्लोक में कहा **'सत्यं परं धीमहि'** हम परं सत्य का ध्यान करते हैं उसमें मुक्ति होती है उस ब्रह्मज्ञान से, जीव जन्म-मरण से छूट जाता है। परंसत्य भी तुम्हीं हो, सत्य प्रतिज्ञ हो, साधु ब्राह्मणों की रक्षा के लिये और दुष्टों के लिये जो आपने प्रतिज्ञा किया है वो बिल्कुल सत्य है। **'त्रिसत्यं'**— तीनों काल में एक आप ही सत्य हैं, ये निर्गुण-निराकार ब्रह्म का निरूपण है क्योंकि जो सगुण-साकार ब्रह्म है वो तीनों काल में हमेशा तो नहीं रहते हैं, काम जब बन गया साधु ब्राह्मणों की रक्षा हो गई, दुष्टों का दलन हो गया तो ये सगुण-साकार स्वरूप अन्तर्धान हो जाते हैं और जो ब्रह्म स्वरूप है वो परंसत्य है उसकी उत्पत्ति-नाश नहीं होती है। **'सत्यस्ययोनिं'**— जो अल्प सत्य हैं जीव और ईश्वर क्रमशः अविद्या और माया उपाधि वाले इनकी योनि माने कारण हो आप और अज्ञानी लोग संसार को भी सत्य कहते हैं तो इस संसार के भी योनि माने कारण हो, ईश्वररूप से जगत की उत्पत्ति करते हो। **'निहितं च सत्ये'—** इस संसार रूपी सत्य में कण कण में आप निवास कर रहे हो माने आकाश के समान व्यापक हो और **'ऋतसत्य नेत्रं'**— ऋत और सत्य दोनों के नेत्र माने द्रष्टा-साक्षी हो माने झूठ के भी और सत्य के भी द्रष्टा-साक्षी हो। कहाँ तक कहें प्रभु **'सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना'—** बस प्रभु आप तो परम सत्य ही हो, सभी सत्यों का अर्थ आप में ही घटता है प्रभु! इस प्रकार से ब्रह्मादिक देवताओं ने स्तुति किया है फिर भगवान का प्राकट्य हुआ है क्योंकि उस समय दैत्य लोग, असुर लोग बहुत बढ़ गये थे और राजाओं का रूप धारण करके प्रजा को दुःख दे रहे थे। राम का भी अवतार तभी भया जब रावण आदि दुष्ट बढ़ गये प्रजा दुःख पाने लगी और कृष्ण का भी अवतार तभी हुआ जब कंस आदि दुष्ट बढ़ गये और प्रजा को दुःख देने लगे तो अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया भगवान ने, दुष्टों का दलन किया और भक्तों की रक्षा किया सज्जनों! और जो काम पूरा हो गया तो अन्तर्धान गये, ये सब भगवान का सगुण-साकार रूप है। आदि में भगवान का सत्यस्वरूप निरूपण, मध्य में भी सत्यस्वरूप निरूपण और अंत में भी इसी सत्य का वर्णन करते हैं।

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा,
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यत-
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि।। 12.03.19

यही भागवत जिसमें तीनों प्रकार का निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार, सगुण-साकार तीनों स्वरूपों का निरूपण है, कहते हैं सम्पूर्ण भागवत में यही बताया गया है। निर्गुण-निराकार का भी निरूपण है पूरी भागवत में और सगुण-निराकार ईश्वर-जीव का भी निरूपण है और राम-कृष्ण-विष्णु सगुण-साकार का भी निरूपण है ऐसी ये भागवत है। तो सबसे पहले इसको भगवान ने ब्रह्माजी को बताया —

यो ब्रह्माणम् विदधाति पूर्वं योवैः वेदांश्च प्रहणोति तस्मैः,
तमहा देवं आत्म बुद्धिः प्रकाशं मुमुक्षुर्वैः शरणमहं प्रपद्ये।।

ब्रह्माजी को उत्पन्न किया, उनको शोक मोह से मुक्त करने के लिये वेदों का उपदेश दिया ऐसी ये भागवत, **'कस्मै'** माने ब्रह्माजी को सबसे पहले पहले उपदेश दिया **कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः—**ये ज्ञान का प्रदीप है दीपक, **तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा**—फिर ब्रह्माजी के रूप से नारदजी को यही भागवत के ज्ञान का उपदेश दिया, **योगीन्द्राय तदात्मनाथ—**फिर नारदजी से परमयोगी शुकदेवजी को ये ज्ञान मिला, **भगवद्राताय**

कारुण्यत:—फिर शुकदेवजी ने भगवान में अत्यन्त प्रीति करने वाले भक्ति करने वाले राजा परीक्षित को दिया यही ज्ञान, **स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि**—जो परमसत्य है वही तीन रूपों में सगुण-साकार, इसके पहले सगुण-निराकार ईश्वर का रूप और उसके पहले परमसत्य सच्चिदानंद ब्रह्म रूप **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'** ये भगवान का परमसत्य स्वरूप है। ये अन्तिम उपदेश राजा परीक्षित ने सुना भागवत की समाप्ति में, तो उस परमसत्य में स्थित हो गये राजा परीक्षित, सात दिन सुनते सुनते सुनते जो परमसत्य सच्चिदानंद ब्रह्म है, जीवात्मा और परमात्मा का एकत्व है **'अयमात्मा ब्रह्म सो अयमात्मा'** हमारा तुम्हारा आत्मा ब्रह्म है और जो ब्रह्म परमसत्य है वो ही हमारा तुम्हारा आत्मा है। ये अन्तिम ज्ञान माने निर्गुण-निराकार ब्रह्म और जीव का भी वास्तविक स्वरूप निर्गुण-निराकार ब्रह्म है, निर्गुण-निराकार ब्रह्म और जीवात्मा में भेद नहीं है।

ये अन्तिम श्लोक है **'राजा परीक्षित की स्थिति का वर्णन'** :—

'अहं ब्रह्म परमधाम ब्रह्माहं परमंपदं'

अहं ब्रह्म परमधाम— परम प्रकाशरूप जो ब्रह्म है **अहं**— मैं वही हूँ, **ब्रह्माहं परमंपदं**— और जो परम पद है जिस पद को पाकर के पतन नहीं होता फिर जीव गिरता नहीं (संसार के जन्म-मरण के चक्कर में आता ही नहीं वो परम पद है) राजा परीक्षित उसमें स्थित हो गये सज्जनों! शुद्ध सच्चिदानंदघन ब्रह्म में तद्रूप हो गये। **अहं ब्रह्म परमधाम—** मैं परम प्रकाशरूप सच्चिदानंदघन ब्रह्म हूँ और **ब्रह्माहं परमंपदं—** ब्रह्म जो परम पद है जिसको पाकर के पतन नहीं होता है वो मैं हूँ। इस प्रकार से ब्रह्म और आत्मा के एकत्व में स्थित हो गये, समाधिस्त हो गये सज्जनों! फिर वो जो श्राप मिला था उसको तक्षक सॉप के काटने से मृत्यु का, सज्जनों वो सॉप भी आया फिर परन्तु ये तो अपने ब्रह्मस्वरूप में स्थित हो गये। जाग्रत अवस्था में ही ये सॉप आदि आ सकते हैं और ये स्थूल शरीर हमारा तुम्हारा जाग्रत में ही रहता है स्वप्न में भी नहीं रहता है, केवल सूक्ष्मरूप से स्वप्न में रहता है सज्जनों! सुषुप्ति में नहीं रहता सूक्ष्मशरीर भी। तो सुषुप्ति में ही नहीं आ सकता ये सॉप वगैरा क्योंकि वहॉ तो संसार ही नहीं रहता है, न अपना शरीर रहता है न दूसरे के और ये तो समाधि चौथा तुरीय स्वरूप ब्रह्म है उसमें स्थित हो गये अब वहॉ सॉप कहॉ पहुँचेगा? अपने स्वरूप में ये स्थित हो गये, इस शरीर से ऊपर उठकर ये ब्रह्म में स्थित हो गये। कुछ पता नहीं कब सॉप आया, कौन आया? वहॉ तक पहुँचता ही नहीं ब्रह्मस्वरूप तक। व्यासजी कहते हैं **'सत्यं परं धीमही'**— उसी परमसत्य का हम ध्यान करते हैं, ध्यान का फल क्या होता है? ध्याता और ध्यान ध्येयरूप हो जाते हैं। **ध्याता** जीवरूप है, मन **ध्यान** है और **ध्येय** ब्रह्म है। तो ध्याता और ध्यान दोनों फिर ध्यान करते करते ध्येयरूप हो जाते हैं, केवल ध्येय ही रह जाता है माने ब्रह्म ही रह जाता है।

ध्यात्य ध्याने परित्यज्ये क्रमाध्येयै: गोचरं,
निवात दीप मच्चित्तं समाधि अवधीयते।।

इसी को समाधि कहते हैं, ध्याता ध्यान ध्येयरूप/ब्रह्मरूप हो गये।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नम:

—०००—

५४

:: द्वितीय स्कन्ध ::

चतुश्लोकी भागवत

चतुर्भुज विष्णु का रूप धारण कर भगवान ने ब्रह्माजी को केवल ४ श्लोकों में ज्ञान दिया। इसी को चतुश्लोकी भागवत कहते हैं। इन्हीं चार श्लोकों को समझने के लिये १८ हज़ार श्लोकों की आवश्यकता है।

प्रथम श्लोक - बहम का स्वरूप निरूपण
द्वितीय श्लोक - माया का स्वरूप निरूपण
तृतीय श्लोक - जगत का स्वरूप विवरण
चतुर्थ श्लोक - ब्रह्मस्वरूप प्राप्ति के साधन

—०००—

भगवान के ज्ञान से जीव सर्व दु:खों से और मृत्यु से मुक्त हो जाता है अर्थात् उसे कभी किसी भी प्रकार का दु:ख नहीं आता, नित्य सुख शान्ति को प्राप्त कर लेता है, मृत्यु नहीं आती अमृतत्तव को प्राप्त कर लेता है इसलिये जीव को अपने परम कल्याण के लिये अर्थात् सर्व दु:खों से और मृत्यु से भी छूटने के लिये भगवान का ज्ञान परम आवश्यक है। भगवान के ज्ञान का साधन भगवान की वाणी वेद है और वेद का अर्थ बताने वाले गुरु हैं क्योंकि वेद अपने आप तो सज्जनों बोलता नहीं, स्वर-व्यंजन रूप है, शब्दमात्र हैं, ग्रन्थों में लिखे हुए हैं सज्जनों इसलिये न ग्रन्थ बोलते हैं न शब्द बोलते हैं। गुरु ही वेदमंत्रों को पढ़ता है और उनका अर्थ बताता है तब सज्जनों भगवान का ज्ञान होता है इसलिये गुरु की महिमा सर्वाधिक है, बिना गुरु के किसी को भी किसी प्रकार का कोई ज्ञान नहीं होता चाहे न्याय का, चाहे व्याकरण का, चाहे साहित्य का, चाहे गणित का, कोई भी ज्ञान हो गुरु से ही होता है इसलिये संसार में गुरु की महिमा सर्वाधिक है। वेद कहता है कि सृष्टि के आदि में अकेले भगवान थे। सबसे पहले भगवान ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मा जी को शोक मोह से युक्त देखा तो फिर ब्रह्माजी को वेद का उपदेश दिया। वेद मंत्र ये ही कहता है :—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं योवैः वेदांश्च प्रहणोति तस्मैः,
तम्हादेवं आत्म बुद्धिः प्रकाशं मुमुक्षुरवैः शरणमहं प्रपद्ये।।

सृष्टि के आदि में जिससे सबसे पहले जिसने ब्रह्माजी को उत्पन्न किया और ब्रह्माजी को वेद का उपदेश दिया सज्जनों! तब ब्रह्माजी शोक मोह से मुक्त भये। तो सज्जनों! भगवान विष्णु ने ब्रह्माजी को जो ज्ञान दिया वो ये है :—

ज्ञानं परम गुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितं,
स रहस्यं तदंगम च गृहाण गदितं मया।।

यावानहं यथा भावो यदरूप गुणकर्म कः,
तथैव तत्त्व विज्ञानमस्तुते मदनुग्रहात्।।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।। 2.9.32

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।। 2.9.33

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।। 2.9.34

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व जिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।। 2.9.35

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना,
भवान्कल्प विकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।।

भगवान ने कहा **'ज्ञानं परम गुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितं'** जो परम गुह्य गोप्य ज्ञान है और विज्ञान के सहित है, **सामान्य ज्ञान** और **विशेष ज्ञान** दोनों प्रकार का ज्ञान है। 'सामान्य ज्ञान' *व्यापक* है और 'विशेष ज्ञान' *बुद्धि में प्रकट होता है*। तो दोनों प्रकार का ज्ञान मैं तुमको देता है। **'स रहस्यं तदंगम च गृहाण गदितं मया'** रहस्य और अंगों के सहित मेरे द्वारा कहा गया ये ज्ञान तुम ग्रहण करो। **'यावानहं यथा भावो यदरूप गुणकर्म कः'** मैं जितना हूँ और जिस प्रकार से मैं प्रकट होता हूँ, जो मेरा रूप है और जो मेरे गुण है तथा जो कर्म मैं करता हूँ **'तथैव तत्त्व विज्ञानमस्तुते मदनुग्रहात'** वैसा का वैसा ही मेरे अनुग्रह से तुमको यह ग्रहण हो जाये तब भगवान ज्ञान देते हैं। हे ब्रह्मन्! सावधान मन से ये ज्ञान ग्रहण करो —

* प्रथम श्लोक *

(बह्म का स्वरूप निरूपण)

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम्।। 2.9.32

सृष्टि के आदि में जब तू भी नहीं था तो मैं आप अकेला मैं ही था, न कुछ सत् था, न कुछ असत् था और न कुछ सत्-असत् से परे था अर्थात् न जाग्रत था, न स्वप्न था और जाग्रत-स्वप्न से परे सुषुप्ति है वो सुषुप्ति भी नहीं थी उसके पहले केवल मैं ही था और जा०-स्व०-सु० के रूप में जो ये दिखाई पड़ रहा है हे ब्रह्मन्! वो भी मैं ही हूँ और अन्त में जो शेष बचता है (फिर कुछ नहीं रह जाता) वह भी मैं ही हूँ। आदि में मैं ही था, अन्त में मैं ही रहता हूँ और मध्य में जो प्रतीत होता है वह भी मैं ही हूँ।

* द्वितीय श्लोक *

(माया का स्वरूप निरूपण)

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथोऽऽभासो यथा तमः।। 2.9.33

मेरे बिना जो कुछ भी प्रतीत होता है और जो मेरी प्रतीति नहीं होती है उसको तुम मेरी माया जानो। जो प्रतीति होती है वो माया है और मेरी प्रतीति नहीं होती है इस अज्ञान को भी माया ही कहते हैं जैसे अन्धकार में कभी अन्धकार से प्रकाश छिप जाता है और कभी अन्धकार दूर होता है व प्रकाश प्रकट हो जाता है इसी प्रकार से ये अन्धकार रूप माया आती—जाती है और प्रकाश रूप आत्मा को कभी ढक लेती है आवरण कर लेती है।

* तृतीय श्लोक *

(जगत का स्वरूप निरूपण)

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।। 2.9.34

हे ब्रह्मन! जैसे 'आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी' इन पंच महाभूतों से मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र से ये सारी सृष्टि बनी हुई है। उच्च और नीचे भूत-प्राणियों में ये पंचभूत प्रविष्ट भी हैं और प्रविष्ट नहीं भी हैं। देवताओं में भी, दैत्यों में भी, मनुष्यों में भी व पशु-पक्षी आदि ऊँची नींची सभी योनियों में पंचभूतों से शरीर बने हैं तो पंचभूत इनमें प्रविष्ट हैं और विचार करके देखो तो पंचभूत से भिन्न कुछ है ही नहीं।

सर्वत्र पंचभूतानि षष्ठं किंचिन्नविद्यते,
पाताले भूतले स्वर्गे रतिमेतत्क्वधीरधीः।।

जब पंचभूतों से सब संसार बना हुआ है — पाताल में जाओ तो पंचभूत हैं, स्वर्ग में जाओ तो पंचभूत, पृथ्वी में भी पंचमहाभूत, तो पंचमहाभूतों से भिन्न कुछ है ही नहीं। इसी प्रकार से सब संसार मुझसे होता है और मुझमें ही रहता है और मुझमें ही लीन होता है तो मुझसे भिन्न पंचभूत भी नहीं हैं, दूसरा कोई है ही नहीं। कारण से भिन्न कार्य नहीं हुआ करता है, कारण ही कार्य के रूप में परिणित होता है जैसे एक माटी है वो कारण है, संसार भर के जो घट हैं और मठ हैं वो कार्य हैं तो माटी से भिन्न नहीं हैं घट-मठ, तो माटी निकाल लो तो घट-मठ क्या बचे? कुछ नहीं। जैसे जल से तरंग फेन बुदबुले उठते हैं सो जल से भिन्न नहीं हैं, जल कारण है फेन बुदबुले तरंगें कार्य हैं तो जल से जुदा नहीं हैं कोई भी फेन बुदबुले तरंगें। यदि तरंग को हाथ से पकड़ोगे आप तो जल ही हाथ में आयेगा तो जल ही सत्य है, तरंगें तो वायु के निमित्त से उठ गयीं कल्पना मात्र हैं। तरंगें जल से उत्पन्न होती हैं और जल में ही रहती हैं, जल में चलती- फिरती हैं फिर जल में लीन हो जाती हैं तो ये जल से जुदा कहाँ हैं? इसी प्रकार से भगवान कहते हैं मुझसे जगत उत्पन्न होता है तरंगों के समान, मैं आनंद सिंधु हूँ और ये संसार लहरें हैं। मुझसे उत्पन्न होता है ये संसार, मुझमें रहता है, मुझमें चलता-फिरता है, मुझमें लीन होता है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्म।

जिससे जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है, जिसमें चलता-फिरता है फिर जिसमें लय हो जाता है वह ब्रह्म है। तो कार्य-कारण रूप सब ब्रह्म ही है दूसरा कुछ भी नहीं है।

* चतुर्थ श्लोक *

(परमात्मा प्राप्ति का साधन)

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व जिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।। 2.9.35

हे ब्रह्मन्! इतना ही जानने योग्य है। 'कार्य' कारणरूप ही होता है, कारण एक होता है कार्य अनेक होता है परन्तु कारण से भिन्न कार्य नहीं होता है। सम्पूर्ण ज्ञान इतना ही है, इतना ही जानने योग्य है। **'यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा'** जो सर्वत्र है और सर्वदा है वो मैं परम ब्रह्म परमात्मा ही हूँ दूसरा कोई नहीं है।

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना,
भवान्कल्प विकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।।

हे ब्रह्मन्! ये जो मैंने तुझको ज्ञान दिया है इसको परम समाधि के द्वारा तुम धारण करो तो सृष्टि की उत्पत्ति में और प्रलय में तुम मोह को प्राप्त नहीं होगे। तो भगवान ने ब्रह्माजी को यही ज्ञान दिया कि आदि में भगवान था, अन्त में भगवान है और मध्य में भी अनेक रूप में भगवान ही है जैसे आदि में जल है और अन्त में जल है और मध्य में तरंगों के रूप में जल ही है। आदि-अन्त में तो एक जल है और मध्य में लहरों के रूप में अनेक भी है। ऐसे ही आदि-अन्त में तो एक आनंद सिन्धु भगवान हैं और मध्य में ये स्त्री-पुरुष मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र अनेक लहरों के समान है तो मध्य में भी दूसरा कोई है नहीं एक आनंद सिन्धु ही है।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

स्वामीजी के प्रवचनों से संकलित :—

५५

* द्वितीय स्कन्ध *

चतुश्लोकी भागवत

चतुर्भुज विष्णु का रूप धारण कर भगवान ने ब्रह्माजी को केवल ४ श्लोकों में ज्ञान दिया। इसी को चतु:श्लोकी भागवत कहते हैं। इन्हीं चार श्लोकों को समझने के लिये १८ हज़ार श्लोकों की आवश्यकता है।

प्रथम श्लोक — बह्म का स्वरूप निरूपण
द्वितीय श्लोक — माया का स्वरूप निरूपण
तृतीय श्लोक — जगत का स्वरूप विवरण
चतुर्थ श्लोक — ब्रह्मस्वरूप प्राप्ति के साधन

* प्रथम श्लोक *

(बह्म का स्वरूप निरूपण)

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम्।। 2.9.32

''अहं एव आसम्'' तथा **''आसमेव अग्रे''** — सृष्टि में जब कोई नहीं था, तुम भी नहीं थे तब केवल मैं था यानि सृष्टि के आदि में केवल मैं ही था मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। मैं निर्विशेष चैतन्य सत्ता रूप ही था।

न सत् — अर्थात न जाग्रत का स्थूल जगत था
न असत् — अर्थात न स्वप्न का सूक्ष्म जगत था
न सदसत् — अर्थात न सत्-असत् से परे सुषुप्ति = अव्यक्त प्रकृति थी

इन 'जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति' / 'स्थूल सूक्ष्म कारण' रूप ''कार्य-कारण रूप प्रकृति'' तीनों से पहले मैं ही था। यह तीनों जब नहीं होंगे तब भी मैं चौथा (तुरीय) शेष रहता हूँ।

आदि में मैं ही सत् था, जब कुछ नहीं होगा तब भी मैं सत् शेष रहूँगा। मध्य में जब जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति हैं तब ये दृश्य मात्र हैं और मैं इन तीनों अवस्थाओं में व्यापक इनका द्रष्टा—साक्षी होकर रहता हूँ।

- **''जाग्रतस्वप्नसुषुप्ति त्रयमेतन्मायामात्रम्''**
- **''जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचं यत्प्रकाशते,**
  तद् ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धै: प्रमुच्यते''

हे ब्रह्मा ! वही ब्रह्म तू है। तू ही तीनों में रहता है, तीनों को देखता है, तीनों में एक रूप रहता है। तू सच्चिदानंद ब्रह्म ही है। जीव और परमात्मा का एकत्व है। आदि-अंत-मध्य में मैं ही एक सत्य हूँ। मध्य मे जो दिखाई देता है वह मेरी माया है।

आदि—अंत में मैं एक रूप हूँ और मध्य में माया से मैं ही अनेक रूप हूँ।

- **एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ।।**
- **एकमेवाद्वयं ब्रह्म मायया च चतुष्टयं ।।**
- **सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति ।।**
- **तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय एकोहं बहुस्याम् ।।**
- **दृग्दृश्ये द्वौ रूपे स्तः परस्पर विलक्षणौ ।**
  दृग्ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदान्त निर्णयः'।।
- **एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।**
  कर्माध्यक्षा सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।
- **देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवा ।**
  त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत् ।।

* द्वितीय श्लोक *

(माया का स्वरूप निरूपण)

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथोऽऽभासो यथा तमः।। 2.9.33

हे ब्रह्मा ! यह जो संसार प्रतीत हो रहा है और मेरी प्रतीति नहीं हो रही है यह मेरी माया शक्ति है। यह मेरी माया अनादि अविद्या अज्ञान रूपा है। इसकी २ शक्ति हैं :—

१ आवरण शक्ति —

- असत्त्वापादक — ब्रह्म नास्ति — ब्रह्म नहीं है।
- अभानापादक — ब्रह्म न भाति — ब्रह्म भासता नहीं है।

२ विक्षेप शक्ति — आवरण शक्ति से विक्षेप का प्रादुर्भाव, पंचमहाभूत आदि प्रपंच की उत्पत्ति ही विक्षेप शक्ति है। पंचमहाभूत से सूक्ष्म, स्थूल की उत्पत्ति होती है एवं चिदाभास (बुद्धि में चेतन का आभास) कर्मों में अभिमान कर कर्ता बना और फिर सुख दुःख का भोक्ता बन कर जन्म—मरण के बन्धन में पड़ गया। **स्थूल शरीर से तादात्म्य** कर अपने को स्त्री पुरुष ब्राह्मण क्षत्रिय ब्रह्मचारी सन्यासी तथा जन्मने—मरने वाला मानने लगा। **सूक्ष्म शरीर से तादात्म्य** कर अपने को अन्धा—बधिर (इन्द्रियों से तादात्म्य), भूखा—प्यासा (प्राणों से तादात्म्य),

सुखी—दु:खी (मन से तादात्म्य), ज्ञानी—अज्ञानी (बुद्धि से तादात्म्य) मानने लगा। यही जीव का बन्ध है। यही जीव जब स्वयं को द्रष्टा साक्षी सच्चिदानंद ब्रह्म जानता है तो यही मोक्ष है। मेरी ही माया आवरण कर मुझे छिपा देती है और मायारूपी यह जगत दिखा देती है परन्तु सब शरीरों में बैठकर देखने वाला द्रष्टा साक्षी मैं अकेला हूँ, चिन्मय सत्ता हूँ, ज्ञान रूप हूँ। ज्ञान का कोई आकार नहीं होता अत: मैं अदृष्टो द्रष्टा हूँ। सब शरीर छाया मात्र हैं माया हैं। सब शरीरों की आखों से देखने वाला मैं जीवात्मा हूँ। जीवात्मा मेरा ही स्वरूप है। शरीरों के भीतर मेरा ही नाम जीवात्मा पड़ गया है व शरीरों के बाहर अनन्तगुना महान् परिपूर्ण मैं ही परमात्मा कहलाता हूँ। भीतर बाहर का भेद केवल शरीर दृष्टि से है पर वास्तविक अभेद है, यानि व्यवहारिक भेद — वास्तविक अभेद। जैसे घट के भीतर आकाश घटाकाश, मठ के भीतर मठाकाश और बाहर परिपूर्ण महाकाश लेकिन आकाश तो अखंड है, यह भेद केवल उपाधिकृत है।

पुरुष रूप से मैं सत् हूँ छाया रूप से मैं असत् हूँ। पुरुष अदृष्टो द्रष्टा व छाया दृश्य।

''ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवौ ब्रह्मैव ना पर:''

* तृतीय श्लोक *

(जगत का स्वरूप निरूपण)

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।। **2.9.34**

हे ब्रह्मा यह सारा जगत पंचमहाभूतों का ही कार्य है, सारे भूत प्राणी पंचमहाभूतों का ही कार्य हैं अत: सारे शरीर पंचमहाभूतों से अभिन्न हैं।

सर्वत्र पंचमहाभूतानि षष्ठम् किन्चिन् न विद्यते ।
पाताले भूतले सर्गे रतिमे तत् क्व धीर धीर ।।

क्या स्वर्ग में, क्या नर्क में, क्या पाताल क्या पृथ्वी में सर्वत्र पंचमहाभूत ही पंचमहाभूत हैं। सब शरीर पंचमहाभूत से बने हैं अत: सारी सृष्टि मायामय है। 'रामायण में भी कहा है' :—

क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा ।

जैसे कार्यरूप से पंचमहाभूत अनेक हैं पर कारणरूप से देखो तो एक पंचमहाभूत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है उसी प्रकार परमात्मा जो जगत कारणरूप है वह एक है सत् है परन्तु जगत माया का कार्य होने से अनेक रूप है — मिथ्या है। अत: परमात्मा कहते हैं कि हे ब्रह्मा! एक रूप भी मैं हूँ और माया से अनेक रूप भी मैं हूँ। इसी संदर्भ में गीताजी में कहा है :—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित: ।।

मुझ अव्यक्तरूप परमात्मा द्वारा (अदृष्टो—द्रष्टा—करण अगोचर स्वरूपेण) यह समस्त जगत व्याप्त है परिपूर्ण है। उस अव्यक्तरूप परमात्मा में ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणी

स्थित हैं। मैं उनमें परिपूर्ण हूँ पर आधेय रूप से स्थित नहीं हूँ क्योंकि मैं अति सूक्ष्म और असंग हूँ। मेरा और जगत का सम्बन्ध अधिष्ठान-अध्यास रूप है।

* चतुर्थ श्लोक *

(परमात्मा प्राप्ति का साधन)

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व जिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।। 2.9.35

अब इस अन्वय-व्यतिरेक की प्रक्रिया से तत्त्व को जान लेना चाहिये।

- जैसे कारण का कार्य में प्रवेश **'अन्वय'** है :: माटी का घट में अन्वय है।
- कार्य का कारण में अभाव **'व्यतिरेक'** है :: घट के अभाव में माटी का होना।

अतः माटी सत्य है एवं घट नामरूप होने से मिथ्या है। उसी प्रकार मैं परमात्मा सब में प्रविष्ट हूँ लेकिन सबसे अलग भी हूँ। कारण सत्य होता है तथा कार्य अपने कारण से अभिन्न परन्तु मिथ्या नाम मात्र होता है।

- **''कहहुँ उमा मैं अनुभव अपना, सत् हरि भजन जगत सब सपना''**
- **''गो गोचर जहँ लगि मन जाई, सो सब माया जानेहु भाई''**
- **''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः''**
- **''ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या''**

आत्म तत्त्व के जिज्ञासु के लिये इतना ही जानना योग्य है कि कारणरूप से भी मैं हूँ एवं कार्यरूप से भी मैं ही हूँ। कारणरूप से मैं एक सत् रूप हूँ और कार्यरूप से मैं ही अनेक मिथ्या रूप हूँ। अतः हे ब्रह्मा! इस ज्ञान को सम्यक प्रकार से अपने हृदय में धारण करो। सृष्टि की रचना एवं प्रलय काल में तुम कभी मोह को प्राप्त नहीं होगे।। इति ।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

CD # 39 - Voice 31

५६

आत्मज्ञान से संसार की निवृत्ति

अशरण शरण अकारण करुण करुणा वरुणालय, कर्तु अकर्तु अन्यथा कर्तु समर्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर पूर्णतम् पुरुषोत्तम परब्रह्म, सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा हे भगवन्! मेरे परम कल्याण का उपाय बतावें, मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ मेरा तन मन बुद्धि प्राण आपके चरणों में अर्पण हैं। भगवान श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! सावधान मन से श्रवण करो :—

कर्मणों ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मण:,
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति:।। BG – 04.17 ।।

अर्जुन कर्म को भी जानना चाहिये, विकर्म को भी जानना चाहिये और अकर्म को भी जानना चाहिये, इनको जान लेने से संपूर्ण ज्ञान हो जाता है कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है। कर्म क्या है? विकर्म क्या है? तो भगवान कहते हैं कि वेद-विहित कर्म 'कर्म' कहलाते हैं उन्हीं हो धर्म भी कहते हैं और वेद-विरुद्ध कर्म या निषिद्ध कर्म 'विकर्म' कहलाते हैं। तो ईश्वर ने जिन कर्मों का विधान किया है कि ये कर्म करो उन्हीं को कर्म कहते हैं, जिनको ईश्वर ने निषेध किया है उन निषिद्ध कर्मों को विकर्म कहते हैं। जो शुभकर्म हैं विहितकर्म हैं उनसे सुख मिलता है और निषिद्ध कर्मों से दु:ख मिलता है तो भगवान ने उन्हीं कर्मों का निषेध किया है जो दु:ख देने वाले हैं माने किसी को दु:ख नहीं देना चाहिये। **'मा हिंस्यात् सर्व भूतानि'** किसी भी प्राणी की हिंसा न करो दु:ख न दो, तो जो भगवान ने मना किया है उनको विकर्म कहते हैं, सुख दो सबको ये विधान किया है, इसी को शुभकर्म कहते हैं इसी को धर्म कहते हैं और विरुद्धकर्म को अधर्म कहते हैं अशुभकर्म कहते हैं निषिद्धकर्म कहते हैं - ये कर्म और विकर्म की व्याख्या किया है भगवान ने। ये कर्म होते किससे हैं? देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण, ये ही कर्म के साधन हैं इनके बिना कर्म नहीं हो सकते हैं और ये 'देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण' पंचमहाभूतों से बनते हैं, पंचमहाभूत तीन गुणों से बनते हैं, तीन गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं।

सत्वं रजसतम इति गुणा: प्रकृतिसंभवा:,
निबध्नन्ति महाबाहो देहे दहिनमव्ययम् ।। BG – 14.05 ।।

अर्जुन! सत्वगुण रजोगुण तमोगुण ये प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और ये जीव को बंधन करते हैं इसलिये अपनी आत्मा को जानना चाहिये, आत्मा गुणातीत है। तो प्रकृति और प्रकृति के गुण और उनसे बने पंचमहाभूत - 'आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी' और पंचमहाभूतों से स्थूल और सूक्ष्म शरीर बनते हैं। ये ऑखों से जो दिखाई पड़ रहे हैं स्त्री पुरुष मनुष्य पशु पक्षी के शरीर ये सब पंचमहाभूतों से बनते हैं। पंचीकृत् महाभूतों से स्थूलशरीर बनते हैं, अपंचीकृत् महाभूतों से सूक्ष्मशरीर बनते हैं। पंचमहाभूतों का पंचीकरण होता है तो एक एक के पॉच पॉच हो जाते हैं, तो पच्चीस हो जाते हैं तो ये स्थूलशरीर २५ तत्त्वों का समुदाय है, पंचमहाभूतों के ही पच्चीस

तत्त्व भये, अब आप उनको अपने शरीरों में देख लो क्योंकि तुम **ज्ञान-स्वरूप** हो न! तुम्हीं देख सकते हो जान सकते हो और प्रकृति, तीनों गुण, पंचमहाभूत, उन पंचमहाभूतों से बने ये शरीर – इनको किसी को ज्ञान नहीं है, ये सब जड़ पदार्थ हैं इसलिये ये तो जान नहीं सकते हैं, हमारा तुम्हारा स्वरूप ज्ञान है, इन सबको हम ही जान सकते हैं देख सकते हैं, इन जड़ पदार्थों में ही सब कर्म हैं और द्रष्टा चेतन में कोई कर्म नहीं है। तो देखो इस स्थूल शरीर में २५ तत्त्वों को समझो, ये तुम्हारे शरीर हैं तुम शरीर नहीं हो जैसे किसी के घर होवें वो घर में रहता है घर को जानता है देखता है परन्तु घर जड़ होता है, घर को कुछ ज्ञान नहीं होता है और घर बनते बिगड़ते हैं और घर का मालिक बनता-बिगड़ता नहीं है। ये शरीर घर है और जीवात्मा इसमें रहता है तो जीवात्मा तो इस घर को जानता है, पंचमहाभूतों से ये घर बना है तो न पंचभूत जानते हैं और न ये शरीर ही किसीको जानते हैं। शरीर तो बनते बिगड़ते रहते हैं घर तो बनते बिगड़ते रहते हैं, जिससे घर बनता है उसी में बिगड़ भी जाता है। पंचमहाभूतों से ये घर बनते हैं और मृत्यु आने पर इन्हीं पंचमहाभूतों में लीन हो जाते हैं क्योंकि पंचमहाभूतों से बने हैं तो उसी में लीन हो जाते हैं पर जो आत्मा इसमें रहता है वो तो बना नहीं है वो तो प्रकृति से परे है, जो प्रकृति से परे है वो प्रकृति नहीं है, गुण नहीं है, पंचमहाभूत नहीं है, पंचमहाभूतों से बने ये स्थूल और सूक्ष्मशरीर भी नहीं है वो चेतनतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, वो आत्मा है हमारा तुम्हारा स्वरूप है क्योंकि अपनी ऑखों में तुम धूल तो नहीं झोंक सकते हो, तुम ज्ञान नेत्र को फोड़ तो नहीं सकते हो। कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं है जो ज्ञान नेत्र को फोड़ देवे। ये ज्ञान नेत्र अनंत अखण्ड है, सदा सदा से है हमारा तुम्हारा ज्ञान केवल शरीर पैदा होते हैं, पैदा हुआ शरीर ऑखें खुलीं बालक अपने आप देखने लगता है ये तो पहले से ज्ञान है न! बालक से पूछो बेटा तू देखता है? वो कहेगा हॉ देखता हूँ, बोल दिन है कि रात है? दिन होता है तो वो बालक भी बताता है कि अब दिन है अब रात है, तो ज्ञान तो नहीं पैदा हुआ है पैदा हुए हैं शरीर। तो वो शरीरों को भी देखता है, अपने शरीर को भी और शरीर को पैदा करने वाले जो माता पिता हैं उनको भी देखता है क्योंकि उनके भी शरीर ही हैं और ये शरीर न अपने को जानता है और न दूसरे को जानता है क्योंकि उनमें जब ज्ञान ही नहीं है तो वो कैसे जानेंगे? तो इस शरीर में पॉच महाभूतों के पंचीकरण से पच्चीस *पंचीकृत तत्त्व* भये उनको आप देखो कि अपना **स्थूलशरीर** किस Material से बना है। 1 **हड्डी चर्म नाड़ी रोम** और **मांस** - ये पॉच चीज़ें पृथ्वी के अंश हैं माने पृथ्वी की हैं इस शरीर में। 2 **मूत्र**, **श्लेष्म** कहते हैं मुख से जो थूक ख़खार लार निकलता है इसको श्लेष्म कहते हैं, **रक्त** रुधिर या खून, **शुक्र** कहते हैं वीर्य को और **स्वेद** नाम पसीने को है - ये पॉच चीज़ें इस शरीर में जल की हैं। 3 **क्षुधा-तृषा**, क्षुधा माने भूख तृषा माने प्यास, **आलस्य, मोह** और **मैथुन** - ये पॉच चीज़ें अग्नि तत्त्व की हैं 4 **हाथ-पैरों** का फैलाना और सिकोड़ना, **अॅगुलियों** का फैलाना और सिकोड़ लेना माने मुट्ठी बॉध लेना और फैला देना, **ऑखों** का खोलना और बन्द कर लेना, **स्वॉस लेना** और **स्वॉस छोड़ना** - ये पॉच चीज़ें वायु तत्त्व की हैं 5 **काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय** - ये पॉच चीज़ें इस शरीर में आकाश तत्त्व की हैं, पच्चीस हो गये। ये २५ चीज़ों को जो सामूहिक नाम है, ये पच्चीस तत्त्व एकदम मिले हैं मिलकर के एक शरीर बन गया, एक शरीर कहने से २५ तत्त्वों का ज्ञान होना चाहिये इसमें एक चीज़ का नाम शरीर नहीं है। शरीर में ऑख कान नाक हाथ पॉव पेट पीठ कितने अंग हैं? सबको मिलाकर ही तो शरीर कहते हैं न! केवल एक हाथ का नाम तो शरीर नहीं है, पॉव का नाम तो शरीर नहीं है, ऑख कान का नाम तो शरीर नहीं है, एक चीज़ का नाम तो शरीर नहीं है शरीर उसको कहते हैं जिसमें ये सब अंग हैं सब चीज़ें हैं। जैसे ये मकान जो बना है वो एक चीज़ का नाम मकान नहीं है इस मकान में बहुत चीज़ों का सामूहिक नाम है।

मकान का पहले Material है तो Material भी बहुत है इसमें ईंटा पत्थर सरिया सीमेंन्ट आदि कितनी चीज़ें हैं, बनाने वाले कारीगर और मज़दूर इनमें एक भी न होवे, Material न होवे, बनाने वाला मिस्त्री न होवे, मज़दूर न होवे तो क्या मकान बनेगा? नहीं बनेगा। अब मकान में देखो कितनी चीज़ें हैं – खम्भें दीवारें छत फ़र्श दरवाज़े खिड़की आलमारी कितनी चीज़ें हैं कहो मकान किसको कहोगे दरवाज़े को या खिड़की को? कि छत को, दीवारों को, कि खम्भों का नाम मकान है बोलो? सब चीज़ मिलकर ही तो कहोगे कि ये मकान है तो मकान कहने से इतनी चीज़ों का ज्ञान होता है। Material, बनाने वाले और मकान के प्रत्येक अंग खिड़की दरवाज़ा छत खम्भे दीवारें फ़र्श आदि ये सब अंग हैं मकान के। तो २५ तत्त्व का ये शरीर बना है माने पच्चीस तत्त्वों का सामूहिक नाम शरीर है। *अपंचीकृत पंचमहाभूतों* से **सूक्ष्मशरीर** बनता है, जिनका पंचीकरण न भया हो माने पॉच तत्त्वों के पच्चीस न बने हों, साक्षात् पंचमहाभूतों से ही **सूक्ष्मशरीर** बनता है। आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी इन पंचमहाभूतों से श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा घ्राण की उत्पत्ति होती है — आकाश से श्रोत्र, वायु से त्वचा, अग्नि से नेत्र, जल से जिह्वा और पृथ्वी से नासिका, पंचतत्त्वों के क्रम से ये ५ ज्ञानेन्द्रिय बने। ऐसे ही पंचमहाभूतों से ५ कर्मेन्द्रिय— वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ बने, वाक् माने जिससे वाणी बोलते हैं, पाणि नाम हाथ का है, पाद नाम पैर का है, पायु नाम जिससे मल त्याग करते हैं गुदा इन्द्रिय का है, उपस्थ नाम मूत्र इन्द्रिय का है जिससे मूत्र परित्याग करते हैं इनको ज्ञान नहीं होता ये कर्म ही करती हैं इसलिये इनका नाम कर्मेन्द्रिय है। ५ प्राण— प्राण अपान व्यान समान उदान, ये पॉच प्राण है ये भी पंचमहाभूतों से साक्षात् बने हैं, ये पन्द्रह भये। मन बुद्धि चित्त अहंकार, ये चतुष्ट्य-अन्तःकरण है ये भी पंचमहाभूतों से बने हैं। एक चतुष्ट्य-अन्तःकरण की ४ वृत्तियॉ हैं जो पंचमहाभूतों से बनी हैं। वायु तत्त्व से मन बना है, अग्नि तत्त्व से बुद्धि बनी है, जल तत्त्व से चित्त बना है और पृथ्वी से अहंकार बना है, ये १९ तत्त्व सज्जनों हो गये, तो ये भी पंचमहाभूतों से बने हैं। न पंचमहाभूतों को कुछ ज्ञान है और न पंचमहाभूतों से बने इन १९ तत्त्वों को ही ज्ञान है कुछ, जैसा कारण है वैसा ही कार्य हैं। ये दोनों शरीर पंचमहाभूतों से ही बने हैं।

भुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य मनुसास्मृतो,
शोक मोह शरीरस्य जरा मृत्यु क्षरोन्मया।।

इसमें जन्म-मरण तो स्थूल शरीर का धर्म है और भूख-प्यास प्राणों का धर्म है, सुख.दुःख मन का धर्म हैं।

जन्म मरण हैं देह के सुख दुःख मन के जान,
भूख प्यास गुण प्राण के सांख्य शास्त्र निर्वाण।।

ये हमारे तुम्हारे धर्म नहीं हैं ये तो शरीरों के धर्म हैं। हमारा तुम्हारा स्वरूप पंचमहाभूतों में व्यापक है, गुणों में व्यापक है, प्रकृति में व्यापक है और देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में व्यापक है आकाश के समान व्यापक है, सबको देखता है क्योंकि सबमें व्यापक नहीं होवे तो सबको देखेगा कैसे? सबमें रह कर सबको देखता है और सबसे असंग रहता है छूता नहीं है किसी को क्योंकि निर्गुण निराकार है ज्ञान, जैसे आकाश निराकार है सबमें व्यापक रहता है किसी को छूता नहीं है वो हमारा आत्मा है, वो अकर्म है उसमें कोई कर्म नहीं है। स्थूल शरीर तो केवल मकान रूप ही हो गया और जो सूक्ष्म शरीर हैं उसमें कर्म करने के साधन इन्द्रियॉ हैं मन है बुद्धि है प्राण हैं, इन्हीं से सब कर्म होता है पर हमारा स्वरूप न इन्द्रियॉ हैं और न इन्द्रियों के कर्म हैं। इन्द्रियों के कर्म इन्द्रियों में हैं हममें कैसे आयेंगे? जन्म-मरण शरीर का है तो हम में कैसे आ जायेगा? इसलिये आत्मा का न तो जन्म है न मरण है और न कोई कर्म है। देह,

इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण हम होते तो कर्म हम में होता, स्थूलशरीर हम होते तो हमारा जन्म-मरण होता, ये जो नाम-रूप हैं ये स्थूल शरीर के हैं पर स्थूलशरीर हम हैं नहीं इसलिये हमारा कोई नाम और रूप भी नहीं है।

'न स्त्री पुमान्वा षंडो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः'

न हम स्त्री हैं न पुरुष हैं न नपुन्सक हैं, न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हैं ये सब स्थूल शरीर के ही नाम हैं। हम न ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी हैं, न पशु हैं न पक्षी हैं ये तो शरीरों के ही नाम हैं और शरीरों के ही रूप हैं पर हम सब नाम-रूपों में हैं व्यापक हैं। स्त्री के भीतर हैं, पुरुष के भीतर हैं, पशु-पक्षी के भीतर हैं, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के भीतर हैं और सबको देखते हैं, सबसे अलग हैं **'असंगो हि अयं पुरुषः',** हम चेतन पुरुष हैं असंग हैं इसलिये हमारा तुम्हारा स्वरूप क्या है? केवल साक्षी द्रष्टा! दृश्य कदापि नहीं हो सकता है, दृश्य तो प्रकृति, प्रकृति के गुण, पंचमहाभूत, सूक्ष्मशरीर, स्थूलशरीर – इतना ही सब कार्य-कारणरूप माया है, दृश्य इतना ही है, इन सबके हम द्रष्टा हैं इसलिये अपना स्वरूप समझो, वेद कहता है —

नाहं मनुष्यो न च देव यक्षो, न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र,
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो, भिक्षुर्न चाहं निज बोध रूपः।।

न हम मनुष्य हैं, न कोई देवता हैं, न किन्नर हैं, न नाग हैं, न गंधर्व हैं, न ब्राह्मण वैश्य शूद्र हैं ये तो शरीरों के नाम और रूप हैं, न हम ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी हैं, न स्त्री हैं न पुरुष हैं न कोई पशु - गाय बैल बकरी हैं और न कोई पक्षी - काग कोयल कबूतर आदि हैं किन्तु सबमें हैं, सबको देखते हैं। ये जितने शरीर हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री पुरुष पशु पक्षी ये पंचभूतों के कार्य स्थूल शरीर हैं, तो हम स्थूलशरीर भी नहीं हैं और सूक्ष्मशरीर भी नहीं हैं - इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण आदि, न ज्ञानेन्द्रिय है, न कर्मेन्द्रिय हैं, न पॉच प्राण हैं, न मन बुद्धि चित्त अहंकार हैं किन्तु इनके भी देखने वाले हैं क्योंकि ये भी अपंचीकृत पंचमहाभूतों के ही बने हुए हैं सूक्ष्मशरीर। तीसरा कारणशरीर होता है अज्ञानरूप, **'अपने स्वरूप को न जानना'** इसको अज्ञान कहते हैं, इसी को कारणशरीर कहते हैं तो हम अज्ञान भी नहीं हैं। इस अज्ञान को ही प्रकृति कहते हैं माया कहते हैं। प्रकृति को ज्ञान नहीं है अज्ञान को हम ही जानेंगे, ज्ञान तो स्वतः सिद्ध है क्योंकि उसकी उत्पत्ति नाश होती नहीं होती, अनंत अखण्ड है इसलिये अज्ञान को हम ही जानेंगे, अज्ञान को तो ज्ञान नहीं है उसका नाम ही अज्ञान है, अंधकार को कौन देखेगा? ज्ञान, जो अज्ञान से परे होगा वही ज्ञान होगा तो जो द्रष्टा रहता है जिसको देखता है उसमें मिलता नहीं

अलग रहता है। इसी प्रकार तीन शरीरों के अन्तर्गत् तीन अवस्था आती हैं जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति, जाग्रत में ये सब स्थूल शरीर आ जाते हैं, स्वप्न में सब सूक्ष्मशरीर आ जाते हैं और सुषुप्ति अज्ञान-अंधकार रूप है इसलिये वो कारण शरीर में आ गई। इन्हीं तीन शरीरों में पॉच कोश भी आ जाते हैं – अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, आनंदमय। इस स्थूलशरीर को *अन्नमय कोश* कहते हैं, पॉच कर्मेन्द्रिय और पॉच प्राण को *प्राणमयकोश* कहते हैं, पॉच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन इसको *मनोमयकोश* कहते हैं, पॉच ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि को *विज्ञानमयकोश* कहते हैं। प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय ये तीनों कोश मिल करके सूक्ष्मशरीर कहलाता है बचा कारण वो अज्ञानरूप कारणशरीर है, उसको *आनंदमयकोश* कहते हैं तो इन्हीं तीन शरीरों में पॉच कोश भी आ गये। हम तीनों शरीरों से परे हैं, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं से परे हैं और 'तुरीय' माने जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को जो देखता है उसका नाम तुरीय है, तुरीय नाम चौथे का है ये चतुरीय था, 'च' का लोप हो गया है (व्याकरण के सूत्र से 'च' का लोप हो जाता है) चतुरीय में च का लोप हो जायेगा तो क्या बचेगा? तुरीय माने चौथा, जैसे द्वितीय माने दूसरा और तृतीय माने तीसरा और चतुरीय माने चौथा तो तीन से वो चौथा भिन्न ही तो होगा। जो

तीन को गिनेगा वो चौथा तीन से अलग होगा कि नहीं होगा? वो तीन में तो मिल नहीं सकता है, चौथा तीन से भिन्न है जिसने तीन को गिन दिया वो चौथा स्वत: सिद्ध है। इन तीनों को ज्ञान नहीं है चौथा ज्ञान स्वरूप है माने हम आप चौथे हैं, ज्ञान स्वरूप हैं और इन तीनों स्थूल-सूक्ष्म-कारण को ज्ञान नहीं है इसलिये हम इनमें मिल नहीं सकते, अज्ञानरूप हम हो नहीं सकते, अंधकार और प्रकाश मिल नहीं सकते, जड़ चेतन मिल नहीं सकते हैं।

तुलसी कबहुँके रह सकें रवि रजनी एक ठाम।

रवि और रजनी माने दिन और रात, रवि सूर्य और रात क्या साथ साथ रह सकते हैं? नहीं रह सकते, दोनों अलग अलग हैं। हमारा तुम्हारा स्वरूप चेतन है, तीनों शरीरों में रहते हें और तीनों शरीरों को जानते हैं। देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में रहते हैं और इन सबको हम जानते हैं। पंचमहाभूतो में भी व्यापक हैं, गुणों में भी व्यापक हैं इसलिये पंचमहाभूतों को भी जानते हैं तीनों गुणों को जानते हैं। प्रकृति में भी व्यापक हैं इसलिये प्रकृति को हम जानते हैं पर ये हमको नहीं जानती। इसलिये प्रकृति, प्रकृति से होने वाले गुण, पंचमहाभूत और पंचमहाभूतों से बने हुए स्थूल सूक्ष्मशरीर - ये हमको आपको नहीं जानते हैं ये जड़ पदार्थ हैं, एक हम ही चेतन हैं चेतन नाम ज्ञान का है, ज्ञान का जन्म-मरण नहीं होता है। ज्ञान में कोई सुख या दु:ख नहीं है पहले ही बताया है सुख-दु:ख मन के धर्म हैं, सुख-दु:ख के हम साक्षी हैं क्योंकि नेत्र आदि इन्द्रियों से सुख-दु:ख दिखाई तो पड़ता नहीं है कि दिखाई पड़ता है? ऑखों से सुख दिखाई पड़ेगा कि दु:ख दिखाई पड़ेगा? किसी को बहुत दु:ख है पर ऑखों से दीखता है क्या? ऑखों से तो आकारवान् पदार्थ ही दिखाई पड़ता है, ऑखों से तो सूक्ष्मशरीर भी नहीं दिखाई पड़ता इसलिये सुख-दु:ख भूख-प्यास दिखाई नही पड़ती। कोई कहता है भूख लगी है तो क्या ऑखों से दिखाई पड़ती है भूख? प्यास लगी है तो क्या दिखाई पड़ती है भूख-प्यास? पर हम तो जानते हैं न क्योंकि हम ज्ञानस्वरूप हैं। शरीर के भीतर का हाल भी हम ही जानते हैं और शरीर के बाहर जो संसार है इसको भी हम ही देखते हैं। देह के भीतर इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण हैं उनको भी ज्ञान नहीं है तो उनको भी हम देखते हैं और बाहर जो ये शरीर है स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत इनको भी हम ही देखते हैं ये तो कोई हमको देखते नहीं, हम सर्वद्रष्टा साक्षी हैं। अध्यात्मोपनिषद में लिखा है —

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसौन्दर्यजातय:,
स्थूलदेहगता एते स्थूलाद्भिन्नस्य मे नहि।।

ब्राह्मणपना, कुल, गोत्र, जाति, नाम-रूप और जन्म-मरण ये सब स्थूलशरीर में हैं माने आकार और रूप सब स्थूलशरीर में हैं मैं तो स्थूलशरीर से अलग हूँ इसलिये ये मेरे में नहीं हैं ये सब धर्म स्थूलशरीर में हैं।

क्षुत्पिपासान्ध्यबाधिर्य कामक्रोधादयोऽखिला:
सूक्ष्मदेहगता एते सूक्ष्माद्भिन्नस्य मे नहि।।

कहते हैं क्षुधा-पिपासा, भूख-प्यास, बहरापना, अंधापना, स्वस्थपना, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आसुरी सम्पत्ति माने ये अधर्म हैं और दया क्षमा शान्ति भक्ति ये सब शुभकर्म हैं। तो शुभकर्म अशुभकर्म दोनों सूक्ष्मशरीर में हैं क्योंकि इन्द्रियों से ही तो करेगा, मन बुद्धि से ही तो करेगा अच्छा-बुरा कर्म! हम इनके भी द्रष्टा साक्षी अलग हैं, ये सूक्ष्मशरीर के धर्म हैं।

जड़त्वप्रियमोदत्वधर्मा: कारणदेहगा:,
न सन्ति मम नित्यस्य निर्विकारस्वरूपिण:।।

प्रिय मोद प्रमोद अविद्या अज्ञान ये कारणशरीर के धर्म हैं और मैं निर्विकार और नित्य सदा रहने

वाला हूँ मुझ चेतन आत्मा के ये धर्म नहीं हैं। तीनों शरीरों के धर्म तीनों शरीरों में हैं, दूसरे के धर्म मुझ निर्धर्मक में कहाँ आ जायेंगे? जिसका जो धर्म होता है उसी में रहता है, उसको छोड़कर दूसरी जगह नहीं जा सकता है। तो देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के धर्म देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में ही रहेंगे, द्रष्टा का धर्म द्रष्टा ही रहेगा। हम द्रष्टा हैं तो द्रष्टापना हम में ही रहेगा, अपना द्रष्टापना छोड़कर दृश्य में तो नहीं जा सकता है। इसलिये सज्जनों! सारा दृश्य में ही कर्म भी है और विकर्म भी है माने अच्छे-बुरे कर्म देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों में ही हैं और हम अकर्म हैं, अकर्म कहते हैं आत्मा को माने ये प्रकृति, प्रकृति के गुण, पंचमहाभूत और पंचमहाभूतों से बने हुए स्थूल-सूक्ष्मशरीर इन सबके हम आधार-अधिष्ठान हैं, आकाश के समान असंग भी हैं माने हमारे ऊपर ही इनका सबका खेल हो रहा है। प्रकृति का नाटक हमारे आकाश के समान व्यापक आत्मा में ही हो रहा है। **'आकाशवत् सर्वगतस्य नित्यः'** जैसे आकाश में ही वायु अग्नि जल पृथ्वी और इनके कार्यों का खेल आकाश में होता है, वायु आकाश में चलता है, अग्नि आकाश में जलती है, वर्षा आकाश में होती है, पृथ्वी आकाश में रहती है, आकाश सबमें व्यापक है, असंग है किसी के गुणधर्मों से लिपायमान नहीं होता। आकाश में वायु चलती है पर आकाश हिलता-डुलता नहीं है। आकाश में अग्नि जलती है पर आकाश नहीं जलता है, आकाश में वर्षा होती है पर आकाश गीला नहीं होता है क्योंकि छूता ही नहीं है। आकाश में भाला बर्छी तीर तलवार चलते हैं परन्तु आकाश को नहीं काटते हैं, आकाश को कौन काटे? जब छुए तब तो काटे, हमारा तुम्हारा आत्मा तो आकाश से भी अति सूक्ष्म है और आकाश से अनंत गुणा बड़ा है और बहुत सूक्ष्म है — **चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं** इसलिये आत्मा को अग्नि जला नहीं सकता, जल गीला नहीं कर सकता, वायु सुखा नहीं सकता और अस्त्र-शस्त्र छेदन नहीं कर सकते हैं क्योंकि छूते ही नहीं हैं।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। BG – V 2.23 ।।

कौन हमारे आत्मा का नाश कर सकता है और ये सभी उत्पन्न हो हो करके आत्मा में ही नाश हो जाते हैं लीन हो जाते हैं इसलिये सारा संसार आत्मा में ही उत्पन्न होता है, आत्मा में रहता है, आत्मा में विलीन हो जाता है आत्मा ही शेष रह जाता है क्योंकि आत्मा की उत्पत्ति नहीं भयी। ये सब जितना खेल है ये सब माया का राज्य है, प्रकृति राज्य है और हम माया से परे **'माया गुण गोपार'** माने माया, माया के गुण और इन्द्रिय आदिकों से परे ही रहते हैं इसलिये हम अकर्म हैं। आकाश में तो कोई कर्म होता नहीं इसी प्रकार से आकाश से अति सूक्ष्म हमारे आत्मा में कोई कर्म नहीं है, द्रष्टा साक्षी मात्र है। तो ये सारा संसार तो स्वयं ही उत्पत्ति-विनाशशील है तो हम अविनाशी का नाश कैसे करेगा सोचो? जो स्वयं नाशवान् है वो अविनाशी का नाश कैसे करेगा? छाया पुरुष से उत्पन्न होती है तो पुरुष का नाश छाया कैसे करेगी? थोड़ी देर में उसी पुरुष में स्वयं लीन हो जाती है नष्ट हो जाती है ऐसे ही छाया के समान ये सारा संसार माया और माया का कार्य है और हम अविनाशी पुरुष हैं, सत्य-ज्ञान-आनंद से जो पूर्ण हो उसको पुरुष कहते हैं, **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'** हम सत्य से ज्ञान से आनंद से पूर्ण हैं और ये सारा संसार छाया है, ये हम ही से उत्पन्न होती है हम ही में लीन हो जाती है तो ये हमारा नाश कैसे करेगी? इसलिये आत्मा अधिष्ठान है जिसमें जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय हाती है कैसे? रज्जु में सर्प के समान, जल में तरंग के समान, स्वप्न द्रष्टा में स्वप्न के समान, स्वप्न द्रष्टा ज्यों का त्यों रहता है। स्वप्न उत्पन्न हुआ हम ही ने देखा, जागे तो कहाँ गया? हम ही में नाश हो गया, हम ज्यों के त्यों हैं। ऐसे ये माया और माया का खेल सब हमारे आत्मारूपी अधिष्ठान में होता है, अधिष्ठान ज्यों का त्यों रहता है। इति।।

ओ३म् परमब्रह्मणे नमः

—०००—

५७

CD # 14 - Voice 113

देह संरचना, अवस्थात्रय एवं पंचकोश विवेक

प्रकृति और पुरुष दो ही हैं। पुरुष अनादि अनंत है तथा प्रकृति अनादि सान्त है। प्रकृति से 'सत्-रज-तम्' तीन गुण और इन ३ गुणों से 'आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी' पंचभूत उत्पन्न होते हैं, तथोपरान्त पूर्ण सृष्टि :-

पंचभूतों के पंचीकरण से उत्पन्न २५ तत्त्वों से 'स्थूल शरीर' की रचना निम्न प्रकार होती है :-

आकाश	→	काम	क्रोध	लोभ	मोह	भय
वायु	→	फैलाना-सिकोड़ना	स्थूल-कृष होना	पलक झपकाना	स्वॉस लेना छोड़ना	मुँह खोलना बन्द करना
अग्नि	→	क्षुधा	तृषा	आलस्य	मोह	मैथुन
जल	→	मूत्र	श्लेष्म	रक्त	शुक्र	स्वेद
पृथ्वी	→	अस्थि	चर्म	नाड़ी	रोम	मॉस

अपंचीकृत पंचमहाभूतों अथवा तन्मात्राओं से १६ तत्त्व के 'सूक्ष्म शरीर' की रचना निम्न प्रकार होती है :-

		तन्मात्रा	इन्द्रिय	विषय	देवता
पॉचों तन्मात्राओं के सत्वगुण से	५ ज्ञानेन्द्रियॉ	आकाश	श्रोत्र	शब्द	दिग्
		वायु	त्वचा	स्पर्श	वायु
		अग्नि	चक्षु	रूप	सूर्य
		जल	रसना	रस	वरुण
		पृथ्वी	घ्राण	गन्ध	अश्विनि
	चतुष्अन्तःकरण	वायु	मन	संकल्प–विकल्प	चन्द्रमा
		अग्नि	बुद्धि	निश्चय	ब्रह्मा
		जल	चित्त	चिन्तन	वासुदेव
		पृथ्वी	अहंकार	कर्तृत्व-भोक्तृत्व	रुद्र
पॉचों तन्मात्राओं के रजोगुण से	५ कर्मेन्द्रियॉ	आकाश	वाक्/मुँह	वाणी	अग्नि
		वायु	पाणि/हाथ	ग्रहण-अग्रहण	इन्द्र
		अग्नि	पाद/पैर	गमनागमन	विष्णु
		जल	उपस्थ/मूत्रेन्द्रिय	मूत्र विसर्जन	प्रजापति
		पृथ्वी	पायु/गुदा	मल विसर्जन	यम
	५ प्राण	प्राण - स्वॉस/शुद्धवायु लेना अपान - स्वॉस छोड़ना + गुदामार्ग से अशुद्ध वायु त्याग समान - नाभिस्थान, खाये-पिये का पाचन, रस रक्त बनाना, नाड़ियों द्वारा वितरण व्यान - व्याप्त होकर रहती है + जोड़ों/अंगों का हिलना उदान - कंठस्थान, खाये-पिये अन्न-जल का विभाजन			

साभास बुद्धि (चिदाभास) को अपने चेतन/ब्रह्म स्वरूप का अज्ञान ही कारण शरीर है.

'कारण शरीर' ही प्रकृति का रूवरूप है वह अविद्या/अज्ञान/निद्रारूप है। इस अज्ञानरूप प्रकृति से **'सत्–रज–तम्'** तीन गुण होते हैं व ये ही जीव को बन्धन करते हैं।

अवस्थात्रय		तीन देह		पंचकोश		संरचना
जागृत	→	स्थूल देह (व्यक्त-साकार)	→	अन्नमय कोश	→	अन्न
स्वप्न	→	सूक्ष्म देह (व्यक्त-निराकार)	→	प्राणमय कोश	→	५ कर्मेन्द्रियॉ + ५ प्राण
			→	मनोमय कोश	→	५ ज्ञानेन्द्रियॉ + मन
			→	विज्ञानमय कोश	→	५ ज्ञानेन्द्रियॉ + बुद्धि
सुषुप्ति	→	कारण देह (अव्यक्त-निराकार)	→	आनंदमय कोश	→	स्वरूप अज्ञान

सृष्टि क्रम :-

माया/अज्ञान/निद्रा/प्रकृति → तीनगुण → पंचभूत

- अपंचीकृत पंचभूत → सूक्ष्म शरीर **स्वप्न**
- पंचीकृत पंचभूत → स्थूल शरीर **जागृत**

सुषुप्ति

आत्मा/परमात्मा → माया/निद्रा → आकाश → वायु → अग्नि → जल → पृथ्वी → औषधियॉ → अन्न → भूत-प्राणी

अन्न से सात धातुए → १ रस → २ रक्त → ३ मॉस → ४ मेदा → ५ अस्थि → ६ मज्जा → ७ वीर्य

जीव, चेतन आत्मा पुरुष है। जब वह अज्ञानवश प्रकृति का संग करता है यानि वह अपना स्वरूप न जानकर सूक्ष्म शरीर में अभिमान करके कर्ता–भोक्ता तथा स्थूल शरीर में अभिमान करके स्त्री–पुरुष, ब्राहमण–क्षत्रिय आदि और जन्मने–मरने वाला मान बैठता है। जीव का स्वरूप दोनों शरीर से भिन्न है, वह इन सबमें है पर इन सबसे अलग एवं न्यारा है व इन सबको देखता मात्र है। जीव का वास्तविक स्वरूप तो सच्चिदानंद ही है।

प्रिय मोद प्रमोद – ये कारण शरीर के धर्म हैं, मुझ चेतन आत्मा के ये धर्म नहीं हैं। हमारा चेतन आत्मा तो तीनों शरीरों से न्यारा असंग, अकर्म, द्रष्टा–साक्षी है। अज्ञानतावश जीवात्मा को संग भ्रान्ति हो गयी है। द्रष्टा कभी दृश्य से मिल नहीं सकता, भ्रम के कारण ही वह स्वयं को कर्ता–भोक्ता मानकर ८४ लाख योनियों में भटकता फिरता है।

१६ तत्व के सूक्ष्म शरीर में ही सारे कर्म होते हैं, स्थूल शरीर तो केवल रहने का स्थान मात्र है ।

-०-

CD # 05 – 22.08.06

५८

मं ग ला च र ण

* अर्थ सहित शंकरमठ संप्रदाय शान्ति मन्त्र *

ओ३म् नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो, वंशर्षिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्य:।
सर्वोपप्लवरहित: प्रज्ञानघन: प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि ।। १ ।।
ओ३म नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ।। २ ।।
श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरुन्संततमानतोऽस्मि ।। ३ ।।
श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ।। ४ ।।
शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुन: पुन: ।। ५ ।।
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नम: ।। ६ ।।

अनध्यायमंगलपाठ:

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्, स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं परम् ।। १ ।।
अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्, स्मर्तृणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मंगलं विदु: ।। २ ।।
ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मण: पुरा, कण्ठं भित्वा विर्निर्यातौ तस्मान्मांगलिकावुभौ ।। ३ ।।

ओ३म् तत्सत् परब्रह्मणे नम:

—०O०—

मंगलाचरण की महिमा

* शान्ति मन्त्र का अर्थ *

वेदान्त ग्रन्थ में सबसे पहले प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हैं। मंगलाचरण क्यों करते हैं? – **'समाप्ति कामो मंगलम् आचरेत'** । कोई भी शुभ कार्य हो उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिये कार्य से पहले मंगलाचरण किया जाता है, यह अवश्य करना चाहिये। मंगलाचरण अर्थात् मंगल करने वाला, कल्याण करने वाला, दु:ख निवृत्ति एवं सुख प्राप्ति कराने वाला अत: भगवान का स्मरण, गुरु की वन्दना एवं आत्मा–परमात्मा के स्वरूप का निरूपण यह सब मंगलाचरण कहा जाता है। (१) स्मरण रूप (२) नमस्कार रूप (३) स्वरूप बोध । ग्रन्थ के आदि, मध्य एवं अन्त में भी मंगलाचरण करते हैं।

१. नमस्कार रूप मंगलाचरण –

ओ३म् नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो, वंशर्षिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्य:।
ब्रह्मा आदि से प्रारम्भ करके जितने गुरुओं की परम्परा चली आ रही है उन सबको नमस्कार।
सम्प्रदाय :– जिन्होंने ब्रह्म विद्या का सम्यक प्रदान किया है उसको सम्प्रदाय कहते हैं अत: ब्रह्मा आदि को, ब्रह्म विद्या सम्प्रदाय को, वंश परम्परा के ऋषियों को, महान पुरुषों को और अपने गुरु को भी नमस्कार है।

२. आत्मा का स्मरण रूप मंगलाचरण –

सर्वोपप्लवरहित: प्रज्ञानघन: प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि ।। १।।
अपने आत्मा-ब्रह्म के स्मरण के लिये यह स्मरण रूप मंगलाचरण है। अपना आत्मा कैसा है? सर्व पप्लव रहित अर्थात् सम्पूर्ण उपद्रवों से रहित, माया रहित, प्रज्ञान घन - केवल घनीभूत ज्ञान, प्रत्यगर्थो - प्रत्यक आत्मा/ प्रत्यगात्मा जो अत्यन्त भीतर है, अपना आत्मा अन्तर्तम् है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य: परं मन: ।
मन सस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धे: परतस्तु स: ।। BG - 03.42।।

बाहर से भीतर चलो – शरीर के बाहर विषय रूपी संसार, फिर शरीर के भीतर इन्द्रियॉ जिनसे बाहर का संसार देखते हैं, फिर इन्द्रियों के भीतर मन जिसमें संकल्प-विकल्प उठते हैं। मन के भीतर बुद्धि है जो निश्चयात्मिका है और बुद्धि से भी परे उससे परे हमारा स्वरूप आत्मा है जो अन्तर्तम् है।

'य: एषे हृदि अन्तर्ज्योति: पुरुष:'

ये बुद्धि के भीतर हृदय में अनन्त अखण्ड ज्योति रूप में जगमगा रही है। यही जीव की आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। यह ज्ञानस्वरूप ज्योति 'आत्मा' ही बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर व संसार को देखती है परन्तु जिसको कोई नहीं देखता, अदृष्टो–द्रष्टा वही आत्मा है, पुरुष है वही हमारा तुम्हारा स्वरूप है, यह प्रत्यक अर्थ आत्मा है, इसी आत्मा, प्रत्यगात्मा को ब्रह्म कहते हैं। यही सच्चिदानंद प्रज्ञान घन है।

ब्रह्मैव अहं अस्मि – मैं आत्मा ब्रह्म ही हूँ।

३. ज्ञान सम्प्रदाय के पिता–पुत्र परम्परा से गुरुओं को विशेष नमस्कार –

ओ३म नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ।। २ ।।

ज्ञान सम्प्रदाय के पहले गुरु सच्चिदानंद सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान नारायण हैं जिन्होंने सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी को उत्पन्न किया और उन्हें शोक मोह से युक्त देखकर अपनी वाणी वेद से अपने स्वरूप का ज्ञान देकर शोक–मोह से मुक्त किया। ज्ञान से मूल अज्ञान का नाश होता है, अज्ञान के नाश से मोह का नाश एवं मोह के नाश से शोक का नाश हो जाता है। जैसे अन्धकार का नाश प्रकाश से ही होता है किसी कर्म से नहीं उसी प्रकार अज्ञान का नाश ज्ञान से ही होता है – कर्म, उपासना, ध्यान से नहीं - ये सब चित्त को शुद्ध, निर्मल एवं एकाग्र बनाने के साधन हैं। ज्ञान भगवान से वेदरूपी वाणी के रूप में प्रकट हुआ, इसे वांगमय वेद कहते हैं। नारायण ने यह ब्रह्म ज्ञान ब्रह्मा को दिया, ब्रह्मा ने अपने पुत्र वशिष्ठ को, उन्होंने अपने पुत्र शक्ति को, शक्ति ने अपने पुत्र पाराशर को, पाराशर ने अपने पुत्र व्यास को और फिर उन्होंने अपने पुत्र शुकदेव को दिया। शुकदेव जी पर ये ज्ञान की 'पिता-पुत्र' परम्परा समाप्त हुई क्योंकि शुकदेव जी ब्रह्मचारी थे।

ज्ञान सम्प्रदाय के गुरु-शिष्य परम्परा से गुरुओं को विशेष नमस्कार –

श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरुन्संततमानतोऽस्मि ।। ३ ।।

शुकदेव जी से गुरु शिष्य परम्परा का प्रारम्भ हुआ। शुकदेव जी के शिष्य श्री गौड़पादाचार्य जी, उनके शिष्य गोविन्दपादाचार्य जी जिन्हें गोविन्द–योगीन्द्र कहा गया है क्योंकि वे तत्त्व ज्ञानी एवं योगी दोनों थे। उनके शिष्य श्री शंकराचार्य जी (वे भगवान शंकर के ही अवतार कहे जाते हैं) उनको उनके गुरु ने पूर्ण ज्ञान एवं योग दिया। शंकराचार्य जी के ४ प्रमुख शिष्य हुए, इन चारों को चार दिशाओं में भेज कर ४ मठों की स्थापना हुई। उत्तर में जोशी मठ, पश्चिम में द्वारिका पुरी में शारदा मठ, दक्षिण में श्रृंगेरी मठ तथा पूर्व में जगन्नाथ पुरी में गोवर्धन मठ। वही ज्ञान पूर्ववत् चला आ रहा है जो स्वयं आदि में नारायण ने ब्रह्मा जी को दिया था। नारायण से लेकर वर्तमान के अपने गुरुओं को निरन्तर मेरा कोटि कोटि नमस्कार है। यह कल्याणकारक आचरण है अत: इसे मंगलाचरण कहते हैं।

४. शंकर अवतार श्री शंकराचार्य जी एवं केशव अवतार श्री बादरायण (व्यास) को नमस्कार –

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ।। ४ ।।

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुन: पुन:।। ५ ।।

शंकराचार्य जी को पुन: पुन: नमन है। वे वेद, गीता और उपनिषदों के आलय हैं, कंठ हैं, उन्हें सब कंठस्त है, स्मरण है, वे करुणा की मूर्ति हैं। ऐसे लोक के कल्याण करने वाले शंकराचार्य को पुन: पुन: नमस्कार है। फिर साक्षात् शंकर के अवतार शंकराचार्य एवं केशव के अवतार व्यास जी को पुन: नमस्कार। व्यास जी ने समास में अर्थात् संक्षेप में ब्रह्म सूत्र लिखे एवं वेद की विस्तृत व्याख्या अष्टादश पुराण एवं महाभारत में की अत: उनका नाम व्यास (विस्तृत) हुआ। शंकराचार्य जी ने ब्रह्म सूत्र, गीता एवं मुख्य उपनिषदों पर विस्तार में संस्कृत भाष्य लिखा जिससे समझने में सुविधा हो। दोनों को भगवान कह कर पुन: पुन: नमस्कार किया।

५. दक्षिणा मूर्ति – पार्वती पति भगवान शंकर को नमन –

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ।। ६ ।।

दक्षिणा अर्थात् पार्वती, मूर्ति अर्थात् पति अतः पार्वती पति को नमन। ईश्वर, गुरु एवं आत्मा (शिष्य) मूर्ति भेद से तीन हैं परन्तु आकाश दृष्टि से तीनों एक हैं। ऐसे पार्वती पति शंकर को प्रणाम है जो आकाश की तरह व्याप्त हैं।

६. ब्रह्म का संक्षेप में स्वरूप –

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्, स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं परम् ।। १ ।।
अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्, स्मर्तृणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मंगलं विदुः।। २ ।।

जिसके स्मरण मात्र से अशुभ की निवृत्ति हो जाती है, सब पाप नष्ट हो जाते हैं एवं शुभ प्राप्त होते हैं – शुभ सन्तति (संतान विचार) का विस्तार होता है वह परम मंगल रूप ब्रह्म है। जो उस अत्यन्त कल्याण रूप ब्रह्म का स्मरण करता है उसको वरदान देते हैं कि तुम्हें ब्रह्म ज्ञान हो और तुम ब्रह्म ही हो जाओ।

७. ओंकार एवं अथ के परम मंगल रूप का निरूपण –

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा, कण्ठं भित्वा विर्निर्यातौ तस्मान्मांगलिकावुभौ ।। ३ ।।

सृष्टि के आदि में भगवान के कंठ को भेद कर ओंकार एवं अथ की उत्पत्ति हुई इसलिये ये दोनों परम मंगल रूप हैं अतः दोनों में से कोई एक कह दो तो मंगलाचरण हो जाता है –

जैसे – ओ३म् तत्सदिति
अथातो ब्रह्म जिज्ञासा
] — ओ३म् अथवा अथ कहने से ही मंगलाचरण हो जाता है।

वेद ईश्वर की वाणी है। परब्रह्म रूप को **परा** कहते हैं। बोलने की इच्छा को मन में **पश्यन्ति** कहते हैं। फिर कंठ में **मध्यमा** कहते हैं। ओ३म् और अथ का विस्तार ही सब स्वर-व्यंजन रूप वाणी है। सब वेद, पुराण, रामायण आदि ओंकार का ही विस्तार है। ओ३म् भगवान का पवित्र नाम है इसे प्रणव भी कहते हैं। नाम नामी को बताता है अतः ओंकार भगवान के सगुण–साकार एवं निर्गुण–निराकार दोनों रूपों को बताने वाला होने से परम मंगलमय है।

'अगुण सगुण बिच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी' ।।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

—०O०—